खजुराहो
की
देव-प्रतिमाएँ

खजुराहो

ओरिएण्टल पब्लिशिंग हाउस
'गयाकुञ्ज', सिविल लाइन्स
आगरा—२

रामाश्रय अवस्थी, एम. ए., पी-एच. डी.
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, इतिहास विभाग
क्राइस्ट् चर्च कॉलेज, कानपुर

की देव-प्रतिमाएँ

प्रथम खण्ड

गणपति ● विष्णु ● सूर्य ● नवग्रह ● अष्टदिक्पाल

गुरुवर डॉ० रामकुमार दीक्षित
को
सादर समर्पित

प्राक्कथन

खजुराहो के वास्तु-वैभव और शिल्प-कला के विभिन्न पहलुओं पर अंग्रेजी में काफी लिखा गया है और लिखा जा रहा है। पर हिन्दी में इन विषयों पर अब तक एक भी प्रामाणिक पुस्तक नही थी। खजुराहो की देव-प्रतिमाओ पर अंग्रेजी में भी फुटकर लेख तो प्रकाशित हुए है, पर कोई उल्लेखनीय पुस्तक नही निकली है। ऐसी स्थिति में खजुराहो की देव-प्रतिमाओ पर इस विशद ग्रन्थ का हिन्दी मे प्रकाशित होना बड़ा महत्व रखता है।

ग्रन्थ का श्री-गणेश एक शोध-प्रबन्ध के रूप मे हुआ था, जिस पर लेखक को लखनऊ विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली है। लेखक के ही शब्दो में "मैंने पी-एच० डी० की उपाधि के लिए खजुराहो की सभी हिन्दू मूर्तियो के प्रतिमा-विज्ञान पर शोध प्रारम्भ किया था। वर्षों तक इस विषय पर कार्य करने के पश्चात् ही मुझे यह ज्ञात हो सका कि सभी मूर्तियों का विस्तृत विवेचन एक प्रबन्ध में अनेक कारणों से सम्भव नहीं। अतएव मैंने इस प्रबन्ध मे गणपति, विष्णु, सूर्य, नवग्रह और अष्टदिक्पाल-मूर्तियों को ही सम्मिलित किया है।" ग्रन्थ में लेखक ने खजुराहो की उपरोक्त देव-प्रतिमाओं का केवल वर्णन और विश्लेषण ही नहीं किया है, अपितु प्रतिमा-विज्ञान के उपलब्ध साहित्य का मन्थन कर विषय का सर्वाङ्गीण और विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। साथ ही खजुराहो की वास्तु- और मूर्ति-कलाओं की धुँधली रूप-रेखा पर भी आधुनिक गवेषणाओं के आधार पर अच्छा प्रकाश डाला है।

ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में भूमिका के तौर पर खजुराहो का इतिहास तथा वहाँ के मन्दिरों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है और स्थानीय मूर्ति-कला की विशेषताओं से भी परिचय कराया गया है। बाद के पाँच अध्यायों में उपरोक्त देवताओं के स्वरूप और प्रत्येक के उद्‌गम, विकास एवं विभिन्न रूपों की वैज्ञानिक पद्धति पर विस्तृत तुलनात्मक समीक्षा की गई है। सभी उपलब्ध रूपों की व्याख्या और विश्लेषण करके उनकी तालिका दी गई है और जो रूप शास्त्रोक्त लक्षणों से भिन्न हैं उनकी ओर विशेष ध्यान आकृष्ट किया गया है।

इसमे सन्देह नहीं कि हिन्दी मे खजुराहो की मूर्ति-सम्पदा पर यह पहला प्रामाणिक ग्रन्थ है। प्रतिमा-विज्ञान का विषय गहन होने पर भी इसकी शैली रोचक है और पुस्तक सुपाठ्य है। शिल्प-शास्त्रो से पारिभाषिक शब्दावली संकलन करने का लेखक का प्रयास सफल और सराहनीय है। पुस्तक की उपादेयता सुन्दर और कलात्मक चित्रों के कारण और भी बढ़ गई है। मुझे विश्वास है कि इससे भारतीय कला और इतिहास के विशेषज्ञ, जिज्ञासु छात्र-वृन्द और जन-साधारण सभी लाभान्वित होंगे।

आशा है हिन्दी-जगत् इस ग्रन्थ का समुचित आदर करके विद्वान् लेखक को खजुराहो की अन्य देव-प्रतिमाओं पर भी ऐसा ही गम्भीर और आलोचनात्मक अध्ययन यथाशीघ्र प्रकाशित करने का प्रोत्साहन देगा।

सुपरिन्टेन्डिंग आर्किऑलॉजिस्ट्,
भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण,
देहरादून
राखी-पूर्णिमा, वि० सं० २०२४

कृष्णदेव

आमुख

खजुराहो-मन्दिर नागर-वास्तु के बड़े उज्ज्वल स्वरूप हैं और अपने विशिष्ट लक्षणों के कारण वे भारतीय वास्तु-कला के विकास में एक महत्वपूर्ण तत्व संविहित करते हैं। वास्तु-वैशिट्य के अतिरिक्त, उत्कीर्ण मूर्ति-सम्पदा के कारण भी उनका अपूर्व महत्व है। उनमें उत्कीर्ण हिन्दू तथा जैन देवी-देवताओं, अप्सराओं अथवा सुर-सुन्दरियों, मिथुनों, पशुओं तथा जन-जीवन के विविध विषयों की सहस्रों मनभावन मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। शास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से देव-मूर्तियाँ विशेष महत्व की है। उनके सूक्ष्म अवलोकन से भारतीय प्रतिमा-विज्ञान के विकास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। खजुराहो-शिल्पी शास्त्र-पारंगत ही नहीं थे, वरन् वे भारत के विभिन्न भागों मे प्रचलित प्रतिमा-निर्माण की परम्पराओं से भी अवगत थे। देव-प्रतिमाओं के रचने मे उन्होंने शिल्प-शास्त्रों से मार्गदर्शन तो लिया ही है, साथ ही अपनी मौलिक कल्पना-शक्ति के आधार पर नूतन लक्षण-लाञ्छनों को जन्म देने में भी वे नही चूके हैं। इसीलिए ये मूर्तियाँ जहाँ एक ओर शास्त्रीय लक्षण-लाञ्छनों की सीमा में बँधी मिलती हैं, वहाँ दूसरी ओर उनमें नवीनता और मौलिकता के भी दर्शन होते हैं। कुछ विलक्षण मूर्तियाँ तो उनकी नितान्त मौलिक कृतियाँ प्रतीत होती हैं, क्योंकि ऐसी प्रतिमाएँ अन्यत्र दुर्लभ हैं और इनका कोई प्रत्यक्ष शास्त्रीय आधार भी नही प्राप्त होता। यह भी सम्भव है कि वे शिल्प-शास्त्र अब तक लुप्त हो गए हों, जिनके आधार पर इनका निर्माण हुआ है।

वस्तुतः प्रतिमा-विज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से खजुराहो उत्तरभारत में एक अद्वितीय केन्द्र है।

खजुराहो-मन्दिरों के विभिन्न पहलुओं पर अनेक विद्वानों द्वारा—कनिंघम से लेकर विद्याप्रकाश तक—पर्याप्त लिखा जा चुका है, किन्तु उनकी अपार देव-प्रतिमा-सम्पदा का व्यवस्थित अध्ययन एवं समुचित मूल्यांकन अभी तक नहीं हो सका। इस दिशा में मात्र दो प्रयास हुए हैं। पहला श्री कृष्णदेव द्वारा, जिन्होंने 'एन्शेण्ट् इण्डिया' (सं० १५, १९५९ ई०) में प्रकाशित अपने लेख—टेम्पल्स ऑफ़ खजुराहो इन सेण्ट्रल इण्डिया—में खजुराहो-मन्दिरों की महत्वपूर्ण विवेचना के अन्तर्गत प्रतिमा-विज्ञान का भी विवरण दिया है, जो सारगर्भित होते हुए भी अत्यन्त संक्षिप्त है। दूसरा प्रयास डॉ० (श्रीमती) उर्मिला अग्रवाल द्वारा हुआ। उन्होंने १९६४ ई० मे प्रकाशित अपने ग्रन्थ—खजुराहो स्कल्प्चर्स एण्ड देअर सिग्निफ़िकैंस—के दो अध्यायो मे देव-मूर्तियों के व्यवस्थित अध्ययन का प्रयत्न किया है, जो सराहनीय है। फिर भी खजुराहो-प्रतिमा-विज्ञान के समुचित अध्ययन एवं मूल्यांकन की आवश्यकता पूरी न हो सकी, जिसका प्रयत्न प्रस्तुत ग्रन्थ मे किया गया है।

यह ग्रन्थ खजुराहो की लगभग सम्पूर्ण प्रतिमा-सम्पदा के अध्ययन पर आधारित है। मैंने खजुराहो के सभी मन्दिरो के विभिन्न भागों में उत्कीर्ण, स्थानीय पुरातत्त्व संग्रहालय मे संग्रहीत तथा वहाँ अन्यत्र प्राप्त छोटी-बड़ी सभी मूर्तियों का सूक्ष्म से सूक्ष्म निरीक्षण किया है। खजुराहो की अनेक मूर्तियाँ खजुराहो से बाहर विभिन्न संग्रहालयों एवं व्यक्तिगत संकलनो मे भी उपलब्ध है। मैंने इस सामग्री का भी उपयोग किया है।

यह ग्रन्थ लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए १९६६ ई० में स्वीकृत मेरे शोध-प्रबन्ध का कुछ संशोधित रूप है। इसका कुछ अंश शोध-लेखों के रूप में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में पहले ही प्रकाशित हो चुका है। मैंने पी-एच० डी० की उपाधि के लिए खजुराहो की सभी हिन्दू मूर्तियों के प्रतिमा-विज्ञान पर शोध प्रारम्भ किया था। वर्षों तक इस विषय पर कार्य करने के पश्चात् ही मुझे यह ज्ञात हो सका कि सभी मूर्तियो का विस्तृत विवेचन एक प्रबन्ध मे अनेक कारणों से सम्भव नहीं। अतएव मैंने इस प्रबन्ध मे गणपति, विष्णु, सूर्य, नवग्रह और अष्टदिक्पाल-मूर्तियों को ही सम्मिलित किया है। अन्य देव-मूर्तियों का ऐसा ही विवेचन इस ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड मे प्रस्तुत करने का विचार है।

प्रत्येक देवता की प्रतिमाओं के विवरण मे सर्वप्रथम देवता-सम्बन्धी सम्प्रदाय अथवा उसकी पूजा-परम्परा के उद्भव और विकास का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है, जो प्रतिमाओं के वृत्तान्त अध्ययन के लिए आवश्यक है। फिर विभिन्न शास्त्रों, विशेषतः पुराणो, आगमों तथा शिल्प-शास्त्रों, मे उपलब्ध प्रतिमा-लक्षणों की विवेचना की गई है। परवर्ती शिल्प-शास्त्र 'अपराजितपृच्छा' का, जिसके विवरण से खजुराहो की अनेक मूर्तियाँ साम्य रखती है, सर्वप्रथम यहाँ व्यापक रूप से उपयोग हुआ है। प्रतिमा-लक्षणो की विवेचना के पश्चात् अन्यत्र उपलब्ध उल्लेखनीय प्रतिमाओं का विवरण देते हुए मध्ययुग तक हुए उस देव-प्रतिमा के विकास की रूप-रेखा दी गई है और फिर खजुराहो-प्रतिमाओं का विस्तृत विवरण दिया गया है, जिसमे अधिक से अधिक मूर्तियों की व्यक्तिगत विशेषताओं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। भिन्नता की दृष्टि से उन्हे सामान्यतः

वर्गों, प्रकारो तथा उपप्रकारों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक वर्ग तथा प्रकार-उपप्रकार की कुछ प्रतिनिधि प्रतिमाओं का पृथक्-पृथक् विवरण देकर, शेष प्रतिमाओं की सूक्ष्म से सूक्ष्म भिन्नताओं को स्पष्ट किया गया है। इस विवरण में देवता की मुद्रा, लाञ्छनों से युक्त अथवा विभिन्न मुद्राओ मे प्रदर्शित भुजाओं, वाहन अथवा आसन, अलंकरण, पार्श्व-चित्रण आदि पर प्रकाश डाला गया है। विवरण के अन्त में प्रतिमा-लक्षणों के साथ इन प्रतिमाओं की तुलना करते हुए इनके निर्माण में शिल्पी द्वारा प्रदर्शित स्वच्छन्दता की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। इसके अतिरिक्त, अन्यत्र उपलब्ध कुछ विशेष मूर्तियो के साथ भी इनकी तुलना की गई है। इसके लिए मैंने प्रकाशित सामग्री के उपयोग के साथ ही उत्तरभारतीय महत्वपूर्ण स्मारकों एवं संग्रहालयों में प्राप्त मूर्तियों का भी निरीक्षण किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे सात अध्याय हैं। पहले अध्याय में खजुराहो का संक्षिप्त इतिहास और वहाँ के मन्दिरों का विवरण दिया गया है। साथ ही स्थानीय वास्तु-कला, मूर्ति-कला तथा प्रतिमा-विज्ञान सम्बन्धी विशेषताओ पर प्रकाश डाला गया है। इसके बाद के पाँच अध्यायों में क्रमशः गणपति, विष्णु, सूर्य, नवग्रह तथा अष्टदिक्पाल-प्रतिमाएँ वर्णित हैं। इन पाँच अध्यायो के अन्त मे एक-एक परिशिष्ट दिया गया है, जिसमें सम्बन्धित अध्याय में वर्णित खजुराहो-प्रतिमाओं के प्राप्ति-स्थानों की सूची दी गई है। इसके लिए प्रत्येक देवता की वर्णित सभी प्रतिमाओं की प्रतिमा-संख्या (अथवा नवग्रह-पट्टों की पट्ट-संख्या) मेरे द्वारा निर्धारित कर दी गई है और प्रतिमा-संख्या (प्र० सं०) अथवा पट्ट-संख्या (पट्ट सं०) के क्रम से ही प्राप्ति-स्थानों का उल्लेख किया गया है। पाद-टिप्पणियो में खजुराहो-प्रतिमाओ के सन्दर्भ के लिए इसी प्रतिमा-संख्या अथवा पट्ट-संख्या का प्रयोग हुआ है। अन्तिम अध्याय, उपसंहार, मे उपर्युक्त देव-प्रतिमाओं की सामान्य विशेषताओं की चर्चा हुई है।

पाठकों की सुविधा के लिए सन्दर्भ-ग्रन्थसूची और अनुक्रमणिका दी गई है। पाद-टिप्पणियो मे केवल सन्दर्भ के लिए आए हुए लेखकों और ग्रन्थो के नाम अनुक्रमणिका मे नही सम्मिलित किए गए है। चित्रावली में दिए गए चित्रो के चयन में मूर्तियों के प्रतिमा-विज्ञान-सम्बन्धी महत्व का ही ध्यान रखा गया है, उनकी कलात्मक सुन्दरता का नही। फिर भी कुछ चित्र खजुराहो-कला की सुन्दर कृतियो का प्रतिनिधित्व करते है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी मे मूर्ति-कला-विषयक प्रामाणिक साहित्य बहुत सीमित है। खजुराहो अथवा अन्यत्र उपलब्ध देव-मूर्तियों के विस्तृत शास्त्रीय अध्ययन का हिन्दी में यह प्रथम प्रयास है। पारिभाषिक शब्दावली के लिए अधिकांशतः शिल्प-शास्त्रो का आश्रय लिया गया है। हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में यह ग्रन्थ किंचित्मात्र भी योगदान दे सके तो मैं अपना प्रयास सार्थक समझूँगा।

प्रतिमा-विज्ञान के इस विवेचन मे मुझे अपने पूर्ववर्ती लेखकों की कृतियों से विशेष सहायता प्राप्त हुई है, जिसके लिए मैं उन सबका ऋणी हूँ। इस विषय में शोध-कार्य करने की प्रेरणा और प्रोत्साहन मुझे अपने गुरुवर डॉ० रामकुमार दीक्षित, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, से प्राप्त हुआ और उन्हीं के निर्देशन में यह शोध-प्रबन्ध लिखा गया। उनकी सहायता और मार्गदर्शन के अभाव में इसे पूर्णता दे पाना मेरे लिए कठिन था। मैं उनका चिर ऋणी रहूँगा। श्री कृष्णदेव, सुपरिन्टेन्डिंग आर्किऑलॉजिस्ट, भारतीय पुरातत्व

सर्वेक्षण, उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र, देहरादून, ने प्राक्कथन लिखकर इस ग्रन्थ की श्रीवृद्धि की है। ग्रन्थ-रचना में भी उनके विद्वत्तापूर्ण विचारों एवं परामर्शों से मैं लाभान्वित हुआ हूँ। उनकी अनुकम्पा के लिए मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ। कलामर्मज्ञ स्वर्गीय डॉ० जितेन्द्रनाथ बनर्जी तथा डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल; एवं डॉ० मोतीचन्द्र, डायरेक्टर, प्रिन्स ऑफ़ वेल्स म्यूज़ियम, बम्बई; डॉ० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय; तथा डॉ० दशरथ शर्मा, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, इतिहास विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, ने इस शोध-कार्य में विशेष रुचि लेते हुए मुझे निरन्तर प्रोत्साहित किया है। श्री कृष्णदत्त बाजपेयी, प्राचार्य तथा अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, सागर विश्वविद्यालय, तथा श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल, अध्यक्ष, पुरातत्त्व, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली, ने अपनी सहायता एवं सत्परामर्शों से मुझे उपकृत किया है। मैं इन सब विद्वानों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। शोध-प्रबन्ध के स्वीकृत होते ही इसके प्रकाशन की व्यवस्था करने का श्रेय डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भूतपूर्व प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, इतिहास एवं राजनीतिशास्त्र विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा, को है। श्री लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, अवकाशप्राप्त प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, इतिहास विभाग, क्राइस्ट् चर्च कॉलिज, कानपुर, ने पाण्डुलिपि का आद्योपान्त निरीक्षण कर मुझे भाषा-सम्बन्धी महत्वपूर्ण परामर्श देने की कृपा की है। मेरे कॉलेज के प्रधानाचार्य श्री नायनन अब्राहम मुझे इस शोध-कार्य के सम्बन्ध मे विभिन्न सुविधाएँ प्रदान करते रहे हैं। मैं इन सब का अनुगृहीत हूँ। शोध-कार्य के निमित्त कुछ आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए मैं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रति आभार प्रकट करता हूँ। खजुराहो-मन्दिरों के निरीक्षण के अवसर पर मुझे विभिन्न सुविधाएँ देने तथा अनेक छायाचित्र प्रदान कर उनके प्रकाशन की अनुमति के लिए मैं भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण का भी आभार मानता हूँ। इस ग्रन्थ के निमित्त खजुराहो-मूर्तियों के कुछ छायाचित्र तैयार करने के लिए मित्रवर श्री रामबालक अवस्थी मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। अपनी शिष्या कुमारी श्रीलेखा विद्यार्थी को भी मैं बिना धन्यवाद दिए नहीं रह सकता, जिनसे अनुक्रमणिका तैयार करने में मुझे विशेष सहायता प्राप्त हुई है। मैं अपने प्रकाशक श्री कुँवरप्रसाद अग्रवाल का तो विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन का भार प्रसन्नतापूर्वक वहन किया और इसे निष्ठापूर्वक पूरा किया, अन्यथा यह इतने अल्प समय और इस रूप में न निकल पाता। दुर्गा प्रिन्टिंग वर्क्स, आगरा के व्यवस्थापक श्री पुरुषोत्तमदास भार्गव और नवीन प्रेस, दिल्ली के संचालक श्री सत्यप्रकाश भी मेरे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने क्रमशः पाठ और चित्रावली का मुद्रण-कार्य सुरुचिपूर्वक तथा मनोयोग से पूरा किया।

ग्रन्थ में रह गई कुछ मुद्रण-सम्बन्धी अशुद्धियों के लिए मैं अपने पाठकों से क्षमा चाहता हूँ। खजुराहो के प्रतिमा-विज्ञान जैसे अथाह विषय का समुचित अध्ययन एक व्यक्ति के लिए यदि असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। फिर भी मैंने इस दिशा में प्रयत्न किया है और मेरे अनेक वर्षों के परिश्रम का फल इस ग्रन्थ के रूप मे प्रस्तुत है। इसकी सफलता-असफलता का निर्णय मैं विज्ञ पाठकों पर छोड़ता हूँ।

कानपुर
नागपञ्चमी, वि० सं० २०२४

रामाश्रय अवस्थी

विषय-सूची

संकेत-सूची

अथ०	अथर्ववेद
अपरा०	अपराजितपृच्छा (भुवनदेव)
अ० पु०	अग्निपुराण
उ०	उत्तर
ऋ०	ऋग्वेद
ऐ० ब्रा०	ऐतरेयब्राह्मण
ख०	खण्ड
गणेश	लेखक सम्पूर्णानन्द
गा० ओ० सि०	गाएकवाड्स ओरिएण्टल सीरीज़
चतु०	चतुर्व्वर्गचिन्तामणि (हेमाद्रि)
तुल०	तुलनीय
तै० ब्रा०	तैत्तिरीय ब्राह्मण
द०	दक्षिण
देव० प्र०	देवतामूर्तिप्रकरण (सूत्रधार मण्डन)
द्र०	द्रष्टव्य
प०	पश्चिम
प० पु०	पद्मपुराण
पट्ट सं०	नवग्रह-पट्ट-संख्या
पा० टि०	पाद-टिप्पणी
पू०	पूर्व
प्र० ल०	प्रतिमा-लक्षण, लेखक द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल
प्र० सं०	प्रतिमा-संख्या
प्रतिमा-विज्ञान	लेखक द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल
बि० इ०	बिब्लियोथिका इण्डिका
भ० पु०	भविष्यपुराण
भा० पु०	भागवतपुराण
म० पु०	मत्स्यपुराण

म० भा० (क्रि०)	महाभारत, क्रिटिकल एडिशन, पूना
म० भा० (कलकत्ता)	महाभारत, सम्पादक प्रतापचन्द्र राय, कलकत्ता
मथुरा-कला	लेखक वासुदेवशरण अग्रवाल
मनु०	मनुस्मृति
मार्क० पु०	मार्कण्डेयपुराण
मेघ०	मेघदूत (कालिदास)
रघु०	रघुवंश (कालिदास)
रामा०	रामायण (वाल्मीकि)
रूप०	रूपमण्डन (सूत्रधार मण्डन)
वि० ध०	विष्णुधर्मोत्तरपुराण, तृतीय खण्ड
वि० पु०	विष्णुपुराण
बृहत्सं०	बृहत्संहिता (वराहमिहिर)
शत० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
शारदा०	शारदातिलकतन्त्र
सं०	संख्या
स०	सम्पादक
स० सू०	समराङ्गण सूत्रधार (भोज)
सै० बु० ई०	सैक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट
सै० बु० हि०	सैक्रेड बुक्स ऑफ दि हिन्दूज

विशेष : मूर्तियों की भुजाओं को दक्षिण अधः भुजा से प्रारम्भ प्रदक्षिणा-क्रम से (दक्षिणाधःकरक्रमात्) पहली, दूसरी, तीसरी आदि कहा गया है। उदाहरण के लिए चतुर्भुजी मूर्तियों का दक्षिणाधः कर पहला, दक्षिणोर्ध्व दूसरा, वामोर्ध्व तीसरा और वामाधः चौथा हुआ।

AI	*Ancient India* (Bulletin of the Archaeological Survey of India).
ARB	*Archaeological Remains at Bhubaneswar*, by K.C. Panigrahi.
ASI	*Archaeological Survey of India*, Reports by Alexander Cunningham.
ASIAR	*Archaeological Survey of India, Annual Reports*, (New Series), Started by John Marshall.
CBIMA	*Catalogue of the Brahmanical Images in Mathura Art*, by V.S. Agrawala (*JUPHS*, Vol. XXII, Parts 1-2, 1949, pp. 102-210).
CII	*Corpus Inscriptionum Indicarum*.
COJ	*The Chandellas of Jejākabhukti and their Times*, by R.K. Dikshit (Ph.D. Thesis of Lucknow University, 1950).

DHI	*The Development of Hindu Iconography* (2nd Ed.), by J.N. Banerjea.
EHI	*Elements of Hindu Iconography*, by T.A.G. Rao.
EI	*Epigraphia Indica.*
ERK	*The Early Rulers of Khajurāho*, by S.K. Mitra.
HOB	*The History of Bengal*, Ed. R.C. Majumdar.
HOC	*History of the Chandellas of Jejākabhukti*, by N.S. Bose.
IBBSDM	*Iconography of Buddhist and Brahmanical Sculptures in the Dacca Museum*, by N.K. Bhattasali.
IHQ	*Indian Historical Quarterly*, Calcutta.
II	*Indian Images* (Part I), by B.C. Bhattacharya.
JASB	*Journal of the Asiatic Society of Bengal*, Calcutta.
JASL	*Journal of the Asiatic Society, Letters*, Calcutta.
JASL & S	*Journal of the Asiatic Society, Letters and Science*, Calcutta.
JIH	*Journal of Indian History*, Trivandrum.
JIM	*Journal of Indian Museums*, Bombay.
JISOA	*Journal of the Indian Society of Oriental Art*, Calcutta.
JMPIP	*Journal of the Madhya Pradesh Itihasa Parishad*, Bhopal.
JNSI	*Journal of the Numismatic Society of India*, Varanasi.
JRAS	*Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland*, London.
JUPHS	*Journal of the U.P. Historical Society*, Lucknow.
MASI	*Memoir of the Archaeological Survey of India.*
M.M.	Mathura Museum.
MMC	*Mathura Museum Catalogue*, by J. Ph. Vogel.
SIIGG	*South Indian Images of Gods and Goddesses*, by H.K. Sastri.
VSMRS	*Vaiṣṇavism, Śaivism and Minor Religious Systems*, by R.G. Bhandarkar.
Yakṣas	by A.K. Coomaraswamy.

चित्र-सूची[1]

---

1 चित्रावली में पृष्ठ (फलक) संख्या अन्तर्राष्ट्रीय अंकों में और चित्र संख्या देवनागरी अंकों में दी गई है।

2 चतुर्भुज मन्दिर में आदि प्रतिष्ठित इस मूर्ति को, इसमें वैष्णव विशिष्टताओं के अभाव होने पर भी, लेखक ने 'विलक्षण विष्णु' इसलिए माना है, क्योंकि इस मन्दिर के गर्भगृह-द्वार-उत्तरंग में ललाटबिम्ब के रूप में विष्णु की आकृति प्रदर्शित है। प्रस्तुत ग्रन्थ के मुद्रण की लगभग समाप्ति पर श्री आर० सेनगुप्ता, चीफ आर्किऑलॉजिकल इन्जीनियर, भारत सरकार, ने लेखक को तर्क-सहित यह सुझाव देने की कृपा की कि यह द्वार-उत्तरंग मौलिक नहीं है, वरन् बाद में मन्दिर के पुनरुद्धार के अवसर पर जोड़ा गया है। उनके अनुसार चतुर्भुज मन्दिर शैव मन्दिर है और यह मूर्ति विष्णु की नहीं, वरन् शिव की दक्षिणामूर्ति है। उनका यह सुझाव विचारणीय है।

चित्र

चित्र

चित्र

आभार

चित्र १-४, ६-१६, १८, २०, २१, २४, २६-३३, ३५-३७, ३९-५४, ५६-५९, ६२-६६, ६८, ७०-७२, ७५, ७७-८०, ८२-९७, १०१-१०३ भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, भारत सरकार, नई दिल्ली; चित्र २२, २३, ३८, ६१, ६७, ७४, ७६ सूचना एवं प्रकाशन संचालनालय, मध्यप्रदेश शासन, भोपाल; और चित्र ५, १७, १९, २५, ३४, ५५, ६०, ६९, ७७, ८१, ९८, ९९, १०० श्री रामबालक अवस्थी के सौजन्य से। लेखक इन सबके प्रति आभार प्रकट करता है।

खजुराहो की देव-प्रतिमाएँ

खजुराहो

१

खजुराहो

मध्य प्रदेश के जिला छतरपुर में स्थित खजुराहो अपने मन्दिरों के कारण सुविख्यात है। नवीं और बारहवीं शतियों के बीच निर्मित ये मन्दिर नागर शैली के बड़े उज्ज्वल स्वरूप हैं। विशिष्ट वास्तु-लक्षणों एवं उत्कीर्ण मूर्ति-सम्पदा के कारण ये भारत के समानरूप अन्य सब स्मारकों में अद्वितीय है।

खजुराहो आज एक गाँव है, जो खजुराहो-सागर अथवा निनोरा-ताल नामक झील के दक्षिण-पूर्वी कोने में बसा है, किन्तु किसी समय यह एक विशाल एवं भव्य नगर था। उस भव्य नगर की गौरव-गाथा, आज भी उन भग्नावशेषों में पढ़ी जा सकती है, जो खजुराहो के समीपवर्ती आठ वर्ग मील के क्षेत्र में बिखरे पड़े हैं।

संक्षिप्त इतिहास

खजुराहो के चारों ओर विस्तृत प्रदेश का नाम प्राचीन काल में वत्स तथा मध्ययुग में जेजाभुक्ति अथवा जेजाकभुक्ति था और चौदहवीं शती से यह बुन्देलखण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। २०० ई० पू० से ही इस प्रदेश ने, सांस्कृतिक क्षेत्र में, भारतीय इतिहास को महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। इसी प्रदेश में शुंगकालीन भरहुत केन्द्र में और पुनः गुप्तकालीन भूमरा, खोह, नचना और देवगढ़ केन्द्रों में, मूर्ति-कला और वास्तु-कला के अपूर्व प्रस्फुटन हुए हैं। गुप्तकालीन स्थापत्य-विकास के क्रमिक सोपानों के रूप में नचना का पार्वती मन्दिर, भूमरा का शिव मन्दिर और देवगढ़ का दशावतार मन्दिर दर्शनीय हैं। कुछ बाद में निर्मित नचना का चतुर्मुख-महादेव मन्दिर और भी महत्त्वपूर्ण है। उत्तरभारतीय प्राचीनतम शिखर-मन्दिरों में इसका विशिष्ट स्थान है और यह गुप्त एवं मध्ययुगीन मन्दिर-शैलियों के बीच की एक कड़ी है।[१] मन्दिर-निर्माण की यह परम्परा प्रतीहार-शासनकाल में टूटी नहीं। प्रतीहार नरेशों द्वारा अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ। उनके श्रेष्ठतम दो मन्दिर इसी प्रदेश में निर्मित हुए : जिला झाँसी (उ० प्र०) के बरवा-सागर का शिव मन्दिर (जराय का मठ) और जिला टीकमगढ़ (म० प्र०) के मन्खेरा का सूर्य

१ Deva, K., *AI*, No. 15, pp. 43-44.

मन्दिर। दोनों नवीं शती की रचनाएँ हैं।[१] इनके अतिरिक्त प्रतीहार-शासनकाल में स्थानीय शैली के भी कुछ साधारण मन्दिर कणाश्म (granite) द्वारा निर्मित हुए, जो सब छतरपुर जिला (म० प्र०) में स्थित हैं।[2]

स्थापत्य की ऐसी पृष्ठभूमि से युक्त इस प्रदेश में एक शक्तिशाली मध्यभारतीय राजवंश के रूप में चन्देलों का उदय हुआ और खजुराहो को उनकी प्रथम राजधानी बनने का सौभाग्य मिला। ये चन्देल नृपति महान् निर्माता और कला एवं साहित्य के अच्छे पारखी थे। उनके संरक्षण में जेजाकभुक्ति (जझौति) को राजनीतिक स्थिरता, समृद्धि एवं सम्पन्नता प्राप्त हुई और दसवीं तथा बारहवीं शतियों के बीच यह एक महान् सांस्कृतिक आन्दोलन का क्षेत्र रहा, जिसके परिणाम-स्वरूप अनेक साहित्यिक कृतियों एवं भव्य स्मारकों का जन्म हुआ। चन्देल राज-दरबार माधव, राम, नन्दन, गदाधर तथा जगनिक जैसे कवियों और 'प्रबोधचन्द्रोदय' के रचयिता कृष्ण मिश्र जैसे नाटककार से अलंकृत था। नरेशों में गण्ड और परमर्दिन स्वयं श्रेष्ठ कवि थे और धंग तथा कीर्तिवर्मन् थे कवियों और लेखकों के उदार संरक्षक। चन्देल नरेशों ने अपने राज्य को, विशेषतः महोबा (प्राचीन महोत्सव नगर), कालिंजर (कालंजर) और अजयगढ़ (जयपुर दुर्ग)—केन्द्रों को सरोवरों, दुर्गों, प्रासादों तथा मन्दिरों से सुसज्जित किया। किन्तु भव्यता की दृष्टि से, इनमें से किसी भी केन्द्र की समता उनकी राजधानी खजुराहो (प्राचीन खर्जूरवाहक) से नहीं की जा सकती, जिसे उन्होंने अनेक उत्तुंग मन्दिरों एवं सरोवरों से अलंकृत किया था। स्थानीय जनश्रुति के अनुसार वहाँ प्रारम्भ में पचासी मन्दिर थे, किन्तु अब विभिन्न स्थितियों में मात्र पचीस शेष हैं।[3]

कन्नौज के गुर्जर-प्रतीहार सम्राटों के सामन्त के रूप में चन्देलों ने अपना राजनीतिक जीवन प्रारम्भ किया।[४] चन्देल अभिलेख समान रूप से नन्नुक (८२५–८४० ई०)[५] को वंश का प्रथम राजा मानते हैं। सम्भवतः उसका दूसरा नाम अथवा विरुद चन्द्रवर्मा था।[६] अभिलेखों में उसे 'नृपति' अथवा 'महीपति' से ऊँचा पद नहीं प्रदान किया गया है।[७] सम्भवतः वह स्थानीय सामन्त मात्र था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने उत्कर्षशील गुर्जर-प्रतीहार सम्राट् नागभट द्वितीय के सामन्त के रूप में चन्देल राज्य के विकास में सक्रिय सहयोग प्रदान किया था।[८] इसी स्थिति में ही उसने प्रतीहारों के पूर्वी शत्रु पाल-सम्राटों से युद्ध किए होंगे।[९]

नन्नुक का उत्तराधिकारी उसका पुत्र वाक्पति (८४५–८६५ ई०) हुआ, जो बुद्धि और वाक्शक्ति में देवगुरु बृहस्पति के तुल्य था। खजुराहो अभिलेखों के अनुसार वह पृथु और कुकुत्स्थ

---

१ वही, पृ० ४४; प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी के अनुसार बरुआसागर का मन्दिर चन्देलों द्वारा निर्मित हुआ था (युगों-युगों में उत्तर प्रदेश, पृ० ७३)।
२ Deva, K., *op. cit.*, p. 44.
३ वही
४ *HOC*, p. 17.
५ *COJ*, p. 40.
६ Ray, H. C., *The Dynastic History of Northern India*, Vol. II, p. 17.
७ *ERK*, p. 27 ; *COJ*, p. 42.
८ *HOC*, p. 17.
९ वही

के समान था। किन्तु उसका भी विरुद 'क्षितिप' अथवा 'पृथ्वीपति' से ऊँचा नहीं था। सामान्य स्तर का सामन्त होते हुए भी वह साहसी और वीर योद्धा था। उसने विन्ध्य की ओर शक्ति का विस्तार किया था।[१]

वाक्पति के दो पुत्र थे, जयशक्ति और विजयशक्ति (८६५–८८५ ई०)।[२] कुछ अभिलेखो में जयशक्ति को जेजा अथवा जेज्जक और विजयशक्ति को विजय, विज्ज अथवा विज भी कहा गया है।[३] इन दो भाइयों का उल्लेख कई चन्देल अभिलेखों में हुआ है। बड़ा भाई जयशक्ति पिता की मृत्यु के पश्चात् सिंहासन पर बैठा। सम्भवतः उसके कोई पुत्र नहीं था, अतएव उसकी मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई सिंहासनासीन हुआ।[४] सामान्यतः इन दोनों भाइयों का उल्लेख साथ-साथ हुआ है। उनके उत्तराधिकारियों के लगभग सभी ताम्र-पत्रों में यह कहा गया है कि उन्होंने अपने जन्म से वंश को समुज्ज्वल किया।[५] एक महोबा अभिलेख के अनुसार जयशक्ति ने अपने नाम पर राज्य का नाम जेजाकभुक्ति उसी प्रकार रखा था, जिस प्रकार पृथु ने पृथ्वी।[६] जयशक्ति और विजयशक्ति ने दावाग्नि की भाँति अपने राज्य के समस्त शत्रुओं को नष्ट कर दिया था।[७] जयशक्ति ने अपना ध्यान शासन-प्रबन्ध की ओर दिया और विजयशक्ति ने समकालीन राजनीतिक गतिविधियो मे सक्रिय भाग लिया। अपनी विजय-योजना में उसने राम की भाँति सुदूर दक्षिण तक धावे मारे थे।[८] डॉ० मजूमदार के अनुसार समकालीन राजनीति में उसने पाल सम्राट् देवपाल के सहयोगी के रूप मे दक्षिण-विजय की थी।[९] किन्तु इतिहासकारो का एक वर्ग डॉ० मजूमदार से सहमत नही है।[१०]

विजयशक्ति का उत्तराधिकारी उसका पुत्र राहिल (८८५–९०५ ई०) हुआ। उसके शासन-काल में कोई महत्त्वपूर्ण घटना नही घटी। राहिल को वीर, योद्धा और शत्रुहन्ता माना गया है, जिसके कारण शत्रु की रातें जागते बीतती थी।[११]

चन्देल वंश का प्रथम महत्त्वपूर्ण राजा हर्षदेव (९०५–९२५ ई०) हुआ, जो पिता राहिल की मृत्यु के पश्चात् सिंहासन पर बैठा। समकालीन राजनीति में भाग लेकर हर्ष ने चन्देलवंशीय शक्ति, सामर्थ्य और ऐश्वर्य के नये युग का प्रारम्भ किया। ९०७ ई० में गुर्जर-प्रतीहार सम्राट् महेन्द्रपाल की मृत्यु के पश्चात् कन्नौज के प्रतीहार वंश की गृह-कलह ने हर्ष को वहाँ की सक्रिय राजनीति मे भाग लेने का अवसर प्रदान किया।[१२] राष्ट्रकूट आक्रमण के परिणामस्वरूप सिंहासना-

१ वही, पृ० १८ ; *ERK*, pp. 27-28 ; *COJ*, pp. 44-46.
२ *COJ*, p. 47.
३ वही, पृ० ४० ; *HOC*, p. 18.
४ *COJ*, p. 48.
५ वही
६ वही ; *HOC*, p. 13 ; *ERK*, p. 32.
७ *HOC*, p. 18.
८ वही, पृ० १९ ; *COJ*, p. 50.
९ *HOB*, Vol. I, p. 119.
१० *HOC*, p. 19.
११ *COJ*, p. 52 ; *HOC*, p. 21
१२ Tripathi, R. S., *History of Kanauj*, p. 256-57.

च्युत क्षितिपाल अथवा महीपाल को उसने पुनः ६१७ ई० में सिंहासन पर बैठाया,[१] और सम्भवतः इस सफलता की स्मृति में उसने मातंगेश्वर मन्दिर का निर्माण कराया, जो रेतीले पत्थर (sand stone) के बने खजुराहो-मन्दिरों में प्राचीनतम है।[२] सामन्त होते हुए भी हर्ष ने न केवल स्वतन्त्र-सा व्यवहार किया वरन् प्रतीहार साम्राज्य का भाग्य-विधाता बनकर चन्देल-प्रतिष्ठा की अभूतपूर्व वृद्धि की। उसने चाहमान कुमारी कञ्चुका से विवाह किया[३] और अपनी पुत्री नट्ट अथवा नट्टदेवी का विवाह कलचुरि नृपति कोक्कल्ल से किया।[४] इन वैवाहिक सम्बन्धों के परिणामस्वरूप चन्देलों की शक्ति और प्रतिष्ठा की अत्यधिक अभिवृद्धि हुई। हर्ष वीर योद्धा, राजनीतिज्ञ एवं मृदुभाषी था। उसने जिस नीति का प्रारम्भ किया उस पर चलकर यशोवर्मन्, विद्याधर और मदनवर्मन ने विशाल साम्राज्य का निर्माण किया।

हर्ष की मृत्यु के पश्चात् उसका यशस्वी पुत्र यशोवर्मन् (६२५–६५० ई०)[५] सिंहासनासीन हुआ। उसने पिता की विजय-योजना को न केवल आगे बढ़ाया, वरन् पतनशील प्रतीहार साम्राज्य के अवशेषों पर नव-विकसित चन्देल साम्राज्य का भवन निर्माण किया। उसने अपनी विजय-यात्रा में गौड़ (बंगाल) से खश (उत्तर-पश्चिम) तक धावे मारे। ६५४ ई० के खजुराहो अभिलेख के अनुसार उसने गौड़, खश, कोसल, चेदि, कुरु, मिथिला, मालवा, कश्मीर तथा गुर्जरों की विजय की।[६] किन्तु उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि कालिंजर-किले की विजय थी, जिसके परिणामस्वरूप चन्देलों की प्रतिष्ठा बढ़ी और उनकी गणना एक शक्तिशाली राजवंश के रूप में होने लगी।[७] ६५४ ई० के खजुराहो अभिलेख के अनुसार उसने एक भव्य विष्णु-मन्दिर का निर्माण कराया था, जो खजुराहो का वर्तमान लक्ष्मण मन्दिर है। स्थापत्य की दृष्टि से यह अपने युग में मध्यभारत का सर्वाधिक विकसित और अलंकृत मन्दिर था। चन्देलों की अभिवृद्धि, शक्ति एवं प्रतिष्ठा के अनुरूप ही यह स्मारक बना।[८] इस अभिलेख में यह उल्लेख है कि इस मन्दिर में प्रतिष्ठित वैकुण्ठनाथ की प्रतिमा को यशोवर्मन् ने हेरम्बपाल के पुत्र हयपति देवपाल से प्राप्त किया था।[९] आज भी यह प्रतिमा लक्ष्मण मन्दिर में दर्शनीय है।

यशोवर्मन् की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र धंग (६५०–१००८ ई०) सिंहासन पर बैठा। सैन्य-शक्ति और सामरिक प्रतिभा के बल पर उसने पैतृक राज्य को और अधिक दृढ़ किया। उसका शासनकाल चन्देल-इतिहास में महत्त्वपूर्ण रहा और उसके समय में चन्देल साम्राज्य की सीमाएँ लगभग अन्तिम रूप से निर्धारित हो गई। चन्देल-प्रतीहार सम्बन्धों का भी नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। वह अपने वंश का प्रथम नृपति था, जिसने क्षीण प्रतीहार-सत्ता को अस्वीकार करके स्वाधीनता की घोषणा की। चन्देल साम्राज्य की सुरक्षा-पंक्ति में उसने गोपाद्रि (ग्वालियर)

---

१ वही, पृ० २६१
२ Deva, K., *op. cit.*, p. 44.
३ *HOC*, p. 27 ; *ERK*, pp. 33-34 ; *COJ*, pp. 66-67.
४ *ERK*, p. 34 ; *HOC*, p. 26 ; *COJ*, pp. 67-68.
५ *COJ*, p. 69
६ वही, पृ० ७२ ; *HOC*, p. 35 ; ERK, p. 43.
७ *HOC*, p. 28 ; *ERK*, p. 37.
८ Deva, K., *op. cit.*, p. 44.
९ *ERK*, p. 55 ; *HOC*, p. 33.

विजय द्वारा एक नई कड़ी जोड़ दी।[१] गोपाद्रि निर्विवाद रूप से प्रतीहार सम्राट् के अधिकार-क्षेत्र में था। इस विजय के पश्चात् ही उसने स्वतन्त्रता की घोषणा की होगी।[२] उसके राज्य की सीमा कालिंजर से मालव नदी तक, मालव नदी से कालिंदी तक, कालिंदी से चेदि राज्य तक और चेदि राज्य से गोप (गोपाद्रि) तक फैली थी।[3] इस विशाल साम्राज्य की राजधानी होने का गौरव खजुराहो को ही प्राप्त था। इतना ही नहीं, उसने भारत के अन्य भागों में भी दूर-दूर तक धावे मारे।[४] १२०२ ई० के खजुराहो अभिलेख के अनुसार कोसल, क्रथ, सिंहल और कुन्तल के शासक उसकी आज्ञाएँ शिरोधार्य करते थे और कांची, आन्ध्र, राढ़ और अंग के शासकों की पत्नियाँ उसकी कारा में थीं।[५] अभिलेख का यह वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण भाषा में किया गया प्रतीत होता है। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि धंग चन्देल वंश का प्रतिभाशाली और वीर शासक था। उसने पडोसी राज्यो की आपसी राजनीति में ही भाग नहीं लिया, वरन् गजनी के अमीर सुबुक्तगीन अथवा सुल्तान महमूद, जिसे चन्देल अभिलेखों में हम्वीर कहा गया है, के विरुद्ध शाही शासक जयपाल की सहायता भी की। शक्ति में वह हम्वीर के तुल्य कहा गया है।[६] मुस्लिम इतिहासकारों ने भी सुल्तान महमूद के विरुद्ध जयपाल की सहायता करने वालों मे कालिंजर के राजा का उल्लेख किया है।[७] महमूद के प्रतिरोध का उसका यह प्रयत्न निश्चय ही एक स्तुत्य कार्य था।

विजेता के रूप मे वह महान् था, किन्तु कला तथा स्थापत्य के सरक्षक के रूप में वह और भी महान् था। उसके शासनकाल में खजुराहो के दो श्रेष्ठतम मन्दिरों—विश्वनाथ और पार्श्वनाथ—का निर्माण हुआ था। विश्वनाथ मन्दिर का निर्माण उसने स्वयं कराया था और पार्श्वनाथ उसके शासनकाल मे, उसके द्वारा सम्मानित पाहिल द्वारा निर्मित हुआ था। तीसरे मन्दिर का पता नही चलता, जो उसके शासनकाल मे ग्रहपति वंश के कोक्कल द्वारा १००१ ई० मे वैद्यनाथ (शिव) की प्रतिष्ठा के निमित्त निर्मित हुआ था।[८]

धंग के पश्चात् उसका पुत्र गंड अल्पकाल के लिए सिंहासन पर बैठा (१००८–१०१७ ई०)। उसने शान्तिपूर्वक शासन किया। खजुराहो के दो मन्दिर—जगदम्बी और चित्रगुप्त—जो एक-दूसरे के निकट स्थित है, सम्भवतः इसी के शासनकाल में निर्मित हुए थे।[९] इनमे पहला वैष्णव और दूसरा सूर्य मन्दिर है।

गंड के पश्चात् उसका पुत्र विद्याधर (१०१७–१०२९ ई०) सिंहासनासीन हुआ, जिसे चन्देल वंश को गौरव के शिखर पर पहुँचा देने का श्रेय प्राप्त है। इसका उल्लेख मुसलमान इतिहासकार इब्नुल-अथीर ने 'बीदा' नाम से किया है और लिखा है कि वह अपने समय में भारत का सर्वाधिक

१ *ERK*, p. 57.
२ वही
३ वही; *HOC*, p 43; *COJ*, pp. 106-7
४ *ERK*, p. 61
५ *HOC*, p. 46; *ERK*, p. 61; *COJ*, pp. 100-101.
६ *HOC*, p. 47; *ERK*, p. 65; *COJ*, p. 105.
७ *ERK*, p 67.
८ Deva, K., *op. cit.*, p. 45.
९ वही

शक्तिशाली शासक था।[1] विदेशी आक्रमणकारी सुल्तान महमूद गजनवी द्वारा १०१८ ई० मे कन्नौज पर किये गये आक्रमण का सामना करने के स्थान पर कन्नौज-नरेश राज्यपाल ने छिपकर अपनी प्राणरक्षा की थी। विद्याधर ने राज्यपाल को देशद्रोही माना और महमूद के लौटते ही, दण्ड-स्वरूप उस पर आक्रमण कर, उसे मार डाला।[2] इसके अतिरिक्त विद्याधर ने न केवल अपने प्रतिस्पर्धियो—कलचुरियो और परमारों—पर विजय प्राप्त की, वरन् उसने सुल्तान महमूद द्वारा दो बार (१०१९ और १०२२ ई० में) कालिंजर-किले पर किये गये आक्रमण का जमकर विरोध भी किया था। कालिंजर का यह किला दृढ़ता और अभेद्यता में सारे भारत मे अपना सानी नही रखता था। उसके सरक्षण मे चन्देल साम्राज्य समृद्धि-शिखर पर पहुँच गया था। श्री कृष्णदेव का विचार है कि सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न चन्देल नृपति होने के नाते विद्याधर ने अपने पूर्वजों की मन्दिर-निर्माण-परम्परा को अक्षुण्ण रखा होगा और खजुराहो का विशालतम और श्रेष्ठतम कन्दरिया-महादेव मन्दिर उसी के द्वारा निर्मित हुआ होगा। श्री कृष्णदेव के अनुसार इस सुझाव को दो तथ्यों से बल मिलता है: अभिलेखों में शिव के अनन्य भक्त के रूप में विद्याधर का उल्लेख और कन्दरिया मन्दिर के मण्डप में एक संक्षिप्त अभिलेख की प्राप्ति, जिसमें उल्लिखित नृपति का नाम 'विरिंद' विद्याधर का ही दूसरा नाम हो सकता है।[3]

विद्याधर की मृत्यु के पश्चात् शक्तिशाली कलचुरियों और मुसलमानो के भीषण आक्रमणो के फलस्वरूप चन्देल-शक्ति का क्रमशः पतन हो गया। चन्देल-शक्ति के पतन के साथ-साथ खजुराहो का महत्त्व भी क्षीण होता गया, क्योंकि परवर्ती चन्देल नरेशों ने महोबा, अजयगढ़ और कालिंजर के दुर्गों पर, सामरिक कारणो से, अपना ध्यान विशेष रूप से केन्द्रित किया। किन्तु खजुराहो का कलात्मक वेग रुका नहीं और वहां बारहवी शती तक मन्दिर-निर्माण की परम्परा चलती रही।[4] कन्दरिया-महादेव मन्दिर के पश्चात् अनेक मन्दिरो, जैसे वामन, आदिनाथ, जवारी और चतुर्भुज, का निर्माण हुआ।[5] ये मन्दिर अपेक्षाकृत छोटे होते हुए भी कलात्मक दृष्टि से बड़े मन्दिरों के समान ही महत्त्वपूर्ण है। शैव मन्दिर दूलादेव का निर्माण १२वी शती के उत्तरार्ध में हुआ और एक अन्य शैव मन्दिर के निर्मित होने का उल्लेख खजुराहो सग्रहालय के एक अभिलेख मे प्राप्त है, जो लिपि के आधार पर १२वी शती के उत्तरार्ध का माना जा सकता है।[6] खजुराहो मे देव-मूर्तियों की प्रतिष्ठा की परम्परा तो मदनवर्मा के शासनकाल मे ११५८ ई० तक चलती रही।[7] जयवर्मन् के १११७ ई० के खजुराहो अभिलेख से स्पष्ट है कि परवर्ती चन्देल नरेशो ने खजुराहो की अवहेलना नही की। सम्भवतः परवर्ती खजुराहो-मन्दिर विद्याधर के प्रभावशाली उत्तराधिकारियों, जैसे विजयपाल (१०२९–५१ ई०), कीर्तिवर्मन् (१०७०–९८ ई०) और मदन-

१ *ERK*, p. 73.
२ वही, पृ० ७१
३ Deva. K., *op. cit.*, p. 45.
४ वही
५ वही
६ वही
७ वही

बर्मन् (११२९–६३ ई०), के संरक्षण में निर्मित हुए।[1] इब्न बतूता का कथन[2] इस बात का साक्षी है कि १३३५ ई० तक खजुराहो-मन्दिरों की महिमा आलोकित रही। इस प्रकार स्पष्ट है कि खजुराहो का राजनीतिक महत्त्व क्षीण होने पर भी वह चन्देलों के अन्तिम दिवसों तक उनकी धार्मिक राजधानी बना रहा।[3]

खजुराहो के मन्दिर

वास्तु-कला[4]

खजुराहो-मन्दिरों में नागर शैली पराकाष्ठा पर पहुँच गई है। आकार-सौन्दर्य और मूर्ति-सम्पदा की दृष्टि से ये भारत के समानरूप अन्य सब स्मारकों में अद्वितीय हैं। चौसठ-योगिनी, ब्रह्मा और लालगुआँ-महादेव को छोड़कर, प्रायः सब मन्दिर केन नदी के पूर्वी तट पर स्थित पन्ना की खानों से लाए गए मटियाले, पीले अथवा गुलाबी रंग के रेतीले पत्थर द्वारा निर्मित हुए हैं। चौंसठ-योगिनी मन्दिर पूर्णतया कणाश्म का बना है और ब्रह्मा तथा लालगुआँ-महादेव कणाश्म और रेतीले पत्थर की मिश्रित रचनाएँ हैं। ये मन्दिर शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर और जैन सम्प्रदायों के हैं। इनमें कोई भी बौद्ध मन्दिर नहीं है। विभिन्न सम्प्रदायों के होते हुए भी उनकी प्रधान वास्तु एवं शिल्प योजना समरूप है, यहाँ तक कि उनमें प्रतिष्ठित प्रधान देव-मूर्ति के माध्यम के अतिरिक्त, एक सम्प्रदाय के मन्दिर को दूसरे सम्प्रदाय के मन्दिर से अलग करना कठिन है।

खजुराहो-मन्दिर तलच्छन्द (ground plan) एवं ऊर्ध्वच्छन्द (elevation) में वैयक्तिक विलक्षणताएँ रखते हैं। ये ऊँची जगती पर स्थित हैं और चहारदीवारी से घिरे नहीं हैं। तलच्छन्द में ये 'लैटिन क्रॉस्' के आकार के, जिसकी लम्बी भुजा पूर्व से पश्चिम की दिशा में है, दिखाई पड़ते हैं। इनमें तीन प्रधान अंग : गर्भगृह, मण्डप और अर्धमण्डप हैं। गर्भगृह और मण्डप के बीच अन्तराल है। अधिक विकसित कला-शैली के मन्दिरों में प्रदक्षिणापथ से संयुक्त महामण्डप भी देखा जाता है। पृथक् रूप से वर्णित उपर्युक्त भाग अलग-अलग दिखाई नहीं देते, किन्तु एक-दूसरे में ओतप्रोत होने के कारण एक ही सुसंहत वास्तु का रूप धारण कर लेते हैं।

तलच्छन्द के समान मन्दिरों के ऊर्ध्वच्छन्द में भी विलक्षणता है। मन्दिर ऊँची जगती पर स्थित है। जगती पर लम्बाकार ऊपर को उठने वाला अधिष्ठान है, जिसमें उत्कीर्ण

---

१ वही

२ इब्न बतूता खजुराहो का उल्लेख 'कजर्रा' नाम से करता है और लिखता है कि "इस स्थान पर लगभग एक मील लम्बा एक विशाल सरोवर है, जिसके निकट मन्दिर हैं, जिनमें मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियों को मुसलमानों ने खण्डित कर दिया है। इस सरोवर के मध्य में लाल पत्थर के तीन गुम्बद हैं, प्रत्येक गुम्बद तिमंजला है। सरोवर के चारों कोनों पर बने हुए गुम्बदों में योगी रहते हैं, जिनकी जटाएँ उनके शरीर के बराबर लम्बी हैं और कड़ी तपस्या के कारण उनके शरीर पीले पड़ गए हैं। बहुत से मुसलमान उपदेश लेने के लिए उनके अनुयायी बन गए हैं।"
--Mehdi Husain, *TheRehla of Ibn Battuta (India, Maldive Islands and Ceylon)*, p. 166.

३ Deva, K., *op. cit.*, pp. 45-46.

४ द्र० Deva, K., *op. cit.*, pp. 46–49, *Khajuraho*, pp. 8-13 ; Dhama, B. L. and Chandra, S. C., *Khajurāho*, pp. 7-12, हिन्दी अनु०, पृ० ७-९

अभिप्रायों का अलंकरण दर्शनीय है। अधिष्ठान के ऊपर जंघा अथवा मन्दिर की बाह्य दीवारें हैं, जिनमें कक्षासन अथवा गवाक्ष है। जघा पर मूर्तियों की दो या तीन समानान्तर पंक्तियाँ हैं (चित्र २)। गवाक्ष मन्द प्रकाश के संचार से मन्दिर के अन्दर प्रकाश-मिश्रित अंधकार का पवित्र वातावरण उत्पन्न करने में सहायता पहुँचाते हैं और साथ ही विशाल प्रासाद के एकरस ठोस शरीर मे विचित्रता उत्पन्न करते है। पर्सी ब्राउन के शब्दों में "भारतीय वास्तु-कला के क्षेत्र में इन मनोहर गवाक्षो के समान बहुत कम ऐसी हृदयग्राही कल्पनाएँ पाई जाती है, जो अपने रचना-सौष्ठव तथा कला-सौन्दर्य की दृष्टि से, इनकी तुलना मे अपने उद्देश्य की उचित पूर्ति करती हो।"[१]

मन्दिरों का सर्वोच्च भाग छत-समूह है, जिसकी पराकाष्ठा एक मनोहर शिखर मे होती है। अर्धमण्डप, मण्डप, महामण्डप की पृथक्-पृथक् कोणस्तूपाकार (pyramidal) छते है। सबसे छोटी अर्धमण्डप की छत से प्रारम्भ होकर, उत्तरोत्तर उन्नत होती हुई, अन्त मे गर्भगृह के उत्तुंग शिखर में समाप्त हो, ये पर्वत शृंखला-सी (कैलास अथवा मेरु) प्रतीत होती हैं। शिखर की चोटी पर बड़ा आमलक, उस पर चन्द्रिकाओ का क्रम, फिर छोटा आमलक, उस पर कलश और अन्ततः बीजपूरक है। प्रधान वक्र रेखाओं के लयबद्ध सनिवेश से शिखर के आकार का मनोरम रीति से निर्माण किया गया है और बड़े शिखर की मूलमंजरी के चारो ओर पुंजीभूत उरःशृंगों की व्यवस्था से मन्दिर को ऐसे अलौकिक वास्तु के रूप मे परिणत कर दिया गया है कि इसके शरीर में वैचित्र्य तथा गाम्भीर्य के भावों को बल मिला है। खजुराहो-शिखर का अधिकाश सौन्दर्य इन्हीं उरःशृंगों की रचना और व्यवस्था पर आधारित है।[२]

मन्दिरो का नलच्छन्द धार्मिक क्रियाकलाप की आवश्यकताओ के अनुरूप है।[3] मन्दिर मे प्रवेश करने के लिए पूर्व की ओर एक ऊँचा सोपानपथ है। द्वार पर अत्यन्त अलकृत मकरतोरण है,[४] जिससे मनुष्य अर्धमण्डप मे प्रवेश करता है। यह प्रवेशद्वार स्थापत्य-कला की अत्युत्कृष्ट रचना है, जो पर्सी ब्राउन के अनुसार तराशे प्रस्तर की अपेक्षा हाथीदाँत की नक्काशी अथवा लटकता हुआ वस्त्रविन्यास अधिक प्रतीत होता है।[५] अर्धमण्डप साधारण आयताकार मार्ग-सा है, जो बड़े मन्दिरों में मण्डप के रूप में अधिक विस्तृत हो गया है। तीन ओर से खुले अर्धमण्डप और मण्डप कक्षासन से घिरे है। उनकी छते कक्षासन के आसनपट्टो पर स्थित छोटे-छोटे स्तम्भो पर आश्रित है। मण्डप के पश्चात् महामण्डप आता है, जिसमे पार्श्वीय पक्षावकाश है। सान्धार प्रासादो (प्रदक्षिणापथ-युक्त मन्दिरो) के प्रदक्षिणापथ मे दो अतिरिक्त पक्षावकाश है। प्रत्येक पक्षावकाश मे एक-एक कक्षासन अथवा गवाक्ष है। इनके अतिरिक्त प्रदक्षिणापथ मे पीछे की ओर भी एक गवाक्ष है। इनसे प्रदक्षिणापथ को प्रकाश मिलता है। महामण्डप में विन्यस्त चार स्तम्भ वितान (ceiling) को आश्रय देते है। महामण्डप अन्तराल के द्वारा

---

१ Brown, P.. *Indian Architecture* (Buddhist and Hindu Periods), p. 135.
२ वही
३ वही
४ मकरतोरण अब तीन मन्दिरों--लक्ष्मण, कन्दरिया और जवारी—में ही सुरक्षित है।
५ Brown, P., *op. cit.*, p. 136.

गर्भगृह से जुड़ा है। अन्तराल मे लगे एक अथवा अनेक चन्द्रशिला-सोपानों द्वारा गर्भगृह के अलंकृत द्वार तक पहुँचा जाता है।

मन्दिरों के बितान की कल्पना और कल्पना की अभिव्यक्ति अत्यन्त कुशलता एवं प्रौढ़ कला-दृष्टि से की गई है।

खजुराहो के कुछ मन्दिर पचायतन शैली के हैं, अर्थात् इनमे मध्यवर्ती प्रधान मन्दिर के अतिरिक्त जगती के चारों कोनों पर एक-एक गौण मन्दिर है।

वर्गीकरण

जनश्रुति के अनुसार खजुराहो मे ८५ मन्दिर थे, किन्तु अब केवल २५ मन्दिर विभिन्न दशाओं मे विद्यमान है, जो खजुराहो के आस-पास फैले हैं। सुविधा की दृष्टि से उन्हे साधारणतः तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है : पश्चिमी, पूर्वी तथा दक्षिणी। पश्चिमी समूह में सबसे अधिक मन्दिर है, जिनमे प्रमुख है : कन्दरिया-महादेव, लक्ष्मण, विश्वनाथ, देवी जगदम्बी और चित्रगुप्त। ये सब विशाल मन्दिर है। इस समूह के अन्य मन्दिर हैं : चौंसठ-योगिनी, लालगुआँ-महादेव, मातंगेश्वर, नन्दी, पार्वती, वराह तथा महादेव। इनमे अधिकाश बहुत छोटे हैं, किन्तु छोटे होते हुए भी कुछ तो स्थापत्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस समूह के सब मन्दिर हिन्दू धर्म के हैं—वैष्णव, शैव, शाक्त और सौर सम्प्रदाय से सम्बन्धित। पूर्वी समूह के मन्दिरों को धर्म की दृष्टि से दो वर्गों मे विभाजित कर सकते है : (१) हिन्दू मन्दिर, और (२) जैन मन्दिर। प्रथम वर्ग मे ब्रह्मा, वामन तथा जवारी और द्वितीय वर्ग मे घंटाई, आदिनाथ तथा पार्श्वनाथ आते है। दक्षिणी समूह में मात्र दो महत्त्वपूर्ण मन्दिर हैं, जिनमें एक है दूलादेव और दूसरा चतुर्भुज अथवा जतकारी। दोनो हिन्दू धर्म से सम्बन्धित है। इनके अतिरिक्त कुछ मन्दिरों के भग्नावशेष भी उपलब्ध है।

निर्माण-काल

सामान्यतः यह माना जाता है कि खजुराहो के सब मन्दिर एक शती (९५०–१०५० ई०) के बीच की रचनाएँ हैं,[1] किन्तु अभी तक निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वहाँ के प्रमुख मन्दिरों के निर्माण-काल की समस्या अन्तिम रूप से सुलझ गई है। श्री कृष्णदेव द्वारा इस समस्या के हल करने का प्रयास हुआ है।[2] अभिलेखीय साक्ष्यों के साथ-साथ विभिन्न मन्दिरों के स्थापत्य, शिल्प तथा अलकरण के विकास का तुलनात्मक अध्ययन कर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्राचीनतम मन्दिर ८५० ई० के पूर्व और अन्तिम मन्दिर ११०० ई० के पश्चात् निर्मित हुआ है। निर्माण-काल की दृष्टि से उन्होंने मन्दिरों को दो वर्गों में विभाजित किया है : (१) पूर्ववर्ती, जिसके अन्तर्गत चौंसठ-योगिनी, लालगुआँ-महादेव, ब्रह्मा, मातंगेश्वर और वराह आते है,

---

१ श्री एस० के० सरस्वती ग्यारहवीं शती के उत्तरार्ध के पूर्व का कोई भी मन्दिर नहीं मानते, *The Struggle for Empire*, pp. 557-76.

२ Deva, K., *AI*, No. 15, pp. 49–51

तथा (२) परवर्ती, जिसमें शेष सब मन्दिर आते हैं। उनके द्वारा प्रस्तावित कालक्रमानुसार प्रमुख मन्दिरों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है।[1]

मन्दिरों का विवरण

चौंसठ-योगिनी

शिवसागर झील के दक्षिण-पश्चिम में कणाश्म की चट्टान पर स्थित, शाक्त सम्प्रदाय से सम्बन्धित चौंसठ-योगिनी मन्दिर योजना और निर्माण-शैली मे असामान्य है। छत-विहीन आयताकार यह मन्दिर एक ऊँची जगती पर निर्मित है। खजुराहो मे यही एक मन्दिर है, जो पूर्णतया कणाश्म का बना है और जिसका विन्यास दक्षिण-पश्चिम मे उत्तर-पूर्व की दिशा में है। १०२½ फुट × ५९½ फुट के क्षेत्रफल पर विस्तृत इसका प्रांगण चारों ओर ६७ कोठरियों से परिवृत था, जिसमें अब मात्र ४५ अवशिष्ट हैं। दक्षिण-पश्चिम की दीवार के मध्य वाली कोठरी अन्य कोठरियों से बड़ी है और इसके पास एक संकीर्ण द्वार है, जिसमे होकर मन्दिर के चारो ओर बने हुए संकीर्ण मार्ग में प्रवेश किया जाता है। कोठरियाँ नितान्त सादी हैं और प्रत्येक मे एक छोटा प्रवेशद्वार है। प्रत्येक के ऊपर प्रारम्भिक रूप का कोणस्तूपाकार शिखर है। सादे अधिष्ठान के अतिरिक्त उनकी दीवारो पर कोई अलकरण नही है। अनलंकृत होते हुए भी इन छोटे मन्दिरो (कोठरियां) मे खजुराहो-शैली के कुछ मूलभूत तत्त्व, जैसे ऊँची जगती और दो वाधो मे विभक्त जघा, विद्यमान हैं। कनिंघम का विचार था कि प्रागण के केन्द्र में पहले काली अथवा शिव का मन्दिर रहा होगा, किन्तु खनन में इस मन्दिर के अस्तित्व का कोई प्रमाण नही मिला।

योगिनी-मूर्तियो मे अब मात्र तीन अवशिष्ट है, जो खजुराहो-मूर्ति-कला के प्राचीनतम उदाहरण है। ये मूर्तियाँ अपने वास्तविक स्थानों मे नही है। सबसे बड़ी कोठरी में अब महिषासुरमर्दिनी की मूर्ति है और इसकी दो पार्श्व कोठरियों मे माहेश्वरी और ब्रह्माणी है। महिषासुरमर्दिनी-मूर्ति अष्टभुजी[2] है और उसके पादपीठ पर 'हिगलाज' लेख अकित मिलता है। हिगलाज बिलोचिस्तान मे शक्ति-पूजा का एक केन्द्र है। सम्भव है इस मूर्ति का कोई सम्बन्ध उस स्थान से रहा हो। ललितासन-मुद्रा मे बैठी माहेश्वरी की चतुर्भुजी प्रतिमा के साथ नन्दी भी प्रदर्शित है और इसके पादपीठ पर 'माहेश्वरी' नाम अकित है। ब्रह्माणी के तीन मुख और चार भुजाएँ है और वह खड़ी प्रदर्शित है।

यद्यपि इस मन्दिर मे तिथि-युक्त कोई अभिलेख नही प्राप्त हुआ है, जिससे मन्दिर-निर्माण की वास्तविक तिथि ज्ञात हो सके, किन्तु इसमे सन्देह नही कि खजुराहो-मन्दिरो मे यह प्राचीनतम है। स्थापत्य, शिल्प तथा मूर्तियों में अकित लिपि के आधार पर इसे नवी शती ई० के अन्त का मान सकते है।[3]

---

१ मन्दिरों के विवरण के लिए द्र० *ASI*, Vol. II, pp 416–37; Dhama, B. L. and Chandra, S C., *op. cit.*, pp. 13–35, हिन्दी अनु०, पृ० ९–३८; Deva, K., *op cit.*, pp 51-60, *Khajuraho*, pp. 20–43; *The Struggle for Empire*, pp. 557–76; Zannas, E. and Auboyer, J., *Khajurâho*, pp. 87–160.

२ डॉ० उर्मिला अग्रवाल ने भ्रान्तिवश इस मूर्ति को बीस भुजाओं से युक्त माना है, *Khajurâho Sculptures and their Significance*, p. 63, Ref. 3.

३ Deva, K., *AI*, No. 15, p. 51.

ब्रह्मा और लालगुआं-महादेव

चौंसठ-योगिनी के पश्चात् ब्रह्मा और लालगुआं-महादेव आते है, जिनमें पहला वैष्णव और दूसरा शैव मन्दिर है। दोनों का शिखर रेतीले पत्थर और शेष भाग कणाश्म का बना है। आकार में वे छोटे और सादे हैं। उनमें चौसठ-योगिनी के सदृश सादा अधिष्ठान है। तलच्छन्द में वे दोनों भिन्न होते हुए भी ऊर्ध्वच्छन्द में समरूप हैं। उनमे दो बाँधों वाली सादी जंघा और उसके ऊपर कोणस्तूपाकार छत है। ब्रह्मा मन्दिर का बहिर्भाग स्वास्तिकाकार है, जिसके प्रत्येक ओर भद्र हैं और अन्तर्भाग वर्गाकार है। पूर्वी भद्र मे प्रवेशद्वार है और पश्चिम की ओर एक अन्य संकीर्ण द्वार है। अन्य दो पार्श्वीय भद्रों में पत्थर की मोटी किन्तु सादी जालीदार खिड़कियाँ है, जो खजुराहो की एक वास्तु-विलक्षणता है। प्रवेशद्वार के उत्तरंग (lintel) में ब्रह्मा, विष्णु और शिव की स्थूल मूर्तियाँ हैं और शाखाओ (door jambs) मे नीचे एक ओर गंगा और दूसरी ओर यमुना का चित्रण है। इसके अतिरिक्त प्रवेशद्वार मे और कोई चित्रण नहीं है। इसके विपरीत लालगुआं-महादेव का प्रवेशद्वार नितान्त सादा है, उसमे न कोई प्रतिमा उत्कीर्ण है और न कोई अलंकरण ही। *ब्रह्मा मन्दिर का शिखर पूर्णतया सुरक्षित है, किन्तु लालगुआं-महादेव का शिखर* अधिकांशतः ध्वस्त है। कुछ सूक्ष्म भिन्नताओ के होते हुए भी दोनों मन्दिर योजना, निर्माण-शैली और अलंकरण की दृष्टि से समरूप है और दोनों के समकालीन होने मे कोई सन्देह नही है। दोनों उस संक्रमण काल के है, जब रेतीले पत्थर का उपयोग तो प्रारम्भ हो गया था, किन्तु कणाश्म का प्रयोग लुप्त नहीं हुआ था। फलतः वे चौसठ-योगिनी के बाद के और पूर्णतया रेतीले पत्थर के बने प्राचीनतम मन्दिरों से पहले के है। अतएव इन मन्दिरो की तिथि ९०० ई० निर्धारित की जा सकती है।[1]

मातंगेश्वर

मातंगेश्वर मन्दिर सर्वाधिक सादा है और रेतीले पत्थर के बने खजुराहो के मन्दिरों मे प्राचीनतम है। थोड़े मे महत्त्वपूर्ण अन्तर के साथ, ब्रह्मा मन्दिर की योजना और आकार का भव्य विस्तार इसमे हुआ है। अन्तर यह है कि इसमें तीन पार्श्वों के भद्रों में कक्षासन-प्रकार के गवाक्ष बने है, जो पूर्ण विकसित खजुराहो-मन्दिर की एक विशेषता है। प्रत्येक भद्र में एक प्रमुख रथिका भी है, जो स्थानीय शैली की एक अन्य विशेषता है। समकेन्द्रिक जटिल वृत्तों मे बना वितान चार युग्म स्तम्भो पर स्थित एक अष्ठभुज पर आश्रित है। गर्भगृह का समस्त फर्श २० फुट ४ इंच व्यास वाले तथा ४ फुट ५ इंच ऊँचे गौरीपट्ट से आवृत है, जिस पर ३ फुट ८ इंच व्यास का ८ फुट ४ इंच ऊँचा अत्यन्त चमकीला महाकाय लिंग स्थापित है। सम्पूर्ण मन्दिर अनलंकृत है और उसके किसी भाग मे कोई चित्रण नही है। इस प्रकार पूर्ण विकसित खजुराहो-मन्दिर के घने अलंकरण की विशेषता से यह अछूता है। इसलिए रेतीले पत्थर के मन्दिरों मे यह सर्वाधिक प्राचीन प्रतीत होता है और सम्भव है ब्रह्मा मन्दिर के कुछ ही समय बाद निर्मित हुआ हो। यदि ब्रह्मा मन्दिर की तिथि ९०० ई० मानी जाए तो मातंगेश्वर की तिथि ९००–९२५ ई० मानी जा सकती है।[2]

---

१ वही, पृ० ५१-५२
२ वही, पृ० ५२

वराह

वराह मन्दिर, जिसमे केवल मण्डप है, योजना और निर्माण-शैली की दृष्टि से ब्रह्मा और लालगुआँ-महादेव के समान है, किन्तु इसका आकार छोटा है और यह बनावट में भी अधिक सादा है। यह २० फुट ६ इंच × १६ फुट क्षेत्रफल का आयताकार वास्तु है, जिसकी कोणस्तूपाकार छत सादे बारह स्तम्भों पर आश्रित है। यह विष्णु के वराह अवतार का मन्दिर है और वराह की एकाश्म महाकाय मूर्ति ८ फुट ९ इंच लम्बी और ५ फुट ९ इंच ऊँची, मन्दिर के मध्य मे एक पादपीठ पर प्रतिष्ठित है (चित्र २९)। वराह के सारे शरीर मे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, सरस्वती, वीरभद्र और गणेश के साथ सप्तमातृकाओ, नवग्रहों, अष्टदिक्पालों, अष्टवसुओ, नागों, गणो, जलदेवी-देवताओं तथा भक्तों आदि की प्रतिमाएँ अंकित है। पृथ्वी की मूर्ति नष्ट हो चुकी है और पादपीठ पर उसके चरण-चिह्न मात्र अवशिष्ट है। वराह के नीचे, पादपीठ पर लम्बे नाग (आदिशेष) के भी अवशेष है। यह मन्दिर पूर्णतया रेतीले पत्थर द्वारा निर्मित है, फलतः ब्रह्मा और लालगुआँ-महादेव के बाद बना होगा। इसे मातंगेश्वर (९००—९२५ ई०) का समकालीन मान सकते हैं।[1]

लक्ष्मण

यह वैष्णव मन्दिर है और है पंचायतन शैली का सान्धार प्रासाद। रेतीले पत्थर के बने सुन्दर और पूर्ण विकसित खजुराहो-मन्दिरो मे यह प्राचीनतम है। खजुराहो के अन्य मन्दिरो के विपरीत इस मन्दिर की कुछ दिक्पाल-प्रतिमाएँ द्विभुजी हैं और गर्भगृह-द्वार के अलंकरण मे पत्र-लताओं का अंकन हुआ है। ये पूर्व मध्ययुगीन मन्दिरो की विशेषताएँ है। इस मन्दिर की ऐसी अन्य पूर्ववर्ती विशिष्टताओ का भी अवलोकन श्री कृष्णदेव द्वारा हुआ है।[2] भाग्यवश विक्रम संवत् १०११ (९५३-५४ ई०) तिथि से अंकित एक शिलालेख से, जो मन्दिर के जीर्णोद्धार के अवसर पर प्राप्त हुआ था और अब मन्दिर के मण्डप मे लगा है, पता चलता है कि यह मन्दिर चन्देल नृपति यशोवर्मन्, जिसकी मृत्यु ९५४ ई० मे हुई थी, के द्वारा निर्मित हुआ था। अतएव यह मन्दिर ९३० और ९५० ई० के मध्य बना होगा। मन्दिर की वास्तु और शिल्प-विलक्षणताओ से भी यह तिथि ठीक प्रतीत होती है।[3]

इस मन्दिर की लम्बाई ९८ फुट और चौड़ाई ४५ फुट ३ इंच है। मन्दिर की जगती के चारों कोनो पर चार गौण मन्दिर बने हैं। इस मन्दिर के ठीक सामने पाँचवाँ मन्दिर गरुड के उद्देश्य से बना था। गरुड़-प्रतिमा लुप्त हो गई है और अब उसे देवी मन्दिर कहते है।

खजुराहो के मात्र दो मन्दिरों—लक्ष्मण और पार्श्वनाथ—मे गर्भगृह-द्वार के उत्तरंग पर, एक-दूसरे के ऊपर दो रूपपट्टिकाएँ है। इस मन्दिर की अधःपट्टिका के केन्द्र (ललाटबिम्ब) मे लक्ष्मी की प्रतिमा है और पट्टिका के एक छोर पर ब्रह्मा और दूसरे पर शिव अंकित हैं। ऊर्ध्व पट्टिका मे नवग्रह-पंक्ति है। द्वारशाखाओ पर विष्णु के विभिन्न अवतारो, पत्रलताओ आदि के

---

१ वही, पृ० ५२-५३
२ वही, पृ० ५३
३ वही

चित्रण हैं। गर्भगृह के भीतर ४ फुट १ इंच ऊँची विष्णु के वैकुण्ठ रूप की मूर्ति अलंकृत तोरण के मध्य स्थित है (चित्र ६१)। मन्दिर के महामण्डप और अन्तराल के स्तम्भ-शीर्षों की शालभंजिकाएँ तथा प्रवेशद्वार का अलंकृत मकरतोरण खजुराहो-कला की अद्‌भुत कृतियाँ हैं।

मन्दिर-जंघा में एक-दूसरे के समानान्तर दो मूर्ति-पंक्तियाँ हैं, जिनमें देवी-देवताओं, शार्दूल और अप्सराओं की मनभावनी प्रतिमाएँ हैं। इस मन्दिर की जगती की रूपपट्टिकाएँ सर्वाधिक सुरक्षित अवस्था मे हैं, जिनमें अंकित नाना प्रकार के दृश्य देखते ही बनते हैं। आखेट और युद्ध के दृश्य, हाथी-घोड़ों की समारोहयात्राएँ, विविध आयुधों से सुसज्जित सैनिकों की रणयात्राएँ, अनेक पारिवारिक दृश्य तथा मिथुन चित्रण आदि दर्शनीय हैं।

उत्कीर्ण मूर्ति-सम्पदा की दृष्टि से यह मन्दिर खजुराहो की विलक्षण वास्तु-शैली का बड़ा उज्ज्वल स्वरूप है। इसकी कुछ मूर्तियाँ तो मध्यकालीन कला-निधियों में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। इण्डियन म्यूजियम की तीन प्रसिद्ध मूर्तियाँ—माँ-शिशु, पत्र लिखती युवती और दर्पण मे मुख देखती सुन्दरी—जिन्हें अभी तक त्रुटिवश भुवनेश्वर से प्राप्त माना जाता रहा है, निस्सन्देह इसी मन्दिर की मूर्तियाँ हैं, क्योंकि ये कला की सब दृष्टियों से इस मन्दिर की अन्य मूर्तियों के सदृश हैं।[1]

पार्श्वनाथ

शिल्प, वास्तु तथा अभिलेख सम्बन्धी साक्ष्यों के आधार पर पार्श्वनाथ मन्दिर, लक्ष्मण मन्दिर के ठीक बाद बना प्रतीत होता है। लक्ष्मण मन्दिर का निर्माण यशोवर्मन् द्वारा हुआ था और पार्श्वनाथ मन्दिर सम्भवतः उसके पुत्र एव उत्तराधिकारी धंग के शासनकाल मे निर्मित हुआ। इस सूचना के स्रोत दोनो अभिलेख (एक लक्ष्मण और दूसरा पार्श्वनाथ मे प्राप्त) धंग के शासन-काल मे लिखे गए थे और दोनो की तिथि—विक्रम स० १०११ (९५३-५४ ई०)—भी एक ही है। दोनों अभिलेखों की लिपि मे बहुत अन्तर होने के कारण पार्श्वनाथ मन्दिर के अभिलेख को लुप्त मूल अभिलेख की एक शती से अधिक बाद लिखी गई प्रतिलिपि माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस मन्दिर मे अनेक पूर्ववर्ती तीर्थयात्री-लेख अंकित है, लिपि के आधार पर जिन्हे ९५०–१००० ई० का मान सकते है। इन अभिलेखीय साक्ष्यों के अतिरिक्त श्री कृष्णदेव ने इन दोनो मन्दिरों के अनेक शिल्प एव वास्तु सम्बन्धी साम्यों पर प्रकाश डालकर उनके कालक्रम-सान्निध्य को स्पष्ट किया है।[2]

लक्ष्मण की अपेक्षा पार्श्वनाथ की वास्तु-कला अधिक विकसित है। लक्ष्मण मन्दिर के विपरीत, जिसके शिखर में उरःशृंगो की मात्र एक पंक्ति और कर्णशृंगों की दो पंक्तियाँ हैं, इस मन्दिर मे उरःशृंगों की दो और कर्णशृंगों की तीन पंक्तियाँ देखने को मिलती हैं। इसके अतिरिक्त लक्ष्मण मन्दिर की जघा में दो मूर्ति-पंक्तियाँ हैं, किन्तु इसमें तीन पंक्तियाँ हैं और सबसे ऊपरी पंक्ति मे विद्याधरों और उनके युग्मों के चित्रण हैं। ऊर्ध्व पंक्ति में विद्याधरों का चित्रण परवर्ती खजुराहो-मन्दिरों की एक विशिष्टता है, जिसका श्रीगणेश इसी मन्दिर से हुआ है। कुछ सूक्ष्म

---

१ वही, पृ० ५४

२ वही, पृ० ५४-५५

भिन्नताओं के अतिरिक्त पार्श्वनाथ मन्दिर लक्ष्मण मन्दिर के सदृश है, फलतः पार्श्वनाथ का निर्माण लक्ष्मण के ठीक बाद हुआ होगा। यदि लक्ष्मण का निर्माण यशोवर्मन् के शासनकाल के अन्तिम दिनों (९३०–५० ई०) में हुआ माना जाए तो पार्श्वनाथ का निर्माण धंग के शासन के प्रारम्भिक दिनों (९५०–७० ई०) मे मानना चाहिए।[1]

पार्श्वनाथ मन्दिर का कुछ निजी वैशिष्ट्य उल्लेखनीय है। इसके गर्भगृह के पीछे एक अतिरिक्त छोटा मन्दिर संयुक्त है। यद्यपि पार्श्वनाथ एक सान्धार प्रासाद है, किन्तु कक्षासन, जो विकसित खजुराहो-मन्दिरों की एक विशेषता है, यहाँ अनुपस्थित है। प्रदक्षिणापथ मे मन्द प्रकाश के संचार हेतु साधारण गवाक्ष है।

इस मन्दिर की जंघा में उत्कीर्ण अप्सराएँ अथवा सुर-सुन्दरियाँ मूर्ति-कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं और हैं शिल्पीकरण के अलौकिक लालित्य की परिचायक। शिशु को दुलराती, पत्र लिखती, नन्ही मानव आकृति द्वारा पैर से काँटा निकलवाती, शृंगार-प्रसाधन करती आदि अप्सराएँ विशेष दर्शनीय है। जैन धर्म से सम्बद्ध होने के कारण इस मन्दिर मे जैन देवी-देवताओं की मूर्तियाँ तो उत्कीर्ण है ही, किन्तु हिन्दू देव-प्रतिमाओं का भी अभाव नही है। लक्ष्मण मन्दिर के समान इसमे भी वैष्णव चित्रण की प्रचुरता है। गरुड़-पुरुष, परशुराम, बलराम-रेवती, राम-सीता-हनुमान्, यमलार्जुन सम्बन्धी कृष्णलीला आदि चित्रण विशेष दर्शनीय है। वैष्णव मूर्तियों के साथ-साथ शिव, काम-रति, दिक्पाल, नवग्रह आदि भी चित्रित है।

विश्वनाथ और नन्दी

विश्वनाथ मन्दिर (चित्र १) लम्बाई मे ८९ फुट १ इंच और चौड़ाई मे ४५ फुट १० इंच है। यह शिव के निमित्त बना था, जिनकी प्रतिमा गर्भगृह-द्वार के ललाटबिम्ब मे प्रदर्शित है। यह पंचायतन शैली का सान्धार प्रासाद है। कोनों पर बने चार गौण मन्दिरों मे से उत्तर-पूर्वी और दक्षिण-पश्चिमी कोनों पर स्थित मात्र दो मन्दिर शेष है। विकसित खजुराहो-शैली के सर्वोत्तम मन्दिरों मे विश्वनाथ एक है। वास्तु-कला की दृष्टि से यह लक्ष्मण और कन्दरिया के बीच की कड़ी है। इसका तलच्छन्द कन्दरिया के बहुत समान है और मूर्ति-विन्यास की दृष्टि से भी दोनो में बहुत साम्य है। जंघा पर समान आकार की तीन समानान्तर मूर्ति-पंक्तियों का प्रदर्शन इन दो मन्दिरों की एक विशिष्टता है। दोनों की ६ प्रधान अधिष्ठान-रथिकाओं में, समान क्रम से, गणेश और वीरभद्र के साथ नृत्य करती सप्तमातृकाओं की मूर्तियाँ हैं। दोनो मन्दिरों के शिखर भी निर्माण-शैली की दृष्टि से समरूप हैं।

मण्डप-दीवार पर लगे दो शिलालेखों में बड़ा लेख इसी मन्दिर मे पाया गया था और वस्तुत: यह इसी मन्दिर का लेख है। इसमें धंग के द्वारा विक्रम सं० १०५९ (१००२ ई०) में शम्भु मरकतेश्वर के मन्दिर के निर्माण और उसमे मरकत तथा पाषाण-निर्मित दो लिंगों की स्थापना का उल्लेख है। अब मरकत लिंग लुप्त हो गया है और पाषाण-लिंग ही शेष है, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस अभिलेख मे इसी विश्वनाथ मन्दिर का उल्लेख हुआ है।

विश्वनाथ के ठीक सामने नन्दी मन्दिर स्थित है, जो लम्बाई में ३१ फुट ३ इंच और

---
[1] वही, पृ० ९९

चौड़ाई में ३० फुट ९ इंच है। इसमें शिव-वाहन नन्दी की ७ फुट ३ इंच लम्बी और ६ फुट ऊँची महाकाय मूर्ति प्रतिष्ठित है। तलच्छन्द में यह मन्दिर बारह स्तम्भों पर आश्रित एक वर्गाकार वास्तु है, जिसके उत्तर, पूर्व और दक्षिण में दो स्तम्भों पर आश्रित गवाक्ष हैं और पश्चिम में दो स्तम्भों पर आश्रित अर्धमण्डप है। इसका शिखर कोणस्तूपाकार है। यह विश्वनाथ मन्दिर का समकालीन है।

जगदम्बी और चित्रगुप्त

जगदम्बी मन्दिर ७३ फुट ३ इंच लम्बा और ४२ फुट १ इंच चौड़ा है और चित्रगुप्त ७४ फुट ९ इंच लम्बा और ५१ फुट ९ इंच चौड़ा है। दोनों योजना, निर्माण-शैली तथा अलंकरण की दृष्टि से समरूप है। जिस प्रकार दोनों एक-दूसरे से सटे हुए निर्मित हैं, उसी प्रकार दोनों निर्माण-काल की दृष्टि से भी एक-दूसरे के बहुत निकट हैं। दोनों निराधार प्रासाद है और उनमें गर्भगृह, अन्तराल, महामण्डप तथा अर्धमण्डप हैं। जगदम्बी का अधिष्ठान सादा है और समारोह-यात्रा से युक्त रूपपट्टिका से रचित है, जो चित्रगुप्त की एक विशेषता है। इसके अतिरिक्त, चित्रगुप्त के भीतर महामण्डप के चारों ओर द्वारपालों के छः युगल है, किन्तु जगदम्बी में मात्र तीन युगल हैं। जगदम्बी के महामण्डप का वितान अनलंकृत है, जबकि चित्रगुप्त का वर्गाकार वितान अधिक अलंकृत है, जो कोनों पर पहले अष्टभुज में परिवर्तित कर दिया गया है और पुन अष्टभुज को उत्तरोत्तर घटते हुए वृत्तों के आकार मे परिणत कर दिया गया है। इस प्रकार चित्रगुप्त जगदम्बी के कुछ बाद में निर्मित हुआ प्रतीत होता है। जगदम्बी की इस प्राचीनता की दृष्टि से यह भी उल्लेखनीय है कि पार्श्वनाथ की भाँति जगदम्बी मे अष्टवसुओं के चित्रण का पूर्णतया अभाव है। इन दोनों मन्दिरों की मूर्तियाँ बहुत-कुछ विश्वनाथ की मूर्तियों के सदृश है, किन्तु वे उतनी पतली और सुकुमार नहीं, जितनी कन्दरिया की मूर्तियाँ हैं। इस प्रकार शैली की दृष्टि से जगदम्बी-चित्रगुप्त, विश्वनाथ और कन्दरिया के बीच आने चाहिए और इसलिए उनकी निर्माण-तिथि १०००-१०२५ ई० मानी जा सकती है।[1]

जगदम्बी मौलिक रूप से एक वैष्णव मन्दिर है, किन्तु गर्भगृह की प्रधान विष्णु-मूर्ति लुप्त हो गई है और उसके स्थान पर बाद में ५ फुट ८ इंच ऊँची पार्वती की चतुर्भुजी मूर्ति स्थापित कर दी गई है। इस पार्वती-प्रतिमा को स्थानीय लोग काले रंग से पोतकर काली या जगदम्बी कहने लगे हैं। कुछ विद्वानों ने, इस प्रतिमा की शैव विशिष्टताओं की ओर बिना ध्यान दिए, इसे लक्ष्मी[2] अथवा मकरवाहिनी गंगा[3] मानने की भूल की है। किन्तु इसके सूक्ष्म अवलोकन और खजुराहो की अन्य पार्वती-प्रतिमाओं से इसकी तुलना करने पर, इसके पार्वती होने मे कोई सन्देह नही रह जाता। चित्रगुप्त सूर्य-मन्दिर है और गर्भगृह मे ५ फुट ८ इंच ऊँची सूर्य की आदि प्रतिष्ठित मूर्ति आज भी विद्यमान है (चित्र ७४)। गर्भगृह-द्वार के उत्तरंग पर धातृ-सूर्य की चार चतुर्भुजी प्रतिमाएँ उत्कीर्ण है (चित्र ७७, ७८)।

---

१ वही, पृ० ११
२ *ASI*, Vol. II, p. 421 ; Gangoly, O. C., *The Art of The Chandelas*, p. 34.
३ Zannas, E. and Auboyer, J., *Khajurāho*, p. 103.

कन्दरिया-महादेव

यह खजुराहो का विशालतम मन्दिर है। मध्यभारतीय स्थापत्य-कला का यह भव्यतम स्मारक भारत की सर्वोत्कृष्ट वास्तु-कृतियों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसकी लम्बाई १०२ फुट ३ इंच, चौड़ाई ६६ फुट १० इंच और ऊँचाई १०१ फुट ९ इंच है। तलच्छन्द में यह दोहरी भुजाओं का 'क्रॉस' है, जिसके न केवल महामण्डप में ही, वरन् प्रदक्षिणापथ में भी कक्षासन-युक्त दो पक्षावकाश हैं और इसी प्रकार पीछे की ओर भी एक कक्षासन है, जिनसे प्रदक्षिणापथ को प्रकाश मिलता है। इसमें खजुराहो-मन्दिर के पूर्ण विकसित अंगों—अर्धमण्डप, मण्डप, महामण्डप, अन्तराल, गर्भगृह और प्रदक्षिणापथ—का समन्वय समस्त वास्तु के एकीकरण में चारुरूप से प्रतिबिम्बित है।

खजुराहो में कन्दरिया ही एकमात्र मन्दिर है, जिसकी जगती में दोनों पार्श्वों में और पीछे की ओर भद्र है। इस मन्दिर का अधिष्ठान भी अन्य मन्दिरों के अधिष्ठानों से ऊँचा है, जिसमें रूपपट्टिकाओं की दो पंक्तियाँ दर्शनीय है। इनमें गज, अश्व, योद्धा, आखेटक, नट, विविध वाद्य-यन्त्रों से युक्त संगीतज्ञ, नर्तक-नर्तकियां, भक्त, मिथुन आदि नाना प्रकार के दृश्य उत्कीर्ण है। अधिष्ठान के कलश और कुम्भ में छोटी-छोटी रथिकाएँ है, जो युग्मों की प्रतिमाओं से मण्डित हैं। जघा में तीन मूर्ति-पंक्तियाँ हैं, जिनमें अन्य सभी मन्दिरों से अधिक मूर्तियों की बड़ी मनोहर छटा दर्शनीय है। इन मूर्तियों में देव-देवियां, मिथुन, अप्सराएँ, सुर-सुन्दरियां, शार्दूल, नाग-नागी आदि हैं।

खजुराहो के कुछ मन्दिरों (लक्ष्मण और पार्श्वनाथ) के प्रवेशद्वार पर एक मकरतोरण है, किन्तु कन्दरिया ही एक ऐसा मन्दिर है, जिसके प्रवेशद्वार पर दो मकरतोरण है, जो देव-देवी, संगीत-मण्डली, कीर्तिमुख, मकर, मिथुन आदि की विभिन्न आकृतियों से अलकृत है। महामण्डप का वितान समानकेन्द्रिक जटिल वृत्तों के योग से बना है। गर्भगृह-द्वार में सात शाखाएँ हैं, जबकि अधिकांश खजुराहो-मन्दिरों में मात्र पाँच शाखाएँ हैं। इन द्वारशाखाओं पर फूल-पत्तियाँ, मिथुन-मूर्तियां तथा साधना में लीन तपस्वी उत्कीर्ण है। इनके मूल में एक ओर मकरवाहिनी गंगा और दूसरी ओर कूर्मवाहिनी यमुना की प्रतिमाएँ हैं। गर्भगृह एक वर्गाकार प्रकोष्ठ है, जिसमें संगमरमर का शिवलिंग प्रतिष्ठित है।

इस मन्दिर की मूर्तियां, विशेषतः विविध रूपों में उकेरी अप्सराएँ, अपनी आकर्षक भावभंगिमाओं के कारण विशेष दर्शनीय है। बारीकी से तराश कर गढ़े गए उनके अंग बड़े मनोहर हैं और उनकी मुख-मुद्राएँ आन्तरिक तीव्र मनोवृत्तियों और उद्वेलित भावों की परिचायक है। ये खजुराहो शिल्प की अत्यन्त मनोरम कृतियां है।

१००२ ई० में बनकर पूर्ण हुए विश्वनाथ का विकसित रूप कन्दरिया है, अतएव यह विश्वनाथ के कुछ बाद में निर्मित हुआ होगा। इसे विद्याधर के शासन के उत्तरार्ध अथवा १०२५-५० ई० में निर्मित हुआ मान सकते हैं। इस प्रस्तावित निर्माण-तिथि को, इस मन्दिर के महामण्डप में प्राप्त एक संक्षिप्त अभिलेख से पुष्टि मिलती है, जिसमें विरिंद नामक एक राजा का उल्लेख है, जो विद्याधर का ही दूसरा नाम हो सकता है।[1]

---

1 Deva, K., *op. cit.*, p. 57.

वामन

विष्णु के वामन अवतार का यह मन्दिर लम्बाई में ६२ फुट ६ इंच और चौड़ाई में ४५ फुट ३ इंच है। इस निराधार प्रासाद में सप्तरथ गर्भगृह, अन्तराल, महामण्डप और अर्धमण्डप—ये अंग है। सप्तरथ शिखर-युक्त यह निराधार प्रासाद प्रायः आदिनाथ के सदृश है। विशेषतः अन्तर्भाग की सामान्य योजना एवं निर्माण-शैली की दृष्टि से यह जगदम्बी और चित्रगुप्त मन्दिरों के भी समरूप है। शिखर की छोटी रथिकाओं के अतिरिक्त इस मन्दिर के अन्य किसी अंग में मिथुन-चित्रण नही हैं और इस दृष्टि से यह खजुराहो के अन्य मन्दिरों से भिन्न है। इसकी जंघा में मूर्तियों की मात्र दो पंक्तियाँ हैं, अन्य मन्दिरो के सदृश तीन नहीं। इसकी एक अन्य विशिष्टता यह भी है कि इसके महामण्डप के ऊपर सवरणा छत है और महामण्डप के गवाक्षों (चन्द्रावलोकनो) के वितान मे शालभंजिकाएँ प्रदर्शित हैं। गर्भगृह में विष्णु के वामन अवतार की ४ फुट ८ इच ऊँची मूर्ति प्रतिष्ठित है (चित्र ३३)। यह मन्दिर कन्दरिया के बाद और आदिनाथ के पूर्व का प्रतीत होता है, फलत. इसकी निर्माण-तिथि १०५०-७५ ई० मानी जा सकती है।[१]

आदिनाथ

जिन आदिनाथ का यह मन्दिर एक निराधार प्रासाद है, जिसका शिखर-युक्त गर्भगृह और अन्तराल मात्र अवशिष्ट है। सामान्य योजना, निर्माण-शैली तथा मूर्ति-कला की दृष्टि से यह वामन के अति निकट है। अन्तर केवल इतना है कि इसकी जंघा में मूर्तियों की तीन पंक्तियाँ हैं, जिनमें सबसे ऊपरी पंक्ति में उड़ते हुए विद्याधरों के चित्रण हैं। ऐसे चित्रण जवारी, चतुर्भुज और दूलादेव मन्दिरो में भी प्राप्त होते है। यद्यपि आदिनाथ का शिखर वामन के शिखर के समान भारी नही है, किन्तु सन्तुलन की दृष्टि से कुछ अधिक विकसित है और उसके लगभग एक या दो दशक पश्चात् निर्मित हुआ प्रतीत होता है।[२]

जवारी

यह वैष्णव निराधार प्रासाद छोटा किन्तु अधिक सुडौल है। इसमें गर्भगृह, अन्तराल, मण्डप और अर्धमण्डप—ये अंग मात्र हैं। अपने अलंकृत मकरतोरण और मनोहर शिखर के कारण यह मन्दिर विशेष दर्शनीय है। वस्तुतः यह एक वास्तु-रत्न है।[३] सामान्य योजना और निर्माण-शैली की दृष्टि मे यह चतुर्भुज मन्दिर के समरूप है, जो स्वय संकीर्ण अन्तराल-युक्त निराधार प्रासाद है। दो विशिष्ट लक्षणों के कारण यह खजुराहो मन्दिरो में विलक्षण है। सर्वप्रथम इस मन्दिर की जंघा के शीर्ष का अलंकरण मध्यकालीन गुजरात-मन्दिरों के एक विशिष्ट लक्षण को प्रदर्शित करता है।[४] इसके अतिरिक्त जंघा की अधःपंक्ति की सब देव-प्रतिमाएँ रथिकाओं मे प्रदर्शित है। यह विशेषता भी मध्ययुगीन गुजरात-मन्दिरों मे मिलती है, किन्तु इसका निकटतम सादृश्य उदयपुर के उदयेश्वर मन्दिर (१०५६-८० ई०) और ग्वालियर के सास-बहू मन्दिर (१०६३ ई०) में दर्शनीय है।[५]

१ वही, पृ० ६८
२ वही
३ वही
४ "The crowning mouldings of its *jaṅghā* show the *bharaṇī* (pillar-capital) and *kapota* surmounted by a prominent *kūṭa-chhādya*, which is characteristic of the mediaeval temples of Gujarat."—वही
५ वही

वास्तु तथा शिल्प—दोनों दृष्टियों से इसे आदिनाथ और चतुर्भुज मन्दिरों के मध्य में रख सकते हैं और १०७५ और ११०० ई० के बीच निर्मित हुआ मान सकते है।[1]

चतुर्भुज

यह वैष्णव मन्दिर भी एक निराधार प्रासाद है और जवारी मन्दिर के बहुत-कुछ समरूप है। इसमें गर्भगृह, सकीर्ण अन्तराल, मण्डप और खण्डित अर्धमण्डप हैं। यह योजना मे सप्तरथ है। इसका शिखर भारी है और साथ मे गौण शिखर नहीं है। इसकी अपनी कुछ निजी विशेषताएँ हैं। खजुराहो मे यही एक मन्दिर है, जिसमें मिथुन-चित्रण का नितान्त अभाव है। विद्याधरो के चित्रण सजीव होते हुए भी इस मन्दिर की मूर्ति-कला निर्जीव और पतनोन्मुख है। इस दृष्टि से यह सबसे बाद में बने दूलादेव मन्दिर के अति निकट बैठता है। इसे जवारी और दूलादेव के बीच में रख सकते हैं और इसकी निर्माण-तिथि ११०० ई० मान सकते हैं।[2] इसमें प्रतिष्ठित ९ फुट ऊँची महाकाय विष्णु-मूर्ति बड़ी विलक्षण है, जिसमे शैव विशिष्टताएँ अधिक दृष्टिगोचर होती है (चित्र २१, २२)। मन्दिर के बहिर्भाग मे, उत्तर की ओर उत्कीर्ण नारसिंही की एक दुर्लभ प्रतिमा दर्शनीय है।

दूलादेव

यह शैव मन्दिर भी एक निराधार प्रासाद है और इसमे गर्भगृह, अन्तराल, महामण्डप तथा अर्धमण्डप हैं। इसके शिखर के चारों ओर उरःशृंगों और कर्ण-शृंगों की तीन पंक्तियां है। इसके महामण्डप में भी कुछ अपनी निजी विशिष्टताएँ हैं। महामण्डप और अर्धमण्डप के कक्षासन में बाहर की ओर असामान्य ऊँची वेदिका है। भीतर महामण्डप का प्रकोष्ठ अष्टकोणीय है और खजुराहो-मन्दिरो में सर्वाधिक बड़ा है, जिसका व्यास १८½ फुट है। महामण्डप के वितान मे बीस शालभंजिकाएँ हैं, जो अपनी हृदयग्राही मनोहारिता और लालित्य के कारण श्लाघ्य है। महामण्डप के वितान का विन्यास भी अन्य मन्दिरो की अपेक्षा भिन्न है, क्योंकि इसका आकार एक-दूसरे पर आरोपित उत्तरोत्तर घटते हुए वृत्तों द्वारा निर्मित है।

अन्तर्भाग में उत्कीर्ण नृत्य करती अप्सराएँ और जंघा की ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति मे चित्रित विद्याधर अपने मोहक हावभाव और भावोद्रेक के कारण दर्शक को मोह लेते है। इस मन्दिर की देव-प्रतिमाओं की कुछ विशेषताएँ भी उल्लेखनीय हैं। यम और निर्ऋति-प्रतिमाओं के ऊर्ध्वकेश पंख के सदृश प्रदर्शित हैं। जघा की मूर्तियो में न तो विविधता है और न मौलिकता ही। एक ही प्रकार की शिव और शिव-पार्वती की स्थानक मूर्तियाँ बार-बार चित्रित हुई हैं, जो शिल्पी की कल्पना-शक्ति की क्षीणता और उसके कलात्मक पतन की परिचायक है। स्थापत्य और मूर्ति-कला की विशिष्टताओ के आधार पर इसे ११००–११५० ई० का माना जा सकता है।[3]

घंटई

इस मन्दिर का यह नाम इसलिए पड़ा कि इसके स्तम्भों पर घंटा और जंजीर के अलंकरण उत्कीर्ण हैं। योजना में यह पार्श्वनाथ के सदृश था, किन्तु उससे कही अधिक भव्य और विशाल।

---

१ वही
२ वही, पृ० ९६
३ वही, पृ० ६०

मूलतः इसमें अर्धमण्डप, महामण्डप, अन्तराल और गर्भगृह थे और साथ में प्रदक्षिणापथ भी था। अब केवल अर्धमण्डप और महामण्डप ही शेष रह गए हैं, जिनमे चार-चार स्तम्भों पर सपाट किन्तु अलंकृत वितान हैं। स्तम्भ प्रतीकात्मक कीर्तिमुखों, जिनसे किंकणीजाल और मुक्तामालाएँ लटक रही हैं, तथा परस्पर सश्लिष्ट वृत्तार्धों द्वारा बड़े मनोहर ढंग से अलंकृत है। वृत्तार्धों के भीतर तपस्वी, विद्याधर और मिथुन-युग्म अंकित हैं।

मन्दिर के बाहर एक बुद्ध-मूर्ति की उपलब्धि से (जो अब स्थानीय संग्रहालय मे है) कनिंघम ने इसे बौद्ध मन्दिर माना था,[1] किन्तु इसके जैन मन्दिर होने मे किंचित् मात्र भी सन्देह नहीं है। मन्दिर के प्रवेशद्वार के ललाटबिम्ब पर गरुड पर बैठी अष्टभुजी जैन देवी की एक मूर्ति है और उत्तरग के दोनों किनारों पर एक-एक जैन तीर्थंकर अंकित है। उत्तरंग के वामार्ध में नवग्रहों और दक्षिणार्ध में अष्टवसुओं के भी चित्रण है। उत्तरग के ऊपर की पट्टिका मे उत्कीर्ण सोलह शुभ चिह्न महावीर की माता के सोलह स्वप्नो के प्रतीक है।

स्थापत्य, मूर्ति-कला तथा स्तम्भो पर उत्कीर्ण लिपि-सम्बन्धी साक्ष्य के आधार पर इसे दसवी शती के अन्त मे बना माना जा सकता है।[2]

अन्य स्मारक

उपर्युक्त प्रमुख मन्दिरों के अतिरिक्त खजुराहो के निम्नलिखित कुछ अन्य स्मारक[3] भी द्रष्टव्य है:

महादेव मन्दिर

कन्दरिया मन्दिर की जगती पर कन्दरिया और जगदम्बी मन्दिरों के बीच एक छोटा शिव मन्दिर है, जो खण्डित अवस्था मे है। शिव की प्रतिमा गर्भगृह-द्वार के ललाटबिम्ब पर अंकित है। गर्भगृह नष्ट हो चुका है, किन्तु अर्धमण्डप अवशिष्ट है।

पार्वती मन्दिर

यह छोटा-सा मन्दिर, जिसका अब गर्भगृह ही शेष है, विश्वनाथ मन्दिर के पास ही दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। इसमे आजकल गोधासना पार्वती की मूर्ति प्रतिष्ठित है, जिसके कारण मन्दिर के वर्तमान नाम का प्रादुर्भाव हुआ है। किन्तु प्रवेशद्वार के ललाटबिम्ब में विष्णु की प्रतिमा उत्कीर्ण है, जिससे सिद्ध है कि यह मूलतः वैष्णव मन्दिर था।

चोप्रा ताल

चित्रगुप्त मन्दिर के उत्तर-पश्चिम मे लगभग २०० गज की दूरी पर चोप्रा ताल नामक एक वर्गाकार जलाशय है। इसके चारो ओर सोपान-शृखलाएँ हैं और केन्द्र में स्तम्भों पर आश्रित एक छोटा मण्डप है। यह मण्डप मूलतः चौखण्डा रहा प्रतीत होता है, अब नीचे के खण्ड ही ध्वस्त अवस्था में हैं। सम्भवतः यह एक मन्दिर था, किन्तु किस देवता का, यह कहना कठिन है।

---

१ *ASI*, Vol. II, p 431.

२ Deva, K., *op. cit.*, p. 60.

३ इनके विवरण में कालक्रम का कोई ध्यान नहीं रखा गया है।

खखा मठ

वामन मन्दिर के उत्तर और पूर्व में प्राचीन मन्दिरों के प्रतीक कई टीले है । पूर्व की ओर पौन मील पर एक ध्वस्त वैष्णव मन्दिर है, जिसे स्थानीय लोग खखा मठ कहते है । अब मन्दिर के गर्भगृह का प्रवेशद्वार और पक्षावकाशों के चार स्तम्भ मात्र शेष है ।

पुरातत्त्व संग्रहालय

खजुराहो में एक पुरातत्त्व सग्रहालय है,[1] जिसमे खजुराहो तथा समीपवर्ती क्षेत्र से सगृहीत प्राचीन मन्दिरों की अनेक मूर्तियाँ हैं । प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से खजुराहो की सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण मूर्तियों में से कुछ तो इसी सग्रहालय की निधि हैं ।

मूर्ति-कला[2]

स्थापत्य की दृष्टि से ही नही, मूर्ति-कला की दृष्टि से भी खजुराहो के मन्दिरो का अपूर्व महत्त्व है । उनमें उपलब्ध मूर्तियों को पाँच वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है । प्रथम वर्ग मे मन्दिरो के गर्भगृहो मे पूजार्थ प्रतिष्ठित देव-मूर्तियाँ आती हैं, जो प्रायः चारो ओर से कोर कर बनाई गई (executed in the round) है । ये परम्परागत हैं और सामान्यत. समभग खड़ी है । प्रत्येक में एक विशाल प्रभावली है, जो पार्श्व-मूर्तियो से अलंकृत है । इनके निर्माण मे शिल्प-शास्त्रो के निर्देशों का पूर्णतया पालन किया गया है । लक्षणो और लाञ्छनो की सीमा मे पूर्णतया जकडी होने के कारण उनमें सौन्दर्य के अधिक दर्शन नहीं होते । किन्तु कुछ अपवाद भी हैं, जिनमे चतुर्भुज मन्दिर की प्रधान मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है । यह मूर्ति लक्षणों-लाञ्छनों की सीमा मे अधिक नही बँधी है और अन्य मूर्तियों के विपरीत मनोहारी त्रिभंग-मुद्रा मे खड़ी है । इसमें झलकता परम शान्ति एवं आनन्द का भाव विशेष दर्शनीय है (चित्र २१, २२) ।

परिवार, पार्श्व और आवरण देवताओ की मूर्तियाँ द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत आती है, जो रथिकाओ मे स्थित अथवा मन्दिर-जंघाओ मे उत्कीर्ण हैं। ये चारो ओर से कोर कर अथवा अंशत. कोर कर बनाई गई हैं । रथिकाओ की मूर्तियाँ अधिक परम्परागत हैं और प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से पहले वर्ग की मूर्तियों के बहुत-कुछ समरूप हैं । अन्य देवो, जैसे दिक्पाल आदि, के चित्रण परम्परागत कम, स्वच्छन्द अधिक है । ये देवी-देवता सामान्यत· त्रिभग खड़े है । उनके मस्तक पर मुकुट (किरीट, करण्ड अथवा जटा-मुकुट), पादपीठ पर सम्बन्धित वाहन और दो से अधिक हाथो मे उनके विशिष्ट आयुध हैं—इन्ही विशेषताओं के माध्यम से इनमे और उत्कीर्ण मानव-आकृतियो में भेद किया जा सकता है । अधिकांश देव-प्रतिमाएँ मानव-आकृतियो के सदृश ही वस्त्राभूषणो से अलकृत है, किन्तु देवों का अभिज्ञान उनके वक्ष पर अकित एक लाञ्छन (विष्णु के कौस्तुभमणि और जिन-प्रतिमाओं के श्रीवत्स-लाञ्छन के ठीक सदृश) और उनके द्वारा धारण की गई एक विशाल माला (विष्णु की वैजयती के सदृश), जो खजुराहो की सभी देव-प्रतिमाओ की आवश्यक विशेषताएँ हैं, के द्वारा सरलता से हो जाता है ।

[1] इसकी स्थापना १९१० ई० में हुई थी और तब इसका नाम बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेण्ट डब्लू० ई० जार्डिन के नाम की स्मृति में जार्डिन संग्रहालय रखा गया था । १९५२ ई० में जब भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग ने इसे अपने अधिकार में लिया तो इसका नाम "पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो" में बदल गया ।

[2] द्र० Deva, K , *op. cit.*, pp. 63-65, *Khajuraho*, pp. 13-16.

तृतीय वर्ग में अप्सराएँ अथवा सुर-सुन्दरियाँ आती हैं, जो खजुराहो की सर्वोत्तम मूर्तियाँ हैं। मन्दिरों के विभिन्न भागों में कोर कर अथवा अंशतः कोर कर बनाई गई सब सुर-सुन्दरियाँ सर्वोत्कृष्ट वस्त्राभूषणों से अलंकृत, मनोहारी कान्ति से युक्त तथा अत्यन्त सुन्दर हैं। अलौकिक नर्तकियों (अप्सराओं) के रूप में वे विभिन्न मुद्राओं में नृत्य करती प्रदर्शित हैं। देवताओं की अनुचरियो के रूप में चित्रित उनके हाथ अंजलि अथवा अन्य किसी मुद्रा में प्रदर्शित हुए हैं, अथवा वे आराध्य देव की पूजा के निमित्त पद्म, दर्पण, घट, वस्त्रालंकार आदि भेटें लिए हुए प्रदर्शित हैं। किन्तु अधिकांश सुर-सुन्दरियाँ सामान्य मनोभावों तथा क्रियाकलापों को व्यक्त करती हुई चित्रित हैं और प्रायः उनमें और परम्परागत नायिकाओं में भेद करना कठिन हो जाता है। ऐसी अप्सराएँ अपने को विवस्त्र करती (विवृतजघना)[१], अंगड़ाई लेती, अपने पृष्ठभाग को नखों से खरोंचती, पयोधरों को स्पर्श करती, भीगी वेणियों से जल निचोड़ती (कर्पूर-मजरी)[२], पैरों से काँटा निकालती, शिशु को दुलराती (पुत्र-वल्लभा), पालित पशु-पक्षियों, जैसे शुक और वानर के साथ क्रीडा करती, पत्र लिखती, वीणा अथवा वशी बजाती, दीवारों पर चित्रांकन करती और पैरों में महावर रचाती, नूपुर बँधवाती, नेत्रों मे सुरमा अथवा काजल लगाती, दर्पण में मुख देखती (दर्पणा) आदि विभिन्न प्रकार से अपना प्रसाधन करती प्रदर्शित है। इन चिर-परिचित मानव-क्रियाकलापों के पीछे एक गहन मर्म छिपा है। उदाहरणार्थ कन्दुक-क्रीड़ा करती अप्सराएँ उस आख्यान का स्मरण दिलाती हैं, जब विष्णु ने मोहनी-रूप में कन्दुक-क्रीड़ा द्वारा असुरों को मोहित कर, अमृत-विभाजन में उन्हे छला था। इस प्रकार यह चित्रण, साकेतिक रूप से, आत्मा में सौन्दर्य के सविलय की मोहजनक शक्ति का बोध कराता है।[3]

चतुर्थ वर्ग के अन्तर्गत धर्मेतर मूर्तियाँ आती है। इनके विषय विविध हैं, जैसे युद्ध, आखेट तथा परिवार के दृश्य, गुरु-शिष्य, कार्यरत श्रमिक, संगीत और नृत्य मे तल्लीन नर-नारियाँ, मिथुन-युगल अथवा मिथुन-समूह आदि।[४] भौतिक संसार से उठकर आध्यात्मिक धरातल पर पहुँची हुई प्रगाढ़ तन्मयता और आनन्दातिरेक की अभिव्यक्ति के कारण कुछ मिथुन-युगल (जैसे जगदम्बी के) तो विशेष दर्शनीय हैं।

अन्तिम वर्ग मे पशु-मूर्तियाँ आती है, जिनमे सर्वाधिक उल्लेखनीय शार्दूल है। इसे व्याल, वराल, विराल तथा विरालिका भी कहते है।[५] यह कला मे प्रदर्शित एक कल्पित पशु है, जो प्रधानतः उग्र सभृंग सिह के रूप मे चित्रित हुआ है, जिसके पृष्ठ पर एक सशस्त्र सैनिक सवार है और जिस पर पीछे की ओर से एक योद्धा प्रहार कर रहा है। इस प्रधान शार्दूल के अनेक रूप—

---

१ द्र० मेघदूत (१, ४१), जिससे ऐसी मूर्तियों को प्रोत्साहन मिला प्रतीत होता है :

> तस्याः किंचित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
> नीत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम्।
> प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
> ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥

२ चित्तौड़ के कीर्ति-स्तम्भ में भी दर्शनीय (Deva, K., *AI*, No. 15, p. 64)।

३ वही, पृ० ६४

४ खजुराहो-मन्दिरों में प्रदर्शित मिथुन-चित्रण के उद्देश्य की व्याख्या के लिए द्र० Chandra, P., *Lalit Kalā*, Nos. 1-2, pp. 98–107; Tripathi, L. K., *Bhāratī*, No. 3, pp. 82–104; Deva, K., *Khajuraho*, pp. 16–19.

५ Dhaky, M. A., *The Vyāla Figures on the Mediaeval Temples of India*, p. 11.

मानव (नरव्याल), शुक (शुकव्याल), वराह (सूकरव्याल), गज (गजव्याल) आदि मस्तकों से युक्त प्रदर्शित हुए हैं। ये सामान्यतः मन्दिर-जंघा के अन्तरपत्रों में उकेरे हैं, किन्तु शुकनासिका एवं अन्तर्भाग में भी इनका अभाव नहीं है। अप्सराओं की भाँति शार्दूल, जिसके पीछे एक गहन लाक्षणिकता छिपी है, खजुराहो-कला का बड़ा लोकप्रिय विषय है।

खजुराहो-कला मे गुप्त-कला की विशेषताओं का प्रचुर प्रभाव होते हुए भी, अनिवार्यतः यह मध्ययुगीन कला है। मध्यभारत के केन्द्र मे स्थित होने के कारण खजुराहो के द्वार सदैव पूर्वी और पश्चिमी कलात्मक प्रभावों के लिए खुले रहे हैं और इसीलिए यह कला पूर्वी और पश्चिमी भारतीय कलाओं के मनोरम समन्वय के रूप में प्रस्फुटित हुई है। भव्यता, भावों की गहनता और शिल्पी की आन्तरिक भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इस कला की तुलना गुप्त-कला से नहीं की जा सकती, किन्तु जिस ओजस्विता से यह कला स्पंदित है, वह आश्चर्यजनक है। मन्दिर-दीवारों पर उभरी मूर्तियाँ साकार सौन्दर्य के मनभावन गीत-सी लगती है। सभी दृष्टियों से खजुराहो-मूर्तियाँ उड़ीसा की मूर्तियों से अधिक परिष्कृत हैं और उनके शरीर की पर्यन्त रेखाएँ अधिक जटिल एवं भावपूर्ण है। वस्तुतः खजुराहो-कला समकालीन कलाओं मे सर्वश्रेष्ठ है। इस सम्बन्ध मे श्री कृष्णदेव का कथन द्रष्टव्य है।[1]

प्रतिमा-विज्ञान[2]

खजुराहो के मन्दिरो मे उत्कीर्ण मूर्तियाँ प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से और भी महत्त्व की है। हिन्दू और जैन धर्मों से सम्बन्धित विविध देव-मूर्तियों की झाँकी देखते ही बनती है। शिव के विभिन्न शान्त और उग्र रूपो की अनेक मूर्तियाँ, शैव मन्दिरों में ही नहीं, वरन् वैष्णव और जैन मन्दिरों में भी उत्कीर्ण है। गणेश[3] और कार्तिकेय के अनेक रूप भी चित्रित है। शक्ति के अनेक रूपों, जैसे दुर्गा, पार्वती, भैरवी, काली, सप्तमातृकाओं (चित्र १४) आदि, के चित्रण तो देखते ही बनते है। वैष्णव मूर्तियो[4] में विष्णु की अनेक प्रकार की स्थानक, आसन और शयन मूर्तियाँ तथा उनके अनेक अवतार—मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम, परशुराम, बलराम और कृष्ण—उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त सूर्य,[5] ब्रह्मा और सरस्वती की विविध मूर्तियो का भी अभाव नहीं है। दुर्लभ मूर्तियों मे शंख, चक्र और पद्म पुरुष, विष्णु के हयग्रीव, करिवरद, वैकुण्ठ, अनन्त तथा विश्व रूप;[6] नारसिंही; गोधासना पार्वती, और सिंहवाहिनी गजलक्ष्मी[7]

---

१ "In fact, this art excels all other contemporary schools of art in the vivid portrayal of human moods and fancies which are often expressed through the medium of gestures and flexions with a subtle but purposive sensuous provocation. Coquettish languor and frankly erotic suggestion form the key-notes which distinguish the Khajuraho art from the contemporary schools of art "—Deva, K., *AI*, No. 15, p. 64.

२ द्र० Deva, K., *op. cit.*, pp. 60–63.

३ द्र० प्रस्तुत ग्रन्थ, अध्याय २

४ वही, अध्याय ३

५ वही, अध्याय ४

६ वही, अध्याय ३

७ विस्तृत विवरण के लिए द्र० Dikshit, R. K., *JNSI*, Vol. XXVI, Pt. 1, pp. 102–04, *Proceedings of the Indian History Congress*, XXIII Session, p. 83.

(चित्र ४, ५) विशेष दर्शनीय है। मनोरम आलिंगन-मूर्तियों की छटा तो देखते ही बनती है। श्री कृष्णदेव ने सर्वथा उचित लिखा है कि खजुराहो मे जितने अधिक देवता अपनी शक्तियों के साथ आलिंगन रूप में प्रदर्शित हैं, उतने अन्यत्र नही।[1] शिव-पार्वती तथा लक्ष्मी-नारायण[2] की अनेक मूर्तियों के अतिरिक्त राम और सीता,[3] बलराम और रेवती,[4] परशुराम और उनकी शक्ति,[5] ब्रह्मा और सावित्री, गणेश और विघ्नेश्वरी,[6] इन्द्र और शची,[7] अग्नि और स्वाहा,[8] कुबेर और ऋद्धिदेवी,[9] काम और रति (चित्र ६, ७) तथा काम-रति-प्रीति के चित्रण दर्शनीय हैं। इनसे भी अधिक रोचक हैं दो अथवा दो से अधिक देवताओं की समन्वित (syncretic) मूर्तियाँ, जैसे हरि-हर (चित्र ८), हरि-हर-पितामह अथवा दत्तात्रेय,[10] सूर्य-नारायण,[11] हरि-हर-हिरण्यगर्भ[12] (ब्रह्मा, विष्णु और शिव की विशिष्टताओं से युक्त सूर्य) तथा ब्रह्मा और विष्णु की विशिष्टताओं से युक्त छ: मुखों और चार पादों से युक्त विलक्षण सदाशिव। इन देवी-देवताओं के अतिरिक्त खजुराहो मे गौण देवी-देवताओं, जैसे अष्टदिक्पालो,[13] अष्टवसुओं, नवग्रहो,[14] विद्याधरों, गन्धर्वों, नागों, गणो, भूतों और अप्सराओं के अनेक चित्रण है। किसी एक सम्प्रदाय से सम्बन्धित न होने के कारण ये सभी मन्दिरो मे बिना किसी भेद-भाव के उत्कीर्ण हैं।

मन्दिरों के गर्भगृह-द्वार के ललाटबिम्ब में, गर्भगृह मे प्रतिष्ठित देवता की अथवा उसके किसी सम्बन्धित रूप की छोटी प्रतिमा प्रदर्शित है। उत्तरंग के शेष भाग पर नवग्रह प्रदर्शित हैं। द्वारशाखाओं पर गंगा और यमुना की प्रतिमाएँ है, जिनके पार्श्व में प्रधान देवता के द्वारपाल खड़े प्रदर्शित है (चित्र ३)। गर्भगृह की भद्र-रथिकाओं मे मन्दिर के प्रधान देवता के परिवार-देवताओं और उसके विभिन्न रूपों की मूर्तियाँ है। मन्दिर की अन्य भीतरी और बाहरी रथिकाओं में अन्य देव-मूर्तियाँ है, जो अनिवार्यतः प्रधान देवता से सम्बन्धित नहीं है। यही बात शिखर-रथिकाओं पर भी चरितार्थ होती है, यद्यपि शुकनासिका-रथिका मे प्रधान देवता का सम्बन्धित रूप ही प्रदर्शित है।

मन्दिर-जघा और सान्धार-प्रासादो में गर्भगृह पर, नियमानुसार अपनी-अपनी दिशाओं में अष्टदिक्पालो का चित्रण हुआ है। सामान्यतः प्रत्येक कोने में दो-दो दिक्पाल युगल रूप मे चित्रित है—दक्षिण-पूर्व मे इन्द्र और अग्नि, दक्षिण-पश्चिम में यम और निर्ऋति, उत्तर-पश्चिम में वरुण

---

१ Deva, K., *op. cit.*, p. 61.
२ द्र० प्रस्तुत ग्रन्थ, अध्याय ३
३ वही
४ वही
५ वही
६ वही, अध्याय २
७ वही, अध्याय ६
८ वही
९ वही
१० वही, अध्याय ३
११ वही, अध्याय ७
१२ वही
१३ वही, अध्याय ६
१४ वही, अध्याय ६

और वायु और अन्ततः उत्तर-पूर्व में कुबेर और ईशान। सामान्यतः ये सभी जघा की अधः मूर्ति-पंक्ति में प्रदर्शित हैं और उनके ठीक ऊपर ऊर्ध्व-पंक्ति में अष्टवसुओं की मूर्तियाँ हैं, जो वृषमुख और चतुर्भुज हैं।[1] जगदम्बी और पार्श्वनाथ में अष्टवसु अनुपस्थित हैं।

विश्वनाथ और कन्दरिया मन्दिरों (जो दोनों शैव मन्दिर है) के अधिष्ठान की प्रधान रथिकाओं में गणेश और वीरभद्र के साथ नृत्य करती सप्तमातृकाओं की मूर्तियाँ हैं। दक्षिण-पूर्वी रथिका में गणेश की मूर्ति है और फिर प्रदक्षिणा-क्रम से शेष रथिकाओं में चामुण्डा, इन्द्राणी, वाराही, वैष्णवी, कौमारी, माहेश्वरी, ब्रह्माणी और अन्ततः (उत्तर-पूर्वी रथिका मे) वीरभद्र की मूर्तियाँ हैं। विश्वनाथ और कन्दरिया की जघा की तीनो मूर्ति-पंक्तियों मे शिव के विभिन्न रूपों की प्रतिमाएँ हैं। शिव-प्रतिमाओं के साथ-साथ अध पंक्ति मे दिक्पालो और ऊर्ध्व दो पंक्तियों मे अन्य हिन्दू देवों, जैसे विष्णु, ब्रह्मा अथवा कार्तिकेय, के भी चित्रण हैं। शैव मन्दिर दूलादेव की जंघा मे दिक्पालों और वसुओ के अतिरिक्त दो प्रकार की स्थानक मूर्तियो की अनेक बार पुनरावृत्ति हुई है: (१) वरद, त्रिशूल, सर्प और कमण्डलु-युक्त शिव और (२) शिव-पार्वती। एकसदृश आयुधों से युक्त एक ही देवता की मूर्तियो की यह पुनरावृत्ति सबसे बाद मे निर्मित इस मन्दिर की एक विशेषता है और है शिल्पी की कल्पना-शक्ति तथा उसके कलात्मक पतन की परिचायक। गर्भगृह की भद्र-रथिकाओं मे प्रदर्शित मूर्तियो की दृष्टि से तीनों मन्दिर समरूप है। कन्दरिया और दूलादेव की दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की इन रथिकाओ में क्रमश. अन्धकान्तक, नटराज और त्रिपुरान्तक की मूर्तियाँ हैं। विश्वनाथ की मात्र उत्तरी रथिका भिन्न है, जिसमे त्रिपुरान्तक के स्थान पर अर्धनारीश्वर-प्रतिमा है।

वैष्णव मन्दिरो की रथिकाओं में विष्णु के विभिन्न रूपों को प्रमुखता प्रदान की गई है। वामन मन्दिर के गर्भगृह की अधः भद्र-रथिकाओं में विष्णु के नृवराह, नृसिंह और वामन अवतारो की मूर्तियाँ है और लक्ष्मण मन्दिर की इन रथिकाओ में नृवराह और नरसिंह-मूर्तियो के अतिरिक्त हयग्रीव की मूर्ति है। जवारी मन्दिर की इन रथिकाओ मे नृवराह, नृसिंह और हरि-हर-हिरण्यगर्भ के रूप में सूर्य है। वामन और जवारी मन्दिरो की ऊर्ध्व भद्र-रथिकाओं मे ब्रह्मा-ब्रह्माणी, शिव-पार्वती तथा लक्ष्मी-नारायण हैं और लक्ष्मण मन्दिर की इन रथिकाओं मे योगासन विष्णु की तीन समरूप मूर्तियाँ हैं, जिनमे दो में मत्स्य और कूर्म की एक-एक छोटी आकृति के अंकन द्वारा क्रमश विष्णु के मत्स्य और कूर्म अवतारों का प्रदर्शन है। लक्ष्मण के अधिष्ठान की नौ प्रधान रथिकाओं में से छः मे एक विलक्षण देवता (?) की एक-एक मूर्ति है। ये सब मूर्तियाँ जटामुकुटधारी है और उनके तीन हाथ सामान्यतः अक्षमाला, कमलनाल तथा पुस्तक-युक्त हैं और एक हाथ खण्डित है। इनके अतिरिक्त इस मन्दिर मे गर्भगृह की ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति में कृष्ण-लीला के अनेक चित्र हैं, जैसे कुवलयापीड-उद्धार, शकट-भंग, अरिष्टासुर-वध, यमलार्जुन-उद्धार, वत्सासुर-वध, तृणावर्त-वध, कालिय-मर्दन, पूतना-वध, कुब्जानुग्रह, चाणूर-युद्ध, मल्ल-युद्ध तथा बलराम द्वारा सूत लोमहर्षण का वध। इस प्रकार यह मन्दिर खजुराहो के अन्य वैष्णव मन्दिरो में अद्वितीय है।

---

1 अष्टवसुओं के अभिज्ञान के लिए लेखक श्री कृष्णदेव का कृतज्ञ है। डॉ० उर्मिला अग्रवाल ने इन वृषमुख अष्ट-वसुओं को अश्वमुख हयग्रीव मानने की भूल की है, *Khajurāho Sculptures and their Significance*, pp. 42-43.

खजुराहो के एकमात्र सूर्य मन्दिर चित्रगुप्त की दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की अधः भद्र-रथिकाओं में क्रमशः एकादशमुख विष्णु (विष्णु और उनके दशावतार का सम्मिलित चित्रण), हरि-हर-हिरण्यगर्भ के रूप में सूर्य तथा नृवराह की मूर्तियाँ है। इन दिशाओं की ऊर्ध्व रथिकाओं में क्रमशः ब्रह्मा-ब्रह्माणी, शिव-पार्वती और लक्ष्मी-नारायण प्रदर्शित हैं।

खजुराहो के जैन मन्दिरों मे जिन-मूर्तियाँ प्रतिष्ठित है और प्रवेशद्वार तथा रथिकाओं मे विविध जैन देवी-देवता चित्रित हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर की जघा मे अनेक हिन्दू देव-प्रतिमाएँ भी उत्कीर्ण हैं, जिनमें कुछ तो प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से बड़े ही महत्त्व की है, जैसे अपनी शक्तियों के साथ राम, परशुराम, बलराम और कामदेव की आलिगन-मूर्तियाँ। जैन मन्दिरों के ललाट-बिम्ब मे चक्रेश्वरी यक्षी प्रदर्शित है और द्वारशाखाओं तथा रथिकाओं में अधिकांशतः अन्य जैन देवी-देवता, जैसे जिनो, विद्यादेवियों, शासन देवताओं आदि, की मूर्तियाँ है। दिगम्बर परम्परा के अनुसार वर्धमान की माँ ने स्वप्न में जो सोलह शुभ चिह्न देखे थे, वे सब जैन मन्दिरों (पार्श्वनाथ को छोड़कर) के प्रवेशद्वार पर प्रदर्शित है।

गणपति

२

गणपति

गणपति का शाब्दिक अर्थ है 'गणों का अधिपति'। गणों का सतत सम्बन्ध शिव से रहा है (इस सदर्भ मे शिव के वैदिक रूप रुद्र और मरुत्-गणो का सम्बन्ध भी द्रष्टव्य है)। इस प्रकार शिव-गणों के अधिपति को गणपति कहा गया है। गणपति के अनेक नाम है, जैसे गणेश्वर, गजानन, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, एकदन्त आदि। पांच प्रमुख हिन्दू सम्प्रदायों में, गणपति के उपासको के गाणपत्य सम्प्रदाय का भी एक स्थान है। यद्यपि इस सम्प्रदाय का विकास अपेक्षाकृत बाद में हुआ है, किन्तु गणपति-उपासना का सूत्रपात बहुत पहले हुआ प्रतीत होता है।

गणपति-उपासना का उद्भव और विकास

गणपति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद के एक मन्त्र मे हुआ है।[1] इस मन्त्र की द्वितीय पक्ति मे स्पष्ट रूप से ब्रह्मणस्पति को सम्बोधित किया गया है, अतएव प्रथम पक्ति का गणपति शब्द उन्ही के लिए प्रयुक्त हुआ है। ब्रह्मणस्पति का अर्थ है ब्रह्मो का पति। सायण के अनुसार ब्रह्म का अर्थ है मन्त्र, अत ब्रह्मणस्पति का अर्थ हुआ मन्त्रो का स्वामी। यह उपाधि बृहस्पति को दी जाती है। ब्रह्मणस्पति को गणों का गणपति कहा गया है। सायण ने इसका अर्थ किया है : देवादि गणो से सम्बन्ध रखने वाला गणपति, देवो के गणों का स्वामी।[2] गणपति नाम के विषय मे ऐतरेय ब्राह्मण भी कहता है कि यह ब्रह्मणस्पति अथवा बृहस्पति का वाचक है।[3] शुक्ल यजुर्वेद मे भी कई स्थानों पर गणपति शब्द प्रयुक्त हुआ है, किन्तु कही भी गणेश के अर्थ मे नही।[4] वैदिक साहित्य मे गणपति के अतिरिक्त गणेश का अन्य कोई नाम नही मिलता और इस गणपति शब्द से भी किसी प्रकार गणेश के अर्थ का बोध नहीं होता। इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक देव-सूची में गणेश की गणना नहीं हुई है।[5] ऐसा प्रतीत होता है कि गणपति भारत के अनार्यों

---

१ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥ ऋ० २, २३, १

२ गणेश, पृ० १

३ ऐत० ब्रा०, १, २१, (बम्बई, पृ० १८)

४ माध्यंदिनीय संहिता, १६, २५; २३, १९

५ गणेश, पृ० २, ३

में उपास्य थे, जो धीरे-धीरे आर्य-देवों मे परिगणित हो गए।[१] पहले वे विनायक के रूप में आए।

अथर्वशिरस् उपनिषद् मे रुद्र का अभिज्ञान अनेक देवताओ से किया गया है, जिनमें एक विनायक कहे गए है।[२] महाभारत मे गणेश्वरो और विनायको का उल्लेख उन देवों के मध्य हुआ है, जो मानव-कार्यों का निरीक्षण करते है और सर्वव्यापी है। यह भी कहा गया है कि विनायक स्तुति से प्रसन्न होने पर विघ्न-व्याधियों का विनाश करते हैं।[३] मानवगृह्यसूत्र[४] में विनायको का एक वृत्तान्त मिलता है। उनकी सख्या चार बताई गई है, जिनके नाम है शाल-कटकट, कूष्माण्डराजपुत्र, उस्मित और देवयजन। यहाँ यह भी उल्लेख है कि विनायको के द्वारा जब कोई आविष्ट हो जाता है तो उसकी मानसिक स्थिति एव क्रियाकलापो मे विषमता उत्पन्न हो जाती है—वह बुरे स्वप्न और डरावने दृश्य देखता है, मिट्टी के ढेर बटोरता है और घास काटने लगता है। उनके द्वारा आविष्ट होने से उत्तराधिकारी होते हुए भी राजकुमारो को राज्य नही प्राप्त होते, कन्याओ को वर नही मिलते, स्त्रियो के बच्चे नही होते और जिनके बच्चे होते है उनके मरने लगते है, योग्य होते हुए भी गुरुओं को शिष्य नही मिलते, विद्यार्थियों के सामने अनेक बाधाएँ आती है और व्यापारियों तथा कृषकों को भी अपने धन्धो में असफलता ही हाथ लगती है। इस वृत्तान्त के साथ ही सूत्र मे विनायक-शान्ति का विधान भी वर्णित है।

मानवगृह्यसूत्र के सदृश ही याज्ञवल्क्यस्मृति[५] मे विनायक-शान्ति का विधान वर्णित है, किन्तु यहाँ यह विधान अधिक विस्तृत और जटिल है। विवरण का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है कि रुद्र और ब्रह्मदेव ने विनायक को गणों का अधिपति नियुक्त किया (इस प्रकार गणपति हुए) और उन्हें मानव-कार्यों मे विघ्न उत्पन्न करने का कार्य सौंपा (वे विघ्नेश्वर बने)। सूत्र के चार विनायको के स्थान पर यहाँ एक ही विनायक का उल्लेख है, किन्तु उस एक विनायक के चार के स्थान पर छः नाम दिए गए है : मित, सम्मित, शाल, कटकट, कूष्माण्ड और राजपुत्र। यहाँ पर सर्वप्रथम विनायक अम्बिका के पुत्र बताए गए, है और इससे गणपति, की उत्पत्ति से सम्बन्धित, परवर्ती साहित्य मे उपलब्ध, अनेक परिभ्रमित आख्यानो का सूत्रपात हुआ है।[६] इस प्रकार सूत्र-काल से स्मृति-काल तक आते-आते चार विनायको का स्थान अम्बिका-पुत्र एक गणपति विनायक ने ले लिया।

विनायक-पूजा-परम्परा बहुत प्राचीन होते हुए भी अम्बिकासुत गणपति-विनायक का आविर्भाव अपेक्षाकृत बहुत प्राचीन नही है। भण्डारकर के अनुसार गाणपत्य सम्प्रदाय का प्रचलन पाँचवी और आठवी शतियो के बीच हुआ था और याज्ञवल्क्यस्मृति की रचना निश्चय ही छठी शती ई० से पहले नहीं हुई थी। उनका यह निष्कर्ष इस तथ्य पर आधारित है कि गुप्तकालीन किसी भी अभिलेख में गणपति अथवा उनके उपासको का उल्लेख नही हुआ है और सर्वप्रथम

१ सम्पूर्णानन्द, हिन्दू देव परिवार का विकास, पृ० १९०
२ *VSMRS*, p 147.
३ वही
४ मानवगृह्यसूत्र, २, १४
५ याज्ञवल्क्यस्मृति, १, २७१ तथा आगे।
६ *DHI*, p. 355.

आठवीं शती ई० के उत्तरार्ध की एलोरा की दो गुफाओं में काल, काली तथा सप्तमातृकाओं के साथ-साथ गणपति-चित्रण उपलब्ध हुआ है।[१] विक्रम सवत् ६१८ (८६२ ई०) का घटियाला (जोधपुर, राजस्थान) स्तम्भ-लेख भी गणपति-उपासना के प्रचलन पर प्रकाश डालता है। इस स्तम्भ के शीर्ष मे गणपति की चार मूर्तियाँ चार दिशाओं की ओर मुख किए उत्कीर्ण हैं और उसमें उत्कीर्ण अभिलेख का प्रारम्भ विनायक-वन्दना से हुआ है (ओम् विनायकाय नमः)।[२] शंकराचार्य के समय तक गाणपत्य सम्प्रदाय मे छ: भेद हो गए थे। आनन्दगिरि अथवा अनन्तानन्दगिरि ने अपने शंकरदिग्विजय में गाणपत्यों के छः भेदों का उल्लेख किया है, जो क्रमात् महा, हरिद्रा, स्वर्ण, सन्तान, नवनीत तथा उन्मत्त-उच्छिष्ट नामक गणपति के छ: विभिन्न रूपों की उपासना करते थे।[३] हिन्दू देवपरिवार में गणपति-विनायक का समावेश गुप्तकाल तक हो गया था, अतएव शंकराचार्य के समय तक गाणपत्य सम्प्रदाय में इतने भेद हो जाने में सन्देह नहीं किया जा सकता, जैसा सन्देह भण्डारकर ने व्यक्त किया है।[४]

शिव-गणों के नायक गणपति गजवदन क्यों ? इसकी व्याख्या महाभारत[५] मे वर्णित रुद्र के महापरिषदों के पशुमुख होने से हो सकती है। इन गणों (जो इस सन्दर्भ में स्कन्द के अनेक पारिषदों के रूप में वर्णित हैं) के मुख अनेक पशु-पक्षियों तथा जीव-जन्तुओं, जैसे कूर्म, कुक्कुट, श्वान, उलूक, वराह, शृगाल, मकर, काक, मयूर, मत्स्य, मेष, अज, महिष, शार्दूल, सिंह, गरुड, वृष, गज, आदि, के बताए गए है। मत्स्यपुराण में भी शिव के कुछ पशुमुख गणों का उल्लेख है, जैसे व्याघ्रमुख, गजमुख आदि।[६] भूमरा के शिव मन्दिर की दीवारों पर बनी छोटी-छोटी रथिकाओं मे विभिन्न पशु-पक्षियों के मुखों से युक्त अनेक गणों की प्रतिमाएँ हैं।[७]

प्रारम्भिक गणेश-मूर्तियों मे सम्भवतः यक्षों और नागों की विशिष्टताओं का समावेश था। गणेश के गजवदन होने का यह भी कारण हो सकता है। कुमारस्वामी का विचार है कि गणेश निस्सन्देह एक प्रकार के यक्ष है और गजानन यक्ष का प्राचीनतम अंकन अमरावती मे देखा भी जा सकता है।[८] मथुरा के एक कुषाणकालीन शिलापट्ट (सं० २३३५) पर भी गजमस्तक-युक्त आकृतियों वाले गजानन यक्षों का अलंकरण मिलता है।[९] यक्षों की तुन्दिल विशिष्टता गणेश मे

---

१ *VSMRS*, p. 148 ; यद्यपि बृहत्संहिता के प्रतिमा-लक्षण अध्याय में उपलब्ध गणपति-प्रतिमा-विवरण क्षेपक प्रतीत होता है, फिर भी यदि बहुत पहले से नहीं तो पूर्व गुप्तकाल से गणपति-मूर्तियाँ अवश्य बनने लगी थीं और गुप्तकाल में तो उनका प्रचलन अधिक व्यापक हुआ प्रतीत होता है (*DHI*, pp. 354-55 ; मथुरा-कला, पृ० ७४)।

२ *EI*, Vol IX, pp. 277, 279.

३ *VSMRS*, pp. 149-50 ; *DHI*, p. 357 ; गणेश, पृ० १२

४ *VSMRS*, p. 150.

५ म० भा० (कलकत्ता), ९, ४५, ७९ तथा आगे।

६ गणेश, पृ० १०

७ Banerji, R. D., *MASI*, No. 16, Pls. IX-X.

८ *Yakṣas*, Pt. I, p. 7, Pl. 23, Fig. 1; Burgess, J., *Stupas of Amrāvati and Jaggayyapeta* Pl. XXX, 1. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी लिखा है कि पहली गणपति-मूर्ति यक्ष-रूप में बनी जान पड़ती है, (मथुरा-कला, पृ० ७३)।

९ मथुरा-कला, पृ० ७४

प्रधान है ही और गज के रूप में उनके नाग का मस्तक भी है (नाग का अर्थ सर्प और गज दोनों होता है)।[१]

विभिन्न पुराणों और आगमों में उपलब्ध गणपति की अनेक जन्म-कथाओं से भी उनके गजवदन होने के कारण पर रोचक प्रकाश पड़ता है। गोपीनाथ राव और डॉ० सम्पूर्णानन्द द्वारा ऐसी अनेक कथाओं का संकलन किया गया है।[२] इनमें कहीं वे अकेले पार्वती से उत्पन्न बताए गए हैं, कहीं अकेले शिव से, कहीं शिव-पार्वती दोनों से, तो कहीं स्वतन्त्र उत्पन्न। इन कथाओं में शिवपुराण की कथा अधिक विख्यात है, जिसके अनुसार एक समय पार्वती की स्नान करने की इच्छा हुई। वे घर के द्वार पर अपने शरीर के मैल से एक पुतला बनाकर बैठा गईं और उसे यह आदेश दे गईं कि कोई अन्दर न आने पाए। ये द्वारपाल गणेश थे। उन्होंने स्वय शंकर को रोक दिया। फलतः शिव के गणों के साथ उनका युद्ध हुआ। इस संघर्ष में विष्णु आदि सभी देव खिंच आए। जब गणेश को कोई पराजित न कर सका तो शंकर ने उनका सिर काट दिया। इतने मे पार्वती स्नान कर बाहर निकलीं। गणेश को मृत देखकर उन्हे बडा क्रोध आया। उनकी ओर से देवियाँ और मातृकागण आ खड़ी हुईं। इस तुमुल सग्राम मे देवों की हार हुई। ऐसा प्रतीत हुआ कि अब जगत का संहार करके ही उमा का क्रोध शान्त होगा। विष्णु के बहुत अनुनय-विनय करने पर वे इस बात पर मान गईं कि यदि गणेश पुनर्जीवित कर दिए जाएँ तो सग्राम बन्द कर दिया जाएगा। शिव ने यह सुनकर देवों को आदेश दिया कि वे तत्काल उत्तर दिशा की ओर जाएँ और जो भी पहला जीवधारी मिले उसका सिर लाकर गणेश के कटे सिर के स्थान पर जोड़ दिया जाए। देवतागण तत्काल उत्तर की ओर भागे और उन्हे सबसे पहले एक दाँत वाला हाथी मिला, जिसका सिर काटकर वे ले आए। यही हाथी का सिर गणेश के लगाया गया। गणेश जीवित हो उठे और पुनः शान्ति हुई। इस प्रकार गणेश गजवदन और एकदन्त हुए। सब देवों ने उनकी स्तुति की और उनको गणनायकत्व प्रदान हुआ।[३]

गणपति का सम्बन्ध प्रज्ञा से भी माना जाता है। सम्भवतः इसका कारण उनके नाम और ऋग्वेद (२, २३, १) में उल्लिखित बृहस्पति के लिए प्रयुक्त शब्द गणपति के बीच हुई परिभ्रान्ति है। वैदिक देवता बृहस्पति निस्सन्देह प्रज्ञा के देवता है और वे देवगणो के स्वामी है।[४] इस परिभ्रान्ति का उद्भव उस अप्रामाणिक परवर्ती अनुश्रुति से हुआ जान पड़ता है, जिसके अनुसार व्यास द्वारा महाभारत की रचना के समय गणेश ने लेखक का कार्य सम्पादित किया था।[५]

इस प्रकार गणपति सत्कार्यों मे विघ्न डालने वाले दुष्ट सत्व विनायक के रूप मे प्रकटे और उनके शमन-विधान के रूप मे उनकी उपासना का सूत्रपात हुआ। पहले मंगल कार्यों के आरम्भ में उनके शमन का विधान किया जाता था, जिससे वे किसी प्रकार का उपद्रव न करें। क्रमशः अमंगल-वारण के स्थान पर यह पूजा मंगल-सिद्धि के लिए होने लगी और यह आशा की

१ *DHI*, p. 356.
२ *EHI*, I, I, pp. 35–46 ; गणेश, पृ० ३–१०
३ गणेश, पृ० ८ ; *EHI*, I, I, pp. 36–39.
४ *VSMRS*, p. 149.
५ *DHI*, p. 356.

जाने लगी कि इस प्रकार की पूजा से अमंगल दूर होने के साथ ही मंगल भी होगा। गणपति मंगलकारी बन गए। मंगलकारी ये देवता केवल हिन्दुओं के ही उपास्य न रहे, वरन् बौद्धों और जैनियों के भी पूज्य हुए। उनकी पूजा भारत तक ही सीमित न रही, वह विदेशों में भी पहुँची। उनकी मध्यकालीन मूर्तियाँ हिन्द-चीन, जावा तथा अन्य स्थानों में उपलब्ध हुई हैं।[1]

भारत मे गाणपत्य सम्प्रदाय वह महत्त्व न प्राप्त कर सका जो अन्य प्रमुख सम्प्रदायों को प्राप्त हुआ, किन्तु गणेश गाणपत्यों के ही होकर न रह गए, वरन् उनकी पूजा का व्यापक प्रचार हुआ और बिना किसी भेदभाव के वे सब हिन्दुओं के उपास्य हुए। प्रत्येक धार्मिक विधान के प्रारम्भ में तथा विशेष अवसरों पर वे आज तक बडी श्रद्धा से पूजे जाते हैं। "पृथिवी पर स्यात् ही किसी देव देवी का प्रभाव इतने व्यापक रूप में फैला हो।"[2]

गणपति-प्रतिमा-लक्षण

यद्यपि बृहत्संहिता के प्रतिमा-लक्षण अध्याय का वह श्लोक, जिसमे गणेश-प्रतिमा का वर्णन है, प्रक्षिप्त माना जाता है (जैसा कि पृ० ३३ पर वर्णित किया जा चुका है), किन्तु इसमें किंचित्मात्र भी सन्देह नही कि इसी श्लोक में गणेश की प्राचीनतम प्रतिमा वर्णित है। इसके अनुसार प्रमथों (गणों) के अधिपति को एकदन्त, गजमुख, लम्बोदर तथा परशु और मूलकन्दधारी निर्मित करना चाहिए।[3] यह वर्णन निस्सन्देह एक द्विभुजी प्रतिमा का है। यह सत्य है कि यहाँ पर मोदक-पात्र का उल्लेख नही हुआ है, किन्तु यहाँ उल्लिखित मूलकन्द एक गज का खाद्यपदार्थ ही है। गणपति के एकदन्त होने की जो विशिष्टता यहाँ वर्णित है, उससे उस परवर्ती कथा (जिसका विवरण आगे दिया गया है) को जन्म मिला है, जिसमें यह कहा गया है कि गणपति के एक दन्त को परशुराम ने तोड डाला था। अमरकोश[4] का वह श्लोक भी, जिसमें गणपति के पर्यायवाची शब्द बताए गए है, इस देवता के एकदन्त, गजमुख और लम्बोदर होने का सन्दर्भ प्रदान करता है। उपर्युक्त विवरण से पता चलता है कि गणपति-प्रतिमा की प्राचीनतम विशेषता थी—परशु और मूलक-युक्त दो हाथ। गजमुख, एकदन्त, लम्बोदर—उनके ये ऐसे लक्षण हैं, जो प्राचीन और परवर्ती दोनो प्रकार के शिल्प-शास्त्रों में समान रूप से पाए जाते है।

परवर्ती शास्त्रों के अन्तर्गत गणपति-प्रतिमा का पौराणिक वृत्तान्त सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। विष्णुधर्मोत्तर[5] के अनुसार विनायक गजमुख और चतुर्भुज हों। उनके दाएँ हाथो में त्रिशूल और अक्षमाला तथा बाएँ मे मोदक से भरा पात्र और परशु हों। उनके बाईं ओर के दाँत का चित्रण न हो (इस प्रकार वे एकदन्त हो)। उनका पेट लम्बा हो, कान स्तब्ध हो और वे व्याघ्र-चर्म का वस्त्र और सर्प का यज्ञोपवीत धारण किए हो। उनका एक चरण पादपीठ पर और दूसरा आसन पर स्थित हो। यहाँ गणपति के वाहन मूषक का उल्लेख नही हुआ है, जो अन्य शास्त्रों मे बहुधा

---

१ वही, पृ० ३६७
२ सम्पूर्णानन्द, हिन्दू देव परिवार का विकास, पृ० १९८
३ बृहत्संहिता, ५८, ५८
४ अमरकोश, १, १, ३८
५ वि० ध०, ७१, १३-१६

पाया जाता है। मत्स्यपुराण[1] में भी विनायक गजमुख, लम्बोदर, सर्प-यज्ञोपवीतधारी, विस्तृतकर्ण, विशालतुण्ड तथा एकदन्त वर्णित हैं और साथ में उनकी कुछ अतिरिक्त विशेषताओं का भी उल्लेख हुआ है, जैसे वे त्रिनेत्र हों तथा पत्नियों, ऋद्धि और बुद्धि, एवं वाहन मूषक से युक्त हों। बृहत् होने के कारण उनका मुख नीचे की ओर हो और उनके स्कन्ध, पाद एवं हाथ पुष्ट हों। उनकी प्रतिमा के चतुर्भुजी होने का उल्लेख यहाँ भी हुआ है, जो दाएँ हाथो मे स्वदन्त और कमल तथा बाएँ मे मोदक और परशु धारण किए हो। अपराजितपृच्छा[2] मे उपलब्ध गणेश-प्रतिमा का विवरण सामान्यतः मत्स्यपुराण के वर्णन के समान है, किन्तु यहाँ देवता ऋद्धि और बुद्धि से युक्त नहीं बताए गए हैं और उनके चार हाथों के लाञ्छनो का क्रम (दाईं ओर के नीचे के हाथ से प्रारम्भ होकर) इस प्रकार वर्णित है : स्वदन्त, परशु, कमल और मोदक। देवता के चार हाथों के यही लाञ्छन अग्निपुराण[3] और रूपमण्डन[4] में भी उल्लिखित है। अंशुमद्भेदागम, उत्तरकामिकागम, सुप्रभेदागम, शिल्परत्न आदि में वर्णित गणपति-प्रतिमा का विवरण[5] पौराणिक विवरण से अधिक भिन्न नही है।

उपर्युक्त सभी परवर्ती शास्त्रों मे सामान्य गणपति-प्रतिमा चतुर्भुजी ही वर्णित है, जिसके हाथों में निम्नलिखित लाञ्छनों में से कोई चार होने का उल्लेख है : त्रिशूल, अक्षमाला, मोदक-पात्र अथवा मोदक, परशु, स्वदन्त, कमल, कपित्थ, अंकुश, नाग, फल आदि। इन शास्त्रों मे बहुधा मूषक गणपति का वाहन वर्णित है और कभी-कभी उनकी पत्नियो, ऋद्धि और बुद्धि, भारती (सरस्वती का ही दूसरा नाम) और श्री (लक्ष्मी), बुद्धि और कुबुद्धि अथवा विघ्नेश्वरी आदि नामो का भी उल्लेख है। उनकी अन्य विशिष्टताएँ है : उनके तीन नेत्र, स्थानक मूर्तियो मे उनका आभंग अथवा समभंग होना और उनका व्याघ्र-चर्म के वस्त्र (व्याघ्रचर्माम्बर), सर्प के यज्ञोपवीत (व्याल-यज्ञोपवीत), किरीट अथवा करण्ड-मुकुट, तथा सभी आभूषणो से अलंकृत (सर्वाभरणसंयुक्त) होना। उनके एकदन्त, लम्बोदर और गजमुख होने की विशिष्टताओं का उल्लेख पहले हो ही चुका है।

सामान्य गणपति-मूर्तियों के उपर्युक्त विवरण के अतिरिक्त विभिन्न शास्त्रों मे उनकी मूर्तियो के अन्य प्रकारो का भी विवरण मिलता है, जैसे बीज-गणपति, हेरम्ब, वक्रतुण्ड, बाल-गणपति, तरुण-गणपति, वीर-विघ्नेश, शक्ति-गणेश, ध्वज-गणाधिप, पिंगल-गणपति, उच्छिष्ट-गणपति, विघ्नराज-गणपति, लक्ष्मी-गणेश, भुवनेश-गणपति, नृत्त-गणपति, ऊर्ध्व-गणपति, प्रसन्न-गणपति, उन्मत्त-विनायक, हरिद्रा-गणेश आदि।[6] गाणपत्य सम्प्रदाय के कुछ भेदो मे उपास्य कुछ गणपति रूपों के नाम इस सूची मे देखने को मिलते हैं और कुछ रूप, जैसे शक्ति-गणेश अथवा उन्मत्त-उच्छिष्ट-गणपति, गणेश की वामाचार-तान्त्रिक पूजा से सम्बद्ध प्रतीत होते हैं।[7] इनमे से बहुत कम रूपों का प्रदर्शन मूर्ति-कला मे हुआ है।

---

१ म० पु०, २६०, ११-१९

२ अपरा०, २१२, ३९-४०

३ अ० पु०, ५०, २३-२५

४ रूप०, ५, ११

५ *EHI*, I, II, Appendix C, pp 1-5.

६ *EHI*, I, I, pp. 51-61, I, II, Appendix C, pp. 6-12 ; *II*, pp. 24-25 ; *SIIGG*, pp. 173-76.

७ *DHI*, p. 358.

गणपति-मूर्तियों का विकास

भारतीय कला में गणपति के शुंगकालीन चित्रण का अभी तक कोई प्रमाण नहीं मिला है। पूर्व कुषाणकाल की भी कोई मूर्ति देखने को नहीं मिलती। आरम्भ में गणपति-मूर्ति यक्ष-रूप में निर्मित हुई जान पड़ती है। मथुरा के एक कुषाणकालीन शिलापट्ट (मथुरा सं० २३३५) पर सबसे ऊपर एक भित्तवेदिका है, बीच में छः पुष्पमाला लिए उपासकों की मूर्तियां है और नीचे गज-मस्तक-युक्त आकृतियों वाले पाँच गजानन यक्षों का अलकरण है।[१] अमरावती से उपलब्ध गजानन यक्ष का चित्रण (दूसरी शती ई०) भी, जो अब मद्रास संग्रहालय मे है, दर्शनीय है।[२] इस चित्रण मे गणेश की ओर संकेत तो है, किन्तु इसमें गणेश-प्रतिमा का विकास नही हुआ है।[3] पूर्व गुप्तकाल में गणपति प्रतिमाएँ बनने लगी थी और इस काल की कुछ मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। ऐसी तीन मूर्तियाँ मथुरा संग्रहालय की निधि है। इनमें गणेश द्विभुज, शूर्पकर्ण, लम्बोदर, एकदन्त और बाईं ओर शुण्ड उठाकर, बाएँ हाथ मे धारण किए मोदक-पात्र से मोदक खाते हुए प्रदर्शित हैं। ऐसी दो मूर्तियो मे वे नाग-यज्ञोपवीत धारण किए है और एक मे वे नृत्य करते प्रदर्शित हैं।[४] भीतरगाँव के मन्दिर से उपलब्ध एक मृण्फलक मे एक उड़ते हुए गण के रूप में गजानन की चतुर्भुजी आकृति प्रदर्शित हुई है, जो अपनी शुण्ड से सामने के बाएँ हाथ के मोदक-पात्र को स्पर्श किए है और जिसका सामने का दायाँ हाथ तर्जनी-मुद्रा में है। अन्य दो हाथों के पदार्थ अस्पष्ट हैं।[५] इसी समय की भूमरा की एक द्विभुजी प्रतिमा मे देवता एक पीठ पर बैठे प्रदर्शित है। उनके दोनों हाथ भग्न होने के कारण यह कहना कठिन है कि उनमे क्या रहा होगा।[६] यहीं से प्राप्त गणेश-विघ्नेश्वरी की एक आलिंगन मूर्ति भी दर्शनीय है।[७] पूर्व गुप्तकालीन गणपति की एक अन्य आसन मूर्ति उदयगिरि (विदिशा, म० प्र०) की चन्द्रगुप्त गुफा मे देखी जा सकती है, जिसमे द्विभुज देवता ललितासन-मुद्रा मे बैठे हैं। उनके बाएँ हाथ मे मोदक-पात्र है और इसी ओर उनकी शुण्ड मुड़ी (जो अब टूटी है) प्रदर्शित है।[८] गुप्तकाल में गणपति-प्रतिमाओं का प्रचलन बढ़ गया प्रतीत होता है। मथुरा संग्रहालय की मूर्ति म० ७५८ रचना-शैली की दृष्टि से ठेठ गुप्तकालीन है। इसमे द्विभुज गणेश खड़े प्रदर्शित हैं। सर्प-यज्ञोपवीत, एकदन्त, बाईं ओर मुड़ी हुई शुण्ड और बाएँ हाथ में मोदक-पात्र—ये लक्षण पूर्ववत् हैं। इस समय की दूसरी सुन्दर मूर्ति मे गणेश कमल के फूलो पर नृत्य करते प्रदर्शित है। उनके बाएँ हाथ मे पद्म है। शुण्ड मुँह के पास को मुड़ी है और उसके द्वारा मोदक-पात्र को स्पर्श करने की मुद्रा का अभाव है।[९]

मध्यकाल मे गणपति-प्रतिमाओ का प्रचार बहुत व्यापक था। पूर्व और उत्तर मध्ययुगीन

---

१ मथुरा-कला, पृ०, ७३-७४

२ *Yakṣas*, Pt. I, pp. 7, 42. Pl. 23, Fig. 1.

३ *DHI*, p. 359

४ M M Nos. 792 1064. 1170, *CBIMA*, p. 138 ; Diskalkar, D. B., *JUPHS*, Vol. V, Pt. I, p. 45, Pl. 18. I ; Getty. A., *Ganeśa*, Pl. 2, Fig. a ; मथुरा-कला, पृ० ७४

५ *ASIAR*, 1908-9, pp. 10-11, Fig. 2.

६ Banerji, R. D., *op. cit.*, Pl. XV (a) and (b).

७ Getty, *op. cit.*, Pl. 3, Fig. u

८ *DHI*, p. 359, Pl. XV, Fig. 1.

९ मथुरा-कला, पृ० ७४

गणपति की अनेक आसन, स्थानक और नृत्य-मूर्तियाँ सारे भारत में उपलब्ध हुई हैं, यद्यपि एक क्षेत्र की मूर्तियाँ दूसरे क्षेत्र की मूर्तियों से स्थानीय रचना-शैली के कारण थोड़ी-बहुत भिन्न अवश्य हैं।[१] इतना ही नहीं, मध्ययुगीन इन भारतीय मूर्तियों की परम्परा का अनुकरण कर विदेशी शिल्पियों ने भी इस देवता की मूर्तियाँ रचीं। कम्बोडिया की पद्मासन-मुद्रा में बैठे हुए गणेश की कांस्य-प्रतिमा[२], बाली की स्थानक मूर्ति[३] और जावा की समभंग खड़ी[४] तथा बैठी प्रतिमाएँ[५] विशेष दर्शनीय हैं, जिनमें अधिकांश भारतीय परम्परा के बहुत निकट हैं। इस युग में गणपति-मूर्ति-निर्माण में अधिक विकास हुआ और शास्त्रों में वर्णित गणपति-मूर्तियों के अनेक प्रकारों, जैसे उन्मत्त-उच्छिष्ट-गणपति, लक्ष्मी-गणपति, उच्छिष्ट-गणपति, महा-गणपति, हेरम्ब-गणपति आदि को शिल्प में साकार किया गया।[६]

खजुराहो में गणपति

खजुराहो में गणपति की अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध है।[७] कनिंघम के विचार से वहाँ गणपति का एक मन्दिर भी था,[८] जो अब पूर्णतया लुप्त हो गया है। प्रमुख हिन्दू सम्प्रदायों के साथ-साथ वहाँ गाणपत्य सम्प्रदाय का भी प्रचार था और गणेश के विविध रूपों की पूजा होती थी। वैसे तो वहाँ पर नृत्य-मूर्तियों की भरमार है, किन्तु स्थानक, आसन और आलिंगन मूर्तियों का भी अभाव नहीं है। सभी मूर्तियों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर क्रमश उनका विवरण दिया गया है : (क) स्थानक मूर्तियाँ (ख) आसन मूर्तियाँ (ग) नृत्त-गणपति (घ) शक्ति-गणेश तथा (ङ) अन्य चित्रण। अन्त में उनकी सामान्य विशिष्टताओ पर भी प्रकाश डाला गया है।

(क) स्थानक मूर्तियाँ

नृत्य और आसन मूर्तियों की तुलना मे वहाँ पर स्थानक मूर्तियो की सख्या कम है। ये स्थानक मूर्तियाँ दो प्रकार की हैं : द्विभुजी और चतुर्भुजी।

द्विभुजी

खजुराहो मे गणेश की द्विभुजी स्थानक मूर्तियाँ बहुत ही कम हैं। इस दृष्टि से वहाँ का एक शिलापट्ट विशेष दर्शनीय है, जिसमे पाँच देवताओ, क्रमश ब्रह्मा, गणेश, शिव, कार्तिकेय और विष्णु, की मूर्तियाँ पृथक्-पृथक् रथिकाओं मे उत्कीर्ण हैं। यहाँ गणेश द्विभुज तथा त्रिभग खड़े

---

१ इस भिन्नता के लिए द्र० Sivaramamurti, C., *AI*, No. 6, pp. 30-31, Pl. IV.

२ Getty, *op cit.*, Pl. 26.

३ *Ibid.*, Pl. 33 (a).

४ *Ibid*. Pl. 31 (b).

५ *Ibid.*. Pl. 31 (d), 34 (a) ; Sivaramamurti, C., *A Guide to the Archaeological Galleries of the Indian Museum*, p 15. Pl. VII b ; *DHI*, p. 360, Pl. XV, Fig 3; गर्देज, फलक ६।

६ *EHI*, I, I, Pls. XI-XIV ; *IBBSDM*, pp. 146-47, Pl. LVI b ; *SIIGG*, p. 173, Fig. 111.

७ सप्तमातृकाओं के साथ चित्रित तथा उमा-महेश्वर एवं पार्वती की मूर्तियों में प्रदर्शित गणेश के अतिरिक्त वहाँ लेखक को उल्लेखनीय १८ गणेश-मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। प्रस्तुत अध्ययन इन्हीं मूर्तियों पर आधारित है।

८ *ASI*, Vol. II, p 418, खजुराहो-स्मारकों का सर्वेक्षण करते समय कनिंघम को चौंसठ-योगिनी मन्दिर के सामने इस मन्दिर के भग्नावशेष मिले थे, जहाँ ६ फुट ऊँची एक गणेश-मूर्ति भी थी। यह विशाल मूर्ति अब खजुराहो संग्रहालय की निधि है (प्र० सं० १८, चित्र १)।

प्रदर्शित हुए हैं[1] (चित्र १०)। वे विशाल करण्ड-मुकुट, सर्प-यज्ञोपवीत आदि आभूषणों से अलंकृत हैं, जिनमें मस्तक पर सुशोभित मुक्ता-लड़ियों और जंघाओं पर आभूषित कटिसूत्र-बद्ध मुक्ताजाल के अलंकरण दर्शनीय हैं। उनका दायाँ दाँत सम्पूर्ण निकला प्रदर्शित है और बायाँ मूलतः टूटा प्रदर्शित करने के अभिप्राय से थोड़ा-सा निकला चित्रित हुआ है। एकदन्त होने के साथ-साथ वे शूर्पकर्ण भी हैं। वे अपने दाएँ हाथ मे परशु धारण किए है और बाएँ में लिए हैं मोदको से ऊपर तक भरा एक पात्र। उनकी सम्पूर्ण शुण्ड बाईं ओर मुड़कर इसी मोदक-पात्र के ऊपर प्रदर्शित है। दो अन्य शिलापट्टों में अंकित नृत्य करती सप्तमातृकाओं के साथ भी द्विभुज गणेश खड़े प्रदर्शित हुए हैं।[2]

चतुर्भुजी

गणपति की ऐसी तीन स्थानक मूर्तियाँ खजुराहो मे उपलब्ध है। पहली मूर्ति में[3] गणपति द्विभग खड़े है। उनके पहले हाथ मे पद्म, दूसरे में परशु और चौथे में इक्षु-खण्ड (एक बड़ा मोदक अथवा फल) है। तीसरा हाथ खण्डित है। शुण्ड सीधी लटकी है और उसमें नीचे एक मोड़ है। इस प्रकार बाईं ओर मुड़कर मोदक को स्पर्श करने की मुद्रा का यहाँ पर अभाव है। दाईं ओर का प्रदर्शित एक दाँत अब टूट गया है। यहाँ वे सर्प-यज्ञोपवीत नहीं धारण किए हैं। साथ मे अजलि-मुद्रा में हाथ जोड़कर बैठा एक भक्त प्रदर्शित है। दूसरी स्थानक मूर्ति में देवता का पहला हाथ वरद-मुद्रा में प्रदर्शित है। उनके दूसरे तथा तीसरे हाथो में पद्म और चौथे मे परशु है। वह हार, यज्ञोपवीत, कंकण, अंगद, मेखला आदि आभूषणो से अलंकृत हैं और शूर्पकर्ण है। उनकी सूँड़ बाईं ओर मुड़ी है और साथ मे एक भक्त भी बैठा अकित है।[4] गणेश की तीसरी स्थानक मूर्ति[5] बहुत छोटी है, इसमें वे पहले हाथ मे परशु धारण किए है, दूसरे हाथ द्वारा एक मोदक मुख मे रखते प्रदर्शित है, तीसरे मे दन्त और चौथे मे इक्षुखण्ड (अथवा फल) लिए हैं। तुण्ड बाईं ओर मुड़कर इसी इक्षुखण्ड के ऊपर है। उनके दाईं ओर का एक दाँत है।

खजुराहो मे गणेश की षड्भुजी स्थानक मूर्ति कोई नही उपलब्ध हुई है, किन्तु ऐसी एक मूर्ति कालिंजर में द्रष्टव्य है।[6]

(ख) आसन मूर्तियाँ

मूर्तियों मे चित्रित हाथों की दृष्टि से खजुराहो की आसन मूर्तियों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : द्विभुजी, चतुर्भुजी और षड्भुजी।

द्विभुजी

खजुराहो मे दो हाथों वाली तीन आसन मूर्तियाँ उपलब्ध हैं और तीनों आकार मे बहुत छोटी हैं। पहली मूर्ति[3] में गणपति ललितासन मे बैठे है और उनका दक्षिण हस्त अभय-मुद्रा मे

---

१ प्र० सं० १४

२ प्र० सं० ४१, ४२ —विवरण पृष्ठ ४८-४९ पर देखिए।

३ प्र० सं० ८

४ प्र० सं० ४

५ प्र० सं० १

६ Maisey, F., *Description of the Antiquities at Kālinjar*, p. 25, Pl. XVIII.

७ प्र० सं० २८

और वाम मोदक-पात्र-युक्त है। शुण्ड सीधी लटकी है और अन्त में उसमें एक मोड है, बाईं ओर मुड़कर मोदक-पात्र के ऊपर नही है। दाईं ओर का प्रदर्शित दांत अब कुछ टूटा है। दूसरी मूर्ति[1] में गणेश महाराजलीलासन-मुद्रा में बैठे है और उनका शेप चित्रण पहली मूर्ति के समान हुआ है। तीसरी मूर्ति[2] में भी देवता इसी आसन में है, किन्तु उनके दाएँ हाथ मे दन्त और बाएँ मे मोदक-पात्र है, शुण्ड बाईं ओर मुड़कर इसी के ऊपर है।

चतुर्भुजी

खजुराहो में लेखक को ऐसी ९ मूर्तियां उपलब्ध हुई है और इन सब मे गणेश महाराज-लीलासन-मुद्रा मे बैठे प्रदर्शित है। उनके चारों हाथो का चित्रण किसी एक शास्त्र के विवरण के अनुसार नहीं हुआ है, किन्तु सामान्यतः उनमें शास्त्र-निर्दिष्ट लाञ्छन ही हैं, जैसे दन्त, कमल, परशु, मोदक अथवा मोदक-पात्र। कभी-कभी एक हाथ अभय-मुद्रा में चित्रित भी मिलता है। इन प्रतिमाओं द्वारा चारो हाथो में धारण किये पदार्थ इस प्रकार हैं :

प्र० सं०	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
९	परशु	कमल	*	एक बड़ा मोदक
२५	कमल	*	*	*
२६	अभय-मुद्रा	दन्त	कमल	मोदक-पात्र
२७	दन्त	परशु	कमल	मोदक-पात्र
३१	अभय-मुद्रा	परशु	स्पष्ट नही	मोदक-पात्र
३२	एक मोदक	दन्त	कमल	*
३५	अभय-मुद्रा	कमल	परशु	एक मोदक
३६	*	दन्त	कमल	मोदक-पात्र
३७	*	दन्त	कमल	बड़ा फल अथवा मोदक

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि लगभग सब प्रतिमाओ के चौथे हाथ में एक मोदक अथवा मोदक-पात्र है, किन्तु एक प्रतिमा मे चौथे के स्थान पर पहले हाथ मे मोदक देखा जा सकता है।

इन प्रतिमाओ मे देवता की शुड सामान्यत बाईं ओर मुडकर वाम हस्त के मोदक अथवा मोदक-पात्र को स्पर्श करती चित्रित हुई है, किन्तु एक प्रतिमा[3] मे, जिसमे मोदक देवता के दाएँ हाथ मे है, शुंड भी दाईं ओर मुडकर इसी मोदक को ग्रहण करती दिखाई गई है। एक प्रतिमा[4] मे सूंड सीधी लटकती भी चित्रित है। सामान्यतः सब मूर्तियो मे गणपति एकदन्त है। उनका दाईं ओर का दांत प्रदर्शित हुआ है और बाईं ओर के दांत का मात्र थोड़ा-सा भाग ही चित्रित

१ प्र० सं० ३८
२ प्र० सं० ९
३ प्र० सं० ३२
४ प्र० सं० ३६
* हाथ खण्डित है

है। एक प्रतिमा[१] ऐसी भी है, जिसमे दाईं ओर के दांत की अपेक्षा बाईं ओर का दांत प्रदर्शित हुआ है। एक-दो प्रतिमाओं[२] मे ही गणेश सर्प-यज्ञोपवीत धारण किए हैं। एक प्रतिमा[३] में वे अजिनोपवीत धारण किए भी देखे जा सकते हैं। सभी प्रतिमाओं मे वे गजानन और लम्बोदर है। इन प्रतिमाओं के सदृश सुखासन-मुद्रा में बैठे जटा-मुकुटधारी चतुर्भुज गणेश की एक बंगाल की प्रतिमा भी दर्शनीय है।[४]

षड्भुजी

खजुराहो में छः भुजाओं वाली केवल एक ही आसन मूर्ति मिली है (चित्र ६),[५] जिसमें गणेश महाराजलीलासन-मुद्रा में प्रदर्शित हुए हैं। उनके सिर के मध्य छोटा-सा मुकुट है और उनका मस्तक मोती की दोहरी लड़ियो से अलंकृत है। इसके अतिरिक्त वे गले में हार, हाथों में कंकण, कटि मे मेखला और पैरों मे पैजनी धारण किए है। शरीर के मध्य ढीला पडा सर्प-यज्ञोपवीत भी दर्शनीय है। वे शूर्पकर्ण, एकदन्त और लम्बोदर हैं। उनकी सूँड़ सीधी लटक कर पेट के ऊपर एक मोड लिए है, बाईं ओर मुडकर बाएँ हाथ के मोदक-पात्र के ऊपर नही है। वे पहले हाथ मे पद्म (अथवा दन्त), दूसरे में परशु, पाँचवे में अकुश और छठवें में मोदक-पात्र धारण किए है। तीसरे और चौथे हाथो से एक नाग पकड़ कर सिर के ऊपर किए हैं, जिसके ऊपर की ओर विद्याधरो का एक युगल भी अंकित है।

(ग) नृत्त-गणपति

नृत्त-गणपति-मूर्तियों का निर्माण पूर्व गुप्तकाल में प्रारम्भ हुआ।[६] गुप्तकाल मे उनका प्रचलन बढने लगा[७] और मध्ययुग मे वह बहुत व्यापक हो गया। आज भी भारत के विभिन्न भागो मे मध्ययुगीन ऐसी अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध है। खजुराहो मे इनकी विविधता देखते ही बनती है।

शास्त्रों के अनुसार नृत्त-गणपति-मूर्ति अष्टभुजी बननी चाहिए। सात हाथों में पाश, अंकुश, मोदक, कुठार, दन्त, वलय तथा अंगुलीय हों और शेष एक हाथ उन्मुक्त लटक कर विविध नृत्य-मुद्राओं के प्रदर्शन मे सहायक हो।[८] खजुराहो मे कुछ नृत्त-मूर्तियाँ अष्टभुजी अवश्य मिली है, किन्तु उनके हाथो के चित्रण मे इस निर्देश का पूर्ण पालन नही हुआ है। अष्टभुजी मूर्तियों के अतिरिक्त वहां द्विभुजी, चतुर्भुजी, दशभुजी, द्वादशभुजी और षोडशभुजी मूर्तियों की भी झांकी देखी जा सकती है।

---

१ प्र० सं० ३२
२ प्र० सं० २६, २७
३ प्र० सं० ३२
४ Ganguly, M., *Handbook to the Sculptures in the Museum of the Bangiya Sahitya Parishad*, p 82
५ प्र० सं० १०
६ मथुरा संग्रहालय में पूर्व गुप्तकालीन एक नृत्त-गणपति-मूर्ति (सं० १०४७) दर्शनीय है (*CBIMA*, p. 138)।
७ मथुरा-कला, पृ० ७४
८ *EHI*, I, I, p. 59.

द्विभुजी

खजुराहो में नृत्त-गणपति की स्वतन्त्र द्विभुजी मूर्ति नहीं उपलब्ध हुई है, किन्तु ऐसा चित्रण एक शिलापट्ट में देखने को मिलता है। इसमें वे वीरभद्र और सप्तमातृकाओं के साथ नृत्य करते प्रदर्शित हैं। उनके दाएँ हाथ मे पद्म है और उनका बायाँ हाथ कट्यवलम्बित है।[१]

चतुर्भुजी

इस प्रकार की चार मूर्तियाँ लेखक को उपलब्ध हुई हैं। पहली मूर्ति[२] मे गणेश नृत्य करने की मुद्रा में अतिभंग खड़े हैं (चित्र ११)। उनका पहला हाथ स्वदन्त से युक्त है और दूसरा परशु को लिए हुए दण्ड-हस्त-मुद्रा मे प्रदर्शित है। तीसरे हाथ का पदार्थ स्पष्ट नही है (सम्भवतः बिना फूल के कमलनाल) और चौथे हाथ में एक बड़ा मोदक है। सम्पूर्ण सूँड बाईं ओर मुडकर इसी मोदक को ग्रहण करती प्रदर्शित है। वे हार, यज्ञोपवीत, कंकण, कटिसूत्र और पैजनी धारण किए हैं और उनका मस्तक मोती की इकहरी लड़ी से अलंकृत है। वे शूर्पकर्ण और एकदन्त है। वाहन अथवा अन्य किसी पार्श्वचर का चित्रण नहीं है।

दूसरी मूर्ति[३] मे भी गणेश इसी प्रकार नृत्य-मुद्रा मे हैं और वे सर्प-यज्ञोपवीत तथा अन्य सामान्य आभूषणों से अलंकृत है। उनके पहले हाथ मे परशु है। दूसरा हाथ दण्ड-हस्त-मुद्रा मे प्रदर्शित है। तीसरे मे मोदक-पात्र है और चौथा कट्यवलम्बित है। अन्य विशेषताएँ पूर्ववत् है।

नृत्त-गणपति की तीसरी चतुर्भुजी मूर्ति[४] कुछ विशिष्टताओं के कारण विशेष दर्शनीय है। इसमें देवता की नृत्य-मुद्रा बड़ी प्रभावशाली है और उनके चार हाथों का चित्रण भी उपर्युक्त मूर्तियों से भिन्न है। वे मोदक-पात्र चौथे के स्थान पर पहले हाथ मे लिए है और चौथा हाथ कट्यवलम्बित है। दूसरे और तीसरे हाथों से एक नाग पकड़ कर उन्होने अपने सिर के ऊपर उसका घटाटोप-सा बना लिया है। अन्य मूर्तियो के विपरीत इस मूर्ति में सम्पूर्ण सूँड दाईं ओर मुड़कर दाएँ हाथ के मोदक-पात्र के ऊपर है और बाईं ओर का दाँत पूरा निकला प्रदर्शित है (दाईं ओर का दाँत मूलतः टूटा चित्रित किया गया है)। इसमे देवता का वाहन मूषक भी दाएँ पैर के पास चित्रित है। गणेश हार, ग्रैवेयक कौस्तुभमणि, कंकण, मेखला, पैजनी धारण किए है और उनका मस्तक मोती की दोहरी लड़ियो से अलंकृत है।

नृत्त-गणपति की चौथी चतुर्भुजी मूर्ति[५] के तीन हाथ टूटे है और चौथा मोदक-पात्र-युक्त है। शुंड बाईं ओर मुड कर इसी पात्र के ऊपर है: इसमे गणेश सर्प-यज्ञोपवीत धारण किए हैं और अन्य सामान्य आभूषणों से अलंकृत है। उपर्युक्त मूर्तियों के विपरीत इसमे कुछ अतिरिक्त चित्रण भी है। देवता के दाएँ पार्श्व मे मृदंग और वंशी बजाते दो अनुचरों की छोटी आकृतियाँ अंकित है। देवता के बाईं ओर का पादपीठ खण्डित है, इस ओर भी कुछ वाद्ययन्त्रों को बजाते हुए अनुचर उत्कीर्ण रहे होंगे। मूर्ति की प्रभावली मे अंकित गणेश की पत्नियों, श्री और भारती,

---

१ प्र० सं० ४०
२ प्र० सं० २
३ प्र० सं० ३४
४ प्र० सं० १७
५ प्र० सं० ३०

के चित्रण विशेष दर्शनीय हैं : प्रभावली के ऊपरी एक कोने में पद्मधारिणी श्री (लक्ष्मी) और दूसरे कोने में वीणाधारिणी भारती (सरस्वती) ललितासन-मुद्रा में बैठी हैं।

अष्टभुजी

खजुराहो में इस प्रकार की पाँच मूर्तियाँ लेखक को उपलब्ध हुई हैं, जिनमें सर्वप्रथम जिस सुन्दर मूर्ति का विवरण दिया जा रहा है वह खजुराहो की गणपति-मूर्तियों में विशालतम है।[1] इसमें गणेश नृत्य-मुद्रा में अतिभंग प्रदर्शित हैं (चित्र १३)। वे हार, कंकण, केयूर, कटिसूत्र, पैजनी तथा कौस्तुभमणि से अलंकृत हैं। मस्तक पर मोती की इकहरी लड़ी का सुन्दर अलंकरण है और शरीर के मध्य ढीला सर्प-यज्ञोपवीत पड़ा है। वे शूर्पकर्ण और एकदन्त (दाईं ओर का प्रदर्शित) हैं। उनके पहले हाथ मे धारण किया हुआ पदार्थ स्पष्ट नहीं है। दूसरे में वे परशु लिए हैं और तीसरा गज गज-हस्त अथवा दण्ड-हस्त मुद्रा में प्रदर्शित है। चौथे और पाँचवें हाथों से एक नाग पकड कर उसे वे अपने सिर के ऊपर उठाए हैं। छठवें हाथ मे दन्त और सातवे मे मोदक-पात्र है और आठवाँ कटिहस्त है।[2] उनकी सम्पूर्ण सूँड़ बाईं ओर मुड़कर मोदक-पात्र को स्पर्श करने की मुद्रा मे है। मूर्ति पैरो से टूट गई है और पादपीठ पृथक् रखा है। इस पादपीठ पर एक ओर रखी दो मृदगो को बजाता हुआ एक पार्श्वचर बैठा चित्रित है और दूसरी ओर एक खडे हुए अनुचर की प्रतिमा है, जो दोनो हाथों से एक मृदग बजाने में तल्लीन प्रतीत होता है। इसी ओर देवता का वाहन मूषक नृत्य-मुद्रा में दो पैरों के बल खड़ा प्रदर्शित है।

नृत्त-गणपति की दूसरी अष्टभुजी मूर्ति भी दर्शनीय है।[3] इसमें गणेश सिर पर छोटा-सा जटा-मुकुट, गले मे हार और ग्रैवेयक, हाथो मे कंकण और अगद, वक्ष में कौस्तुभमणि, पैरों मे पैंजनी और कटि मे मेखला धारण किए है। वे सर्प का नहीं, मोती की लड़ियों का यज्ञोपवीत पहने हैं और शूर्पकर्ण तथा एकदन्त हैं। वे पहले हाथ में दन्त, दूसरे में एक वस्त्र (?), तीसरे में कुण्डलित कमलनाल, चौथे में परशु और पाँचवे मे सर्प धारण किए हैं। उनका छठा हाथ टूटा, सातवाँ कटि के पास नृत्य-मुद्रा मे और आठवाँ कट्यवलम्बित है। उनकी सम्पूर्ण सूँड़ बाईं ओर मुडी है, किन्तु उसका अग्रभाग टूटा है। छठे टूटे हाथ में मोदक अथवा मोदक-पात्र रहा होगा और यह सूँड़ उसी को स्पर्श करने की मुद्रा मे निर्मित है। मृदंग, करताल आदि वाद्ययन्त्रों को बजाते हुए प्रत्येक पार्श्व मे दो-दो अनुचरो की छोटी प्रतिमाएँ भी अंकित है। गणेश के सिर के पीछे शिरश्चक्र है, जिसके दोनों ओर विद्याधरो का एक-एक युगल अंकित है। प्रभावली के दोनों ऊपरी कोनो पर खडी हुई एक-एक देवी चित्रित हैं। ये दोनों वीणाधारिणी हैं। सम्भवतः गणेश की पत्नी भारती (सरस्वती) के ही ये दो चित्रण हैं। भारती की दो प्रतिमाओं के स्थान पर एक प्रतिमा श्री (लक्ष्मी) की और एक भारती की होनी चाहिए।

तीसरी नृत्य-मूर्ति भी सुन्दर है (चित्र १२)।[4] इसमें गणेश दूसरी मूर्ति के समान ही अलंकृत हैं, किन्तु सिर के मध्य का जटा-मुकुट और मस्तक पर किया गया मोती की लड़ियों का

---

१ प्र० सं० १८

२ डॉ० ऊर्मिला अग्रवाल द्वारा छः हाथों का ही अवलोकन हो सका है, *Khajurāho Sculptures and their Significance*, p. 85, Fig. 63.

३ प्र० सं० ५

४ प्र० सं० १९

सुन्दर अलंकरण विशेष दर्शनीय है। यहाँ वे सर्प-यज्ञोपवीत भी धारण किये है। उनका तीसरा हाथ गज-हस्त अथवा दण्ड-हस्त मुद्रा में है और शेष तीन दाएँ हाथ खण्डित हैं। पाँचवे हाथ मे नाग की पूँछ है (इस नाग का अग्रभाग चौथे हाथ में रहा होगा) और छठा भग्न है। सातवें में मोदक-पात्र है और आठवाँ कट्यवलम्बित है। उनकी सम्पूर्ण सूँड अन्य प्रतिमाओं के समान ही बाईं ओर मुड़कर मोदक-पात्र से एक मोदक को ग्रहण करती प्रदर्शित है। उनके वाएँ पार्श्व मे बैठा एक अनुचर दो मृदंगों को बजाता निर्मित है और दाएँ पार्श्व मे एक भक्त अजलि-मुद्रा मे हाथ जोड़े बैठा है। उनके चरणो के नीचे वाहन मूषक चुपचाप बैठा अकित है। गणेश शूर्पकर्ण है और उनका दाईं ओर का प्रदर्शित दाँत अब टूट गया है।

चौथी अष्टभुजी नृत्य-मूर्ति बडी सुन्दर है।[1] इसमे शौर्य के साथ नृत्य करते गणेश की अतिभग-मुद्रा के चित्रण मे शिल्पी को बडी सफलता मिली है। सामान्यत. यह अन्य नृत्य-मूर्तियो के सदृश है, किन्तु इसमे देवता न तो सर्प-यज्ञोपवीत धारण किए है और न ही उनके साथ किसी पार्श्वचर का चित्रण हुआ है। इसमे उनके आठो हाथ सुरक्षित है पहले मे कुठार है, दूसरा व्याख्यान-मुद्रा में और तीसरा गज-हस्त अथवा दण्ड-हस्त मुद्रा मे प्रदर्शित है। चौथे और पाँचवे हाथो से वे एक नाग पकड़े है (जिसका मध्य भाग टूट गया है)। छठवे मे दन्त, सातवे मे मोदक-पात्र और आठवे मे वे नीचे लटकता एक वस्त्र धारण किए है। वाहन मूषक इसी वस्त्र के माध्यम से ऊपर चढने का प्रयास करता प्रदर्शित है। अन्य सब विशेषताएँ तीसरी मूर्ति के समान हैं।

पाँचवी अष्टभुजी मूर्ति[2] उपर्युक्त मूर्तियो के सदृश है, किन्तु इसमे दाईं ओर के दो हाथो को छोडकर शेष सब हाथ टूटे है। इन दो हाथो मे एक दण्ड-हस्त-मुद्रा मे और दूसरा पद्मधारी है। साथ मे मृदंग बजाता हुआ बैठा एक पार्श्वचर और वाहन मूषक भी अकित है।

नृत्त-गणपति की अष्टभुजी मूर्तियाँ अन्य स्थानो मे भी पाई गई है। उड़ीसा की एक ऐसी सुन्दर मूर्ति द्रष्टव्य है। खजुराहो की कुछ मूर्तियों के समान इसमे भी गणेश का एक हाथ गज-हस्त अथवा दण्ड-हस्त मुद्रा मे प्रदर्शित है और ऊपर की ओर उठे दो हाथो मे वे एक नाग पकड़े हैं (नाग का बीच का भाग टूट गया है और उसका आगे का थोड़ा-सा भाग अब दाएँ हाथ मे और पूँछ की ओर का कुछ अश बाएँ हाथ मे शेष रह गया है, डॉ० बनर्जी नाग के इन अवशिष्ट अंशों का अभिज्ञान नही कर सके हैं)। अन्य हाथो मे वे स्वदन्त, अक्षमाला तथा मोदक-पात्र धारण किए है और उनके शेष हाथ टूटे है।[3] हलेबिद के होयसलेश्वर मन्दिर की बहुत ही अलंकृत अष्टभुजी नृत्य-मूर्ति विशेष दर्शनीय है। इसका भी एक हाथ दण्ड-हस्त और दूसरा विस्मय-हस्त मुद्रा मे है और अन्य हाथों में प्रतिमा परशु, पाश, मोदक-पात्र, दन्त, सर्प तथा पद्म धारण किए है। करण्ड-मुकुट तथा अन्य अनेक आभूषणों से यह अत्यधिक अलकृत है और इसकी सम्पूर्ण सूँड़ खजुराहो की एक प्रतिमा के सदृश दाईं ओर मुड़ी प्रदर्शित है। साथ मे अंकित वाद्ययन्त्रों को बजाते पार्श्वचर, मोदक खाने मे व्यस्त मूषक तथा अजलि-मुद्रा मे हाथ जोड़ कर

---

१ प्र० सं० ३
२ प्र० सं० १२
३ *DHI*, pp. 360-61, Pl. XV, Fig. 2

बैठे भक्त दर्शनीय हैं।[१] ऐसी अलकृत एक भी मूर्ति खजुराहो में नहीं उपलब्ध है। बंगाल की एक अष्टभुजी नृत्य-मूर्ति भी दर्शनीय है।[२]

दशभुजी

खजुराहो में नृत्त-गणपति की तीन दशभुजी मूर्तियाँ भी लेखक को मिली हैं, जिनमें एक मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है।[३] इसमें गणेश नृत्य-मुद्रा में खड़े है। वे करण्ड-मुकुट सर्प-यज्ञोपवीत तथा अन्य सामान्य आभूषणो से अलंकृत है। उनकी सूँड़ तथा दो दाएँ हाथ (पहले और दूसरे) टूट गए हैं। शेष आठ हाथों का चित्रण इस प्रकार है : तीसरा तर्जनी-हस्त-मुद्रा में और चौथा दन्त-युक्त है। पाँचवे और छठवें हाथो से पकडे एक नाग को वे सिर के ऊपर उठाए है (नाग का मध्य भाग टूटा है)। सातवाँ हाथ अभय-मुद्रा में है। आठवाँ हाथ पद्मधारी है। नवें और दसवें हाथ नीचे की ओर लटके है और उनकी अँगुलियाँ नृत्य-मुद्रा में है। देवता के दाएँ-बाएँ पार्श्वों मे मृदंग, करताल, वशी आदि वाद्ययन्त्रो को बजाते अनुचर चित्रित है। देवता के दोनों पैरों के बीच वाहन मूषक अपने आगे के दोनों पैर उठाकर अपने स्वामी के साथ नृत्य करने मे तल्लीन है। पादपीठ के दाएँ-बाएँ कोनो पर एक-एक पुष्पमालाधारिणी खड़ी चित्रित हैं। देवता के सिर के पीछे शिरश्चक्र है और प्रभावली के ऊपरी एक कोने मे उनकी एक पत्नी श्री (लक्ष्मी) ललितासन मे बैठी उत्कीर्ण हैं। उनका पहला हाथ अभय-मुद्रा मे है और शेष तीन हाथो में वे कमलनाल, पुस्तक और अमृतघट धारण किए है। दूसरे कोने मे भी इसी प्रकार की देवी अंकित हैं, जो उनकी दूसरी पत्नी भारती हो सकती है, यद्यपि वे यहाँ वीणाधारिणी नही है।

दूसरी दशभुजी मूर्ति[४] पहली के सदृश है, किन्तु यह बहुत खण्डित है। इसकी प्रभावली मे अकित भारती वीणाधारिणी है और श्री पद्म तथा अमृतघट लिए हैं। दोनो खडी नही वरन् ललितासन में बैठी अकित है। प्रभावली के केन्द्र मे विद्याधरों का एक युगल भी चित्रित है। तीसरी प्रतिमा[५] भी इसी प्रकार की है, किन्तु यहाँ वशी और मृदग बजाने मे तल्लीन दो पार्श्वचर और नृत्य करता हुआ वाहन मूषक भी प्रदर्शित है। दो हाथों को छोड़कर इसके शेष सब हाथ टूटे है। सुरक्षित दोनो हाथो मे एक-एक वस्त्र है।

द्वादशभुजी

खजुराहो मे नृत्त-गणपति की द्वादशभुजी चार मूर्तियाँ लेखक को मिली है, जिनमे एक मूर्ति विशेष दर्शनीय है।[६] इसमें गणेश आकर्षक नृत्य-मुद्रा मे अतिभंग खड़े है। उनके सिर पर छोटा-सा जटा-मुकुट है और मस्तक मोती की इकहरी लडी से अलंकृत है। सर्प-यज्ञोपवीत के स्थान पर वे अजिनोपवीत धारण किए हैं और अन्य सामान्य आभूषणों से आभूषित हैं। उनके सब हाथ खण्डित हैं। मृदंग, वशी आदि वाद्ययन्त्रो को बजाते हुए उनके दोनों पार्श्वों में दो-दो अनुचरो के चित्रण हैं। गणेश के सिर के पीछे शिरश्चक्र है, जिसके ऊपर पुष्पमाला लिए विद्याधरों

---

१ *EIII*, I, I, pp. 66-67, Pl. XVI.
२ Ganguly, M., *op. cit.*, pp. 81-82.
३ प्र० सं० ३३
४ प्र० सं० ३८
५ प्र० सं० २४
६ प्र० सं० २५

के दो युगल (एक-दूसरे की ओर मुख किए) अंकित हैं। प्रभावली में, ऊपर एक कोने में (गणेश के दाईं ओर) श्री (लक्ष्मी) ललितासन में बैठी चित्रित है। उनका पहला हाथ अभय-मुद्रा में है और दूसरा टूटा है। तीसरे में वे पद्म और चौथे मे अमृतघट धारण किए है। दूसरे कोने में (गणेश के बाईं ओर) वीणाधारिणी द्विभुजी सरस्वती भी ललितासन मे बैठी चित्रित है। यहाँ पर गणेश की इन दोनों पत्नियों के अकन दर्शनीय है। गणेश के कान शूर्प की भाँति फैले है और उनकी सूँड़ तथा दांत भग्न हैं। पादपीठ पर सबमे नीचे मोदक खाने में व्यस्त मूषक का चित्रण है। दूसरी मूर्ति[1] भी इसी के सदृश है, किन्तु इसका एक हाथ अब भी शेष है, जिसकी नृत्य-मुद्रा में प्रदर्शित अँगुलियाँ एक वस्त्र को पकड़े है। यहाँ मूषक मोदक खाने मे व्यस्त नहीं, वरन् नृत्य करने में तल्लीन है। इस प्रकार की तीसरी मूर्ति[2] के बारह हाथों मे छः हाथ शेष रह गए है, जिनमें दो दाएँ और चार बाएँ है। एक दाएँ हाथ से गणेश मोदक खाते प्रदर्शित है और दूसरे में वे अंकुश लिए हैं। बाईं ओर के एक हाथ मे सर्प, दूसरे मे फल, तीसरा नृत्य-मुद्रा मे और चौथा कटिहस्त है। चौथी द्वादशभुजी मूर्ति[3] के सब हाथ टूटे है। इसमे देवता के दोनों पार्श्वों मे एक-एक पद्मधारिणी देवी अंकित हैं, जो उनकी दो पत्नियों के अभिप्राय से बनाई गई प्रतीत होती हैं।

षोडशभुजी

खजुराहो मे नृत्त-गणपति की दो सोलह भुजाओं वाली मूर्तियाँ भी पाई गई है, किन्तु दोनों की अधिकाश भुजाएँ टूटी हैं। एक मूर्ति[4] मे गणेश अपने दो हाथ (एक बायाँ और दूसरा दायाँ) ऊपर उठाकर करताल बजाते प्रदर्शित है और एक हाथ नृत्य करने की मुद्रा मे है। शेष सब हाथ टूटे हैं। प्रभावली के ऊपरी दाएँ-बाएँ कोनों पर, ललितासना वीणाधारिणी सरस्वती की एक-एक प्रतिमा बनी है, जो देवता की दो पत्नियों के अभिप्राय से अंकित हुई हैं। ऐसी दूसरी मूर्ति[5] के दो हाथ छोड़ कर शेष सब हाथ टूटे है। एक अवशिष्ट हाथ कटि-हस्त और दूसरा दण्ड-हस्त मुद्रा मे है। इसमे मृदग, वशी आदि वाद्ययन्त्रों को बजाते हुए कुछ पार्श्वचरों तथा अंजलि में हाथ जोड़ कर बैठे दो भक्तों के भी अकन है। साथ मे चुपचाप बैठा मूषक भी दर्शनीय है।

खजुराहो मे गणपति की इन विभिन्न नृत्य-मूर्तियों की छटा देखते ही बनती है। उनके निर्माण में खजुराहो-कला निखर उठी है और वहा का शिल्पी, उनके अतिभग शरीर, पैरों की मुद्राओं और अनेक हाथों के गतिशील विन्यास द्वारा, नृत्य की आवर्तित गति के चित्रण में अत्यधिक सफल हुआ है। मृदग, करताल, वशी आदि वाद्यों को बजाते पार्श्वचरों की नन्हीं प्रतिमाएँ संगीत-मिश्रित नृत्य का सजीव वातावरण उपस्थित करने मे बहुत सहायक हुई हैं। नृत्य और संगीत के इस वातावरण के अनुरूप ही वाहन मूषक का नृत्य करने मे तल्लीन-सा अंकन बड़ा स्वाभाविक बन पड़ा है। सभी प्रतिमाओं मे सजीवता है, गतिशीलता है, जड़ता नहीं।

---

१ प्र० सं० ३८
२ प्र० सं० १३
३ प्र० सं० २४
४ प्र० सं० १६
५ प्र० सं० ११

(घ) शक्ति-गणेश

गोपीनाथ राव ने शक्ति-गणेश के विभिन्न प्रकार, जैसे लक्ष्मी-गणपति, उच्छिष्ट-गणपति, महा-गणपति, ऊर्ध्व-गणपति और पिंगल-गणपति, की मूर्तियों के विवरण संकलित किए हैं,[१] किन्तु खजुराहो में उपलब्ध शक्ति-गणेश की तीनों प्रतिमाएँ इनमें से किसी विवरण के अनुसार नहीं निर्मित हुई हैं। वहाँ की दो मूर्तियों में गणेश अपनी शक्ति (विघ्नेश्वरी अथवा लक्ष्मी) के साथ आलिंगन-मुद्रा में बैठे हैं। उनकी ये आलिंगन-मूर्तियाँ खजुराहो की लक्ष्मी-नारायण, उमा-महेश्वर आदि आलिंगन-मूर्तियों के सदृश है और वे उपर्युक्त शक्ति-गणपति के किसी भी वर्ग के अन्तर्गत नहीं आती। इन दो मूर्तियों मे एक मूर्ति[२] तो बड़ी सुन्दर है (चित्र १५)। इसमें गणेश एक पीठ पर ललितासन मे बैठे हैं और उनकी बाई गोद मे देवी आसीन हैं, जिनका बायाँ पैर टूटा है। गणेश हार, कंकण, कौस्तुभमणि, कटिसूत्र, पैंजनी तथा सर्प-यज्ञोपवीत धारण किए है। मस्तक पर मोती की इकहरी लड़ी का अलंकरण है। देवी भी हार, ग्रैवेयक, कौस्तुभमणि, कटिसूत्र और केयूरों से अलंकृत है। गणेश चतुर्भुज है। वे पहले हाथ में मोदक-पात्र और दूसरे मे परशु धारण किए है। उनका तीसरा हाथ टूटा है और चौथा देवी को आलिंगनपाश में भरता हुआ उनके वाम सुवर्तुल पीन पयोधर को स्पर्श करता प्रदर्शित है। देवी द्विभुजी है। उनका बायाँ हाथ टूटा है और दायाँ गणपति को आलिंगन करता हुआ उनके दाएँ स्कन्ध के पीछे है। देवता शूर्पकर्ण और एकदन्त है। यहाँ यह दर्शनीय है कि उनकी सम्पूर्ण सूँड दाई ओर मुड़कर दाएँ हाथ के मोदक-पात्र के ऊपर है। दूसरी मूर्ति[३] में भी गणेश-विघ्नेश्वरी का लगभग ऐसा ही चित्रण है, किन्तु इसमें गणेश के दोनों दाएँ हाथ टूटे है और उनका बायाँ एक हाथ अंकुशधारी है और दूसरा देवी को आलिंगन करता प्रदर्शित है। देवी अपने बाएँ हाथ से अपने स्वामी की सूँड के अग्रभाग को स्पर्श करती चित्रित है और उनका दायाँ हाथ स्वामी को आलिंगन-सा करता अस्पष्ट है। इसमें गणेश का वाहन मूषक भी चित्रित हुआ है। इन्हीं मूर्तियों के सदृश निर्मित बुन्देलखण्ड की एक अन्य मूर्ति भी दृष्टव्य है।[४] शक्ति-गणेश का तीसरा चित्रण[५] छोटा होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमे गणेश और उनकी पत्नी की आलिंगन-मुद्रा का अभाव है। चतुर्भुज देवता अर्ध-पर्यंकासन मे बैठे है, जिनके पहले तीन हाथों में पद्म और चौथे मे मोदक-पात्र है। उनकी सूँड सीधी लटक रही है, सामान्य ढंग से बाई ओर मुड़ी नहीं। गणेश-प्रतिमा के पार्श्व मे उतनी ही बड़ी, उसी मुद्रा में, उनकी पत्नी लक्ष्मी की पृथक् प्रतिमा अंकित है। देवी का दायाँ हाथ अभय-मुद्रा मे और बायाँ अमृतघट-युक्त है। इस प्रकार शक्ति-गणेश का यह चित्रण उपर्युक्त दो मूर्तियों से भिन्न है।

कुछ शास्त्रों में गणेश अपनी एक पत्नी विघ्नेश्वरी[६] अथवा लक्ष्मी[७] के साथ और कुछ में

---

१ *EHI*, I, I, pp. 53–57.
२ प्र० सं० ३०
३ प्र० सं० १६
४ Getty, *op. cit.*, Pl. 4, Fig. a.
५ प्र० सं० ७
६ *EHI*, I, I, p. 55.
७ *Ibid.*, I, I, p. 53, I, II, Appendix C, p. 3.

दो पत्नियों, ऋद्धि और बुद्धि,[१] श्री (लक्ष्मी) और भारती[२] (सरस्वती का ही दूसरा नाम) आदि के साथ वर्णित हैं। गणेश और विघ्नेश्वरी (अथवा लक्ष्मी) की उपर्युक्त तीन मूर्तियों के अतिरिक्त खजुराहो में नृत्त-गणपति-मूर्तियों की प्रभावली मे उनकी पत्नियों की दो छोटी प्रतिमाओं के भी अंकन मिलते हैं, जिनका उल्लेख नृत्य-मूर्तियों के साथ किया जा चुका है। ऐसी तीन मूर्तियो[३] मे एक श्री और एक भारती की प्रतिमा, दो मूर्तियो[४] मे दोनो श्री की और अन्य दो[५] मूर्तियो मे दोनों भारती की प्रतिमाएँ अंकित हैं।

शिवपुराण मे गणेश की दो पत्नियों के नाम सिद्धि और बुद्धि मिलते है। उनके साथ गणेश का विवाह जिस परिस्थिति मे हुआ था, उसका भी रोचक वृत्तान्त मिलता है। जब स्कन्द और गणेश विवाह-योग्य हुए तो पार्वती और शिव ने इस प्रश्न पर विचार-विमर्श किया कि उनमे किसका विवाह पहले किया जाए। यह निश्चय हुआ कि जो पहले पृथ्वी की परिक्रमा कर आए, उसका विवाह पहले हो। स्कन्द शीघ्र ही अपने वाहन मोर को तैयार कर प्रदक्षिणा के लिए चल पड़े। उनके जाते ही गणेश ने अपने माता-पिता की सात बार प्रदक्षिणा की और एक वैदिक पाठ द्वारा उन्हे इस बात का प्रमाण दे दिया कि यदि कोई पुत्र अपने माता-पिता की सात बार प्रदक्षिणा कर ले तो उसे पृथ्वी-परिक्रमा का फल होता है। गणेश की बुद्धि से शिव-पार्वती बड़े प्रसन्न हुए और सिद्धि और बुद्धि नामक दो सुन्दर कुमारियों से उनका विवाह कर दिया। बुद्धि से क्षेम और सिद्धि से लाभ (अथवा सिद्धि से लक्ष्य और बुद्धि से लाभ) नामक उनके पुत्र हुए। इस सबकी समाप्ति पर स्कन्द पृथ्वी की परिक्रमा पूरी कर लौटे और अपने माता-पिता से अपना पुरस्कार माँगा। उन्हे जब सारे वृत्तान्त का पता चला तो वे बड़े हताश हुए और अखण्ड ब्रह्मचर्य का व्रत ले क्रौंचगिरि तप करने चले गए।[६]

(ङ) अन्य चित्रण

गणपति की ऊपर वर्णित स्वतन्त्र मूर्तियों के अतिरिक्त, खजुराहो मे उनके कुछ चित्रण अन्य रूपों मे भी मिलते है, जैसे सप्तमातृकाओं के साथ नृत्य करने, उमा-महेश्वर की आलिंगन-मूर्तियो की प्रभावली मे विराजमान और पार्वती द्वारा धारण किए गए पद्म के मध्य आसीन। सप्तमातृकाओं वाले शिला-पट्टों मे प्रारम्भ मे वीरभद्र, फिर सप्तमातृकाएँ और अन्त मे गणेश—सभी एक पंक्ति मे अंकित हुए हैं। ऐसे एक पट्ट मे वीरभद्र और मातृकाएँ तो नृत्य करती प्रदर्शित हुई हैं, किन्तु पंक्ति के अन्त मे गणेश नृत्य करते नही वरन् चुपचाप खड़े है[७] (चित्र १४)। वीरभद्र और मातृकाओं के समान वे भी द्विभुज है। बाएँ हाथ मे मोदक-पात्र लेकर उसे वे अपने पेट के सामने किए हैं और सूंड सीधी लटककर इसी मोदक-पात्र के ऊपर है। उनके दाएँ हाथ का पदार्थ स्पष्ट नहीं है। ऐसे दूसरे पट्ट[८] मे गणेश, वीरभद्र और मातृकाओ के पैर आगे बैठे नवग्रहों के

१ ग० पु०, २१०, ११
२ *EHI*, I, II, Appendix, C, p 3
३ प्र० सं० २८, ३०, ३८
४ प्र० सं० २१, ३३
५ प्र० सं० ५, १६
६ गणेश, पृ० ११; *EHI*, I, I, pp 61-62.
७ प्र० सं० ३२
८ प्र० सं० ३१

कारण छिपे हैं (चित्र ८४)। तीसरे पट्ट में द्विभुज गणेश वीरभद्र और मातृकाओं के साथ नृत्य करते प्रदर्शित हैं। उनका दायाँ हाथ दन्त-युक्त और बायाँ कट्यवलम्बित है।[१] सप्तमातृकाओं के साथ नृत्य करते गणपति की एक चतुर्भुजी प्रतिमा भी है। उनके पहले हाथ मे कुठार, दूसरा दण्ड-हस्त-मुद्रा में, तीसरे में दन्त और चौथे मे मोदक-पात्र है। सम्पूर्ण सूँड बाईं ओर मुड़कर इसी पात्र के ऊपर है।[२]

पार्वती की प्रतिमाओं में उनके पुत्र गणेश का चित्रण होना नितान्त स्वाभाविक है। खजुराहो की कुछ पार्वती-मूर्तियो की प्रभावली के एक कोने में कार्तिकेय की और दूसरे कोने में गणेश की छोटी प्रतिमा[३] उत्कीर्ण देखी जा सकती है। कुछ मूर्तियो में पार्वती ऊपर के दो हाथो (एक दाएँ और दूसरे बाएँ) में पूर्ण विकसित सनाल पद्म धारण किए है और कभी-कभी ऐसे एक पद्म मे गणेश[४] और दूसरे में कार्तिकेय की नन्ही-सी आकृति का अंकन हुआ है। खजुराहो में उपलब्ध उमा-महेश्वर की अनेक आलिंगन-मूर्तियों मे भी कही न कही गणेश[५] और कार्तिकेय अवश्य अंकित मिलते हैं।

सामान्य विशेषताएँ

खजुराहो मे उपलब्ध उपर्युक्त गणेश-मूर्तियों की निम्नलिखित कुछ सामान्य विशेषताएँ उल्लेखनीय है :

शूर्पकर्ण

अन्य स्थानो मे प्राप्त गणपति-मूर्तियों के सदृश ही खजुराहो-मूर्तियों में सामान्यतः गणेश के दोनों कान शूर्प की भाँति फैले निर्मित हुए है। गणेश-मूर्तियों की प्राचीनतम विशेषताओं में यह एक है और गुप्त-पूर्व-कालीन मूर्तियो तक मे यह विशेषता दर्शनीय है।[६] शास्त्रों द्वारा भी गणेश को 'विस्तृत कर्ण' निर्मित करने का निर्देश हुआ है। शूर्प जैसे उनके कान होने के कारण ही उनका नाम शूर्पकर्ण पड़ गया। उनके इस नाम की कथा इस प्रकार मिलती है : एक समय ऋषियों ने अग्नि को बुझकर लुप्त हो जाने का शाप दिया। फलत. अग्नि नितान्त शक्तिहीन हो गए। गणेश को उन पर दया आ गई और उन्होंने शूर्प की भाँति अपने कानों को हिलाकर हवा की और अग्नि को पुनर्जीवित कर दिया। तब से वे शूर्पकर्ण हो गए।[७]

एकदन्त

गणेश-मूर्तियों के प्रादुर्भाव के समय मे ही उनमें एक ही दांत बनता आया है।[८] साहित्य में उपलब्ध उनके प्राचीनतम विवरणों में भी उनकी इस विशेषता का उल्लेख हुआ है और इसीलिए वे

१ प्र० सं० ४०
२ प्र० सं० ४३
३ प्र० सं० ४५, ४६, ४७
४ प्र० सं० ४४, ४८, ४९
५ प्र० सं० ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५ आदि।
६ द्र० मथुरा-कला, पृ० ७४
७ *EHI*, I. 1, p. 60.
८ द्र० गुप्त-पूर्व-कालीन मूर्तियाँ, मथुरा-कला, पृ० ७४

एकदन्त नाम से विख्यात हुए हैं ।[1] उनके एकदन्त होने की कथा ब्रह्माण्डपुराण में इस प्रकार मिलती है : एक समय शिव के परशु से क्षत्रियों का संहार करके परशुराम शिव के दर्शनार्थ कैलास आए। वहाँ द्वार पर गणेश ने उन्हें रोक दिया और उनको बताया कि शिव-पार्वती वार्तालाप कर रहे हैं और किसी को प्रवेश करने की अनुमति नहीं है। गणेश की इस बात की ओर बिना कोई ध्यान दिए परशुराम ने अन्दर प्रवेश करने का प्रयास किया। इस पर गणेश से उनका झगड़ा हो गया। क्रुद्ध परशुराम ने अपने परशु से गणेश पर प्रहार किया, जिससे उनका बायाँ दाँत टूट गया और तब से वे एकदन्त हो गए।[2] इसीलिए शास्त्रों द्वारा उनकी मूर्ति मे बाएँ दाँत के न चित्रित किए जाने का निर्देश हुआ है।[3] इस निर्देशानुसार गणेश-मूर्तियों मे सामान्यतः दाईं ओर का एक ही दाँत बनाया जाता है। खजुराहो-शिल्पियों ने भी सामान्यतः इस निर्देश का पालन किया है और उन्होने गणेश-मूर्तियों में दाईं ओर का एक ही दाँत सम्पूर्ण निकला प्रदर्शित किया है, किन्तु साथ ही बाईं ओर के दाँत के भग्न-प्रदर्शन के अभिप्राय से उसका थोड़ा-सा अंश भी चित्रित कर दिया है। उपर्युक्त निर्देश के विपरीत भी अनेक मूर्तियाँ भारत में मिलती है, जिनमें दाईं ओर की अपेक्षा बाईं ओर का दाँत चित्रित हुआ है। खजुराहो में भी ऐसी एक प्रतिमा उपलब्ध है।[4]

लम्बोदर

गणेश के लम्बोदर होने की विशिष्टता उतनी ही पुरानी है, जितनी एकदन्त होने की। अन्य स्थानों से प्राप्त गणेश-मूर्तियों के समान खजुराहो की मूर्तियों में भी गणेश की यह विशेषता देखी जा सकती है। गणेश त्रिभुवन के स्वामी शिव के आकाशी तत्त्व है। सम्भवत इसीलिए बृहत् आकाश के प्रतिनिधि-स्वरूप गणेश का उदर बहुत बड़ा बनाया गया है, जिसमे आकाश-सागर में तैरते हुए विभिन्न प्राणियों के प्रतीक सहस्रों मोदक समा सके। किन्तु पद्मपुराण में मोदक महाबुद्धि का प्रतीक माना गया है।[5]

गजानन एवं वक्रतुण्ड

गजानन होना गणेश की पहली विशेषता है और गजमुख बिना उनकी कल्पना ही नही हो सकती। गणेश की दूसरी विशेषता उनकी वक्रतुण्ड है। अधिकांश मूर्तियों मे उनकी तुण्ड बाईं ओर मुड़ी चित्रित होती है और उसके दाईं ओर मुड़े प्रदर्शन बहुत कम मिलते है।[6] खजुराहो-मूर्तियों में सामान्यत. सम्पूर्ण शुण्ड बाईं ओर मुड़कर देवता के बाएँ हाथ के मोदक अथवा मोदक-पात्र को स्पर्श करने की मुद्रा मे प्रदर्शित है। किन्तु वहाँ की कुछ मूर्तियों[7] मे शुण्ड दाईं ओर मुड़ी और कुछ में[8] सीधी लटकी भी (चित्र ६) चित्रित है।

---

१ बृहत्सं०, ५८, ५८; अमरकोश, १, १, ३८

२ गणेश, पृ० ८; *EHI*, I, I, pp. 60-61.

३ शि० शि० ७१, १४ : दन्तस्त्वास्य न कर्तव्यो वामे .... ।

४ प्र० सं० ३२

५ *EHI*, I, I, p. 61.

६ वही, पृ० ४८

७ प्र० सं० १०, २०, ३२

८ प्र० सं० ८, १०, २८, ३८

वाहन मूषक

कुछ शास्त्रों में गणपति के साथ उनके वाहन मूषक का भी उल्लेख हुआ है। खजुराहो की अधिकांश गणेश-मूर्तियों के पादपीठों पर मूषक चित्रित मिलता है। कुछ में वह चुप-चाप बैठा, कुछ में सामने रखे मोदक-पात्र से मोदक खाने मे व्यस्त और कुछ नृत्य-मूर्तियो मे अपने स्वामी के साथ नृत्य करने में तल्लीन प्रदर्शित हुआ है। खजुराहो में उपलब्ध अन्य देव-वाहनों, जैसे नन्दी, गरुड आदि, की स्वतन्त्र मूर्तियों के समान वहाँ गणेश के वाहन मूषक की भी एक स्वतन्त्र मूर्ति मिली है (चित्र १६)।[१] इसमें वह एक मोदक-पात्र के ऊपर अपने आगे के दो पैर और मुख रखकर मोदक खाने को उद्यत-सा प्रदर्शित है।

भुजाएँ, अलंकरण एवं पार्श्वचर

खजुराहो की गणेश-मूर्तियों में दो भुजाओं से लेकर सोलह भुजाएँ तक हैं। इनमें वे निम्न-लिखित लाञ्छनों में से कुछ धारण किए हैं : स्वदन्त, परशु, मोदक (अथवा कभी-कभी इक्षुखण्ड), मोदक-पात्र, नाग, अंकुश, फल, वस्त्र और पुष्प (कमल, कमलनाल अथवा अन्य कोई पुष्प) और कभी-कभी उनकी कुछ भुजाएँ निम्नलिखित मुद्राओं में भी निर्मित हैं : वरद, अभय, गज-हस्त अथवा दण्ड-हस्त, कटि-हस्त, तर्जनी-हस्त आदि। अन्य स्थानों की गणेश-मूर्तियों के विपरीत उनमे पाश और अक्षमाला के चित्रण नही हुए है। यद्यपि इन मूर्तियो के हाथों मे अधिकाशतः वही लाञ्छन है, जो शास्त्रो मे गणेश-प्रतिमाओ के लिए निर्धारित हुए है, किन्तु उनके हाथों की संख्या और उनमे लाञ्छनों के क्रमानुसार चित्रण मे खजुराहो-शिल्पी ने बहुत कुछ स्वच्छन्दता भी बरती है।

खजुराहो-गणेश का मस्तक इकहरी अथवा दोहरी मुक्ता-लड़ियो से अलंकृत है। उस पर कोई मुकुट नही है, फिर भी कुछ मूर्तियों के मस्तक पर छोटा-सा जटा-मुकुट[२] अथवा करण्ड-मुकुट[३] सुशोभित है। साधारणतः उनके द्वारा धारण किया गया यज्ञोपवीत सर्प का होता है, किन्तु कुछ मूर्तियां बिना सर्प-यज्ञोपवीत धारण किए मिलती हैं।[४] शेष आभूषण खजुराहो की अन्य देव-प्रतिमाओं के समान ही है।

कुछ नृत्य-मूर्तियो मे मृदंग, वंशी, करताल आदि वाद्ययन्त्रों को बजाते पार्श्वचरों का अकन[५] हुआ है और शेष मूर्तियो मे पार्श्वचरो का अभाव है। कुछ मूर्तियो मे अजलि-मुद्रा मे हाथ जोडे हुए एक-दो भक्त[६] और कुछ की प्रभावलियों में विद्याधरो के एक-दो युगल भी अंकित हैं।[७]

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि खजुराहो-शिल्पी ने जहाँ एक ओर गणेश-मूर्तियों के चित्रण मे अधिकांशत. शास्त्र-निर्दिष्ट लक्षणों तथा पूर्व-प्रचलित कला-परम्पराओं का पालन किया है, वहां दूसरी ओर वह अपनी मौलिक कलाभिव्यक्ति द्वारा गणेश-प्रतिमा-निर्माण की कुछ नूतन परम्पराओं और आदर्शों की स्थापना मे भी सक्षम हुआ है।

---

१ प्र० सं० २३
२ प्र० सं० ५, १६
३ प्र० सं० १४, ३३
४ प्र० सं० [illegible], ६, ८, २१
५ प्र० सं० ५, १६, २२, ३३ आदि।
६ प्र० सं० ७, ८, १४ आदि।
७ प्र० सं० ५, १६, ३८ आदि।

परिशिष्ट (अध्याय २)

गणपति-प्रतिमाओं के प्राप्ति-स्थान

प्र० सं०	प्राप्ति-स्थान
१	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, उत्तर, जघा।
२	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, पश्चिम, जघा की एक रथिका।
३	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, दक्षिण, जघा।
४	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पश्चिमी गौण मन्दिर, दक्षिण, जघा।
५	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पूर्व, प्रधान अधिष्ठान-रथिका।
६	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पूर्व, अधिष्ठान, छोटी रथिका।
७	जगदम्बी मन्दिर, दक्षिण-पश्चिम, अधिष्ठान, छोटी रथिका।
८	खजुराहो संग्रहालय, सं० ११२०
९	खजुराहो संग्रहालय, सं० ११११
१०	खजुराहो संग्रहालय, सं० ११३५
११	खजुराहो संग्रहालय, सं० ११०१
१२	खजुराहो संग्रहालय, सं० ११०५
१३	खजुराहो संग्रहालय, सं० ११२३
१४	खजुराहो संग्रहालय, सं० १५०३
१५	खजुराहो संग्रहालय, सं० १८३३ ए
१६	खजुराहो संग्रहालय, सं० १११८
१७	खजुराहो संग्रहालय, स० ११०८
१८	खजुराहो संग्रहालय, म० ११३४
१९	खजुराहो संग्रहालय, स० ११२२
२०	खजुराहो संग्रहालय, स० ११०७
२१	खजुराहो संग्रहालय, स० १११७
२२	खजुराहो संग्रहालय, सं० ११२६
२३	खजुराहो संग्रहालय, सं० १००२ (वाहन मूषक)।
२४	खजुराहो संग्रहालय, सं० ११०२
२५	मातंगेश्वर मन्दिर, सामने जगती पर स्थित।
२६	पार्वती मन्दिर, जगती, दक्षिण की ओर।
२७	दूलादेव मन्दिर, गर्भगृह-द्वार, उदुम्बर
२८	जवारी मन्दिर, गर्भगृह-द्वार, उदुम्बर।

प्र० सं०	प्राप्ति-स्थान
२९	कन्दरिया मन्दिर, दक्षिण-पूर्व, प्रधान अधिष्ठान-रथिका।
३०	कन्दरिया मन्दिर, जगती, दक्षिण की ओर।
३१	विश्वनाथ मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, गर्भगृह के भीतर, बाद मे प्रतिष्ठित।
३२	विश्वनाथ मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, जघा, दक्षिण।
३३	विश्वनाथ मन्दिर, दक्षिण-पूर्व, प्रधान अधिष्ठान-रथिका।
३४	विश्वनाथ मन्दिर, दक्षिण-पश्चिम, अधिष्ठान, छोटी रथिका।
३५	विश्वनाथ मन्दिर, अन्तर्भाग, महामण्डप, पूर्व की ओर छोटी रथिका।
३६	विश्वनाथ मन्दिर, गर्भगृह-द्वार, उदुम्बर।
३७	लक्ष्मण मन्दिर, अधिष्ठान, उत्तर की ओर छोटी रथिका।
३८	खजुराहो सग्रहालय, स० ११२९
३९	चित्रगुप्त मन्दिर, दक्षिण-पूर्व, अधिष्ठान की रूपपट्टिका, एक छोटी रथिका।

सप्तमातृकाओं के साथ चित्रित

४०	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पश्चिमी गौण मन्दिर, द्वार-उत्तरंग।
४१	खजुराहो सग्रहालय के प्रवेशद्वार का उत्तरग।
४२	खजुराहो सग्रहालय, स० ४५८
४३	दूलादेव मन्दिर, गर्भगृह-द्वार, उत्तरी शाखा।

पार्वती-मूर्तियों में अंकित

४४	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, पूर्व, जघा की रथिका।
४५	लक्ष्मण मन्दिर, अन्तर्भाग, अन्तराल, उत्तरी दीवार मे बनी एक रथिका।
४६	खजुराहो सग्रहालय, स० ९६७
४७	खजुराहो संग्रहालय, स० १०१५
४८	खजुराहो संग्रहालय, स० ९५९
४९	खजुराहो संग्रहालय, स० १००९

उमा-महेश्वर मूर्तियों में प्रदर्शित

५०	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पश्चिमी गौण मन्दिर, गर्भगृह के भीतर, बाद मे रखी गई।
५१	जगदम्बी मन्दिर, भीतर, महामण्डप, दक्षिणी दीवार की एक रथिका।
५२	चित्रगुप्त मन्दिर, बाह्य, गर्भगृह की पश्चिमी ऊर्ध्व भद्र-रथिका।
५३	खजुराहो सग्रहालय, सं० ४६७
५४	खजुराहो संग्रहालय, सं० ४६६
५५	खजुराहो संग्रहालय, सं० ४७९

विशेष : इनके अतिरिक्त खजुराहो संग्रहालय की अनेक उमा-महेश्वर मूर्तियाँ (सं० ४६९, ८७३, ४८४, ४९१, ५०५, ५१३ आदि) द्रष्टव्य हैं, जिनमें गणेश प्रदर्शित हैं।

उत्तर वैदिककाल मे विष्णु का महत्व धीरे-धीरे बढ़ गया। यह मुख्यतः यज्ञ के साथ उनकी तद्रूपता के कारण हुआ। शतपथ ब्राह्मण में कथा है कि यज्ञ-विष्णु सर्वप्रथम यज्ञ-फल को समझ गए और उसके द्वारा देवताओं के सिरमौर बन गए और उनका सिर उन्ही के धनुष द्वारा कट कर सूर्य बन गया। इस कथा मे तैत्तिरीय आरण्यक इतना और जोड़ देता है कि भिषज् अश्विनों ने यज्ञ के सिर को पुनः स्थापित किया और अब देवता पूर्ण रूप में यज्ञिय हविर्दान करके स्वर्ग के उपभोक्ता बने।[1] इतना होते हुए भी इस युग मे विष्णु किसी सम्प्रदाय के केन्द्र-बिन्दु नहीं बने और इसीलिए तब मूर्ति-निर्माण की आवश्यकता नही पडी।

महाकाव्यो और पुराणो के समय मे विष्णु परवर्ती हिन्दू देवत्रयी—ब्रह्मा, विष्णु और शिव, क्रमशः उत्पादक, रक्षक और सहारक—के सर्वाधिक महत्वपूर्ण देवता बन गए। किन्तु वे विष्णु, जो बाद में वैष्णव सम्प्रदाय के केन्द्रबिन्दु हुए, तीन देवो के समन्वय के परिणाम थे—ऐतिहासिक देवता वासुदेव-कृष्ण, वैदिक सौर देवता विष्णु और ब्राह्मण ग्रन्थों के जागतिक देवता नारायण। वस्तुतः भक्ति सम्प्रदाय, विकसित होने पर जिसे वैष्णव सम्प्रदाय कहा गया, के मूल में सात्वत नायक वासुदेव-कृष्ण थे। इस सम्प्रदाय के पूर्ववर्ती नाम थे—एकान्तिक, भागवत, पांचरात्र, सात्वत आदि।[2]

क्षत्रिय नायक वासुदेव-कृष्ण को उनके कुछ सम्बन्धियो—सकर्षण (उनके बड़े भाई), प्रद्युम्न (रुक्मिणी से उत्पन्न उनके सबसे बड़े पुत्र), साम्ब (जाम्बवती से उत्पन्न उनके पुत्र तथा अनिरुद्ध (प्रद्युम्न के पुत्र)—के साथ उनके भक्तो और प्रशंसकों द्वारा देवत्व प्रदान किया गया। पहले उन्हें वीर-देवों की पदवी मिली और वे वृष्णि-कुल के भगवान् पंचवीर कहे गए,[3] किन्तु कुछ समय पश्चात् धर्माचार्यो द्वारा इस पंचवीर सूची से साम्ब अलग कर दिए गए और वे अब मात्र चार रह गए, जो एक प्रधान देवता 'पर' वासुदेव के विभिन्न स्वरूप माने गए। सम्प्रदाय के आचार्यों को प्रधान इष्टदेव वासुदेव और उनके सम्बन्धियो से सम्बद्ध 'वीर' विचारधारा को इस 'व्यूह' धारणा मे परिवर्तित करने मे अधिक समय नही लगा और बाद में इसमे प्रधान इष्टदेव वासुदेव-सम्बन्धी विभववाद (अवतारवाद) को संयुक्त कर दिया गया। इन्ही वासुदेव की तद्रूपता ई० पू० मे किसी समय विष्णु और नारायण से स्थापित हुई।[4]

सम्प्रदाय के इस पुनर्व्यवस्थित सिद्धान्त के अनुसार एक भगवान् वासुदेव-विष्णु-नारायण

---

१ वही, पृ० ८४

२ *DHI*, p. 386.

३ द्र० Mora Well Inscription, *EI*, Vol. XXIV, pp. 194 ff. ; also Chanda, R. P., *MASI*, No. 5, pp. 166-67 ; *DHI*, pp. 93-94 ; मथुरा-कला, पृ० ५१-५३। इस लेख से पता चलता है कि महाक्षत्रप राजुल के पुत्र महाक्षत्रप स्वामी शोडास के राज्यकाल में मथुरा से सात मील दूर मोरा नामक गाँव में वृष्णि पंचवीरों के देवगृह और सम्भवतः उनकी प्रतिमाओं की भी स्थापना हुई थी। इस लेख में आए हुए वृष्णियों के पंचवीर कौन हैं, जिनकी पूजा होती थी? इस प्रश्न पर विचार करते हुए ल्यूडर्स ने जैन साहित्य के आधार पर यह सिद्ध किया है कि बलदेव, अक्रूर, अनाधृष्टि, सारण और विदूरथ ही वृष्णियों के पंचवीर थे। इस सूची में कृष्ण का नाम नहीं है और बलदेव का नाम पहला है। ल्यूडर्स की यह पहचान विद्वानों को मान्य नहीं है। वायुपुराण (९७, १-४) में इसका स्पष्ट उल्लेख है। वहाँ संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, साम्ब और अनिरुद्ध—ये पाँच वंशवीर (वृष्णिवीर) कहे गए हैं, अर्थात् जो मनुष्य होते हुए देवत्व को प्राप्त हुए। पंचवीरों की यह पहचान, जिसमें वासुदेव नाम भी सम्मिलित है, पांचरात्र भागवतों के व्यूह से साम्य रखती है। अतएव विद्वानों द्वारा यही मान्य है।

४ *DHI*, pp. 386-87.

विष्णु

का ध्यान पाँच रूपों में किया जा सका—'पर' (सर्वोच्च), 'व्यूह' (उद्भूत), 'विभव' (अवतीर्ण), 'अन्तर्यामिन्' (सभी प्राणियों के हृदय में स्थित) और 'अर्चा' (भगवान् की मूर्तियाँ, जिन्हें विग्रह कहा गया)।[1] भगवान् के अंतिम रूप (अर्चा) से प्रतिमा-विज्ञान का सीधा सम्बन्ध है। इसके द्वारा पहले तीन रूपों का चित्रण होता है। चौथा अथवा अन्तर्यामिन् रूप प्रतिमा-विज्ञान के क्षेत्र मे नहीं आता, क्योंकि इस रूप में भगवान् सभी जीवो के हृदय मे स्थित हैं।[2]

'पर' भगवान् के सर्वोच्च रूप का द्योतक है। पांचरात्रों के अनुसार परब्रह्म अद्वितीय, अनादि, अनन्त, दुःखरहित तथा निःसीम सुखानुभूति रूप है।[3] उसकी दैवी 'इच्छा' को उसकी शक्ति श्री-लक्ष्मी 'भूति' और 'क्रिया' के अपने द्वैध रूपों में ग्रहण करती है और इन तीन शक्तियो (इच्छाशक्ति, भूतिशक्ति तथा क्रियाशक्ति) के गूढ़ ससर्ग से ये छः गुण उत्पन्न होते हैं—ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य तथा तेज।[4] इन छः गुणों में से दो-दो गुणो की प्रधानता होने पर तीन व्यूहों की सृष्टि होती है, जिनके नाम हैं—संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। संकर्षण व्यूह में ज्ञान तथा बल गुणो का, प्रद्युम्न में ऐश्वर्य तथा वीर्य गुणों का और अनिरुद्ध में शक्ति तथा तेज गुणो का प्राधान्य रहता है। जगत् का सर्जन तथा शिक्षण इनका मुख्य कार्य है। संकर्षण का कार्य है जगत् की सृष्टि करना तथा एकांतिक मार्ग—पाचरात्र-सिद्धान्त—का उपदेश देना, प्रद्युम्न का कार्य है इस मार्ग के अनुसार क्रिया की शिक्षा देना, और अनिरुद्ध का कार्य है क्रिया के फल अर्थात् मोक्ष के रहस्य का शिक्षण। वासुदेव को मिलाकर इन्हे 'चतुर्व्यूह' (चतुर्मूर्तियाँ) कहा गया। इस प्रकार अहिर्बुध्न्य संहिता के अनुसार तीन व्यूहो की उत्पत्ति भगवान् से ही होती है, किन्तु शंकराचार्य द्वारा उल्लिखित चतुर्व्यूह-सिद्धान्त इससे भिन्न है। इसके अनुसार वासुदेव से, जिनमे सभी छः गुणो का निवास होता है, उत्पत्ति होती है संकर्षण (जीव) की, संकर्षण से प्रद्युम्न (मन) की तथा उससे उत्पत्ति होती है अनिरुद्ध (अहंकार) की। आचार्य इसी को पाचरात्रो का विशिष्ट सिद्धान्त मानते है।[5] सम्भवत. यह चतुर्व्यूह-सिद्धान्त सर्वप्रथम दूसरी शती ई० पू० मे व्यवस्थित हुआ, क्योंकि पतंजलि द्वारा इसका उल्लेख किया गया प्रतीत होता है।[6] पाचरात्र-धर्माचार्यों द्वारा गुप्तकाल या उसके कुछ बाद मे इन चार व्यूहो की सख्या बढाकर चौबीस कर दी गई (चतुर्विंशति मूर्तियाँ) और बढ़े हुए इन व्यूहो को सम्प्रदाय के प्रधान देवता विष्णु (सम्प्रदाय के विकसित होने पर प्रधान देवता को यही नाम दिया गया और इसी से सम्प्रदाय का नाम वैष्णव पड़ा) के महत्वपूर्ण नामों (जो एक सहस्र तक है) मे से बीस नाम प्रदान किए गए।[7] विष्णु के

---

१ वही, पृ० ३८७

२ भगवद्गीता, १८,६१ :

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

३ उपाध्याय, बलदेव, भागवत सम्प्रदाय, पृ० ११९

४ *DHI*, p. 387.

५ उपाध्याय, बलदेव, उपर्युक्त, पृ० १२५

६ महाभाष्य, ६, ३, ६, : जनार्दनस्त्वात्मचतुर्थ एव। इस कथन की पुष्टि पहली अथवा दूसरी शती ई० पू० निर्मित बेसनगर के तीन व्यूह-ध्वजों (वासुदेव, संकर्षण, तथा प्रद्युम्न के क्रमशः गरुड़ध्वज, तालध्वज, तथा मकरध्वज) से हो जाती है (*DHI*, pp. 103-04, 388)।

७ बढ़े हुए बीस नाम हैं : केशव, नारायण, माधव, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, अच्युत, उपेन्द्र, त्रिविक्रम, नरसिंह, जनार्दन, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, हरि और कृष्ण।

3

विष्णु

वैष्णव सम्प्रदाय का उद्भव और विकास

हिन्दू सम्प्रदायों मे वैष्णव सम्प्रदाय का एक विशिष्ट स्थान है। यह सम्प्रदाय आज किसी न किसी रूप में भारत के प्रत्येक भाग में जीवित और प्रचलित है। विष्णु सर्वप्रथम वैदिककाल मे एक साधारण देवता के रूप मे दिखाई पड़ते है। ऋग्वेद मे कई स्थलो पर वे आदित्य मात्र समझे जाते है और दिन भर की यात्रा को केवल तीन पगों में पूरी कर देने के कारण ही उस युग मे उनका यशोगान होता प्रतीत होता है। अपने तीन पगों द्वारा वे पार्थिव लोको की परिक्रमा करते है। इनमें से दो पग तो मनुष्यो को दिखाई पड़ते है, किन्तु तीसरा अथवा सर्वोच्च पग पक्षियों की उड़ान और मर्त्य-चक्षु से परे है।[1] उनके इस स्वरूप की रहस्यात्मक अभिव्यक्ति वहां पूरी हो जाती है, जहां कहा गया है कि वे अपना तृतीय नाम प्रकाशमय द्युलोक मे धारण करते हैं।[2]

इस बात पर सभी विद्वान् एकमत हैं कि विष्णु के तीन पद सूर्य-पथ के बोधक है। किन्तु मूलत. वे किस बात के प्रतिरूप है? विशुद्ध प्रकृतिपरक व्याख्या के अनुसार, जिसे अधिकांश योरोपीय विद्वानो तथा यास्क के पूर्ववर्ती और्णवाभ ने स्वीकार किया है—विष्णु के तीन पद सूर्य के उदय, मध्याह्न और अस्त के बोधक है। दूसरे मत के अनुसार इन तीन पदों से सौर देवता के तीन लोकों में से होकर जाने का मार्ग अभिप्रेत है। यह मत परवर्ती वेदों मे पाया जाता है और यह यास्क के पूर्ववर्ती विद्वान् शाकपूणि को मान्य था और बेर्गेन तथा मैक्डॉनल को भी स्वीकार है। प्रथम मत पर यह आपत्ति उठाई जा सकती है कि विष्णु के तीसरे पद का सूर्यास्त के साथ किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं बैठता, इसके विपरीत वह तो उच्चतम पद के तद्रूप है। दूसरा मत ऋग्वेदीय उद्धरणों से समर्थित है और उत्तर वैदिककालीन भारतीय परम्परा उसकी पुष्टि करती है।[3] विष्णु के ये तीन पग वेदोत्तरकालीन साहित्य मे विष्णु के वामनावतार के लिए पथ तैयार करते है। विष्णु की विशेषता गति है—यह तथ्य तीन पदों के अतिरिक्त अन्य उक्तियो से भी स्पष्ट है। 'उरु-गाय' और 'उरु-क्रम' विशेषणो का एवं 'विक्रम' पद का प्रयोग प्रायः विष्णु के लिए ही हुआ है।[4]

१ ऋ०, १, १५५, ५; ७, ९९, २
२ वही, १, १५५, ३
३ सूर्यकान्त, वैदिक देवशास्त्र, पृ० ८१-८३
४ वही, पृ० ८३

है। इस सूची में बुद्ध की अनुपस्थिति से ज्ञात होता है कि अभी तक बुद्ध अवतार नहीं माने गए थे। हरिवंशपुराण में महाभारत की पहली सूची के छः अवतारों का उल्लेख है। वायुपुराण में पहले बारह अवतारों का उल्लेख है, जिनमें कुछ शिव और इन्द्र के अवतारों-से प्रतीत होते हैं और फिर दूसरे स्थल पर इनकी संख्या दस कर दी गई है, जिनमें दत्तात्रेय और वेदव्यास भी सम्मिलित है। यहाँ भी बुद्ध अनुपस्थित है। भागवतपुराण में अवतारों की तीन सूचियाँ तीन भिन्न स्थलों पर मिलती है। पहली सूची में इनकी संख्या २२, दूसरी में २३ और तीसरी मे १६ है। पहली सूची के नाम इस प्रकार है : (१) पुरुष, (२) वराह, (३) नारद, (४) नर-नारायण, (५) कपिल, (६) दत्तात्रेय, (७) यज्ञ, (८) ऋषभ, (९) पृथु, (१०) मत्स्य, (११) कूर्म, (१२) धन्वन्तरि, (१३) मोहिनी, (१४) नरसिंह, (१५) वामन, (१६) भार्गव राम, (१७) वेदव्यास, (१८) दाशरथि राम, (१९) बलराम, (२०) कृष्ण, (२१) बुद्ध, और (२२) कल्कि। इस सूची में सर्वमान्य सब अवतारों के नाम तो है ही, साथ मे पुराणकार ने इस बात पर अधिक बल दिया है कि भगवान् के असंख्य अवतार हुआ करते हैं (अवतारा: ह्यसंख्येया हरे)। अन्य दो सूचियों में इस सूची से कोई विशेष अन्तर नहीं है, अन्तिम सूची मे केवल कुछ नाम छोड़ दिए गए है। किन्तु किसी भी सूची मे ऋषभ (प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ अथवा ऋषभनाथ) और बुद्ध के नाम नहीं छूटे है। वराहपुराण मे दस अवतारों की सर्वमान्य सूची मिलती है और अग्निपुराण मे भी यही दशावतार सूची स्वीकृत है। किन्तु मत्स्यपुराण मे केवल सात अवतारों का उल्लेख हुआ है।[1]

व्यूहों और विभवों के नामों की उपर्युक्त विभिन्न सूचियों के अध्ययन से पता चलता है कि कुछ नाम दोनों रूपों में आए है, उदाहरणार्थ संकर्षण-बलराम न केवल एक मुख्य व्यूह है वरन् एक विभव भी। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि व्यूह संकर्षण और विभव संकर्षण के शिल्प-निदर्शन भी भिन्न है।[2]

वैष्णव सम्प्रदाय के मुख्य सिद्धान्तों की उपर्युक्त विवेचना खजुराहो की विभिन्न वैष्णव मूर्तियों के अध्ययन में सहायक होगी। खजुराहो-मूर्तियों के विवरण के पूर्व विष्णु-मूर्ति-पूजा की प्राचीनता और उसके विकास का संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

ई० पू० के अनेक अभिलेखों मे भागवत देवगृहों का उल्लेख मिलता है। घोसुण्डी अभिलेख में दो देवताओं, संकर्षण और वासुदेव, के देवायतन का उल्लेख है, जिसके चारों ओर प्रथम शती ई० पू० (भण्डारकर ने इस लेख की यही तिथि निर्धारित की है) में एक 'शिलाप्रकार' (पत्थर की वेदिका) निर्मित हुई थी।[3] इस लेख से स्पष्ट है कि घोसुण्डी (राजस्थान) मे एक देवगृह था और इसमें सम्भवतः संकर्षण और वासुदेव की मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित थी।[4] दूसरी शती ई० पू० के बेसनगर स्तम्भ लेख में उल्लेख है कि देवदेव वासुदेव की भक्ति मे भागवत हेलियोदोर (हेलियोडोरस) ने एक गरुडध्वज की स्थापना की थी। यह हेलियोदोर तक्षशिला निवासी दिय (दियन) का पुत्र

१ *VSMRS*, pp. 41-42 ; *DHI*, pp. 390-91.
२ *DHI*, p. 393.
३ *EI*, Vol. XXII, p. 204 ; see also Chanda, R. P., *op. cit.*, p. 163 ; *DHI*, p 91 ; मथुरा-कला, पृ० १४
४ *DHI*, p. 92.

और आसन मूर्तियों के अतिरिक्त, उनके शेषशायी रूप तथा वराह, नरसिंह, वामन अथवा त्रिविक्रम, राम, कृष्ण तथा बलराम अवतारो की गुप्तकालीन मूर्तियाँ मथुरा, देवगढ, उदयगिरि आदि स्थानो में प्राप्त हुई हैं।[1] कला की दृष्टि से ये सब बहुत ही सुन्दर हैं। मध्ययुग मे प्रतिमा-विज्ञान अधिक जटिल हो गया। फलतः विष्णु-मूर्तियों के भी नए रूप विकसित हुए। अब अनेक नए केन्द्रों में विष्णु-मूर्तियों का व्यापक रूप से निर्माण प्रारम्भ हुआ। इन केन्द्रो में खजुराहो का विशिष्ट स्थान है।

खजुराहो में विष्णु

वैष्णव प्रतिमा-सम्पदा की दृष्टि से खजुराहो उत्तरभारत में सर्वाधिक महत्व का केन्द्र है। वहाँ आज भी अनेक वैष्णव मन्दिर है, जिनमे कुछ तो नागर शैली के बड़े ही उज्ज्वल स्वरूप हैं। इसमें कोई सन्देह नही कि चन्देल नरेशों के अन्तर्गत शैव सम्प्रदाय के साथ-साथ वैष्णव सम्प्रदाय का भी व्यापक प्रचार था। इन मन्दिरों मे वैष्णव मूर्तियों की विलक्षण छटा देखते ही बनती है, जिनमे कुछ मूर्तियाँ तो अन्यत्र दुर्लभ है। वहाँ की वैष्णव मूर्तियों की विवेचना निम्नलिखित पाँच वर्गों के अन्तर्गत की गई है और प्रत्येक वर्ग की मूर्तियों के विवरण के पूर्व, लक्षण-ग्रन्थो मे उपलब्ध, उनके लाञ्छनो और लक्षणो का भी उल्लेख किया गया है :

१. सामान्य विष्णु-मूर्तियाँ,
२. चतुर्विंशति मूर्तियाँ,
३. दशावतार,
४. *विष्णु के अन्य अवतार एवं रूप, तथा*
५. गरुड़, आयुध-पुरुष एव द्वारपाल।

१. सामान्य विष्णु-मूर्तियाँ

प्रतिमा-लक्षण

विष्णु-प्रतिमा के प्राचीनतम विवरणो मे बृहत्संहिता[2] का विवरण उल्लेखनीय है। इस वर्णन के अनुसार विष्णु के आठ, चार अथवा दो हाथ हो। उनका वक्ष श्रीवत्स चिन्ह तथा कौस्तुभमणि से अलकृत हो। वे अतसी पुष्प के सदृश श्यामवर्ण तथा प्रसन्नमुख हो और पीताम्बर, कुण्डल एव किरीट-मुकुट धारण किए हों। यदि वे अष्टभुज हो तो उनके दाएँ तीन हाथ खड्ग, गदा एवं बाण से युक्त हों तथा चौथा अभय-मुद्रा में हो और बाएँ हाथों मे वे धनुष, खेटक, चक्र तथा शंख धारण किए हो। यदि वे चतुर्भुज हो तो एक दाहिना हाथ अभय-मुद्रा मे और दूसरा गदाधारी हो और बाएँ हाथो मे चक्र और शंख हों। यदि उनके दो भुजाएँ हो तो दाईं अभय-मुद्रा मे और बाईं शख-युक्त प्रदर्शित हो। विष्णु-प्रतिमा का यह विवरण सामान्य प्रकार का है और इसमे न तो विष्णु के पार्श्वचरों का उल्लेख है और न यही कि उनकी प्रतिमा किस स्थिति (स्थानक, आसन अथवा शयन) में निर्मित की जाए।

---

1 इन मूर्तियों का उल्लेख खजुराहो-मूर्तियों के विवरण के साथ आगे हुआ है
2 बृहत्सं०, ५८, ३१-३५

और विदिशा के राजा भागभद्र की राजसभा में समागत यवनदूत था। यह गरुड़ध्वज वासुदेव मन्दिर के सम्मुख ही निर्मित किया गया होगा। भेलसा से प्राप्त एक अन्य गरुड़-स्तम्भ-लेख से पता चलता है कि बेसनगर मे एक अन्य विष्णु-मन्दिर था। इस लेख मे उल्लेख है कि भागवत के उत्तम प्रासाद के इस गरुड़ध्वज को गौतमीपुत्र ने निर्मित कराया था। इस प्रकार ई० पू० में विष्णु-मन्दिरों के रहे होने में सदेह नहीं किया जा सकता, जिनके सम्मुख गरुड़ध्वज स्थित थे।[१] मध्यकाल मे भी वैष्णव मन्दिरो के सम्मुख गरुडध्वज निर्मित करने की परम्परा थी और आज भी इस परम्परा का प्रचलन है। इन श्रेष्ठ मन्दिरो (उत्तम प्रासाद) में पूजार्थ मूर्तियां प्रतिष्ठित रही होने की ही अधिक सम्भावना है।[२] महाक्षत्रप राजवुल के पुत्र महाक्षत्रप स्वामी शोडास के राज्यकाल में मथुरा से सात मील दूर मोरा नामक गाँव मे वृष्णि पचवीरों के मन्दिर (शैलदेवगृह) और उसमें उनकी प्रतिमाओं की स्थापना की सूचना मोरा अभिलेख मे मिलती है, जिसका उल्लेख व्यूहवाद की विवेचना के सम्बन्ध में पृष्ठ ५८ पर हो चुका है। सौभाग्य से उस स्थान के उत्खनन मे वृष्णिवीरों की पाँच प्रतिमाओं मे से तीन खण्डित प्रतिमाएँ भी प्राप्त हुई हैं।[३] इस सम्बन्ध मे मथुरा के एक तोरण पर उत्कीर्ण लेख और उल्लेखनीय है, जिसमें किसी भागवत महास्थान का संदर्भ है। ल्यूडर्स के मतानुसार यह तोरण मूलत. उस भागवत देवगृह का है, जिसका उल्लेख मोरा अभिलेख मे हुआ है।[४] इन सब अभिलेखीय साक्ष्यो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शुगकाल में भागवत मन्दिर थे और सम्भवत: उनमे विष्णु-मूर्तियां भी प्रतिष्ठित थी।

उपर्युक्त अभिलेखीय साक्ष्यो की पुष्टि बेसनगर से, गरुड़ध्वज के अतिरिक्त, तालध्वज और मकरध्वज की उपलब्धि से हो जाती है। तालध्वज और मकरध्वज भागवत अथवा पाचरात्र सम्प्रदाय के दो व्यूहों, क्रमश. सकर्षण और प्रद्युम्न, के मन्दिरो के सम्मुख निर्मित हुए प्रतीत होते हैं। इस प्रकार वहां पर गरुड़, ताल और मकर ध्वजो की प्राप्ति से पता चलता है कि या तो वहां चतुर्व्यूहों में से पहले तीन, वासुदेव, सकर्षण और प्रद्युम्न, या पचवृष्णिवीरो मे से तीन के मन्दिर थे। यह भी सम्भव है कि वहां साम्ब और अनिरुद्ध के भी देवगृह रहे हो।[५]

कुषाणकाल से विष्णु-मूर्तियां बनने लगी। मथुरा सग्रहालय मे ऐसी अनेक मूर्तियां उपलब्ध है। "उनमें विष्णु के आयुध पूरी तरह निश्चित नहीं हो पाए है। यद्यपि सभी मूर्तियां चतुर्भुजी है, किन्तु अगले दो हाथो मे से दाहिना हाथ अभय-मुद्रा मे और बायां तिकोना अमृतघट लिये हुए है। अमृतघट की गर्दन लम्बी, पेटा गोल-लम्बोतरा और पेदा तिकोना है। अमृतघट की यह आकृति कुषाणकालीन बोधिसत्त्व, विशेषकर मैत्रेय, के अमृतघट से मिलती है। वस्तुत: यदि पिछले दो हाथ मूर्ति मे से हटा दिए जायँ तो मूर्ति की आकृति और लक्षण बोधिसत्त्व की मूर्तियों से मिल जाते हैं। हाथ मे जलपात्र या अमृतघट इस समय की देवमूर्तियो की विशेषता है।"[६] गुप्तकाल में विष्णु-मूर्तियों के अनेक रूपों का विकास हुआ। विष्णु की अनेक सामान्य स्थानक

१ Chanda, R. P., *op. cit.*, pp. 151-52, 154 ; *DHI*, p. 92-93 ; मथुरा-कला, पृ० १४

२ *DHI*, p. 93.

३ मथुरा-कला, पृ० १६, ५३

४ Chanda. R. P., *op. cit.*, pp. 169-71 ; *DHI*, p. 95 ; मथुरा-कला, पृ० १४

५ *DHI*, pp. 103-04.

६ मथुरा-कला, पृ० १८

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में एक स्थान पर विष्णु की एकमुखी तथा गदा एवं चक्रधारी द्विभुजी प्रतिमा का उल्लेख हुआ है,[१] और दूसरे स्थान पर वासुदेव के रूप में विष्णु-प्रतिमा का विस्तृत विवरण मिलता है। इस विवरण के अनुसार वासुदेव को चतुर्भुज, सुन्दर रूप तथा सुन्दर दर्शन-सम्पन्न, जलपूर्ण मेघ की कान्ति से युक्त, शंख के सदृश शुभ्र रेखा-युक्त कण्ठ से शोभायमान तथा कुण्डल, अंगद, केयूर, वनमाला, कौस्तुभमणि, किरीट—सभी आभूषणों से आभूषित निर्मित करना चाहिए। उनका कटिवस्त्र और वनमाला जानु तक और यज्ञोपवीत नाभि तक लटकता हो। उनके सिर के पीछे सुन्दर कर्णिका-युक्त कमल के रूप में शिरश्चक्र हो। उनकी भुजाएँ लम्बी हों और हाथों की अंगुलियों के नाखून पतले और लाल हों। उनके चरणों के बीच में, उन चरणों को स्पर्श करती हुई, त्रिवलीभंग से सुशोभित, अत्यन्त सुन्दर कटि वाली स्त्री के रूप में पृथ्वी प्रदर्शित की जाएँ। उनके दोनों चरणों के बीच में एक ताल का अन्तर हो और दक्षिण चरण कुछ आगे निकला हो। देवता के दर्शन से विस्मित होकर पृथ्वी अन्तर्दृष्टि से युक्त हों। देवता के दाएँ हाथ में विकसित कमल और बाएँ में शंख हो। उनके दाईं ओर क्षीणकटि, सुन्दर नेत्रों वाली, सभी आभूषणों से अलंकृत मुग्धा स्त्री के रूप में चामरधारिणी गदादेवी निर्मित हों, जो देवता की ओर देखती प्रदर्शित हो। देवता का दायाँ हाथ इन्हीं के सिर पर स्थित हो। देवता के बाईं ओर विस्फारित नेत्रों वाले, सर्वाभरणसंयुक्त चक्र-पुरुष निर्मित हों, जो चामरधारी हों और देवता को देखने में तत्पर जान पड़ें। देवता का बायाँ हाथ इनके सिर पर रखा हो।[२] यहाँ देवता द्वारा धारण किए हुए शंख को आकाश, चक्र को पवन, गदा को तेज और कमल को जल माना गया है।[३]

पर-वासुदेव[४] का विवरण अग्निपुराण[५] में भी मिलता है और वहाँ भी उनकी चतुर्भुजी स्थानक मूर्ति निर्मित करने का निर्देश है। इस विवरण के अनुसार उनके दाएँ हाथों में चक्र और पद्म तथा बाएँ में शंख और गदा होनी चाहिए। उनके एक पार्श्व में पद्मधारिणी श्री और दूसरे में वीणाधारिणी पुष्टि निर्मित हों। गजों तथा अन्य पशुओं की आकृतियों से अलंकृत उनके प्रभा-मण्डल में मालाधारी विद्याधरों का एक युगल भी अंकित हो। इस पुराण में एक अन्य स्थान पर विष्णु की अष्टभुजी गरुडासन मूर्ति का विवरण भी मिलता है।[६] इसी प्रकार गरुडासन विष्णु का एक ध्यान भागवतपुराण में भी उपलब्ध है।[७] ये विवरण गरुडासन मूर्तियों की विवेचना के साथ दिए गए हैं।

मत्स्यपुराण में भी विष्णु का विस्तृत विवरण मिलता है,[८] किन्तु वहाँ उनकी स्थानक मूर्ति वर्णित है। इस पुराण के अनुसार देवता के आठ, चार अथवा दो भुजाएँ बनाई जा सकती हैं। यदि उनके आठ भुजाएँ हों तो दाईं भुजाओं में वे खड्ग, गदा, शर एवं पद्म तथा बाईं में

---

१ वि० ध०, ३०, २
२ वही, ८५, १-१५
३ वही, ८५, १७-१८
४ वासुदेव के व्यूह रूप का वर्णन भी इस पुराण में चतुर्विंशति मूर्तियों के अन्तर्गत हुआ है (अ० पु०, ४८, ७)।
५ अ० पु०, ४४, ४०-४८
६ वही, ४९, ११-१७
७ भा० पु०, ६, ८, १२-१८
८ म० पु०, २५८, ४-११

धनुष, खेटक, शख और चक्र धारण किए हों। यदि उनके चार भुजाएँ हो तो दाईं गदा एवं पद्म तथा बाईं शंख और चक्र से युक्त हों। देवता के चरणों के बीच में पृथ्वी, दाईं ओर गरुड़ और बाईं ओर पद्महस्ता लक्ष्मी निर्मित हों। साथ में पद्मयुक्ता श्री और पुष्टि भी निर्मित हो। मूर्ति की प्रभावली में विद्याधर, गन्धर्व, मिथुन, पत्रवल्ली, सिंह-व्याल, कल्पलता आदि के अंकन होने चाहिए।

जैसा पहले कहा गया है, विष्णु-मूर्तियाँ तीन समूहों में विभाजित की जा सकती है : पर, व्यूह और विभव, जो क्रमशः विष्णु के तीन रूपों को प्रदर्शित करती है। जिन मूर्तियों के लक्षण ऊपर वर्णित किए गए हैं, वे साधारणतः पहले समूह के अन्तर्गत आती है और पूर्ववर्ती पांचरात्र ग्रन्थ वैखानसागम मे वर्णित वैष्णव ध्रुवबेर भी एक प्रकार से इसी समूह का प्रतिनिधित्व करते प्रतीत होते है। वैखानसागम मे ध्रुवबेरों के कुल मिला कर ३६ प्रकारो का वर्णन हुआ है। पहले, मूर्तियों की स्थिति की दृष्टि से, उनको तीन वर्गों मे विभाजित किया गया है : स्थानक मूर्तियाँ, आसन मूर्तियाँ और शयन मूर्तियाँ। इनमें से प्रत्येक वर्ग की मूर्तियों को पुनः चार प्रकारो मे बाँटा गया है. योग, भोग, वीर और अभिचारिक, जिनमें चित्रण की दृष्टि से सूक्ष्म अन्तर ही होता है। चार प्रकारों की ये मूर्तियाँ चार भिन्न आकाक्षाएँ रखने वाले उपासको की पूजा के लिए हैं, जैसे योगी को विष्णु के योग रूप की पूजा करनी चाहिए। इसी प्रकार भोग की कामना रखने वाले को भोग, पराक्रम के आकाक्षी को वीर, वैरियों पर विजय पाने के इच्छुक को अभिचारिक मूर्तियो की पूजा करनी चाहिए। उपर्युक्त १२ प्रकारों मे प्रत्येक की मूर्तियों को पुनः तीन वर्गों मे विभाजित किया गया है : उत्तम, मध्यम और अधम। यह विभाजन प्रधान विष्णु-मूर्ति के साथ चित्रित पार्श्व-मूर्तियो की सख्या के आधार पर हुआ है।[1] यहाँ सभी प्रकारो की विस्तृत विवेचना अप्रासंगिक होगी, अतएव खजुराहो-मूर्तियों के विवरण के साथ सम्बन्धित प्रकारो की विवेचना की जाएगी।[2] वैखानसागम का ऐसा वर्गीकरण अन्य शिल्पशास्त्रों में नहीं मिलता।

वैखानसागम का स्थानक, आसन और शयन—वर्गीकरण सभी विष्णु-मूर्तियो पर लागू होता है, क्योंकि वे उपर्युक्त तीन वर्गों में ही किसी न किसी के अन्तर्गत आती है। खजुराहो-मूर्तियाँ उपर्युक्त तीनों स्थितियो—स्थानक, आसन और शयन—मे प्रदर्शित हुई है। वैखानसागम के वर्गीकरण के दूसरे आधार, योग, भोग, वीर और अभिचारिक, का पूर्णतया अनुकरण न तो खजुराहो अथवा उत्तरभारत मे अन्यत्र और न दक्षिणभारत मे ही हुआ है। खजुराहो तथा अन्य स्थानों मे योगासन विष्णु की ऐसी अनेक मूर्तियाँ मिली है, जो विविध आभूषणो से अलंकृत और उनकी पत्नियों—श्री और पुष्टि—मे संयुक्त निर्मित है। ऐसी मूर्तियाँ योग और भोग दोनों वर्गों का प्रतिनिधित्व करती है। वीर और अभिचारिक वर्गों की मूर्तियाँ दुर्लभ-सी है। खजुराहो मे तो इनका एक भी उदाहरण नही उपलब्ध है। अन्य स्थानो के समान वहाँ भोग प्रकार की मूर्तियों का बाहुल्य है। ग्रामों और नगरों मे निर्मित मन्दिरों में इस वर्ग की मूर्तियो का आधिक्य स्वाभाविक ही है, क्योंकि अधिकाश उपासक सुख-समृद्धि की कामना करते है और उनके लिए इसी वर्ग की मूर्तियाँ अधिक उपयुक्त बैठती है।

---

१ *EHI*, I,I, pp, 78-80. राव ने दक्षिणभारतीय कुछ ऐसे मन्दिरों का उल्लेख किया है, जिनमें गर्भगृह तिखण्डा है और प्रत्येक खण्ड में विष्णु की एक-एक मूर्ति प्रतिष्ठित है : सबसे नीचे के खण्ड में उनकी स्थानक मूर्ति, बीच के खण्ड में आसन और सबसे ऊपर के खण्ड में शयन (वही, पृ० ७९)।

२ प्रत्येक प्रकार की मूर्तियों के विस्तृत विवरण के लिए द्र० *EHI*, I,I, pp. 80-96.

खजुराहो की सामान्य विष्णु-मूर्तियाँ स्थानक, आसन और शयन—तीनों स्थितियों में मिलती हैं, जिनकी विवेचना क्रमशः हुई है।

(क) स्थानक मूर्तियाँ

खजुराहो में उपलब्ध विष्णु की स्थानक मूर्तियाँ दो प्रकार की हैं : विशिष्ट और साधारण। विशिष्ट प्रकार की मूर्तियाँ साधारण मूर्तियों की तुलना में अधिक विशाल है और उनकी प्रभावली में अनेक पार्श्व-मूर्तियों के चित्रण हैं। ये विष्णु अथवा वासुदेव के 'पर' रूप को प्रदर्शित करती हैं और सही अर्थ मे ध्रुवबेर मानी जा सकती है। इनमें कुछ वहाँ के वैष्णव मन्दिरों के गर्भगृहों में प्रतिष्ठित प्रधान मूर्तियाँ हैं, कुछ मन्दिरों के विभिन्न भागो मे बनी रथिकाओं में प्रतिष्ठित हैं और कुछ स्थानीय संग्रहालय की निधि है। ये सभी वैखानसागम मे वर्णित भोगस्थानक मूर्तियों[१] का प्रतिनिधित्व करती हैं, यद्यपि उस विवरण का पूर्ण अनुकरण इनमें नही हुआ है। साधारण प्रकार की मूर्तियाँ विशिष्ट मूर्तियो से छोटी हैं और उनकी प्रभावलियाँ परमित हैं, जिनमें पार्श्वचरो का चित्रण नही है अथवा बहुत ही कम है।

विशिष्ट प्रकार

इस प्रकार की मूर्तियों मे सर्वप्रथम उल्लेखनीय जवारी मन्दिर के गर्भगृह मे प्रतिष्ठित मूर्ति है।[२] इस मूर्ति में विष्णु एक पद्मपीठ पर समभग खड़े है। उनका मस्तक और उनके चारों हाथ खण्डित हैं। वे गले मे हार और ग्रैवेयक, बाहो में अंगद, वक्ष मे कौस्तुभमणि, कटि मे मेखला, स्कन्ध में यज्ञोपवीत, पैरों में नूपुर और सामने वैजयन्तीमाला धारण किए है। प्रभावली में देवता के सिर के ऊपर तीन ओर ब्रह्मा, विष्णु (सूर्य-नारायण के रूप मे) और शिव की छोटी प्रतिमाएँ उत्कीर्ण कर हिन्दू त्रिमूर्ति का प्रदर्शन किया गया है. सूर्य-नारायण की प्रतिमा केन्द्र में योगासन-मुद्रा में बैठी है, जिसके ऊपरी दोनों हाथो में पद्म है। विष्णु के दाईं ओर ब्रह्मा की त्रिमुखी और चतुर्भुजी प्रतिमा है। वे बैठे हैं, उनके चारों हाथ खण्डित है और लटकती हुई डाढ़ी है। विष्णु के बाईं ओर शिव की बैठी प्रतिमा है, जिसका पहला हाथ भग्न है और शेष तीन हाथ क्रमशः त्रिशूल, सर्प और कमण्डलु से युक्त है। केन्द्रीय विष्णु-प्रतिमा के दोनों ओर फूलमालाधारी विद्याधरो के कई युगल चित्रित है। नीचे प्रधान देव-प्रतिमा के दाएँ-बाएँ पार्श्वों मे क्रमशः चक्र और शंख-पुरुष खड़े हैं। दाईं ओर चक्र-पुरुष के पीछे देवी पृथ्वी (अथवा लक्ष्मी ?) खड़ी हैं। उनका दायाँ हाथ खण्डित है और बायाँ पद्म-युक्त है। इसी प्रकार बाईं ओर शंख-पुरुष के पीछे विष्णु के वाहन गरुड़ पुरुषविग्रह मे खड़े है। उनके सिर पर ऊर्ध्वकेश हैं, उनका दायाँ हाथ स्तुति-मुद्रा में ऊपर उठा है और बायाँ खण्डित है। पद्मपीठ के नीचे दो नाग-कन्याओ के मध्य लक्ष्मी की छोटी-सी प्रतिमा है। प्रभावली मे विष्णु के कई अवतार उत्कीर्ण हैं : प्रधान मूर्ति के दाईं ओर नरसिंह, कूर्म, बलराम, कल्कि और परशुराम तथा बाईं ओर वराह, मत्स्य, राम, वामन और बुद्ध। प्रभावली के चारों ओर एक परिकर है। परिकर की दोनों शाखाओं को मिलता हुआ शीर्ष पर एक मकरतोरण है। इस परिकर मे विष्णु की कई छोटी आसन मूर्तियाँ अंकित हैं, जो अधिकांशतः

---

१ विवरण के लिए द्र० *EHI*, I,I, pp. 81-83.
२ प्र० सं० १४

खण्डित हैं। उनके हाथों के आयुधों—शंख, चक्र, गदा और पद्म—के क्रम में अन्तर है और इसके अतिरिक्त वे सभी समरूप हैं। सम्भवतः ये विष्णु-व्यूहो के अकन हैं। इस प्रकार इस विशाल मूर्ति में विष्णु के तीनों रूपों—पर, व्यूह और विभव—के प्रदर्शन हुए है।

इस प्रकार की एक सुन्दर मूर्ति[1] खजुराहो संग्रहालय में दर्शनीय है (चित्र १६)। इसमें भी विष्णु पद्मपीठ पर समभग खड़े हैं और वे बहुत ही अलंकृत किरीट-मुकुट, रत्नकुण्डलों, केयूरो, ककणों, मेखला, वैजयन्तीमाला, यज्ञोपवीत और नूपुरो से अलंकृत हैं। उनके चार हाथो मे पहला खण्डित है। दूसरे में वे गदा, तीसरे में चक्र और चौथे में शख धारण किए हैं। उनके मस्तक के पीछे कमलपत्रांकित बहुत ही सुन्दर और विशाल शिरश्चक्र है, जिसके ऊपर ब्रह्मा, शिव और पुष्पमालाधारी विद्याधरों के दो युगल अंकित हैं। सम्भवतः केन्द्र मे विष्णु की छोटी प्रतिमा अकित रही है, जो अब नष्ट हो गई है। नीचे देवता के दाएँ पार्श्व में देवी पृथ्वी खडी है, जिनका बायाँ हाथ चामरधारी और दाहिना कट्यवलम्बित है। इसी प्रकार देवता के बाएँ एक पार्श्वचर खड़ा है, जिसका दाहिना हाथ गदा अथवा चामर (स्पष्ट नहीं है) से युक्त है और बायाँ कटि-हस्त है। इन दोनो के पीछे क्रमशः चक्र और शंख-पुरुष खड़े हैं। दोनों विशाल करण्ड-मुकुट धारण किए है और अपने एक हाथ मे सम्बन्धित आयुध लिए है। देवता के पद्मपीठ के नीचे कई छोटी आकृतियो का एक समूह अंकित है : केन्द्र मे एक देवी कूर्म के ऊपर ध्यान-मुद्रा मे आसीन है, जिनके दोनों पार्श्वों मे सर्प-पुच्छ-युक्त दो नाग अथवा नागियाँ अजलि-मुद्रा में हाथ जोडे प्रदर्शित हैं। इस चित्रण के दोनो ओर दो-दो मकरवाहिनी जलदेवियाँ अंकित है। चारो अपने दोनो हाथों मे एक-एक घट पकडे है। इनके पीछे दोनो ओर एक-एक प्रतिमा नृत्य और वंशीवादन में तल्लीन अंकित है। केन्द्र मे कूर्म पर बैठी देवी लक्ष्मी है, जो सागर-मथन के समय कूर्म की मथानी पर प्रकट हुई थी।[2] उनके प्रकट होने पर श्रेष्ठ नदियाँ मूर्तिमान होकर उनके अभिषेक के लिए स्वर्ण-कलशों में पवित्र जल लाई थी,[3] बादल सदेह होकर वेणु आदि वाद्ययन्त्र जोर से बजाने लगे थे,[4] और नागो ने उन्हे दो कुण्डल समर्पित किए थे।[5] यहाँ यही दृश्य अंकित हुआ है। शख और चक्र-पुरुषों के ऊपर विष्णु की पत्नियाँ क्रमशः श्री और पुष्टि चित्रित है। श्री के बाएँ हाथ में सनाल कमल है और उनका दाहिना हाथ कट्यवलम्बित है। पुष्टि के दोनों हाथों मे एक वीणा है। देवता के पद्मपीठ के दोनो ओर एक-एक भक्त अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़कर बैठा प्रदर्शित है। इसके अतिरिक्त प्रभावली में मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम और कल्कि अवतारो के भी अंकन हैं, जिनमें वराह और नरसिंह शिरश्चक्र के दोनों ओर बनी रथिकाओं मे प्रदर्शित हैं। खजुराहो संग्रहालय की सर्वोत्तम विष्णु-मूर्तियो मे यह एक है और एक खण्डित हाथ के अतिरिक्त सम्पूर्ण मूर्ति बड़ी सुरक्षित दशा मे है।

---

१ प्र० सं० ६

२ मध्यकालीन अन्य विष्णु-मूर्तियों की पादपीठ पर भी लगभग इसी प्रकार लक्ष्मी का अंकन मिलता है, जिसे विद्वानों ने पृथ्वी अथवा भूदेवी माना है, द्र० M.M. No. D37, *MMC*, p 102; *CBIMA*, p 116, मथुरा-कला, पृ० ६६; *II*, p. 70. Pls. V.VII.

३ मूर्तिमत्यः सरिच्छ्रेष्ठा हेमकुम्भैर्जलं शुचि। भा० पु० ८, ८, १०

४ मेघा मृदंगपणवमुरजानकगोमुखान्।
व्यनादयञ्छंखवेणुवीणास्तुमुलनिःस्वनान्॥ वही, ८, ८, १३

५ ……नागाश्च कुण्डले॥ वही, ८, ८, १४

संग्रहालय में उपलब्ध एक अन्य मूर्ति भी बड़ी सुन्दर है (चित्र १७)।[१] पद्मपीठ पर सम-भंग खड़ी यह प्रतिमा भी पूर्ववत् अलकृत है, किन्तु इसका शिरश्चक्र उतना सुन्दर नहीं है। इसके पहले तीन हाथ सुरक्षित हैं और चौथा खण्डित है। वरद-मुद्रा मे प्रदर्शित पहले हाथ में अक्षमाला है, दूसरे और तीसरे हाथो में पूर्ववत् गदा और चक्र हैं। शिरश्चक्र के ऊपर, दाएँ और बाएँ क्रमश. विष्णु, ब्रह्मा और शिव के अकन द्वारा त्रिमूर्ति प्रदर्शित हुई है : विष्णु योगासन-मुद्रा में बैठे है और उनका मस्तक तथा ऊपर के दोनों हाथ खण्डित हैं। उनके दोनो ओर फूलमालाधारी एक-एक विद्याधर अंकित हैं। ब्रह्मा और शिव छोटी-छोटी रथिकाओं मे ललितासन में बैठे उत्कीर्ण हैं। प्रभावली मे नीचे की ओर देवता के दाएँ-बाएँ पार्श्वों मे क्रमशः चक्र और शंख-पुरुष खड़े हैं। चक्र-पुरुष के पीछे पृथ्वी और शंख-पुरुष के पीछे गरुड़ है। दोनों आयुध-पुरुषों के नीचे एक-एक भक्त बैठा प्रदर्शित है। पद्मपीठ के नीचे दो नागकन्याओं के मध्य कूर्म के ऊपर पद्मासन-मुद्रा में लक्ष्मी विराजमान है, उनका दायाँ हाथ अभय-मुद्रा मे और बायाँ अमृतघट-युक्त है। इन पार्श्व-मूर्तियों के अतिरिक्त प्रभावली में विष्णु के कुछ अवतारो के भी चित्रण हैं। ब्रह्मा के दाईं ओर एक कमलपत्र पर छत्रधारी वामन और शिव के बाईं ओर इसी प्रकार कमलपत्र पर परशुधारी परशुराम विराजमान हैं। पृथ्वी के पीछे, दोनो हाथों मे एक बाण धारण किए राम खड़े हैं और उनके चरणों के पास भूस्पर्श-मुद्रा में बुद्धावतार अंकित है। इसी प्रकार गरुड़ के पीछे नागफण के घटा-टोप से युक्त बलराम खड़े है और उनके सामने अश्वारूढ़ कल्कि हैं। देवता के वरद-मुद्रा में प्रदर्शित हाथ के पास भूवराह का अकन भी देखा जा सकता है। प्रभावली के ऊपरी कोने कुछ खण्डित हैं, जहाँ शेष अवतार अंकित रहे होंगे। यह मूर्ति भी बड़ी सुरक्षित अवस्था मे है।

उपर्युक्त मूर्ति के सदृश संग्रहालय मे एक अन्य मूर्ति[२] भी है, किन्तु इसके चारो हाथ और मस्तक खण्डित है। आयुध-पुरुषों, पृथ्वी, लक्ष्मी, गरुड तथा अवतारो के अंकन पूर्ववत् है।

उपर्युक्त मूर्तियों के विवरण से खजुराहो की विशिष्ट प्रकार की सभी स्थानक मूर्तियो की सामान्य विशेषताओ पर प्रकाश पड़ जाता है। इस प्रकार की अन्य सभी मूर्तियाँ[3] सामान्यतः इन वर्णित मूर्तियों के सदृश ही है। वे सभी समभग और चतुर्भुजी है। उनमे कुछ का एक हाथ,[४] और कुछ के दो,[५] तीन[६] अथवा चारों हाथ[७] खण्डित मिलते है। जो हाथ शेष बचे हैं, उनसे ज्ञात होता है कि सभी मूर्तियों के हाथो का चित्रण इस क्रम से हुआ है . पहला वरद-मुद्रा मे, दूसरा गदाधारी तथा तीसरा और चौथा क्रमशः चक्र एवं शख से युक्त। इस प्रकार की पूर्णतया ध्वस्त मूर्तियो के कुछ पादपीठ मात्र भी सग्रहालय मे उपलब्ध हैं।[८]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इन मूर्तियों के निर्माण मे सामान्यतः लक्षण-ग्रन्थों का अनुकरण किया गया है। लक्ष्मी, पृथ्वी, श्री-पुष्टि, गरुड, आभूषणादि शास्त्र-निर्देशानुसार अंकित

---

१ प्र० सं० १०
२ प्र० सं० ६
३ प्र० सं० १-५, ७, ८, ११, १२, १५-१७
४ प्र० सं० १, २, ५, ११, १२
५ प्र० सं० ३, ४
६ प्र० सं० ७
७ प्र० सं० ८, १५-१७
८ प्र० सं० १८-२०

है। यद्यपि चारों हाथों द्वारा धारण किए गए आयुधो का प्रदर्शन पूर्णतया किसी एक शास्त्र पर नहीं आधारित है, फिर भी तीन हाथों—दूसरे, तीसरे और चौथे—मे क्रमशः गदा, चक्र और शंख के चित्रण से सम्भवतः बृहत्संहिता के विवरण का पालन किया गया है। पहला हाथ इस विवरण के अनुसार अभय-मुद्रा मे न होकर वरद-मुद्रा मे है। केवल इसके चित्रण में वैखानसागम मे उपलब्ध भोगस्थानक मूर्ति के विवरण का ध्यान रखा गया प्रतीत होता है।[1]

विलक्षण मूर्ति—खजुराहो की एक स्थानक विष्णु-मूर्ति अपनी विलक्षणता और रचना-सौष्ठव के कारण विशेष दर्शनीय है (चित्र २१, २२)।[2] ऐसी विष्णु-मूर्ति अन्यत्र नही मिली है और न किसी लक्षण-ग्रन्थ में ही ऐसी मूर्ति का विवरण मिलता है। इस विशाल मूर्ति में चतुर्भुज देवता त्रिभग खड़े प्रदर्शित हैं। उनका बायाँ पैर कुछ आगे बढ़कर चरणचौकी पर सीधा रखा है और दायाँ कुछ मुड़कर, बाएँ पैर के पीछे जाकर, अँगुलियो के बल टिका है। सिर पर वे भारी जटा-मुकुट धारण किए है, जो अपने अलकरण के कारण दर्शनीय है। मुकुट के अतिरिक्त वे हार, ग्रैवेयक, कौस्तुभमणि, कुण्डल, केयूर, ककण, नूपुर तथा यज्ञोपवीत से अलकृत है, वनमाला अथवा वैजयन्तीमाला का अभाव है। उनका प्रथम हाथ खण्डित है, दूसरा अभय-मुद्रा मे है, तीसरे मे वे कुण्डलित कमलनाल से बँधी पुस्तक लिए हैं और चौथा नीचे लटकता हुआ प्रदर्शित है, जिसकी अँगुलियाँ टूट गई हैं। इस हाथ मे वे एक घट (कमण्डलु ?) लिए रहे हैं, जिसका ऊपरी भाग आंशिक रूप मे, खण्डित अगुलियो के मध्य अभी भी दृष्टिगोचर होता है। उनके सिर के पीछे शिरश्चक्र के स्थान पर एक अत्यन्त अलंकृत मकरतोरण है, जिसके आधे भाग में नवग्रहो का पक्तिबद्ध अकन है और आधे मे कुछ वाद्ययन्त्रों को बजाते और कुछ फूलमाला लिए हुए विद्याधरों के चित्रण है। देवता के दाएँ-बाएँ पार्श्वों मे एक-एक देवी त्रिभंग खड़ी हैं। उनके दोनो हाथ टूटे हैं और वे जटा-मुकुट धारण किए है। दाएँ पार्श्व की देवी के सामने एक अष्टभुजी देव-प्रतिमा है। इसके छः हाथ टूटे है और सिर खण्डित है। एक दायाँ और एक बायाँ हाथ सुरक्षित है, जिनमे क्रमशः सर्प और कोई अस्पष्ट लाञ्छन धारण किए है। इसी प्रकार बाएँ पार्श्व मे खड़ी देवी के सामने एक खण्डित प्रतिमा है, जो पर्यकासन मे बैठी है। दाएँ पार्श्व की देवी के मस्तक के ऊपर एक पृथक् चौकी में एक चतुर्भुजी देव-प्रतिमा ललितासन मे बैठी उत्कीर्ण है। इसका मस्तक और ऊपर के दो हाथ टूट गए है। नीचे के दाएँ हाथ मे खड्ग लिए रहने के चिह्न हैं और बाएँ मे चषक-जैसा कोई पात्र लिए है। इसी प्रकार की एक चरणचौकी देवता के बाई ओर भी है, किन्तु उसमे एक द्विभुजी भक्त-प्रतिमा बैठी है। प्रधान देवता के चरणो के नीचे, पादपीठ पर दो कुण्डलित कमलनालों के अलंकरण है, जिनके एक ओर एक लम्बकूर्च भक्त अजलि-मुद्रा मे हाथ जोड़े बैठा है और दूसरी ओर एक भक्त नारी बैठी है, जिसके टूटे हाथो के अजलि-मुद्रा मे जुड़े होने की ओर संकेत हैं।

चतुर्भुज मन्दिर की यह प्रधान मूर्ति इतनी विशाल है और गर्भगृह मे इस प्रकार स्थायी रूप से स्थित है कि इसके मन्दिर की आदि मूर्ति होने में सदेह नहीं किया जा सकता। गर्भगृह-द्वार के उत्तरंग के मध्य (ललाटबिम्ब) मे किरीट-मुकुटधारी ललितासन विष्णु की छोटी प्रतिमा

---

१ जहाँ इस हाथ को अभय अथवा वरद-मुद्रा में चित्रित करने का निर्देश हुआ है, *EHI*, I, I, p. 81.

२ प्र० सं० ११

उत्कीर्ण है और दक्षिण-वाम किनारों पर त्रिमूर्ति के प्रदर्शनार्थ ब्रह्मा और शिव उत्कीर्ण हैं। फलत: प्रधान देवता के विष्णु होने मे संशय का स्थान नहीं रह जाता,[1] यद्यपि ये किसी भी उपलब्ध शास्त्र के निर्देशानुसार नही गढे गए है। उनमें तथा उनके पार्श्वचरों मे वैष्णव विशिष्टताएँ नगण्य हैं। सम्भव है यह एक समन्वित मूर्ति हो और प्रधान विष्णु-मूर्ति में शिव (अथवा ब्रह्मा) की विशिष्टताओं का समावेश किया गया हो।

खजुराहो की विशालतम और सुन्दरतम मूर्तियों में यह एक है और प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से ही नही, रचना-सौष्ठव की दृष्टि से भी खजुराहो-कला का एक अनुपम रत्न है। आकर्षक त्रिभंग मुद्रा, सुन्दर अलकरण, शरीर का मनोहारी संतुलित गठन, उन्मीलित नेत्रों से युक्त तथा अलौकिक शान्ति और गाम्भीर्य-मिश्रित भावो से दीप्त मुखमण्डल आदि मूर्ति का सम्पूर्ण शिल्पीकरण दर्शक को मोह लेता है।

साधारण प्रकार

साधारण प्रकार की स्थानक मूर्तियां अधिकांशत: खजुराहो के वैष्णव मन्दिरों की जघाओ पर उत्कीर्ण मूर्ति-पंक्तियों में अन्य देव-देवियों के क्रम में प्रदर्शित हैं। वैष्णव मन्दिरों के अतिरिक्त, जैन मन्दिर पार्श्वनाथ की जंघा मे भी ऐसी कई मूर्तियों की छटा द्रष्टव्य है। शैव तथा अन्य मन्दिरो में इनका नितान्त अभाव नही है, किन्तु वहां इनकी संख्या नगण्य है। इस प्रकार की कुछ सुन्दर मूर्तियां वहां के संग्रहालय में भी सुरक्षित है।

कुछ द्विभुजी मूर्तियों[2] को छोड़कर ये सभी चतुर्भुजी है। द्विभुजी मूर्तियां बाएँ हाथ मे गदा[3] और दाएँ में पद्म,[4] चक्र[5] अथवा शंख[6] धारण किए है।

चतुर्भुजी मूर्तियों को, उनके द्वारा धारण किए आयुधो की दृष्टि से, निम्नलिखित कई समूहों में विभाजित कर सकते हैं:

(क) इस समूह के अन्तर्गत वे मूर्तियां आती है, जो अपने चारो हाथो में विष्णु के चार प्रधान आयुधों—शंख, चक्र, गदा और पद्म—को विभिन्न क्रमों से धारण किए हैं। ऐसी कुछ मूर्तियों का एक हाथ खण्डित मिलता है, जिसमें इनमे से ही एक आयुध धारण किए रहने की कल्पना कर ली गई है। निम्नांकित तालिका से प्रत्येक प्रतिमा द्वारा धारण किए गए आयुधों का स्पष्टीकरण हो जायगा:

प्र० सं०	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
२४	गदा	पद्म*	शंख	चक्र
२६	गदा	चक्र	शंख	पद्म
३५	गदा	चक्र	पद्म	शंख
३१ (चित्र १८)	चक्र	पद्म	शंख	गदा

1 श्री कृष्णदेव ने भी इसे विष्णु का एक विलक्षण रूप माना है, *AI*, No. 15, p. 59.
2 प्र० सं० ७५, ७८-८०
3 वही
4 प्र० सं० ७५, ७९
5 प्र० सं० ७८
6 प्र० सं० ८०
* पद्म अधिकांशतया सुपल्लवित कमलनाल के रूप में प्रदर्शित हुआ है।

प्र० सं०	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
३४	चक्र	पद्म	शंख	गदा
५२	गदा	पद्म	चक्र	शंख
७६	गदा	पद्म	चक्र	शंख
३२	शंख	पद्म	चक्र	गदा
७७	गदा	शंख	पद्म	चक्र
२५	*	पद्म	चक्र	गदा
३०	गदा	*	चक्र	शंख
४६	*	चक्र	शंख	गदा
२२	चक्र	पद्म	शंख	नीचे खाली लटकता है

(ख) इस समूह के अन्तर्गत वे मूर्तियाँ रखी गई है, जिनका पहला हाथ वरद-मुद्रा मे है और शेष तीन हाथो मे शंख, चक्र, गदा और पद्म में से कोई तीन है। देखिए :

४३	वरद	गदा	चक्र	शंख
४४	वरद	गदा	चक्र	शंख
४७	वरद	गदा	चक्र	शंख
४९	वरद	गदा	चक्र	शंख
५५	वरद	शंख	पद्म	चक्र
५८	वरद	चक्र	पद्म	शंख
६६	वरद	पद्म	चक्र	शंख
६८	वरद	पद्म	शंख	गदा
६९	वरद	चक्र	पद्म	शंख
८१	वरद	गदा	चक्र	शंख
८२	वरद	गदा	चक्र	शंख

ऐसी कुछ मूर्तियो का एक हाथ खण्डित मिलता है :

३९	वरद	गदा	पद्म	*
५४	वरद	शंख	*	चक्र
६७	वरद	चक्र	*	शंख
८६	वरद	गदा	चक्र	*

(ग) इस समूह की मूर्तियो का पहला हाथ वरद की अपेक्षा अभय-मुद्रा मे है और शेष हाथ पूर्ववत् हैं। कुछ का एक हाथ खण्डित है। देखिए :

२९	अभय	शंख	चक्र	गदा
३७	अभय	चक्र	शंख	गदा
६०	अभय	चक्र	पद्म	शंख
८४	अभय	गदा	चक्र	शंख
२७	अभय	गदा	चक्र	*
३३	अभय	गदा	*	शंख
४२	अभय	*	शंख	गदा

* हाथ भग्न है।

(घ) इस समूह की मूर्तियों का पहला हाथ समूह (ख) की भाँति वरद-मुद्रा में है, किन्तु चौथे में चार आयुधो मे से कोई न होकर जल-पात्र अथवा घट (अमृतघट) है। ऐसी एक मूर्ति का पहला हाथ वरद-मुद्रा मे प्रदर्शित होने के साथ-साथ अक्षमाला-युक्त भी है :

५६	वरद	शख	चक्र	घट
५७	वरद	शख	पद्म	घट
५६	वरद	चक्र	*	घट
६१	वरद	शख	पद्म	घट
६२	वरद	चक्र	पद्म	घट
६३	वरद	शख	चक्र	घट
६४	वरद	गदा	*	घट
६५	वरद तथा अक्षमाला	पद्म	चक्र	घट

(ङ) जिन मूर्तियो का चौथा हाथ कट्यवलम्बित है और शेष तीन हाथ उपर्युक्त समूहो मे से किसी एक समूह की मूर्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, वे इस समूह के अन्तर्गत वर्णित है :

२१	अभय	शख	पद्म	कटि-हस्त
२८	चक्र	पद्म	शख	कटि-हस्त
३८	वरद	पद्म	शख	कटि-हस्त
५१	चक्र	*	शख	कटि-हस्त
७४	अभय तथा अक्षमाला	पद्म	शख	कटि-हस्त

(च) जिन मूर्तियो का चौथे हाथ की अपेक्षा पहला हाथ कटि-हस्त मिलता है, वे इस समूह मे उल्लिखित है :

४८	कटि-हस्त	पद्म	चक्र	शख
७०	कटि-हस्त	चक्र	पद्म	*
८३	कटि-हस्त	शख	पद्म	चक्र
८५	कटि-हस्त	*	पद्म	*
५०	कटि-हस्त	गदा	पद्म	चक्र

(छ) कुछ मूर्तियाँ ऐसी भी है, जिनके ऊपरी दोनो हाथो में पद्म है। इनमे विष्णु सूर्य-नारायण के रूप मे प्रदर्शित हुए प्रतीत होते हैं। देखिए

५३	चक्र	पद्म	पद्म	शख
३६	कटि-हस्त	पद्म	पद्म	शंख
४०	वरद	पद्म	पद्म	शंख

(ज) दो मूर्तियाँ ऐसी भी है, जिनके पहले हाथ मे फल (बीजपूरक) है :

७२	फल	शंख	पद्म	गदा
७३	फल	पद्म	शख	गदा

* हाथ भग्न है।

(झ) कुछ मूर्तियो के दो हाथ खण्डित मिलते हैं और कुछ के चारो हाथ :

२३	गदा	शंख	*	*
४१	गदा	*	*	शख
७१	वरद	*	चक्र	*
४५	*	*	*	*

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इन मूर्तियों द्वारा धारण किए गए आयुधों के क्रम मे बड़ी विविधता और नवीनता प्रदर्शित की गई है। (क) समूह की मूर्तियां चतुर्विंशति मूर्तियो के कुछ रूपों का प्रतिनिधित्व करती है, जिनका अभिज्ञान चतुर्विंशति मूर्तियो के विवरण के अन्तर्गत किया जाएगा। (ख), (ग), और (घ) समूह की मूर्तियों के तीन हाथ सामान्यतः (क) समूह की मूर्तियो के सदृश हैं, किन्तु उनका एक हाथ (पहला) वरद अथवा अभय-मुद्रा में प्रदर्शित है। विविधता के लिए कुछ मूर्तियो का एक हाथ कट्यवलम्बित, बीजपूरक-युक्त, घट-युक्त अथवा अक्षमाला-युक्त भी चित्रित है। कुछ मे विष्णु सूर्य-नारायण के रूप मे (दो हाथों में पद्म के द्वारा) दिखाए गए हैं। विष्णु-प्रतिमा के एक हाथ को अभय-मुद्रा मे चित्रित करने की विशेषता अत्यन्त प्राचीन है। मथुरा की कुषाणकालीन मूर्तियो का एक हाथ इस मुद्रा मे देखा जा सकता है।[१] इस समय की कुछ अन्य मूर्तियों मे जहां पहला हाथ अभय-मुद्रा मे प्रदर्शित है, वहां चौथा अमृतघट से युक्त भी है।[२] जलपात्र या अमृतघट कुषाणकालीन विष्णु-मूर्तियों की ही नहीं, वरन् अन्य देव-मूर्तियों की भी एक विशेषता है।[३] किन्तु इस अमृतघट की बनावट खजुराहो के घट अथवा जलपात्र से भिन्न है। खजुराहो की जिन मूर्तियों के चौथे हाथ मे घट है, उनका पहला हाथ सामान्यतः अभय-मुद्रा मे न होकर वरद मे है। वहां की कुछ मूर्तियो के सदृश दाहिने एक हाथ में अक्षमाला[४] अथवा बीजपूरक[५] लिए विष्णु-मूर्तियां भुवनेश्वर मे भी द्रष्टव्य है। खजुराहो-शिल्पी को लक्षण-ग्रन्थों का ज्ञान तो था ही, वह पूर्ववर्ती एव समकालीन विष्णु-प्रतिमा-निर्माण की परम्पराओ से भी भलीभांति परिचित था। साथ ही मौलिक कल्पना द्वारा मूर्तियो मे विविधता एवं नवीनता भरकर वह मूर्ति-कला की सजीव-झांकी प्रस्तुत करने मे भी सक्षम था।

यद्यपि ये मूर्तियां समभंग[६], आभंग[७] और त्रिभग[८]—तीनो मुद्राओ में खडी मिलती है, किन्तु त्रिभग खड़ी मूर्तियो की प्रचुरता है। अधिकांशतया वे किरीट-मुकुट से अलंकृत हैं[९] (चित्र १८), किन्तु करण्ड-मुकुटधारी मूर्तियों[१०] का भी वहां अभाव नही है। मुकुट के अतिरिक्त, वे हार,

---

१ M.M. Nos. 2007, 2052, *CBIMA*, p. 106.

२ M.M. No. 912, *CBIMA*, p. 105 ; No. 933, *CBIMA*, p. 105 ; Diskalkar, D.B., *JUPHS*, Vol. V, Pt. I, 1932, pp. 21-22 ; मथुरा-कला, पृ० ६१; वाजपेयी, पृ० ४०, ब्रज का इतिहास, पृ० ८३

३ मथुरा-कला, पृ० ५९

४ *ARB*, p. 82

५ वही, पृ० ६९

६ प्र० सं० ४४, ४६, ४७, ४९ आदि।

७ प्र० सं० २७, ३१, ३२, ५२ आदि।

८ प्र० सं० ३७, ४०, ५१, ७३ आदि।

९ प्र० सं० ३७, ३९, ४८, ५१ आदि।

१० प्र० सं० ३४, ३५, ४० आदि।

* हाथ भग्न है।

ग्रैवेयक, कुण्डलों, कंकणों, केयूरों, मेखला, कौस्तुभमणि, यज्ञोपवीत तथा वैजयन्तीमाला से अलंकृत हैं (चित्र १८)। सामान्यतः ये मूर्तियां चरणचौकी पर बिना किसी पार्श्वचर के अकेले खड़ी उत्कीर्ण हैं अथवा उनके साथ चरणचौकी पर एक-दो भक्त अंजलि-मुद्रा मे हाथ जोड़े खड़े अथवा बैठे प्रदर्शित हैं। भक्तो के अतिरिक्त अन्य पार्श्वचरो का चित्रण बहुत कम मूर्तियो के साथ हुआ है। ऐसी एक मूर्ति के दाएँ पार्श्व मे पुरुषविग्रह मे विष्णु का वाहन गरुड़,[1] एक मूर्ति के दाएँ पार्श्व में शंख-पुरुष,[2] एक के साथ चक्र-पुरुष,[3] एक के साथ गदाधारी एक अनुचर,[4] एक के साथ दोनों पार्श्वों मे एक-एक चामरधारिणी (सम्भवतः श्री और पुष्टि अथवा पृथ्वी और लक्ष्मी)[5] तथा एक के दाएँ-बाएँ पार्श्वों में स्थित क्रमशः लक्ष्मी और गरुड (लक्ष्मी पद्मधारिणी हैं और गरुड़ दाएँ हाथ में सर्प लिए है और उनका बायां हाथ कट्यवलम्बित है) और मस्तक के पीछे बने शिरश्चक्र पर पुष्पमालाधारी विद्याधरों का एक युगल द्रष्टव्य है।[6] एक मूर्ति की प्रभावली में ऊपर एक कोने मे ब्रह्मा और दूसरे में शिव, नीचे दाएँ-बाएँ पार्श्वों में क्रमशः शंख और चक्र-पुरुष और अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़े बैठा एक भक्त-युगल भी दर्शनीय है।[7] इसी प्रकार की एक अन्य प्रतिमा में लक्ष्मी और गरुड़ का अतिरिक्त चित्रण दर्शनीय है।[8] एक प्रतिमा के साथ आयुध-पुरुष, लक्ष्मी और गरुड़ तो नहीं चित्रित हैं, किन्तु प्रतिमा के ऊपरी भाग में ब्रह्मा और शिव अवश्य उत्कीर्ण हैं।[9]

(ख) आसन मूर्तियां

खजुराहो में स्थानक मूर्तियों की तुलना में आसन मूर्तियों की संख्या बहुत कम है। इन्हे तीन प्रकारों (योग, भोग आदि के अतिरिक्त) में विभाजित किया जा सकता है: योगासन, ललितासन एवं गरुड़ासन।

योगासन

वैखानसागम के अनुसार योगासन विष्णु का वर्ण श्वेत हो, उनके चार हाथ हों और वे पद्मासन में विराजमान हों। वे जटा-मुकुट, हार, यज्ञोपवीत, कुण्डलों तथा केयूरों से अलंकृत हों, उनके नेत्र कुछ उन्मीलित हों और दो प्राकृतिक हाथ योग-मुद्रा में हों। इस आगम में यह भी स्पष्ट उल्लेख है कि उनके हाथ शंख और चक्र से रहित हों। योगासन विष्णु की पार्श्व-मूर्तियों के रूप में शिव, ब्रह्मा, चन्द्र, सूर्य, सनक और सनत्कुमार एवं भृगु और मार्कण्डेय अथवा मार्कण्डेय और भूदेवी के चित्रण हों।[10] विष्णु के योगेश्वर रूप का कुछ भिन्न विवरण वाचस्पत्य-कोश मे

---

१ प्र० सं० २८
२ प्र० सं० २९
३ प्र० सं० ३२
४ प्र० सं० ३०
५ प्र० सं० ४६
६ प्र० सं० ५५
७ प्र० सं० ८१
८ प्र० सं० ८२
९ प्र० सं० ८६
१० *EHI*, I, I, pp. 85-86.

उद्धृत सिद्धार्थ-संहिता में भी मिलता है, जिसके अनुसार विष्णु पद्मासन में विराजमान हों, उनके नेत्र कुछ उन्मीलित हों तथा उनकी दृष्टि नासिका के अग्रभाग में केन्द्रित हो। उनके प्राकृतिक दो हाथ योग-मुद्रा में हों और उनके प्रत्येक ओर क्रमशः पद्म और बड़े आकार का गदा उत्कीर्ण हो। उनके शेष दो ऊर्ध्व हाथों में सुदर्शन चक्र और पाञ्चजन्य शंख हों।[1]

खजुराहो की योगासन मूर्तियों में चतुर्भुज विष्णु ध्यान-मुद्रा (पद्मासनासीन और दो प्राकृतिक हाथ योग-मुद्रा[2] में प्रदर्शित) मे हैं (चित्र २३) और अधिकांशतया उनके दाएँ-बाएँ ऊर्ध्व हाथ क्रमशः गदा और चक्र से युक्त हैं।[3] एक मूर्ति के इन हाथों में क्रमशः चक्र और पद्म हैं।[4] दो मूर्तियों[5] के इन दोनों हाथों में पद्म (कुण्डलित कमलनाल) के चित्रण से विष्णु को सूर्य-नारायण के रूप में प्रदर्शित किया गया है। कुछ मूर्तियों के ये ऊर्ध्व हाथ खण्डित भी मिलते हैं।[6] ये सभी मूर्तियाँ किरीट-मुकुट तथा सामान्य खजुराहो-आभूषणो से अलंकृत हैं।

कुछ मूर्तियों में पार्श्वचरों के चित्रण का नितान्त अभाव है,[7] किन्तु कुछ मूर्तियों की प्रभावली में पार्श्व-चित्रण देखा जा सकता है। ऐसी एक मूर्ति[8] के मस्तक के पीछे निर्मित शिरश्चक्र तो टूट गया है, किन्तु उसके तीन ओर उत्कीर्ण शिव, विष्णु और ब्रह्मा अभी भी दर्शनीय हैं। मस्तक के ठीक ऊपर कमल-पत्र पर ध्यान-मुद्रा मे विराजमान विष्णु की छोटी प्रतिमा है, जिसके दोनो ओर एक-एक विद्याधर अंकित है। विष्णु के दोनों ओर बनी एक-एक रथिका मे क्रमशः शिव और ब्रह्मा की आकृतियाँ है। नीचे विष्णु के दाई ओर करण्ड-मुकुटधारिणी लक्ष्मी और बाई ओर गरुड़ खडे है। लक्ष्मी का दाहिना हाथ कट्यवलम्बित है और बाएँ मे वे पद्म धारण किए हैं। गरुड़ के ऊर्ध्वकेश हैं और उनके दाएं हाथ में सर्प हैं। विष्णु के पद्मपीठ के सामने एक पृथक् चौकी पर एक शंख रखा प्रदर्शित है। साथ ही प्रभावली मे मत्स्य, कूर्म, राम, बलराम, वामन, बुद्ध, कल्कि आदि अवतारों के अकन भी है। एक अन्य मूर्ति[9] की प्रभावली में ऐसा ही पार्श्व-चित्रण है, किन्तु इसमें शख और चक्र-पुरुषों का अतिरिक्त अंकन है और शिव तथा ब्रह्मा अपनी शक्तियों के साथ आलिंगन-मुद्रा में चित्रित है। दो अन्य प्रतिमाओं[10] के साथ विष्णु के कुछ अवतारों के चित्रण भी देखे जा सकते है। एक प्रतिमा के दाएँ-बाएं पार्श्वों मे क्रमशः शख और चक्र-पुरुषों के चित्रण का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।[11]

पार्श्व-चित्रण की दृष्टि से तीन मूर्तियां विशेष दर्शनीय है। पहली मूर्ति[12] में विष्णु अन्य मूर्तियों के सदृश ध्यान-मुद्रा में है और उनके दाएँ-बाएँ ऊर्ध्व हाथों में क्रमशः चक्र और पद्म है।

---

१ वही, पृ० ८७
२ मात्र नीलप्रतिम् विष्णु की एक मूर्ति के दो हाथ योग-मुद्रा में नहीं प्रदर्शित हैं। इस मूर्ति का पृथक् विवरण आगे (पृ० ७६-७७) दिया गया है (प्र० सं० ९१)।
३ प्र० सं० ८७, ८८, ९०, ९१, ९७
४ प्र० सं० ८९
५ प्र० सं० ९८, ९८क— इनका विवरण अध्याय ४ में सूर्य-नारायण की मूर्तियों के अन्तर्गत दिया गया है।
६ प्र० सं० ९१, ९३, ९४
७ प्र० सं० ८७, ९३
८ प्र० सं० ९१
९ प्र० सं० ९३
१० प्र० सं० ९२, ९७
११ प्र० सं० ९८
१२ प्र० सं० ८९

उनके दोनों ओर उन्हीं की ओर मुख किए तीन-तीन पार्श्वचर अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़े एक-दूसरे के पीछे खड़े हैं। इनके नीचे, विष्णु के प्रत्येक ओर दो-दो अन्य आकृतियाँ हैं। दाईं ओर एक क्षीणकाय सन्यासी विष्णु की ओर अपना पृष्ठ भाग किए और योगपट्ट लपेटे उत्कूटिकासन में बैठा है और उसके सामने बैठी दूसरी पुरुष-आकृति (जो क्षीणकाय नहीं है) अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़े है। इसी प्रकार बाईं ओर बैठा एक पार्श्वचर सामने रखे यज्ञ-पात्र से निकलती हुई ज्वालाओं में हवि डालता (यज्ञ करता) प्रदर्शित है। उसके सामने दूसरा अनुचर अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़े बैठा है। दूसरी और तीसरी मूर्तियों[1] का पार्श्व-चित्रण भी लगभग इसी मूर्ति के सदृश है, किन्तु उनके पादपीठ पर क्रमशः मत्स्य (चित्र २३) और कूर्म की आकृतियाँ भी अंकित हैं, जिससे स्पष्ट है कि वे विष्णु के दो अवतारों को प्रदर्शित करती है। इन मूर्तियों का विवरण सम्बन्धित अवतारों की मूर्तियों के साथ दिया गया है।

किस अभिप्राय से योगासन विष्णु के साथ इन पार्श्वचरों का चित्रण हुआ है, यह कहना कठिन है। श्री त्रिपाठी के मतानुसार बैठे चार पार्श्वचर चार वेद माने जा सकते है और उनमे से कुछ का क्षीणकाय होना, वैदिक धर्म (त्रयीधर्म) के पतन का द्योतक समझा जा सकता है। साथ ही उन्होंने अन्य छ: पार्श्वचरों को छः वेदाग अथवा शास्त्र मानने का भी परामर्श दिया है।[2] किन्तु उनका यह अभिज्ञान कुछ सतोषप्रद नहीं है।

विलक्षण मूर्ति—पद्मासन-मुद्रा मे बैठी विष्णु की एक मूर्ति (मौनव्रतिन् विष्णु) अपने एक हाथ की विशिष्ट मुद्रा के कारण विशेष दर्शनीय है (चित्र २४)[3]। इस मूर्ति मे विष्णु विनत पखुड़ियों वाले एक पद्म पर पद्मासनासीन है। वे मस्तक पर किरीट-मुकुट, गले मे सुन्दर ग्रैवेयक और छोटे मोतियों की इकहरी माला (एकावली), कानों मे कुण्डल, हाथों मे केयूर और कंकण, वक्ष मे कौस्तुभमणि, स्कंध पर यज्ञोपवीत तथा कटि में मेखला धारण किए है। अत्यन्त सुन्दर वैजयन्तीमाला इस मूर्ति की एक अतिरिक्त विशेषता है। देवता के मस्तक के पीछे कमलपत्रांकित मनोहर शिरश्चक्र है, जिसके प्रत्येक ओर पुष्पमालाधारी एक-एक विद्याधर अंकित है। देवता का प्राकृतिक बायाँ हाथ मुख की ओर मुड़ा है और उसकी तर्जनी अधर के बाएँ छोर को स्पर्श करती प्रदर्शित है। हाथ की इस मुद्रा द्वारा विष्णु योग के लिए आवश्यक वातावरण की स्तब्धता पर विशेष बल देते हुए प्रतीत होते हैं।[4] दूसरे बाएँ हाथ मे वे चक्र धारण किए है। दाहिने दोनों

१ प्र० सं० ८८, ९०

२ Tripathi, L. K., *Bhāratī*, No. 3, pp. 94-95, Figs. 4, 5.

३ प्र० सं० ९५; तुल० Kramrisch, St., *JISOA*, Vol I, pp 99-100, Pl. XXX; *DHI*, pp 261, 406, Pl. XXIV; Agarwal, U., *Khajurāho Sculptures and their Significance*, p. 44, Fig 23

४ तक्षशिला से उपलब्ध बाल-देवता (Harpocrates) की कांस्य-प्रतिमा का बायाँ हाथ भी, स्तब्धता के संकेतार्थ, लगभग इसी मुद्रा में है, किन्तु उसकी तर्जनी अधर के स्थान पर चिबुक को स्पर्श करती प्रदर्शित है। मथुरा संग्रहालय के एक वेदिका-स्तम्भ पर उत्कीर्ण एक प्रतिमा के दाहिने हाथ की तर्जनी के साथ-साथ मध्यमा भी चिबुक को स्पर्श करती प्रदर्शित है। इसे डॉ० अग्रवाल और डॉ० उपाध्याय ने सर्वथा उचित ही ऋष्यशृङ्ग की प्रतिमा माना है और साथ में उन्होंने हमारा ध्यान ठीक ही कुमारसम्भव (३, ४१) के उस वर्णन की ओर आकर्षित किया है, जहाँ शिव के लता-गृह के द्वार पर नियुक्त नन्दी एक संकेत से, जिसमें वह अपने दाहिने हाथ की एक अंगुली मुख पर रखता है, गणों को चुप रहने का निर्देश करता है :

लतागृहद्वारगतोऽथ नन्दी वामप्रकोष्ठार्पितहेमवेत्रः।
मुखार्पितैकाङ्गुलिसंज्ञयैव मा चापलायेति गणान्व्यनैषीत्॥

तक्षशिला की प्रतिमा के लिए द्र० Marshall, J, *A Guide to Taxila*, p. 77, Pl. XVI, *Taxila*, Vol. I,

हाथ खण्डित हैं, जिनमें पिछला गदाधारी था (अर्धखण्डित गदा अवशिष्ट है)। देवता के दोनों पार्श्वों में एक-एक पद्महस्ता अनुचरी खड़ी है (सम्भवतः श्री और भूमि)। पादपीठ पर तीन अन्य छोटी आकृतियाँ हैं—अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़कर दोनों कोनों में बैठी आकृतियाँ भक्तों की हैं, और केन्द्रीय आकृति विष्णु के वाहन गरुड़ की हो सकती है। विष्णु की यह एक अत्यन्त विलक्षण मूर्ति है और उपलब्ध किसी शास्त्र में इस मुद्रा की विष्णु-मूर्ति का उल्लेख नहीं मिलता। प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से भी मध्ययुगीन सर्वोत्तम देव-मूर्तियों में यह एक है।

खजुराहो की योगासन मूर्तियाँ आंशिक रूप में ही वैखानसागम और सिद्धार्थ-संहिता के विवरण के अनुरूप बनी है। ये ध्यान-मुद्रा में तो प्रदर्शित है, किन्तु इनके दाएँ-बाएँ ऊर्ध्व हाथों में क्रमशः चक्र और शंख न होकर गदा और चक्र हैं। इनके दाएँ-बाएँ पार्श्वों में पद्म और गदा का भी प्रदर्शन नहीं हुआ है। गदा इनके एक हाथ में है और पद्म सामान्यतः शिरश्चक्र के रूप में चित्रित है। शंख अवश्य कुछ मूर्तियों की चौकी पर प्रदर्शित है।[1] खजुराहो की इन मूर्तियों के सदृश उत्तरभारत की अन्य मध्ययुगीन योगासन मूर्तियों के दाएँ-बाएँ ऊर्ध्व हाथों में क्रमशः गदा और चक्र मिलते हैं और खजुराहो की कुछ मूर्तियों की परम्परा में उनमें भी ब्रह्मा और शिव, आयुध-पुरुषों, विष्णु-पत्नियों तथा कुछ अवतारों के अंकन देखे जा सकते हैं।[2] इन उत्तरभारतीय मूर्तियों के विपरीत दक्षिणभारतीय योगासन विष्णु के दाएँ-बाएँ ऊर्ध्व हाथों में सिद्धार्थ-संहिता के अनुसार क्रमशः शंख और चक्र देखे जा सकते है और कभी-कभी उनके दाएँ-बाएँ पार्श्वों में पद्म और गदा भी चित्रित मिलते हैं।[3]

ललितासन

लेखक को मिली इस प्रकार की सभी मूर्तियाँ चतुर्भुजी है और उनमें विष्णु ललितासन-मुद्रा में बैठे प्रदर्शित है। चार मूर्तियों के अतिरिक्त, सभी मूर्तियों[4] का पहला हाथ वरद-मुद्रा में है और शेष तीन हाथ क्रमशः गदा, चक्र और शंख से युक्त है। ऐसी एक मूर्ति का पहला[5] और एक

p. 159, Vol. II, p 605, Vol. III, Pl. 186, Fig. e. मथुरा की प्रतिमा के लिए द्र० Agrawala, V. S. and Upadhyaya, B. S., *JISOA*, Vol. IV, No 1, pp 62-64, Pl. XI; Agrawala V. S., *Handbook to the Sculptures in the Mathura Museum*, p. 42, Pl. XVI, Fig. 33, *Studies in Indian Art*, pp. 160-61, Fig. 88, *Indian Art*, p. 228, Fig. 138 a, भारतीय कला, पृ० २७७, चित्र ३०६, मथुरा-कला, पृ० ५१

१ प्र० सं०, ६१, ६४

२ M. M. Nos. D37,379, *MMC*, p 102; *CBIMA*, pp 116-17, 120; *DHI*, pp 405-6, Pl. XXIII, Fig. 2; मथुरा-कला, पृ० ६६, डॉ० अग्रवाल और वोगेल ने इन्हें विष्णु के बुद्धावतार की मूर्तियाँ माना है, किन्तु उनका यह विचार उचित नहीं प्रतीत होता। इनमें विष्णु का योगासन रूप प्रदर्शित है, बुद्धावतार नहीं। अन्य मूर्तियों के लिए द्र० *II*, p. 10, Pl. II Fig. 3, Pl. VII.

३ *EHI*, I, I, pp. 102-3, Pl. XXIV; *SIIGG*, p. 55, Fig. 37, इस मूर्ति के साथ शास्त्री ने एक अन्य मूर्ति का उल्लेख किया है (वही, चित्र ३८) और उसके भी योगेश्वर विष्णु होने की सम्भावना व्यक्त की है, किन्तु वह विष्णु-मूर्ति पद्मासन में नहीं, वरन् भद्रपर्यंक पर ललितासन है और इसके प्राकृतिक हाथ भी योग-मुद्रा में नहीं हैं (इस प्रकार यहाँ ध्यान-मुद्रा का अभाव है), अतएव लेखक के विचार से इसे योगेश्वर विष्णु नहीं माना जा सकता है।

४ प्र० सं० १००–१०३, १०५, १०६, १०८–११९

५ प्र० सं० १०२

का दूसरा हाथ[१] टूट गया है। शेष चार मूर्तियों में तीन का पहला हाथ क्रमशः पद्म-युक्त,[२] व्याख्यान-मुद्रा[३] और अभय-मुद्रा[४] में प्रदर्शित है और शेष हाथ पूर्ववत् हैं। चौथी प्रतिमा के चौथे हाथ में घट (अमृतघट) है और पहले तीन, अधिकांश मूर्तियों के सदृश, वरद-मुद्रा, गदा और चक्र से युक्त हैं।[५]

सभी मूर्तियाँ किरीट-मुकुट तथा सामान्य खजुराहो-आभूषणों से अलंकृत हैं। अधिकांश मूर्तियाँ छोटी है, जिनमें किसी प्रकार का पार्श्व-चित्रण नहीं है। कुछ मूर्तियाँ अपेक्षाकृत बड़ी भी हैं, जिनमें पार्श्वचरों का अकन देखा जा सकता है। ऐसी कुछ मूर्तियों की प्रभावली में ब्रह्मा और शिव के चित्रण मिलते हैं और इस प्रकार विष्णु-मूर्ति से मिलकर वे त्रिमूर्ति का प्रदर्शन करते है।[६] इनमें एक के साथ लक्ष्मी और गरुड़ भी देखे जा सकते हैं।[७] एक प्रतिमा के बाएँ पैर के नीचे केवल गरुड़ बैठे भी दर्शनीय है।[८] कुछ प्रतिमाओं में अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़कर बैठे एक-दो भक्त भी अंकित है। एक प्रतिमा के मस्तक के ऊपर तीन नागफणों का घटाटोप भी दर्शनीय है।[९] खजुराहो-मूर्तियो के सदृश ललितासनासीन विष्णु की एक गुप्तकालीन प्रतिमा मथुरा संग्रहालय में भी उपलब्ध है।[१०] ये मूर्तियाँ वैखानसागम के भोगस्थानक[११] वर्गीकरण के अन्तर्गत आती है, किन्तु इनके निर्माण में इस शास्त्र का अनुकरण नही हुआ है।

गरुड़ासन

गरुड़ासन विष्णु का विवरण अग्नि तथा भागवत पुराणों में उपलब्ध है। अग्निपुराण के अनुसार विष्णु, जिनके आठ भुजाएँ हों, गरुड़ पर विराजमान हों, उनके दाएँ तीन हाथों में खड्ग, गदा और बाण हों तथा चौथा वरद-मुद्रा मे हो और बाएँ हाथों में धनुष, खेटक, चक्र और शंख हों।[१२] भागवतपुराण मे गरुड़ासन विष्णु का एक ध्यान उपलब्ध है, जहाँ यह उल्लेख है कि विष्णु गरुड़ पर आरूढ़ हैं और उनके विशाल तथा हृष्ट-पुष्ट आठ भुजाएँ हैं, जिनमें क्रमशः चक्र, शंख, असि, चर्म (खेटक), इषु (बाण), धनुष, पाश और गदा धारण किए है। वे पीतवस्त्र, वनमाला, श्रीवत्स, कौस्तुभमणि, किरीट-मुकुट, कंकण, मकरकुण्डल, मेखला, अंगुलीय, वलय, नूपुर तथा अंगद से अलंकृत हैं।[१३] शिल्पसार में गरुण-नारायण नामक एक मूर्ति का उल्लेख मिलता है, जिसमें गरुड़ पर आरूढ़ विष्णु बाण, धनुष, शंख और चक्र धारण किए चित्रित हैं।[१४]

---

१ प्र० सं० १०३
२ प्र० सं० ९९
३ प्र० सं० १०४
४ प्र० सं० १००
५ प्र० सं० ११०
६ प्र० सं० १०५, १०९
७ प्र० सं० १०५
८ प्र० सं० १०८
९ प्र० सं० ९९
१० M.M. No 512, *CBIMA*, p. 111; Diskalkar, *op. cit.*, p. 24.
११ भोगस्थानक मूर्ति के विवरण के लिए द्र० *EHI*, I, I, pp. 87-89.
१२ अ० पु०, ४९, ११-१७
१३ भा० पु०, ६, ८, १२-१८ ; तुल० Bajpai, K.D., *JUPHS*, Vol. II (New Series), Part II, 1954, p. 18.
१४ *SIIGG*, p. 55.

खजुराहो में गरुडासन विष्णु की मूर्तियाँ दो प्रकार की हैं। एक प्रकार में विष्णु अकेले और दूसरे प्रकार में लक्ष्मी के साथ आलिंगन-मुद्रा में गरुड़ पर आरूढ़ हैं। यहाँ पहले प्रकार की मूर्तियों का विवरण दिया गया है और दूसरे प्रकार की मूर्तियों का वर्णन लक्ष्मी-नारायण की मूर्तियों के साथ किया गया है।

खजुराहो में गरुडासन विष्णु की केवल दो अष्टभुजी मूर्तियाँ लेखक को मिली हैं। पहली मूर्ति[1] में विष्णु गरुड़ के ऊपर ललितासन-मुद्रा में बैठे हैं (चित्र २०)। गरुड़ पुरुषविग्रह में निर्मित हैं। उनके मूँछें है, दाढ़ी में घुँघराले बाल है और वे विष्णु के सदृश अलंकृत हैं। वे अपने दोनों हाथों से देवता के दोनों पैर थामे हुए हैं और उड़ान के लिए तैयार बैठे प्रदर्शित हैं। देवता का मस्तक और उनके आठों हाथ टूट गए हैं। वे उदरबन्ध धारण किए है और सामान्य खजुराहो-आभूषणों से अलंकृत हैं। उनके मस्तक के तीन ओर बनी एक-एक रथिका में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिव उत्कीर्ण हैं। गरुड़ के दाएँ पार्श्व में दो करण्ड-मुकुटधारिणी अनुचरियाँ खड़ी हैं। उनमें एक अपने हाथों में क्रमशः पद्म और चामर धारण किए है और दूसरी का एक हाथ पद्मधारी और दूसरा कट्यवलम्बित है। गरुड के बाएं पार्श्व मे भी इन्हीं के सदृश दो अनुचरियाँ खड़ी हैं। ये चारों विष्णु की पत्नियाँ, श्री-पुष्टि और श्री-भूमि, हो सकती है। इनके अतिरिक्त पादपीठ पर लक्ष्मी की एक अन्य चतुर्भुजी प्रतिमा अंकित है। इसमे देवी पद्म पर विराजमान हैं। दो ऊर्ध्व हाथों में वे पद्म धारण किए है और शेष एक हाथ अभय-मुद्रा में और दूसरा अमृतघट-युक्त है। पादपीठ पर एक भक्त-युगल भी बैठा है। इस चित्रण के अतिरिक्त, प्रभावली में विष्णु के मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, राम, बलराम, बुद्ध और कल्कि अवतारों के भी अकन है।

दूसरी अष्टभुजी मूर्ति मे विष्णु पहली के सदृश ही गरुड़ पर आरूढ़ है। इस मूर्ति का भी सिर खण्डित है और छः हाथ टूट गए हैं। शेष दो हाथों—पहले और आठवें—में क्रमशः चक्र और शंख है।[2]

शेष सभी मूर्तियाँ अपेक्षाकृत छोटी हैं और चतुर्भुजी हैं। ये अधिकांशतः वैष्णव मन्दिरों के गर्भगृह-द्वारो के ललाटबिम्ब में दिखाई पड़ती हैं।[3] अष्टभुजी मूर्तियों के सदृश ही इनमें गरुड़ का चित्रण हुआ है, जिसके पृष्ठभाग पर देवता ललितासन में बैठे प्रदर्शित हैं। एक मूर्ति अवश्य इनसे भिन्न है, जिसमे विष्णु पद्मपीठ पर पद्मासन बैठे हैं और वह पद्मपीठ गरुड़ के पृष्ठ भाग पर स्थित है।[4] विष्णु और उनका वाहन दोनो सामान्य खजुराहो-आभूषणो से अलंकृत हैं।

सभी मूर्तियों के दूसरे, तीसरे और चौथे हाथों में क्रमश गदा, चक्र और शंख हैं। कुछ मूर्तियों के अतिरिक्त, जिनका पहला हाथ अभय-मुद्रा में है,[5] (एक मूर्ति का यह हाथ अभय-मुद्रा में होने के साथ-साथ अक्षमालाधारी भी है)[6] शेष सभी का यह हाथ वरद-मुद्रा में प्रदर्शित है।[7]

---

१ प्र० सं० ११६

२ प्र० सं० ११८

३ प्र० सं० ११२, ११३, ११४ आदि।

४ प्र० सं० १२०

५ प्र० सं० ११२, ११६, ११७

६ प्र० सं० १२२

७ प्र० सं० ११३, ११४, १२१, १२३, १२४

ऐसी कुछ मूर्तियों के एक[१] अथवा दो हाथ[२] टूट भी गए हैं। कुछ मूर्तियों के चारों हाथ टूटे मिलते हैं।[3]

अधिकांश मूर्तियों में पार्श्व-चित्रण का नितान्त अभाव है।[४] किन्तु कुछ मूर्तियों में एक-दो पार्श्वचरों के अंकन मिलते हैं। एक मूर्ति में ब्रह्मा और शिव तथा एक भक्त-युगल अंकित है।[५] एक मूर्ति मे ब्रह्मा और शिव के साथ ही शंख और चक्र-पुरुषो के भी अंकन मिलते हैं।[६] एक अन्य मूर्ति मे केवल शंख और चक्र-पुरुष चित्रित हुए हैं।[७] एक प्रतिमा में विष्णु के किरीट-मुकुट के दोनों ओर एक-एक पुष्पमालाधारी विद्याधर देखा जा सकता है।[८]

उपर्युक्त गरुड़ासन मूर्तियों मे दो मूर्तियाँ अग्नि और भागवत पुराणों के अनुसार अष्टभुजी निर्मित हैं, किन्तु उनके हाथ टूटे होने के कारण यह कहना कठिन है कि उनमे धारण किए गए आयुधों के प्रदर्शन मे भी इन पुराणो का पूर्ण अनुकरण हुआ था अथवा नही। चतुर्भुजी गरुड़ासन मूर्तियों द्वारा धारण किए गए आयुधों के चित्रण में सामान्यत: खजुराहो की अन्य विष्णु की स्थानक और आसन मूर्तियों का अनुकरण किया गया है। विष्णु की गरुड़ासन मूर्तियाँ भारत के अन्य स्थानो मे भी प्राप्त हुई हैं, किन्तु उनके हाथों का चित्रण खजुराहो-मूर्तियों से भिन्न है।[९]

(ग) शयन मूर्तियाँ

वैखानसागम मे विष्णु की योग, भोग, वीर और अभिचारिक प्रकार की शयन मूर्तियों का विस्तृत विवरण है, किन्तु यहाँ पर केवल भोगशयन मूर्ति के लक्षणों का उल्लेख किया जाएगा, क्योंकि खजुराहो में इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार की शयन मूर्तियाँ उपलब्ध नहीं हैं। वैखानसागम के अनुसार भोगशयन मूर्ति चतुर्भुजी तथा श्याम वर्ण और सुपुष्ट अंग वाली हो। उसका चौथाई भाग कुछ उठा हो और तीन चौथाई भाग शेष-शय्या पर शायी हो। उसका एक दाहिना हाथ किरीट को स्पर्श करता अथवा मस्तक की ओर प्रसारित हो और एक बाँया शरीर के समानान्तर प्रसारित होकर जंघा पर स्थित हो। शेष दो हाथो मे क्या हो, इसका उल्लेख नहीं हुआ है। दक्षिण पाद सीधा प्रसारित हो और वाम कुछ झुका हो। स्कन्ध के निकट लक्ष्मी बैठी हों, जिनका दक्षिण हस्त पद्म-युक्त और वाम कटक-मुद्रा मे हो। विष्णु के चरणो के निकट भूदेवी हो, जो उनके बाएँ चरण को स्पर्श करती हों। भूदेवी का दाहिना हाथ नीलोत्पल-युक्त और बायाँ कटक-मुद्रा में हो। विष्णु के दक्षिण और वाम पार्श्वों मे क्रमशः मार्कण्डेय एवं भृगु की प्रतिमाएँ हों। उनके (विष्णु के) चरणों के निकट मधु और कैटभ हों, जो प्रहार करने के लिए तत्पर जान पड़े। जानु से नीचे उनके (मधु-कैटभ के) पाद सागर की लहरों में छिपे हो और वे अनन्त, जिस पर

१ प्र० सं० १२२
२ प्र० सं० १२४
३ प्र० सं० ११४, १२०
४ प्र० सं० ११२, ११३, ११४ आदि।
५ प्र० सं० १२०
६ प्र० सं० १२१
७ प्र० सं० १२३
८ प्र० सं० १२२
९ *SIIGG*, p. 55, Fig. 35 ; *IBBSDM*, p. 88, Pl. XXXIV.

विष्णु शायी हों, की विष-ज्वाला से पीड़ित प्रतीत हों। विष्णु की नाभि से निकले पद्म पर ब्रह्मा आसीन हों, जिनके दाईं ओर पाँच आयुध पुरुष तथा गरुड़ हों। गरुड़ के दाहिने, ऊपर की ओर सूर्य की प्रतिमा हो। दूसरी ओर ब्रह्मा के बाएँ पार्श्व में चन्द्र, अश्विन्, बालरूप में तुम्बुरु और नारद प्रदर्शित हों। साथ में दिक्पाल और चामर डुलाती हुई अप्सराएँ भी उत्कीर्ण हो। इस चित्रण के अतिरिक्त, पार्श्व-मूर्तियों के रूप मे ब्रह्मा, शिव, गणेश, तथा दुर्गा की प्रतिमाएँ भी प्रदर्शित होने का उल्लेख है।[1]

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में शेषशायी विष्णु पद्मनाभ नाम से वर्णित है। इस वर्णन के अनुसार पद्मनाभ जल के बीच पड़े शेष पर शयन करते हों। शेष के फण-समूह के विशाल रत्नों के कारण उनका मस्तक दृष्टि को चकाचौंध करता हो। उनका एक चरण लक्ष्मी की गोद मे और दूसरा शेष-फण की गोद मे रखा हो। उनका एक हाथ जानु पर प्रसारित, दूसरा नाभि पर स्थित, तीसरा मस्तक के नीचे, और चौथा सतानमंजरी-युक्त हो। उनकी नाभि से उत्पन्न कमल पर ब्रह्मा प्रदर्शित हों और कमलनाल से संलग्न मधु और कैटभ असुर हों। शेष के समीप विष्णु के आयुध-पुरुषों का चित्रण हो।[2]

पद्मपुराण मे भी शेषशायी विष्णु का लगभग ऐसा ही विवरण मिलता है, किन्तु वहाँ उनकी दो भुजाएँ—एक जानु पर प्रसारित और दूसरी मूर्धदेशस्थ—वर्णित है।[3]

अपराजितपृच्छा और रूपमण्डन मे विष्णु का यह रूप जलशायी नाम से वर्णित हुआ है। कुछ सूक्ष्म अन्तर के अतिरिक्त इनके विवरण पूर्ववत् हैं। अपराजितपृच्छा के अनुसार किरीट, माला, वनमाला, हार, कुण्डलों और केयूरों से अलंकृत विष्णु शेष-पर्यंक पर शयन करते हों। उनके चार हाथ हों—दाहिना एक सिर पर और दूसरा हृत्कमल पर स्थित हो तथा बाएँ ऊर्ध्व एवं अध क्रमशः सुदर्शनचक्र और गदा से युक्त हों। उनके मुकुट के ऊपर माला-तुल्य सात फण व्यवस्थित हों। चरणों के पास लक्ष्मी तथा अंजलि-मुद्रा मे हाथ जोड़े गरुड एवं नाभिकमल पर ब्रह्मा हों। साथ ही सप्तलोक, नागदेवियाँ तथा दशावतार भी अंकित हों।[4] यहाँ मधु और कैटभ का उल्लेख नहीं है।

रूपमण्डन मे उपलब्ध जलशायी विष्णु का वर्णन संक्षिप्त है। यहाँ नाभिपंकज पर धाता, विष्णु के सिर के निकट श्री और भूमि देवियाँ, दोनों पार्श्वों मे मधु और कैटभ तथा निधि, अस्त्र आदि के चित्रित होने का उल्लेख है।[5]

इस मूर्ति को अनन्तशायी नारायण अथवा जलशायी नारायण[6] भी कहा गया है। भट्टाचार्य[7] द्वारा इस मूर्ति की व्याख्या तीन दृष्टियों से की गई है। पहली का सम्बन्ध आध्यात्मिक अथवा दार्शनिक संसार से, दूसरी का आधिभौतिक संसार से और तीसरी का आधिदैविक अथवा पौराणिक संसार से है। पहली दृष्टि से यह मूर्ति सृष्टि का प्रतीक है—अनन्त अथवा शेष संसार

---

१ *EHI*, I, I, pp. 92-94.
२ वि० ध०, ८१, २-८
३ *II*, p. 6.
४ अपरा०, २१९, १-९
५ रूप०, ३, २९-३०
६ *II*, p. 6.
७ वही, पृ० ६-८; तुल० प्रतिमा-विज्ञान, पृ० २५१-५२

का मूल-तत्व, विष्णु बुद्धि-तत्व तथा ब्रह्मा पुरुष अथवा जीव । सांख्य दर्शन की भाषा में अनन्त प्रकृति, विष्णु महत्तत्व और ब्रह्मा अहंकार है । सृष्टि के आदि में सर्वत्र तमोमयी सत्ता थी, उससे बुद्धि अथवा प्रकाश (चिन्मय) का प्रादुर्भाव हुआ, तत्पश्चात् उससे संसार एवं मनुष्य की उत्पत्ति हुई । दूसरी (भौतिक) दृष्टि से यह सम्पूर्ण सृष्टि एक प्रकार का शनैः-शनैः विकास है, जो सूर्य के आदिम परमाणु-तत्व (Proto-atomic Matter) से प्रादुर्भाव हुआ और पुनः जिसने सौर-मण्डल की रचना की । इस आदिम परमाणु-तत्व का प्रतीक है अनन्त, सूर्य का विष्णु और संसार का ब्रह्मा-सहित पद्म । पौराणिक दृष्टि से नारायण को, जो जलनिवासी है, सृष्टि के आदि में अनन्त सर्प पर शायी बताया गया है । उनकी नाभि से उत्पन्न हुआ एक विशाल कमल-वन, सागर और सप्तलोकों-सहित पृथ्वी । इसी कमल के मध्य ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई । विष्णु के आयुधों और लाञ्छनों का अर्थ तथा प्रयोजन वराहपुराण में स्पष्ट प्रतिपादित है—शंख का प्रयोजन अज्ञान तथा अविद्या के नाशार्थ, खड्ग भी अज्ञान के विनाशार्थ, चक्र कालचक्र का प्रतीक और गदा दुष्टों के दमनार्थ । मधु-कैटभ का चित्रण उस पौराणिक आख्यान की ओर संकेत करता है, जिसके अनुसार सृष्टि के बाद ब्रह्मा पर जब इनका आक्रमण हुआ तो विष्णु ने इन्हें मारकर मधुसूदन उपाधि प्राप्ति की । विष्णु दैत्य-दमनार्थ ही संसार में अवतार लेते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि मधु ही पहला दैत्य था, जिसका उनके आदि-रूप द्वारा दमन हुआ था । महाभारत में ये दो असुर रजस् और तमस् के प्रतीक माने गए हैं ।[1]

विष्णु-मूर्तियों का प्रचलन कुषाणकाल से प्रारम्भ हुआ था और गुप्तकाल में हुआ था उनके अनेक रूपों का विकास, जिनमें एक शेषशायी रूप भी है । शेषशायी विष्णु का विवरण सर्वप्रथम रघुवंश[2] में मिलता है और इस विवरण के अनुरूप गुप्तकाल में मूर्तियाँ भी बनी, जिनमें एक मृण्मूर्ति भीतरगाँव (जिला कानपुर, उ० प्र०) से उपलब्ध हुई है[3] और दूसरी पाषाण-मूर्ति देवगढ़-मन्दिर (जिला झाँसी, उ० प्र०) की शोभा बढा रही है ।[4] गुप्तकाल के बाद इन मूर्तियों का अधिक प्रचार हुआ और मध्ययुग में ऐसी अनेक मूर्तियाँ भारत भर में गढ़ी गईं । मध्ययुगीन मूर्तियों की प्रधान विशेषताएँ पूर्ववत् हैं, किन्तु उनके पार्श्वचित्रण में अवश्य विकास हुआ है ।

खजुराहो में विष्णु की स्थानक मूर्तियों की तुलना में आसन मूर्तियों की संख्या कम है और आसन मूर्तियों की अपेक्षा शयन मूर्तियाँ और भी कम है । वहाँ शेषशायी विष्णु की केवल तीन मूर्तियाँ लेखक को मिली हैं और वहाँ से गई एक मूर्ति[5] अब धुबेला संग्रहालय (म० प्र०) की निधि है ।

सर्वप्रथम उल्लेखनीय मूर्ति[6] का चित्रण तीन समानान्तर भागों में विभाजित है (चित्र २५) । केन्द्रीय भाग प्रधान है, जिसमें चतुर्भुज विष्णु शेष-शय्या (एक सिंहासन के ऊपर व्यवस्थित शेष-कुण्डलियों) पर शयन करते प्रदर्शित है । वे भारी किरीट-मुकुट, वैजयन्तीमाला आदि सामान्य

---

१ *CBIMA*, pp. 112, 120, 124.

२ रघु०, १३, ६

३ *ASI*, Vol. XI, p. 45, Pl. XVII.

४ Vats, M.S., *MASI*, No. 70, pp. 14-15, Pl. X, b ; see also *EHI*, I, I, pp. 110-12, Pl. XXXII ; *DHI*, p. 407, Pl. XXII, Fig. 2 ; *II*, p. 6, Pl. III ; Smith, V. A., *A History of Fine Art in India and Ceylon*, p. 73, Pl. 64 ; Agrawala, V. S., *Gupta Art*, p. 16, Fig, 18.

५ प्र० सं० १२७

६ प्र० सं० १२५

आभूषणों से अलंकृत हैं और उनके मुकुट के ऊपर सात शेष-फणों का विशाल घटाटोप है। उनका दाहिना पैर कुछ मुड़कर निकट बैठी लक्ष्मी की गोद पर है, जिसका वे अपने हाथों से संवाहन कर रही होंगी, किन्तु अब उनके हाथ टूट गए हैं। बायाँ पैर कुछ अधिक मुड़कर शेष-शय्या पर रखा है। उनका दाहिना एक हाथ कुछ मुड़कर कटि के पास है, जिसमें वे लम्बा गदा लिए हैं, जो शय्या के नीचे लटक रहा है। दूसरे दाहिने हाथ पर उनका किरीट-मुकुटधारी सिर आश्रित है। बाईं ओर के दोनों हाथ खण्डित है। नाभि से उत्पन्न कमल पर, पद्मासन-मुद्रा मे त्रिमुख ब्रह्मा विराजमान हैं, जो लम्बकूर्च तथा जटा-मुकुट-युक्त हैं। ब्रह्मा के दाएँ हाथ टूटे हैं और बाएँ एक में वे पुस्तक और दूसरे मे जलपात्र लिए है। विष्णु के सिर से लेकर चरणों तक एक पंक्ति मे कई पार्श्वचर इस क्रम मे चित्रित है : घटाटोप के पीछे अंजलि-मुद्रा मे हाथ जोड़े एक अनुचर, एक देवी (भूदेवी), एक अनुचर जो बाएँ हाथ मे दो थैले लटकाए है और दाहिना हाथ एक थैले के भीतर डाले है (?), बाएँ हाथ मे सनाल-पुष्प लिए एक अनुचर (पद्म-पुरुष ?), अंजलि-मुद्रा मे हाथ जोड़े एक अनुचर, खड्ग और खेटकधारी एक अनुचर (खड्ग-पुरुष ?) तथा दो अनुचर जो एक दूसरे के हाथ मे हाथ डाले है। ये सभी खड़े हैं। भूदेवी के अतिरिक्त खड़े इन पार्श्वचरों में दो तुम्बुरु और नारद और शेष आयुध-पुरुष हो सकते हैं, जिनमे पद्म और खड्ग-पुरुषों का अभिज्ञान सम्भव है। विष्णु-चरणो के निकट बैठी लक्ष्मी के पीछे सर्प-यज्ञोपवीत और सर्प-केयूरों से युक्त गरुड़ खड़े हैं, जिनका दाहिना हाथ स्तुति-मुद्रा मे उठा है और बायाँ कट्यवलम्बित है। मूर्ति के सबसे ऊपरी भाग मे एक लम्बे पीठ पर पंक्तिबद्ध बैठे हुए नवग्रहो और उनके पीछे खड़े हुए दशावतारों के चित्रण है। नवग्रहों में आठ प्रदर्शित हैं, एक ग्रह (केतु) अनुपस्थित है, जो मूर्ति के टूटे कोने पर अंकित रहा होगा। इनके पीछे एक पंक्ति में चित्रित मत्स्य, राम, वराह, नरसिंह, वामन और कल्कि अवतार स्पष्ट है। भूवराह और नरसिंह के बीच विद्याधरों का एक युगल चित्रित है, जो ब्रह्मा के मस्तक के ठीक ऊपर है। शेष-शय्या के नीचे का भाग भी कम रोचक नही है। यहाँ विष्णु के मस्तक के नीचे की ओर एक अनुचर दोनो हाथों से एक चक्र पकड़े कुछ झुका खड़ा है, जो चक्र-पुरुष हो सकता है। इसके पश्चात् दो अनुचरों का चित्रण विशेष दर्शनीय है, जिनमे एक उत्कुटिकासन मे बैठा है और खड़ा हुआ दूसरा कमर से पूर्णतया नीचे झुका है। इन्हे मार्कण्डेय और भृगु मान सकते हैं। इन दोनों के बीच एक अश्व खड़ा है, जिसके सामने एक खड्गधारी बैठा है। इनके चित्रण का प्रयोजन कहना कठिन है। इनके पश्चात् मधु और कैटभ के चित्रण हैं, जिनमे एक दोनो हाथो से एक खड्ग पकड़े है और दूसरा दाएँ हाथ मे खड्ग और बाएँ में खेटक लिए है। ये दोनों प्रहार करने के लिए तैयार प्रदर्शित हैं। इनके सामने, कोने में खड़ा एक अनुचर इन्हें देख रहा है, जो कोई आयुध-पुरुष हो सकता है। इस भाग के एक कोने में (विष्णु के सिर की ओर) वीणाधारिणी पुष्टि खड़ी प्रदर्शित है और दूसरे कोने में (चरणों की ओर) पद्मासन में बैठी गजलक्ष्मी का अंकन है। उनके दो ऊर्ध्व हाथों में पद्म है, जिनके ऊपर दो गज आपस मे सूँड मिलाए लक्ष्मी का अभिषेक करते चित्रित हैं। देवी का शेष एक हाथ वरद-मुद्रा में है और दूसरा टूट गया है। शिल्पीकरण की दृष्टि से यह मूर्ति खजुराहो-कला की सुन्दर कृति है।

दूसरी मूर्ति पूर्ववत् है, किन्तु इसका पार्श्व-चित्रण कुछ भिन्न है और यह कुछ खण्डित भी है।[1]

१ प्र० सं० १२० ; तुल० दीक्षित, स० का०, राजकीय संग्रहालय, धुबेला की मार्ग-दर्शिका, पृ० २४-२५

इसमें भी चतुर्भुज विष्णु पहली के सदृश ही शेष-शय्या पर लेटे हैं, किन्तु यहाँ उनका दाहिना पैर झुका न होकर सीधा प्रसारित है, जिसका निकट बैठी लक्ष्मी अपने हाथों से संवाहन कर रही हैं। इस मूर्ति का अलंकरण, फण-घटाटोप (यहाँ सातों फण स्पष्ट है, खण्डित नहीं) तथा दाएँ हाथों का चित्रण पहली के समान है, किन्तु पहली के विपरीत इसके बाएँ हाथ सुरक्षित हैं, जिनमें शंख और चक्र प्रदर्शित हैं। इसमें नाभिकमल पर आसीन ब्रह्मा के बाईं ओर एक अप्सरा खड़ी है, जो अपने दाएँ हाथ से उनके पखा झल रही है। इस मूर्ति के ऊपरी भाग मे नवग्रह-चित्रण नहीं है और एक पंक्ति में केवल दशावतार चित्रित रहे हैं, जिनमें मत्स्य, कूर्म, बलराम, बुद्ध और कल्कि (पंक्ति के नीचे, अप्सरा के पीछे अश्वारूढ़) अभी भी प्रदर्शित है, शेष टूट गए हैं। दशावतार-पंक्ति में बलराम के बाईं ओर एक और आकृति है, जिसका दाहिना हाथ अभय-मुद्रा में है और बायाँ सर्प-युक्त है। यह विष्णु का वाहन गरुड़ है, किन्तु श्री दीक्षित ने इसे भ्रान्ति से शिव माना है।[1] शेष-शय्या के नीचे खड्गधारी मधु-कैटभ बैठे है, जिनके बीच मे एक अश्व खड़ा चित्रित है। यही पर एक शंख की भी आकृति है। शेष-शय्या के दोनों किनारों पर गदाधारी एक-एक द्वारपाल खड़ा अंकित है। इनके अतिरिक्त एक किनारे पर एक लम्बकूर्च भक्त बैठा है और दूसरे किनारे पर उसकी स्त्री बैठी है, दोनों अंजलि-मुद्रा मे हाथ जोडे है। यह भी एक सुन्दर मूर्ति है।

तीसरी मूर्ति[2] भी लगभग उपर्युक्त मूर्तियों के सदृश है, किन्तु इसकी शयन-मुद्रा और इसका पार्श्व-चित्रण कुछ भिन्न है। मूर्ति के मध्यवर्ती भाग में चतुर्भुज विष्णु शेष-शय्या पर लेटे हैं—बायाँ पैर कुछ मुड़कर शय्या पर रखा है और सीधा प्रसारित दाहिना निकट बैठी लक्ष्मी की गोद मे था, किन्तु लक्ष्मी-सहित यह पैर खण्डित है। लक्ष्मी के निकट ही एक बैठी हुई अन्य आकृति है, जिसके हाथों में पुष्पमाला है। विष्णु का अलंकरण और फण-घटाटोप पूर्ववत् है। शरीर के समानान्तर प्रसारित उनके एक दाहिने हाथ में गदा है, जो शय्या पर सीधा रखा है। दूसरा दाहिना हाथ खण्डित है। बाईं ओर का एक चक्रधारी हाथ मुड़कर सिर के नीचे उपाधान-सा स्थित है और दूसरा खण्डित है। विष्णु के सिर से लेकर चरणो तक कई पार्श्वचर इस प्रकार खड़े हैं: पहले दो अनुचर, फिर एक अनुचरी (भूदेवी ?), इसके बाद एक गदाधारी अनुचर (सम्भवतः द्वारपाल) और अन्त में दो अनुचरियाँ, जिनमें एक के ऊपर उठे हुए दाहिने हाथ में सम्भवतः पंखा है और दूसरी के इसी प्रकार उठे दाहिने हाथ मे चामर है। ये अप्सराएँ हो सकती है। लक्ष्मी के पीछे गरुड़ खड़े हैं, जिनका दाहिना हाथ स्तुति-मुद्रा मे ऊपर उठा है। उनके नीचे एक अनुचर खड़ा है, जिसके दाएँ हाथ मे चक्र-सा प्रतीत होता है। विष्णु के घटाटोप के पीछे दो अनुचर खड़े हैं, जिनमे जटा-मुकुटधारी एक अपने दाएँ हाथ में गदा (?) और बाएँ में फल (?) लिए है। इसके नीचे की ओर खड़ा दूसरा अनुचर कुछ खण्डित है। इन दोनो के चित्रण का प्रयोजन स्पष्ट नहीं है। मूर्ति के सबसे ऊपरी भाग मे दशावतारों का पंक्तिबद्ध अंकन है, जिनमे मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह और कल्कि स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं, शेष पाँच अवतार खण्डित अवस्था में हैं। मत्स्यावतार के पहले नन्दी पर आरूढ़ उमा-महेश्वर आलिंगन-मुद्रा में प्रदर्शित हैं। शेष-शय्या के नीचे का चित्रण भी द्रष्टव्य है। यहाँ पहले एक शंख और दो पादुकाएँ चित्रित है,

१ वही, पृ० ४६
२ म० सं० १२६

जिनके सामने एक भक्त-युगल अंजलि में हाथ जोड़े बैठा है। फिर दो बैठी आकृतियों के मध्य एक अश्व खड़ा है, जिनके चित्रण का अभिप्राय कहना कठिन है। इस मूर्ति में नाभिकमल पर स्थित ब्रह्मा अनुपस्थित हैं (सम्भवतः उनकी प्रतिमा टूट गई है) और पहली दो मूर्तियों के विपरीत खड्गधारी मधु-कैटभ नहीं चित्रित हैं। मूर्ति-कला की दृष्टि से यह मूर्ति भी उपर्युक्त मूर्तियों से कम नहीं है।

चौथी मूर्ति[1] का पार्श्व-चित्रण अपेक्षाकृत सीमित है। इसमे भी चतुर्भुज विष्णु पूर्ववत् शेष-शय्या पर लेटे हैं। उनके बाएँ चरण का संवाहन करती हुई लक्ष्मी बैठी हैं। विष्णु का एक बायाँ हाथ उनके (विष्णु के) सिर को आश्रय दिए है और दूसरा शरीर के समानान्तर है। दाहिना एक हाथ जंघा पर स्थित है और दूसरा खण्डित है। लक्ष्मी के ऊपर की ओर मधु और कैटभ (जो कुछ खण्डित हैं) बाहर की ओर भागते-से अंकित है, जिन्हे एक अनुचर खदेड़-सा रहा है। इस अनुचर के पीछे चार और अनुचर हैं। ये पाँचो आयुध-पुरुष हैं, जिनमें खड्ग-पुरुष और धनुष-पुरुष(?) पहचाने जा सकते है। सामान्य रूप से नाभिकमल पर ब्रह्मा भी विराजमान हैं। यह मूर्ति सुन्दर नही है।

उपर्युक्त मूर्तियाँ सामान्यतः लक्षण-ग्रन्थों के अनुसार बनी है। विष्णु की शेष-शय्या पर शयन करती मुद्रा, उनका अलकरण और सात फणो का घटाटोप, उनके चरण संवाहन करती लक्ष्मी, नाभिकमल पर आसीन ब्रह्मा, असुर मधु और कैटभ, वाहन गरुड, भूदेवी, चार हाथो आदि के चित्रण मे शास्त्रीय विवरण का अनुकरण किया गया है। दो मूर्तियों में चित्रित पंखा और चामर डुलाती पार्श्वचरियाँ वैखानसागम मे उल्लिखित अप्सराएँ हो सकती हैं। दशावतारों का अकन अपराजितपृच्छा के विवरण से साम्य रखता है।[2] वैखानसागम मे सूर्य-चन्द्र के चित्रण का भी उल्लेख हुआ है, किन्तु इन मूर्तियो मे दो ग्रहों के स्थान पर नवग्रह अंकित मिलते है। नवग्रहो का अंकन अन्य स्थानो से प्राप्त ऐसी मूर्तियो मे भी द्रष्टव्य है।[3] चित्रित अन्य पार्श्वचरों मे कुछ आयुध-पुरुष हो सकते है। शेष पार्श्व-चित्रण (जैसे अश्व तथा अन्य आकृतियाँ) उपलब्ध किसी शिल्प-शास्त्र के अनुसार नहीं हुआ प्रतीत होता है। ऐसा चित्रण अन्य स्थानों की मूर्तियों मे भी नही मिलता है। इन मूर्तियो की प्रधान विशेषताओं के चित्रण में खजुराहो-शिल्पी ने शास्त्र-निर्दिष्ट सामान्य लक्षणों का पालन किया है और इनके पार्श्व-चित्रण मे कुछ नई परम्पराओ को जन्म दिया है।

गुप्तकाल और मध्ययुग के बीच बनी शेषशायी विष्णु की अनेक मूर्तियाँ उत्तरभारत के अन्य स्थानों, जैसे भीतरगाँव,[4] देवगढ,[5] उदयगिरि,[6] मथुरा,[7] कालिंजर,[8] नागपुर[9] आदि मे भी पाई गई हैं। पार्श्व-चित्रण के कुछ सूक्ष्म अन्तर के अतिरिक्त उन सभी मे समरूपता है।

---

१ प्र० सं० १२८

२ दशावताराः कर्तव्याः मत्स्याद्योऽन्यकमादिकम् ।
एवं विधः प्रकर्तव्यो विष्णुर्वे लक्षणान्वितः ॥ अपरा०, २१९.८

३ *EHI*, I, I, pp. 114-15, Pl. XXXIV, इस मूर्ति में अंकितवह चित्रित नवग्रहों का अभिज्ञान राव द्वारा नहीं हो सका है और उन्होंने उनके सप्तमातृ होने की सम्भावना व्यक्त की है।

४ *ASI*, Vol. XI, p. 45, Pl. XVII.

५ Vats, M. S., *op. cit.*, pp 14-15, Pl. X. b

६ *ASI*, Vol. X, p. 52.

७ M. M. Nos. 1285, 256, 1503, *CBIMA*, pp. 112, 120, 123.

८ *ASI*, Vol. XXI, p. 41.

९ *Descriptive List of Exhibits in the Archaeological Section of the Nagpur Museum*, No. A12, pp. 8-9.

२. चतुर्विंशति मूर्तियाँ

इस अध्याय के प्रारम्भ मे व्यूहवाद का उल्लेख करते समय यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार प्रारम्भिक चतुर्व्यूह (चतुर्मूर्तियाँ)—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—बढ़कर चौबीस व्यूह (चतुर्विंशति मूर्तियाँ) हो गए। इन बढ़े हुए बीस नामो का भी उल्लेख वहाँ किया गया है। विष्णु के इन चौबीस रूपों की उपासना भारत के विभिन्न भागों में होती रही है। ये सभी मूर्तियाँ एकसदृश हैं, केवल उनके लाञ्छनों—शंख, चक्र, गदा और पद्म—के हेरफेर से उनकी अभिज्ञा होती है।

चतुर्विंशति मूर्तियों का विवरण विभिन्न पुराणों, जैसे पद्म,[१] अग्नि[२] आदि, और अनेक परवर्ती शास्त्रों, जैसे चतुर्वर्गचिन्तामणि,[३] देवतामूर्तिप्रकरण[४], रूप मण्डन[५] आदि, मे उपलब्ध है, किन्तु इन शास्त्रों के विवरण एकसमान नही, उनमें पर्याप्त अन्तर है। विद्याविनोद ने चतुर्वर्गचिन्तामणि तथा पद्म और अग्नि पुराणों की तुलनात्मक विवेचना की है[६] और वे उचित ही इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि उपलब्ध सामग्री के आधार पर सभी मूर्तियों का सदा निर्णायक अभिज्ञान सम्भव नहीं।[७]

पद्म और अग्नि पुराणो मे ये मूर्तियाँ समान क्रम से वर्णित है और उनके लाञ्छनो के क्रम में भी बहुत अधिक समरूपता है, किन्तु पद्मपुराण मे तीन नाम (उपेन्द्र, जनार्दन और हरि) छूट गए हैं और इस प्रकार वहाँ इक्कीस मूर्तियाँ ही वर्णित हैं। अग्निपुराण में सभी मूर्तियो का वर्णन है, किन्तु वहाँ दो मूर्तियों—प्रद्युम्न और केशव—का लाञ्छन-क्रम (पद्म-शख-चक्र-गदा) समरूप है और इस प्रकार एक मूर्ति के लाञ्छन-क्रम की पुनरावृत्ति हो गई है और एक मूर्ति का स्वतंत्र लाञ्छन-क्रम नही वर्णित है। चतुर्वर्गचिन्तामणि मे भी एक मूर्ति (कृष्ण) का उल्लेख नहीं है और एक मूर्ति (केशव) का उल्लेख होते हुए भी उसके लाञ्छनों का वर्णन छूट गया है। इसमे मूर्तियो का वर्णित क्रम भी उपर्युक्त पुराणो से भिन्न है। देवतामूर्तिप्रकरण में सभी मूर्तियाँ वर्णित हैं, किन्तु केशव और जनार्दन के, अधोक्षज और नरसिंह के तथा हरि और वामन के लाञ्छनो के क्रम मे कोई अन्तर नही है। इस प्रकार तीन मूर्तियों के लाञ्छन-क्रम की पुनरावृत्ति हो गई है और तीन का स्वतत्र लाञ्छन-क्रम नही वर्णित है। इसमे वर्णित मूर्तियो का क्रम भी उपर्युक्त पुराणो और रूपमण्डन के क्रम से पूर्णतया भिन्न है। रूपमण्डन मे सभी मूर्तियो का वर्णन है और किसी मूर्ति के लाञ्छन-क्रम की पुनरावृत्ति नही हुई है। इस प्रकार अन्य शास्त्रों-जैसा कोई दोष इसमे नही है और इसीलिए उपलब्ध शास्त्रो मे सर्वाधिक विश्वसनीय यही प्रतीत होता है। रूपमण्डन और अग्निपुराण मे एक मूर्ति (वासुदेव) के अतिरिक्त सभी मूर्तियाँ समान क्रम से वर्णित हैं और उनके लाञ्छन-क्रम मे भी बहुत अधिक

---

१ प० पु०, पाताल खं०, ७८, १६–२०
२ अ० पु०, अ० ४८
३ चतु०, व्रत ख०, अ० १, पृ० ११४-११
४ देव० प्र०, ४, ८–१३
५ रूप०, ३, ८–२१
६ Bidyabinod, B.B., *MASI*, No. 2, pp. 23–33, Pls. VII-VIII.
७ वही, पृ० २८

समरूपता है। अन्तर केवल इतना है कि अग्निपुराण में केशव के क्रम—पद्म-शंख-चक्र-गदा—की जो पुनरावृत्ति प्रद्युम्न के साथ हो गई है, वह रूपमण्डन में नही हुई है और प्रद्युम्न का पृथक् क्रम (चक्र-शंख-गदा-पद्म) वर्णित है। इसके अतिरिक्त इन शास्त्रों द्वारा दिया गया हरि और मधुसूदन का क्रम आपस मे परिवर्तित है (अग्निपुराण के हरि का क्रम—शंख-पद्म-चक्र-गदा—रूपमण्डन के मधुसूदन का क्रम है और रूपमण्डन के हरि का क्रम—शंख-चक्र-पद्म-गदा—अग्निपुराण के मधुसूदन का है)।

इस प्रकार स्पष्ट है कि लाञ्छन-क्रम ही इन मूर्तियों के अभिज्ञान का एकमात्र आधार है। अब प्रश्न है कि शास्त्रों में वर्णित लाञ्छन-क्रम का प्रारम्भ किस हाथ से माना जाए। इस सम्बन्ध में रूपमण्डन और अग्निपुराण मे महत्वपूर्ण सकेत उपलब्ध है। रूपमण्डन में मूर्तियों के विवरण के पश्चात् यह निर्देश है कि इनकी अभिज्ञा के लिए वर्णित लाञ्छनों का क्रम दक्षिणाधः कर से चलेगा।[1] इसे हेमाद्रि ने भी स्वीकार किया है।[2] अग्निपुराण में विवरण के प्रथम श्लोक के अन्त में 'प्रदक्षिणम्' शब्द आया है, जिसका अभिप्राय है चार हाथो के लाञ्छनों का प्रदक्षिणावत् वर्णन। इन सकेतो का स्पष्ट अर्थ है कि इन शास्त्रो मे ये चार लाञ्छन हाथों के इस प्रदक्षिणा-क्रम से वर्णित हुए है · (१) दक्षिण अध., (२) दक्षिण ऊर्ध्व, (३) वाम ऊर्ध्व, तथा (४) वाम अधः। पृष्ठ ८८ की तालिका में, हाथो के इसी क्रम से, विविध शास्त्रों द्वारा निर्देशित प्रत्येक प्रतिमा के लाञ्छनों का स्पष्टीकरण किया गया है।[3]

नारद-पांचरात्रागम में इनमे से १४ मूर्तियों की शक्तियों के नाम भी वर्णित है।[4] यह कहना कठिन है कि शेष १० मूर्तियो की शक्तियों के नाम वहाँ क्यों नहीं उल्लिखित है। रूपमण्डन मे यह उल्लेख मिलता है कि इन मूर्तियो मे से किन की उपासना करने से किस वर्ण के उपासकों को फल प्राप्त होता है।[5]

राव के विचार से ये सभी पद्मासन पर समभंग खड़ी मूर्तियाँ हैं।[6] उनके इस कथन का कोई शास्त्रीय आधार लेखक को उपलब्ध नही हुआ। उपर्युक्त किसी शास्त्र में इन मूर्तियों की स्थिति के विषय में कोई निर्देश नही है। ये मूर्तियाँ स्थानक और आसन दोनों स्थितियों मे मिलती है और सभी स्थानक मूर्तियाँ समभग ही नही है।

खजुराहो की सामान्य स्थानक और आसन मूर्तियो की विस्तृत विवेचना पहले की जा

---

१ एताः पूर्वार्धतो ज्ञेया दक्षिणाधः करक्रमात्।
—रूप०, ३, २१

यद्यपि राव ने रूपमण्डन को ही विश्वसनीय शास्त्र माना है, किन्तु उनका ध्यान इस महत्वपूर्ण संकेत की ओर नहीं गया है और उनका यह कथन कि प्रदक्षिणा का प्रारम्भ दक्षिण ऊर्ध्व हाथ से होता है, स्पष्ट नहीं है. *EHI*, I, I, p 228.

२ एताश्च पूर्वतो ज्ञेया दक्षिणाधः करक्रमात् ॥
—चतु०, व्रत ख०, अ० १, पृ० ११४

३ पद्मपुराण (५, ७८, १९) में यह प्रदक्षिणा-क्रम दक्षिण ऊर्ध्व हाथ से प्रारम्भ हुआ है (दक्षिणोर्ध्वकरक्रमात्), किन्तु इस तालिका में केवल उसका विवरण लिया गया है, उसमें वर्णित हाथों का क्रम नहीं।

४ नामों के लिए द्र० *EHI*, I, I, p. 233.

५ रूप० ३, २-८

६ *EHI*, I, I, pp. 227-28.

चतुर्विंशति मूर्तियों की तालिका

(शं=शंख, च=चक्र, ग=गदा, प=पद्म)

क्रम संख्या	मूर्ति का नाम	निम्नलिखित शास्त्रों के अनुसार लाञ्छन-क्रम				
		रूप०	अ० पु०	प० पु०	देव० प्र०	चतु०
१	वासुदेव	ग श च प	ग श च प	प च शं ग	ग श च प	ग शं च प
२	केशव	प श च ग	प शं च ग	प शं च ग	प च श ग	छूट गया है
३	नारायण	शं प ग च	शं प ग च	शं प ग च	शं प ग च	प शं ग च
४	माधव	ग च शं प	ग च शं प	ग च श प	ग च शं प	ग च शं प
५	पुरुषोत्तम	च प श ग	च प शं ग	च प शं ग	च प शं ग	च प शं ग
६	अधोक्षज	प ग शं च	प ग शं च	प ग शं च	प ग शं च	प ग शं च
७	संकर्षण	ग शं प च	ग शं प च	ग शं प च	ग शं प च	ग शं प च
८	गोविन्द	च ग प श	च ग प शं	च ग प श	च ग प शं	च ग प शं
९	विष्णु	ग प श च	ग प शं च	ग प शं च	ग प शं च	ग प शं च (साथ ही— शं ग प च ? कृष्ण)
१०	मधुसूदन	च श प ग	श च प ग	च शं प ग	च श प ग	च शं प ग
११	अच्युत	ग प च शं	ग प च शं	ग प च श	ग प च श	ग प च शं
१२	उपेन्द्र	श ग च प	शं ग च प	....	श ग च प	प ग च शं
१३	प्रद्युम्न	च शं ग प	ग च श प	प श च ग	च श ग प	च श ग प
१४	त्रिविक्रम	प ग च शं	प ग च शं	प ग च श	प ग च श	प ग श च
१५	नरसिंह	च प ग शं	च प ग शं	च प ग श	प ग शं च	च प श —
१६	जनार्दन	प च शं ग	प च श ग	....	प च श ग	प च शं ग
१७	वामन	शं च ग प	श च ग प	श च ग प	श च ग प	श च ग प
१८	श्रीधर	प च ग शं	प च शार्ङ्ग श अथवा प च ग श	ग च प श	प च ग श	प च ग शं
१९	अनिरुद्ध	च ग श प	च ग शं प	च ग श प	च ग श प	च ग शं प
२०	हृषीकेश	ग च प शं	ग च प श	प च ग श	ग च प श	ग च प शं
२१	पद्मनाभ	श प च ग	श प च ग	च प श ग	श प च ग	शं प च ग
२२	दामोदर	प शं ग च	प शं ग च	प श ग च	प श ग च	प च ग शं
२३	हरि	शं च प ग	श प च ग	....	श च ग प	शं च प ग
२४	कृष्ण	श ग प च	श ग प च	शं ग प च	श ग प च	....

चुकी है। उनमें जो चतुर्विंशति मूर्तियों के अन्तर्गत आ सकती हैं, उनका परिचय नीचे दिया गया है।

विष्णु : स्थानक मूर्तियों में से त्रिभंग खड़ी एक मूर्ति के चार हाथों में क्रमशः गदा, पद्म, शंख और चक्र हैं।[1] ऐसी मूर्ति के विष्णु होने मे उपर्युक्त सब शास्त्र एकमत है।

माधव : गदा, चक्र, शंख और पद्मधारी त्रिभंग खड़ी एक मूर्ति उपर्युक्त सब शास्त्रों के अनुसार माधव की है।[2]

पुरुषोत्तम : खजुराहो मे चक्र, पद्म, शंख और गदा से युक्त, त्रिभंग खड़ी दो प्रतिमाएँ है,[3] जिनमे एक अधिक सुन्दर है[4] (चित्र १८)। उपर्युक्त सब शास्त्र इस लाञ्छन-क्रम की प्रतिमा को पुरुषोत्तम मानने मे एकमत है।

पद्मनाभ : आभंग खड़ी एक मूर्ति[5] ऐसी है, जिसके चार हाथो मे क्रमशः शंख, पद्म, चक्र और गदा हैं। पद्मपुराण को छोड़कर, अन्य शास्त्रो के अनुसार ये पद्मनाभ हैं। पद्मपुराण मे इस आयुध-क्रम की कोई प्रतिमा नही है।

हृषीकेश : त्रिभंग खड़ी एक मूर्ति[6] के चार हाथो में क्रमशः गदा, चक्र, पद्म और शंख है, जो पद्मपुराण को छोड़कर उपर्युक्त सब शास्त्रो के अनुसार हृषीकेश हैं। पद्मपुराण के अनुसार ये श्रीधर है।

अच्युत : गदा, पद्म, चक्र और शंखधारी अच्युत की दो मूर्तियाँ है, जिनमे एक द्विभंग[7] और एक त्रिभंग[8] खड़ी है। इनके अभिज्ञान मे उपर्युक्त सब शास्त्र एकमत हैं। त्रिभंग खड़ी एक मूर्ति ऐसी है, जिसका पहला, तीसरा और चौथा हाथ अच्युत के सदृश है, किन्तु दूसरा हाथ खण्डित है।[9] इस खण्डित हाथ मे यदि पद्म रहा हो तो यह मूर्ति भी अच्युत की ही होगी।

संकर्षण : एक द्विभंग खड़ी मूर्ति के हाथो मे क्रमशः गदा, शंख, पद्म और चक्र है,[10] जो उपर्युक्त सब शास्त्रो के अनुसार संकर्षण हुए।

त्रिविक्रम : एक ललितासन प्रतिमा अपने हाथो मे क्रमशः पद्म, गदा, चक्र और शंख धारण किए है,[11] जो चतुर्वर्गचिन्तामणि के अतिरिक्त उपर्युक्त अन्य शास्त्रों के अनुसार त्रिविक्रम की है। चतुर्वर्गचिन्तामणि के अनुसार यह उपेन्द्र-प्रतिमा हुई। इस लाञ्छन-क्रम की तीन प्रतिमाएँ और है, जिनमे एक[12] पूर्ववत् ललितासन है और दो[13] विशिष्ट प्रकार की स्थानक है[14] (चित्र १९),

---

१ प्र० सं० २४
२ प्र० सं० २६
३ प्र० सं० ३१, ३४
४ प्र० सं० ३१
५ प्र० सं० ३२
६ प्र० सं० ३५
७ प्र० सं० ५२
८ प्र० सं० ७६
९ प्र० सं० ३०
१० प्र० सं० ७७
११ प्र० सं० ९९
१२ प्र० सं० १०२
१३ प्र० सं० २, ६
१४ प्र० सं० ६

किन्तु इनका पहला हाथ खण्डित है। यदि यह खण्डित हाथ पद्मधारी रहा हो तो ये भी त्रिविक्रम-प्रतिमाएँ हुईं।

उपर्युक्त मूर्तियों के अतिरिक्त, लक्ष्मण मन्दिर के गर्भगृह में प्रतिष्ठित वैकुण्ठ-मूर्ति[१] के परिकर में इस वर्ग की निम्नलिखित ललितासन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं—

गोविन्द : चक्र, गदा, पद्म और शंख से युक्त।

अनिरुद्ध : चक्र, गदा, शंख और पद्म से युक्त।

नारायण : पहला, दूसरा और चौथा हाथ क्रमशः शंख, पद्म और चक्र से युक्त और तीसरा खण्डित, जिसमें गदा रहे होने की कल्पना कर ली गई है।

केशव : पद्म, शंख, चक्र और गदा से युक्त।

वामन : शंख, चक्र, गदा और पद्म से युक्त।

श्रीधर : पद्म, चक्र, गदा और शंख से युक्त। पद्मपुराण के अनुसार ये हृषीकेश हुए।

दामोदर : पद्म, शंख, गदा और चक्र से युक्त। चतुर्वर्गचिन्तामणि के अनुसार ये नारायण हुए।

खजुराहो में चतुर्विंशति मूर्तियों के उपर्युक्त रूप ही लेखक को मिले हैं। सभी रूप प्रदर्शित रहे होंगे, किन्तु अब वे नष्ट हो गए हैं। वहाँ अनेक मूर्तियाँ ऐसी हैं, जिनके तीन हाथों के लाञ्छन इस वर्ग की किसी न किसी मूर्ति से साम्य रखते हैं, किन्तु एक हाथ या तो किसी मुद्रा (वरद, अभय अथवा कटि-हस्त) में प्रदर्शित है या इसमें निर्धारित चार लाञ्छनों से भिन्न लाञ्छन है। चारों हाथों में ये चार लाञ्छन (शंख, चक्र, गदा और पद्म) न होने के कारण इन्हें चतुर्विंशति मूर्तियों के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता, जैसा डॉ० उर्मिला अग्रवाल ने किया है।[२]

३. दशावतार-मूर्तियाँ

विभववाद की व्याख्या करते समय, विभिन्न शास्त्रों में उपलब्ध अवतारों की विभिन्न सूचियों की विवेचना इस अध्याय के प्रारम्भ में की जा चुकी है। निम्नलिखित दशावतार प्रायः सर्वमान्य हैं : (१) मत्स्य, (२) कूर्म, (३) वराह, (४) नरसिंह, (५) वामन, (६) परशुराम, (७) रघुराम, (८) कृष्ण, (९) बुद्ध, तथा (१०) कल्कि। कुछ शास्त्र बुद्ध को अवतार न मान कर, उनके स्थान पर कृष्ण के बड़े भाई बलराम को एक अवतार मानते हैं।

इन अवतारों में विश्व के विकास का रहस्य छिपा प्रतीत होता है। प्रथम चार अवतारों में जगद्-रचना की सूचना निहित है। सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वत्र जल ही जल था। अतः जगत् के विकास में मत्स्य ही प्रथम जीव अथवा जन्तु था, जिसने प्राणियों की रचना का प्रतिनिधित्व किया। मत्स्यावतार सृष्टि के इसी विकास का प्रतीक है। जल के पश्चात् पर्वतों का उदय प्रारम्भ हुआ, जिसका प्रतीक कूर्म है। पर्वती प्रदेश को कूर्मस्थान कहा जाता है। अतः सृष्टि के विकास का यह द्वितीय सोपान कूर्मावतार में निहित है। सागर-मन्थन का पौराणिक आख्यान जगत् के उस विकास का सूचक है, जब जल से भूमि का उदय हो रहा था। जल से भूमि के इस उदय होने में

१ प्र० सं० २०७

२ Agarwal, U., *op. cit.*, pp. 29-35, Fig. 7 ; उन्होंने गरुड़ासन विष्णु (जिनका पहला हाथ वरद-मुद्रा में है) को, इन्हीं मूर्तियों के अन्तर्गत रखकर भ्रान्ति से त्रिविक्रम माना है (वही, पृ० ३०-३१, चित्र ५)।

सृष्टि-विकास के तृतीय सोपान का मर्म छिपा है, जो वराहावतार ने सम्पन्न किया। इसी प्रकार नरसिंहावतार में मानव-पशु के विकास की कहानी पढ़ी जा सकती है।[१]

दशावतारों का कोई भी सामूहिक अथवा पृथक् चित्रण कुषाणकाल से पहले का नहीं उपलब्ध है। सर्वप्रथम कुषाण कला में कुछ अवतारों, जैसे वराह और कृष्ण, के दर्शन होते हैं। वराह अवतार की केवल एक मूर्ति है और वह भी कुछ समय पूर्व ही प्रकाशित हुई है।[२] कृष्ण के अवश्य अनेक चित्रण उपलब्ध हैं।[३] इनके अतिरिक्त बलराम-मूर्तियाँ भी हैं, जिनका निर्माण शुंगकाल से ही होने लगा था। किन्तु शुंग[४] और कुषाणकालीन[५] इन मूर्तियों में बलराम का 'वीर' रूप (द्रष्टव्य : प्रारम्भिक भागवत सम्प्रदाय का पचवीरवाद, जिसका उल्लेख इस अध्याय के प्रारम्भ में हो चुका है) ही प्रदर्शित हुआ प्रतीत होता है।

गुप्तकाल से अधिक अवतारों के साहित्यिक और अभिलेखीय विवरण तथा उनकी मूर्तियाँ मिलने लगती हैं। रघुवंश में एक स्थान पर दशावतारों का संकेत प्रतीत होता है।[६] वहीं दूसरे स्थान पर वराहावतार द्वारा पृथ्वी के उठाए जाने[७] और तीसरे स्थान पर रामावतार का[८] सदर्भ भी प्राप्त है। गोप-वेष में कृष्ण का सदर्भ मेघदूत में मिलता है।[९] दाशरथि राम की २० अगुल की एक मूर्ति का उल्लेख वृहत्संहिता में उपलब्ध है।[१०] एरण की विशाल वराह-मूर्ति में उत्कीर्ण तोरमाण के अभिलेख में वराहावतार का स्पष्ट प्रसग है।[११] स्कन्दगुप्तकालीन जूनागढ़ शिलालेख में वामना-

१ *II*, p. 16 ; तुल० प्रतिमा-विज्ञान, पृ० २५६

२ Joshi, N. P., *Mathura Sculptures*, Appendix II, pp. III-VII, Fig. 101, *Arts Asiatiques*, Tome XII, 1965, pp. 113-19, Figs. 1-3.

३ M M. No. 1344, Sahni, D. R , *ASIAR*, 1925-26, pp. 183-84, Pl. LXVII, Fig. C ; Diskalkar, D B., *JUPHS*, Vol. V, Pt I, pp. 27-28 ; Agrawala, V. S., *CBIMA*, p. 143, *Studies in Indian Art*, p, 183, Fig. 105, मथुरा-कला, पृ० ५४ ; M. M. No. 58 4476, Joshi, N P., *Mathura Sculptures*, pp. 68-69. Fig. 64, *Arts Asiatiques*, Tome XII, 1965, pp, 113-14; कराची संग्रहालय के विग्रह के लिए देखिए Agrawala, R. C , *IHQ*, Vol. XXXVIII, No. 1, p. 86 ; मृण्मूर्तियों के लिए देखिए Shah, U. P., *Lalit Kalā*, No. 8, pp. 55-62, Pl. XXI, Figs. 1 and 2.

४ Lucknow Museum No. G215, Agrawala, V. S . *Studies in Indian Art*, p. 186 . "The image cannot be later than the second century B.C., and must be regarded as the earliest representation of any Brāhmanical deity in the whole field of Hindu Iconography", *Indian Art*, p. 235, Fig 145, भारतीय कला, पृ० २८९-९६, ३१३, चित्र ३२०, मथुरा-कला, पृ० ५५-५६; Shastri, A. M., *Nagpur University Journal*, Vol XVI, pp. 6-7, Fig. 2,

५ M.M. Nos. C15, C19, *CBIMA*, pp 200, 124 ; *MMC*, pp. 90-91 (फोगेल ने इन्हे नाग-प्रतिमाएँ माना है) ; मथुरा-कला, पृ० ५६-५७

६ रघु०, १३, ५

७ वही, १३, ८

८ रामाभिधानो हरि- वही, १३, १

९ गोपवेषस्य विष्णोः—मेघ०, १, १५

१० बृहत्सं०, ५८, ३०

११ *CII*, III, pp. 159-61.

वतार का उल्लेख है।[१] वराह[२], नरसिंह,[३] वामन अथवा त्रिविक्रम,[४] राम,[५] कृष्ण[६] तथा बलराम[७] अवतारों के गुप्तकालीन चित्रण भी उपलब्ध है।

गुप्तकाल के पश्चात् दशावतारों के चित्रण का प्रचलन अधिक व्यापक हो गया। ये चित्रण दो प्रकार के है : सभी अवतारों के सामूहिक और उनमें से अनेक के पृथक्-पृथक्। अन्य अवतारों की अपेक्षा वराह, नरसिंह और वामन की पृथक् मूर्तियां अधिक मिलती हैं और साथ ही इन अवतारों के मन्दिर भी मिलते हैं।

खजुराहो में दशावतारों के चित्रण दोनो रूपों में मिलते है—सभी अवतारों के सामूहिक चित्रण के रूप में और अधिकांश अवतारों की पृथक् मूर्तियो के रूप में। अन्य अवतारों की अपेक्षा वराह, नरसिंह, वामन और कृष्ण अवतारों की मूर्तियों का वहाँ बाहुल्य है। वामन और वराह अवतारो का एक-एक मन्दिर भी वहाँ है।

मत्स्यावतार

मूलत. मत्स्यावतार ब्रह्मा प्रजापति से सम्बन्धित था, किन्तु वैष्णव सम्प्रदाय के विकास के साथ इस अवतार का सम्बन्ध विष्णु मे स्थापित हो गया। विष्णु द्वारा मत्स्यावतार ग्रहण करने की कथा भागवतपुराण[८] मे मिलती है, जहाँ यह उल्लेख है कि पिछले कल्प के अन्त मे ब्रह्मा के सो जाने के कारण ब्राह्म नामक नैमित्तिक प्रलय हुआ, जिससे भूलोक सहित सारे लोक समुद्र में डूब गए। प्रलय काल आ जाने के कारण जब ब्रह्मा निद्रित हो रहे थे, वेद उनके मुख से निकल पड़े और उनके पास ही रहने वाले हयग्रीव नामक बली दैत्य ने उन्हें योगबल से चुरा लिया। भगवान् हरि ने दानवराज हयग्रीव की यह चेष्टा जान ली। अतएव उन्होंने मत्स्यावतार ग्रहण किया और हयग्रीव को मार कर वेदों का उद्धार किया। इस प्रकार स्पष्ट है कि विष्णु द्वारा मत्स्यावतार ग्रहण करने का प्रमुख ध्येय वेदो का उद्धार करना था। इस अवतार की कथा महाभारत, मत्स्य तथा अन्य पुराणो में भी मिलती है।

मत्स्यावतार की मूर्ति दो प्रकार से निर्मित हो सकती है. मत्स्यविग्रह में (साधारण मत्स्य के सदृश) अथवा नर-मत्स्य-मिश्रित विग्रह मे (ऊर्ध्व भाग नराकृत और अधः मत्स्याकृत)। मिश्रित विग्रह मे उसके सामान्यत चार हाथ होते है—दो क्रमश वरद और अभय-मुद्रा मे तथा दो शंख और चक्र से युक्त। ऊर्ध्व भाग किरीट-मुकुट तथा सभी आभूषणों से अलंकृत होता है।[९]

---

१ वही, पृ० ६८-६९

२ द्र० उदयगिरि की विशाल मूर्ति, Agrawala, V. S., *Gupta Art*, p. 7, Fig 6; *DHI*, p. 414, Pl. XXV.

३ Vats, M. S., *MASI*, No. 70, p. 21, Pl. XXII C.

४ M.M. No. I 19, *MMC*, pp 137-38, *CBIMA*, p 109; Diskalkar, D.B., *op. cit*, p. 26, Pl 6; M.M. No. 2664, *CBIMA*, p. 113; देवगढ़-मूर्ति, Vats, M. S, *MASI*, No. 70. pp. 20-21, Pl. XIXb.

५ देवगढ़-मन्दिर में अंकित रामायण-दृश्यों के लिए द्र० Vats, M. S., *op. cit*, pp 16-18, Pl. XV-XVII; Agrawala, V. S., *Gupta Art*, pp. 4-5, Fig. 4.

६ देवगढ़-मन्दिर में उत्कीर्ण कृष्ण-लीला के लिए द्र० Vats, M. S., *op cit.*, pp. 18-20. Pl. XVIII-XIX; Agrawala, V. S., *op. cit.*, p. 4, Figs. 2, 3.

७ M.M. No. 1399, *CBIMA*, pp. 124-25.

८ भा० पु०, ८, २४

९ *EHI*, I, I, p. 127.

खजुराहो में मत्स्यावतार का चित्रण सामान्यत. मत्स्यविग्रह में हुआ है। दो पृथक् मूर्तियों के अतिरिक्त इस अवतार के अन्य निदर्शन दशावतारों के सामूहिक चित्रण मे ही देखने को मिलते है। दो स्वतन्त्र मूर्तियो में एक बडी विलक्षण है और इस अवतार की ऐसी मूर्ति कदाचित् ही अन्यत्र मिले। इसमे चतुर्भुज विष्णु ध्यान-मुद्रा मे प्रदर्शित हैं : वे पद्मासन है और उनके सामने के दो हाथ योग-मुद्रा में हैं[१] (चित्र २३)। वे किरीट-मुकुट तथा सामान्य आभूषणो से अलंकृत है और उनके मस्तक के पीछे शिरश्चक्र है। वे दाएँ-बाएँ ऊर्ध्व हाथो मे क्रमशः गदा और चक्र धारण किए हैं। उनके पद्मासन-स्थित पादो के नीचे एक मत्स्य की आकृति है। इस प्रकार ये योगासन विष्णु मत्स्यावतार के रूप मे प्रदर्शित है। योगासन विष्णु के दोनो ओर पाँच-पाँच पार्श्वचर अंकित हैं, तीन खडे और दो बैठे। ये सन्यासी प्रतीत होते है। विष्णु के दाएँ पार्श्व के खडे सन्यासियों में आगे वाले के हाथो के पदार्थ स्पष्ट नही है, पीछे वाले के हाथ अजलि-मुद्रा में जुड़े है और इन दोनो के मध्य खड़े सन्यासी के डाढ़ी है और उसके एक हाथ मे यज्ञ-पात्र है। देवता के बाएँ पार्श्व मे खडे सन्यासियों मे आगे वाला अपने हाथ मे एक पुष्पमाला (?) लिए है और उसके पीछे खडे दो क्षीणकाय प्रदर्शित है, उनमे एक कमण्डलु और दूसरा योगदण्ड (?) लिए है। दाएँ पार्श्व मे बैठे दो सन्यासियो मे एक के डाढी है और दूसरे के नहीं है—दोनों अंजलि-मुद्रा मे हाथ जोड़े है। बाएँ पार्श्व मे बैठे सन्यासियों मे आगे वाले के एक हाथ में योगदण्ड (?) है और उसका दूसरा हाथ स्तुति-मुद्रा मे प्रदर्शित है। उसके पीछे बैठे सन्यासी के हाथ अजलि-मुद्रा मे है। इसी के सदृश दो मूर्तियाँ और हैं, एक मे कूर्म की आकृति द्वारा कूर्मावतार का प्रदर्शन है[२] और दूसरी केवल योगासन विष्णु की है,[3] जिसका वर्णन योगासन मूर्तियो के अन्तर्गत किया जा चुका है। इसी मूर्ति के विवरण के साथ ही श्री त्रिपाठी[४] द्वारा किया गया इनके पार्श्वचरों के सम्भावित अभिज्ञान की भी चर्चा की गई है।

एक छोटी रथिका मे उत्कीर्ण मत्स्यावतार की दूसरी पृथक् प्रतिमा[५] मत्स्यविग्रह मे है (चित्र २६)। *इसमें कमलपत्र के ऊपर एक साधारण मत्स्य प्रदर्शित है। मत्स्य* के ऊपर, चार वेदों के प्रतिनिधि-स्वरूप, छोटे-छोटे चार पुरुष-मुख बने है। इस प्रकार यहाँ मत्स्यावतार द्वारा किया गया वेदों का उद्धार चित्रित है।

उपर्युक्त दो प्रतिमाओं के अतिरिक्त मत्स्यावतार की पृथक् प्रतिमाएँ लेखक को खजुराहो मे नही मिलीं। इस अवतार के शेष सभी अकन, जो उपर्युक्त मत्स्यविग्रह की प्रतिमा के सदृश हैं, दशावतारों के सामूहिक चित्रण मे ही देखने को मिलते है। अनेक अवतारों का सामूहिक अकन वहाँ की सब रूपों की अधिकाश विशाल विष्णु-मूर्तियों की प्रभावली मे हुआ है। इस प्रकार अन्य अवतारों के साथ मत्स्यावतार भी विशाल मूर्तियों[६] के पार्श्व-चित्रण मे दर्शनीय है (चित्र २५)।

गढ़वा से प्राप्त इस अवतार की मत्स्यविग्रह मे निर्मित एक अन्य मूर्ति[७] भी दर्शनीय है,

१ प्र० सं० ६०

२ प्र० सं० ८८

३ प्र० सं० ८९

४ Tripathi, L. K., *op. cit.*, pp. 94-95.

५ प्र० सं० १२९

६ प्र० सं० ६, ७, ११, १२, १२५, १२६ आदि।

७ *II*, Pl. VIII, Fig. 1.

जो खजुराहो-मूर्तियों के सदृश हैं। ऐसी मूर्तियों के विपरीत नर-मत्स्य-मिश्रित विग्रह की एक मूर्ति[१] भी देखी जा सकती है, जिसका ऊर्ध्व भाग नराकृत और अधः भाग मत्स्याकृत है।

कूर्मावतार

मत्स्यावतार की भाँति कूर्मावतार भी मूलतः ब्रह्मा प्रजापति से सम्बन्धित था, किन्तु बाद में इसका सम्बन्ध विष्णु से स्थापित हो गया। परवर्ती शास्त्रों, जैसे भागवतपुराण, में उल्लेख है कि अमृत-प्राप्ति के लिए देवों और दानवों द्वारा सागर-मंथन करते समय भगवान् विष्णु ने कच्छप-रूप मे अपनी पीठ पर मन्दराचल को धारण किया था।[२] सागर-मंथन की यह कथा भी विस्तृत रूप से इस पुराण मे मिलती है।[३]

मत्स्यावतार के समान कूर्मावतार की मूर्ति भी दो प्रकार से निर्मित हो सकती है : कूर्म-विग्रह में (साधारण कूर्म के सदृश) अथवा नर-कूर्म-मिश्रित विग्रह मे (ऊपरी आधा भाग नर और शेष आधा कूर्म के सदृश)। मिश्रित विग्रह की मूर्ति मे चार हाथ होते हैं—दो क्रमशः वरद और अभय-मुद्रा मे तथा दो शंख और चक्र से युक्त। ऐसी प्रतिमा किरीट-मुकुट तथा सभी आभूषणों से अलकृत होती है।[४]

खजुराहो मे मत्स्यावतार के समान कूर्मावतार के भी केवल दो स्वतन्त्र चित्रण लेखक को मिले है और शेष चित्रण अन्य अवतारों के साथ सामूहिक रूप में प्रदर्शित हैं। इनमे एक स्वतन्त्र मूर्ति मत्स्यावतार[५] की उस मूर्ति के सदृश है, जिसमें योगासन विष्णु के साथ मत्स्य का अंकन किया गया है। कूर्मावतार की मूर्ति मे मत्स्य के स्थान पर कूर्म अंकित हुआ है। इसका पार्श्व-चित्रण भी लगभग पूर्ववत् है।[६]

इस मूर्ति के अतिरिक्त इस अवतार के शेष चित्रण कूर्मविग्रह में है और उनमें विशेष रूप से सागर-मंथन का दृश्य प्रदर्शित है। दूसरी पृथक् मूर्ति इसी प्रकार की है[७] (चित्र २७)। इसमे पद्म-पत्र के ऊपर एक साधारण कूर्म स्थित है, जिसके गले मे इकहरी मुक्तामाला है। कूर्मपृष्ठ पर एक दण्डाकार मथानी (मन्दराचल) आधारित है। इस मथानी पर एक सर्प (वासुकि) की नेती लिपटी है, जिसके एक छोर को एक देवता और दूसरे को एक दैत्य पकड़े है, मानो वे सागर-मंथन कर रहे हों। पुरुषविग्रह मे निर्मित देव-दैत्य की प्रतिमाएँ समरूप है। दोनों के गले में इकहरी मुक्तामाला है और सिर पर मुकुट रहे होने के संकेत हैं, जो अब खण्डित हो गए हैं। एक के चरण पद्म-पत्र पर रखे हैं और दूसरे के कूर्म के पीछे छिपे हैं। सागर मंथन का यह एक सुन्दर चित्रण है। इसकी तुलना गढ़वा से प्राप्त एक मूर्ति से की जा सकती है।[८]

उपर्युक्त दो प्रतिमाओं के अतिरिक्त इस अवतार के शेष अंकन विशाल विष्णु-मूर्तियों[९]

१ *IBBSDM*, pp. 105-06, Pl. XXXIX, Fig. 1.
२ भा० पु०, १, ३, १६ ; ८, ७, १३
३ वही, ८, ६-८
४ *EHI*, I, I, pp. 127-28,
५ प्र० सं० ६० (चित्र २३)
६ प्र० सं० ८८ ; तुल० Tripathi, L. K , *op. cit.*, pp. 94-95, Fig. 4.
७ प्र० सं० १३०
८ *II*, Pl. VIII, Fig. 2.
९ प्र० सं० ५, ७, ११, १२, १४५ आदि।

की प्रभावली में उत्कीर्ण अन्य अवतारों की छोटी-छोटी आकृतियो के साथ ही दिखाई पड़ते है। एक दशावतार-पट्ट पर भी अन्य अवतारों के साथ सामूहिक रूप मे चित्रित इस अवतार की प्रतिमा दर्शनीय है, जिसमे सागर-मंथन का सुन्दर दृश्य प्रदर्शित है। यहाँ कूर्म के ऊपर पद्मासन-मुद्रा में लक्ष्मी विराजमान है (चित्र ५५, ५७)।

वराह अवतार

मत्स्य और कूर्म अवतारो के समान प्रारम्भ में वराह अवतार का सम्बन्ध ब्रह्मा प्रजापति से था, किन्तु बाद मे इसे भी विष्णु का अवतार माना जाने लगा। भागवतपुराण[1] के अनुसार विष्णु ने प्रलय-जल मे डूबी हुई पृथ्वी का उद्धार करने के लिए सकल यज्ञमय वरह-शरीर ग्रहण किया था। जल के भीतर ही आदि दैत्य हिरण्याक्ष उनके सम्मुख युद्ध के लिए आ गया, किन्तु वराह भगवान् ने अपनी डाढ़ों से उसके टुकड़े-टुकड़े उसी प्रकार कर दिए जिस प्रकार इन्द्र ने अपने वज्र से पर्वतो के पक्ष काटे थे। वराह की उत्पत्ति और उसके द्वारा पृथ्वी के उद्धार,[2] हिरण्याक्ष के साथ उसके युद्ध[3] और अन्तत. हिरण्याक्ष के वध[4] की विस्तृत कथा भी इस पुराण मे मिलती है। विष्णु, लिंग तथा गरुड पुराणो मे प्रलय-जल मे पृथ्वी के उद्धार करने का कार्य ब्रह्मा द्वारा सम्पादित हुआ बताया गया है।[5]

शास्त्रो के अनुसार पृथ्वी के उद्धार करने मे सलग्न वराहावतार की मूर्ति वराहविग्रह में अथवा नर-वराह-मिश्रित विग्रह (जिसमे मस्तक वराह और शेष शरीर नर का हो) में बन सकती है। वराहविग्रह की मूर्ति को साधारण 'वराह' और मिश्रित विग्रह की मूर्ति को 'नृवराह' की संज्ञा प्रदान की गई है।[6] नृवराह के दूसरे नाम आदिवराह, भूवराह आदि भी हैं। शिल्परत्न मे भी उल्लेख है कि वराहावतार की मूर्ति नृवराह अथवा वराह रूप मे बन सकती है। वराह-मूर्ति के विषय मे इस शास्त्र मे यह निर्देश है कि वह तीक्ष्ण डाढ़ो, चौडे स्कन्ध तथा ऊर्ध्व रोमों से युक्त महाकाय सूकर की भाँति निर्मित होनी चाहिए।[7] अपराजितपृच्छा मे वराहामूर्ति का विस्तृत विवरण है, जहाँ वराह की डाढ के अग्रभाग मे लक्ष्मी (पृथ्वी के स्थान पर लक्ष्मी नाम आया है) के होने का उल्लेख है।[8]

नृवराह-मूर्ति का विस्तृत विवरण विभिन्न उत्तर एवं दक्षिणभारतीय ग्रंथो मे उपलब्ध है। वैखानसागम[9] के अनुसार आदिवराह-मूर्ति का मस्तक वराह का और शेष शरीर मनुष्य का हो। इसके चार हाथ हों, जिनमें दो शंख और चक्र से युक्त हो। कुछ झुका हुआ दक्षिण पाद सपत्नीक बैठे नागेन्द्र के मणि-युक्त फण पर स्थापित हो। शेष बायाँ हाथ भूमिदेवी के चरणो का आधार हो, जो देवता के झुके हुए दक्षिण पाद पर बैठी हो और दायाँ देवी की कटि के चारों ओर हो।

---

१ भा० पु० ३, ७, १
२ वही, ३, १३
३ वही ३, १८
४ वही, ३, १९
५ *EHI*, I. I, pp. 129-32.
६ वि० ध०, ७९, १० : नृवराहो वराहो वा कर्तव्यः क्ष्मा(?)विधारणे ॥
७ शिल्परत्न, राव द्वारा उद्धृत - *EHI*, I, II. Appendix C, p. 30.
८ अपरा०, २१९, १०-२३
९ *EHI*. I, I, pp. 132-33.

देवता का उठा हुआ वराह-मुख देवी के वक्षःस्थल के इतने निकट हो, जिससे वे देवी की सुगन्ध लेने में व्यस्त प्रतीत हों। देवी का वर्ण श्याम हो, वे पुष्पाम्बर तथा सभी आभूषणों से अलंकृत हों। उनके हाथ अजलि-मुद्रा में प्रदर्शित हों और लज्जा-मिश्रित हर्ष से युक्त उनका मुख देवता की ओर हो।

मत्स्यपुराण[1] में इस मूर्ति का कुछ भिन्न विवरण मिलता है। इस पुराण के अनुसार महा-वराह के हाथों मे गदा और पद्म हों। उनका एक चरण कूर्म पर और दूसरा आदिशेष पर स्थित हो। विस्मयोत्फुल्लवदना धारणी उनकी डाढ़ के अग्रभाग पर अथवा बाईं कुहनी पर (मेदिनी-वामकूर्परम्) स्थित हो, जिनका एक हाथ नीलोत्पल-युक्त और दूसरा कट्यवलम्बित हो। नृवराह का यही विवरण शिल्परत्न[2] में मिलता है।

अग्निपुराण[3] मे भी भूवराह का लगभग ऐसा ही विवरण उपलब्ध है, किन्तु वहाँ यह उल्लेख है कि दाएँ हाथ में शंख हो और बाएँ हाथ में पद्म अथवा इसकी कुहनी पर लक्ष्मी स्थित हों। देवता के चरणों के पास भूमि तथा आदिशेष हों।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण[4] में उपलब्ध नृवराह का विवरण पूर्ववत् है, किन्तु वहां कुछ अतिरिक्त विशेषताओं का उल्लेख हुआ है। आदिशेष के वर्णन मे यह कहा गया है कि शेष को चार भुजाओं, रत्नसम्पन्न फणों और आश्चर्य से विस्फारित नेत्रो से, जो देवी को देखने मे तत्पर हो, युक्त निर्मित करना चाहिए। उसके दो हाथों मे हल और मूसल हों और दो हाथ अंजलि-मुद्रा मे जुडे हो और उसके पृष्ठ पर आलीढ-मुद्रा में देवता स्थित हो। देवता की बाईं कुहनी (अरत्नि) पर स्त्री-रूप में द्विभुजी वसुन्धरा स्थित हों, जिनके हाथ नमस्कार-मुद्रा में जुड़े हों। जिस भुजा में वसुन्धरा हों उसी मे शंख हो और अन्य हाथ पद्म, चक्र और गदाधारी हो। अथवा हिरण्याक्ष का सिर काटने के लिए हाथ में चक्र लेकर उद्यत देवता, त्रिशूल लेकर उद्यत हुए हिरण्याक्ष के सम्मुख हो। इस पुराण के अनुसार हिरण्याक्ष मूर्तिमान अनैश्वर्य है, जो ऐश्वर्य-रूप वराह द्वारा निरस्त किया गया है।

वराह अवतार की मूर्तियों के निर्माण का श्रीगणेश कुषाणकाल मे हुआ। इस काल की एक मूर्ति अभी प्रकाश में आई है।[5] इसमे नृवराह के बाएँ स्कन्ध पर पृथ्वी विराजमान है। गुप्तकाल से इनका अधिक बनना प्रारम्भ हुआ। इस काल के शिल्पियो द्वारा उत्कीर्ण उदयगिरि (म० प्र० में विदिशा के निकट) की विशाल नृवराह मूर्ति[6] विशेष दर्शनीय है। इसकी तुलना दक्षिण-भारतीय मूर्तिकारों द्वारा इसके लगभग डेढ सौ वर्षों पश्चात् निर्मित बादामी की दो मूर्तियों[7] से की जा सकती है। मध्ययुग में ऐसी मूर्तियों के निर्माण का प्रचलन अत्यधिक बढ गया था।

१ म० पु०, २६०, २८-३०
२ *EHI*, 1. I, pp. 133-34.
३ अ० पु०, ४९, २-३
४ वि० ध० ७९, २-८
५ Joshi, N. P., *Mathura Sculptures*, Appendix II, pp. III-VII, Fig 101, *Arts Asiatiques*, Tome XII, 1965, pp. 113-19, Figs. 1-3.
६ Agrawala, V. S., *Gupta Art*, p. 7, Fig. 6 ; *DHI*, p. 414, Pl, XXV ; Sivaramamurti, *C., AI*, No. 6, p. 42, Pl. XIV B; Coomaraswamy, A. K., *History of Indian and Indonesian Art*, pp. 85, 100, 241, Fig. 174.
७ Benerji, R. D., *MASI*, No. 25, Pls. IX (b), XVII (b).

उस युग की अनेक मूर्तियाँ भारत के विभिन्न भागो मे उपलब्ध हुई है ।[१] अन्य स्थानों के समान खजुराहो में भी वराह अवतार की मूर्तियों का बाहुल्य है । वहाँ इस अवतार का एक स्वतंत्र मन्दिर भी है, जिसमे विशाल वराह-मूर्ति प्रतिष्ठित है। इस मूर्ति के अतिरिक्त, वहाँ नृवराह की अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध हैं, जिनमे कुछ तो खजुराहो की मनोहर कलाकृतियो मे अपना विशेष स्थान रखती हैं ।

सर्वप्रथम वराह मन्दिर की मूर्ति उल्लेखनीय है[२] (चित्र २९) । इस मन्दिर के मध्य मे एक महाकाय वराह, जिसकी लम्बाई ८ फुट ९ इंच और ऊँचाई ५ फुट ९¾ इच है,[३] एक पादपीठ पर खडा प्रदर्शित है । वराह के सम्पूर्ण शरीर मे अनेक हिन्दू देवी-देवताओं, जैसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, लक्ष्मी, सरस्वती, वीरभद्र और गणेश के साथ सप्तमातृकाओं, अष्टदिक्पालों, अष्टवसुओं, नवग्रहों, नागों, गणों, जलदेव और देवियों, भक्तों आदि, की कुल मिलाकर ६७४ प्रतिमाएँ[४] उत्कीर्ण हैं । वराह द्वारा उठाई गई पृथ्वी की मूर्ति नष्ट हो गई है और पादपीठ पर उनके चरण-चिह्न मात्र अवशिष्ट है । वराह के नीचे, पादपीठ पर नागेन्द्र के अवशेष है । ऐसी अनेक वराह-मूर्तियाँ एरण, ग्वालियर, लखनऊ आदि[५] स्थानो मे उपलब्ध है ।

खजुराहो मे नृवराह-मूर्तियों की झाकी तो देखने ही बनती है, जिनमे कुछ स्थानीय सग्रहालय की शोभा है । इन्हे दो प्रकारों मे विभाजित किया जा सकता है : पहले प्रकार की मूर्तियाँ अपेक्षाकृत विशाल है और उनकी प्रभावली मे घना पार्श्व-चित्रण है और दूसरे प्रकार की मूर्तियाँ पार्श्व-चित्रण-विहीन है और आकार मे छोटी हैं ।

पहले प्रकार की मूर्तियों का वहाँ आधिक्य है और वे सभी समरूप है, केवल उनके पार्श्व-चित्रण मे थोडा-बहुत अन्तर है । कुछ तो कलात्मक दृष्टि से विशेष दर्शनीय है, जिनमे यहाँ सर्वप्रथम वर्णित मूर्ति स्थानीय सग्रहालय मे सुरक्षित है[६] (चित्र ३०) । इसमें विष्णु, जिनका मुख वराह का और शेष शरीर मनुष्य का है, आलीढ-मुद्रा मे प्रदर्शित है . दक्षिण पाद पीछे की ओर सीधा प्रसारित है और वाम पाद आगे बढकर मुडा हुआ है[७] और फिर एक पद्मपत्र पर आधारित है,

१ द्र० दीक्षित, रा० कु०, कन्नौज, फलक. २ ; Banerji, *Eastern Indian School of Mediaeval Sculpture*, Pl XLV. Fig b-e , *HOB*, Vol. I, Pl. LXVII, Fig 162, *IBBSDM*, Pl. XXXVI, Fig 1 and 2 ; *EHI*, I, I, Pls XXXVI-XLI, *SIIGG*, Fig 15, *II*, Pl VIII, Indian Museum Nos. 3898, 899, Bloch, T , *Supplementary Catalogue of the Archaeological Collection of the Indian Museum*, pp. 83-84 ; M.M. No 249, *CBIMA*, p 120, Ganguly, M., *Handbook to the Sculptures in the Museum of the Bangiya Sahitya Parishad*, pp 66-67 Pl. XIV.

२ प्र० सं० १३१

३ *ASI*, Vol II, p. 427

४ वही

५ Sivaramamurti, C., *op cit.*, p. 42, Pl. XIV, Fig. C.

६ प्र० सं० १४२

७ आलीढ-मुद्रा के विषय में यह निर्देश है :

धन्विनां दक्षिणजंघाप्रसारवामपादसंकोचरूपावस्थानम् । —अमरकोश, भरत-भाष्य (*II*, p. 50).

तुल० हलाकृतिमयं मध्य स्तब्धजानुदक्षिणम् ।
वितस्त्य: पंच विस्तारे तदालीढं प्रकीर्तितम् ॥

—अ० पु०, २४८, १२

डॉ० बनर्जी ने इस मुद्रा को प्रत्यालीढ़ और इसके विपरीत मुद्रा को आलीढ़ माना है (*DHI*, pp. 266-67), किन्तु गँगुली ने खजुराहो की इस प्रतिमा के सदृश बड़ी बंगाल की एक नृवराह-मूर्ति के सन्दर्भ में इस मुद्रा को सर्वथा उचित ही आलीढ़-मुद्रा माना है (Ganguly, M., *op. cit.*, p. 66, Pl XIV, Fig. 2) ।

जिसके नीचे सपत्नीक नागेन्द्र स्थित है। इस मुद्रा से ऐसा प्रतीत होता है मानो वे कूदने को उद्यत हों। नागेन्द्र और उनकी पत्नी के शरीर के ऊर्ध्व भाग क्रमशः पुरुष और नारी के हैं और अधः भाग सर्पपुच्छाकृत है, जो एक दूसरे में गुम्फित हैं। उनके सिरों के ऊपर सर्पफणों का एक-एक घटाटोप है। दोनों एक दूसरे के सामने अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़कर बैठे हैं। पद्मपत्र द्वारा पाताल लोक का बोध कराया गया है, जो नागेन्द्र का निवास है। नृवराह हार, ग्रैवेयक, अंगद, कंकण, मेखला, नूपुर तथा वनमाला धारण किए है। उनके सिर के ऊपर एक फैले हुए कमलपत्र का घटाटोप प्रदर्शित है, जिसके द्वारा यह बोध कराया गया है कि देवता पाताल लोक से अभी ही निकल रहे हैं। उनका पहला हाथ कट्यवलम्बित है और उनके शेष तीन हाथो मे क्रमशः गदा, शख और चक्र हैं। शंखधारी तीसरा हाथ मुड़ा हुआ है और उसकी कुहनी पर पृथ्वी विराजमान हैं, जिनका बायाँ हाथ पद्मधारी और दाहिना वराह-मुख पर स्थित है। देवता का वराह-मुख देवी के अति निकट है, मानो वे देवी की सुगन्ध लेने मे व्यस्त हों। उनके सिर के तीन ओर बनी रथिकाओं में ब्रह्मा, सूर्य-नारायण और शिव की बैठी प्रतिमाएँ हैं : सिर के ठीक ऊपर सूर्य-नारायण, उनके दाहिनी ओर ब्रह्मा और बाईं ओर शिव। सूर्य-नारायण ध्यान-मुद्रा मे हैं और उनके दोनों ऊर्ध्व हाथों में पद्म (कुण्डलित कमलनाल) हैं; ब्रह्मा त्रिमुख और चतुर्भुज है और उनके हाथ क्रमशः अभय-मुद्रा, स्रुव, पुस्तक तथा कमण्डलु से युक्त है; और शिव के हाथ क्रमशः अभय-मुद्रा, त्रिशूल, सर्प और कमण्डलु से युक्त हैं। नीचे नृवराह के दाएँ पार्श्व मे गरुड खड़े हैं और बाएँ में लक्ष्मी खड़ी हैं। गरुड़ का बायाँ हाथ सर्पधारी और दाहिना कट्यवलम्बित तथा लक्ष्मी का बायाँ कट्यवलम्बित और दाहिना पद्मधारी है। गरुड और लक्ष्मी के नीचे एक-एक भक्त अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़े बैठा है। इसके अतिरिक्त, प्रभावली मे नौ अवतारो का सुन्दर चित्रण है : ऊपर मत्स्य, कूर्म, नृसिंह; मध्य में एक ओर परशुधारी परशुराम और दूसरी ओर छत्रधारी वामन; और नीचे गरुड के दाएँ पार्श्व में दोनों हाथों मे एक बाण लिए राम, लक्ष्मी के बाएँ पार्श्व में सर्पफणों के नीचे बलराम, राम के सम्मुख भूस्पर्श-मुद्रा मे बुद्ध और बलराम के सम्मुख अश्वारूढ़ कल्कि। प्रधान मूर्ति वराह अवतार की होने के कारण इस अवतार के छोटे अंकन का अभाव है।

एक अन्य मूर्ति भी दर्शनीय है[1] (चित्र ३१)। यह मूर्ति पहली के ही सदृश है, किन्तु इसमें कुछ अतिरिक्त चित्रण है : नृवराह की कटि में मेखला-बद्ध असिपुत्रिका (कटार) और उनके दाएँ चरण के नीचे एक कूर्म प्रदर्शित है। यहाँ लक्ष्मी नृवराह के दाएँ और गरुड बाएँ पार्श्व मे हैं और उनके पार्श्वों मे क्रमशः शंख और चक्र पुरुष खड़े चित्रित है। इस मूर्ति मे नृवराह के तीसरे हाथ में शंख न होकर कटक (चक्र) है और उनका चौथा हाथ खण्डित है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव की छोटी आकृतियाँ रथिकाओं मे नही है और बुद्धावतार भूस्पर्श-मुद्रा के स्थान पर अभय-मुद्रा मे प्रदर्शित है। इस प्रतिमा के सदृश दो प्रतिमाएँ[2] और हैं, जिनमे देवता का दाहिना चरण एक कूर्म पर स्थित है। एक अन्य प्रतिमा की कटि में भी मेखला-बद्ध असिपुत्रिका देखी जा सकती है।[3]

---

१ प्र० सं० १४१
२ प्र० सं० १३५, १४५
३ प्र० सं० १३८

पहले प्रकार की शेष सब प्रतिमाएँ[१] प्रायः उपर्युक्त प्रतिमाओं के सदृश हैं, केवल उनके पार्श्व-चित्रण में थोड़ा-बहुत अन्तर है।

दूसरे प्रकार की केवल तीन प्रतिमाएँ हैं, जिनमें नृवराह तीसरे हाथ की कुहनी पर पृथ्वी को पूर्ववत् धारण किए है। इनमें एक प्रतिमा पूर्ववत् आलीढ़-मुद्रा में है और उसके बाएँ चरण के नीचे सपत्नीक नागेन्द्र स्थित हैं, किन्तु साथ मे अन्य किसी पार्श्वचर का अकन नहीं हुआ है।[२] शेष दो प्रतिमाओं का बायाँ पाद तो आलीढ़-मुद्रा की भाँति संकुचित है (किन्तु उसके नीचे आदि-शेष, उनकी पत्नी आदि कोई नही अकित हैं), किन्तु दाहिना पीछे की ओर सीधा प्रसारित न होकर, जानु से ऊपर की ओर मुड़ा हुआ है और जानु पादपीठ पर स्थित है।[३] इस प्रकार इन दो मूर्तियो में नृवराह खड़े न होकर, कूदने को उद्यत अधबैठे प्रदर्शित हैं।

दोनो प्रकार की सब प्रतिमाएँ चतुर्भुजी हैं। उनमें अधिकांश का पहला हाथ कट्यवलम्बित, दूसरा गदा, तीसरा शंख और चौथा चक्रधारी है।[४] ऐसी दो प्रतिमाओं के दो हाथ खण्डित हैं।[५] कुछ प्रतिमाओं के पहले दो हाथ पूर्ववत् हैं और उनका तीसरा चक्र-युक्त और चौथा शंख-युक्त[६], खण्डित[७] अथवा जघा पर स्थित[८] मिलता है। कुछ प्रतिमाएँ ऐसी भी हैं, जिनका पहला हाथ पूर्ववत् कट्यवलम्बित है, किन्तु शेष तीन हाथ टूट गए हैं।[९] एक प्रतिमा के चारों हाथ टूटे हैं।[१०] इन स्वतन्त्र प्रतिमाओ के अतिरिक्त, विभिन्न विष्णु-मूर्तियो की प्रभावली मे सामूहिक रूप से अकित अनेक अवतारो के साथ नृवराह भी मिलते है।

उपर्युक्त मूर्तियो के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि नृवराह की आलीढ़-मुद्रा, सपत्नीक नागेन्द्र के ऊपर स्थित उनके वाम और कूर्म के ऊपर स्थित[११] दक्षिण पाद, चार हाथों के प्रदर्शन, बाई कुहनी पर बैठी पद्म अथवा नीलोत्पलधारिणी पृथ्वी आदि के चित्रण मे लक्षण-ग्रन्थों का अनुकरण किया गया है। अन्य पार्श्वचरो के अकन मे कोई नवीनता नही है, जो खजुराहो की अन्य विविध विष्णु-मूर्तियो के सदृश है। कलात्मक दृष्टि से कुछ मूर्तियाँ तो खजुराहो-कला की सुन्दर कृतियाँ हैं (चित्र ३०, ३१)। उनमे अत्यन्त ओजस्वी एव शक्तिशाली नृवराह द्वारा बाईं कुहनी पर पृथ्वी को बडे सहज भाव से उठाए जाने के चित्रण में मूर्तिकार को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त, नृवराह-शरीर के अंगो का उपयुक्त सतुलन, मूर्तियो का रमणीय रचना-सौष्ठव, सुन्दर अलकरण तथा बारीकी से उकेरा गया पार्श्व-चित्रण और उनके शिल्पीकरण

---

१ प्र० सं० १३३-३५, १३८-४०, १४३-४५
२ प्र० सं० १३२
३ प्र० सं० १३६, १३७
४ प्र० सं० १३४, १३६, १३८, १४०, १४२
५ प्र० सं० १३५, १४३
६ प्र० सं० १४५
७ प्र० सं० १३७, १४१
८ प्र० सं० १३२
९ प्र० सं० १३८, १४४
१० प्र० सं० १३३
११ सागर (म० प्र०) की वाराही-प्रतिमा का भी एक चरण (वाम) इसी प्रकार कूर्म पर स्थित है (Bajpai, K. D., *Sāgar through the Ages*, Pl. XI)। मत्स्यपुराण (२६०, ३०) में महावराह का एक चरण कूर्म पर और दूसरा नागेन्द्र पर स्थित बताया गया है : कूर्मोपरि तथा पादमेकं नागेन्द्रमूर्द्धनि ॥

की अन्य विशिष्टताएँ इस बात की साक्षी हैं कि खजुराहो-शिल्पी ने अपनी कला पर विजय पा ली थी। इनकी तुलना किसी सीमा तक कुछ अन्य उत्तरभारतीय मूर्तियों[१] से की जा सकती है, यद्यपि उनमें ऐसे पार्श्व-चित्रण का अभाव है।

नरसिंह अवतार

विष्णु के दशावतारों में चौथा नरसिंह अवतार है। इस अवतार की विख्यात कथा विभिन्न पुराणों में मिलती है। नरसिंह का एक विशेषण है 'स्थौण' (स्थूण अर्थात् स्तम्भ से बना), जो विशेष अर्थबोधक है। नरसिंह भगवान् उस स्तम्भ से प्रकट हुए थे, जिस पर उनके प्रबल विरोधी दैत्य हिरण्यकशिपु ने क्रोध से धक्का दिया था। इस दैत्य का पुत्र प्रह्लाद हरि का अनन्य भक्त था। पिता के बहुत समझाने और फिर सताने पर भी जब भगवान् हरि के प्रति प्रह्लाद की निष्ठा कम न हुई तो दैत्य ने खीझकर प्रह्लाद से पूछा—तुम्हारे भगवान् कहाँ हैं ? प्रह्लाद ने उत्तर दिया—वे सर्वत्र हैं, यहाँ तक कि सम्मुख स्थित स्तम्भ पर भी। हिरण्यकशिपु द्वारा उस स्तम्भ पर धक्का देते ही भगवान् विचित्र रूप धारण कर प्रकट हुए—वह रूप न पूर्णतया सिंह का था और न मनुष्य का ही। इस नरसिंह-रूप में उन्होंने दैत्य को अपनी जंघाओं में डालकर, उसके छटपटाते रहने पर भी, अपने नखों से उसका उदर विदारित कर डाला।[२] यही कथा नरसिंह-प्रतिमा-निर्माण की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती है।

शास्त्रों में इन मूर्तियों के तीन प्रकार वर्णित हैं : गिरिज-नरसिंह अथवा केवल-नरसिंह, स्थौण-नरसिंह, तथा यानक-नरसिंह। पहले प्रकार में नरसिंह पद्मासन पर उत्कुटिकासन में अथवा सिंहासन पर ललितासन में अकेले विराजमान,[3] दूसरे प्रकार में अधिकांशतया हिरण्यकशिपु का उदर विदारित करते,[४] और तीसरे प्रकार में गरुड के स्कन्धों अथवा आदिशेष की कुण्डलियों पर आसीन[५] चित्रित हुए हैं। इनके अतिरिक्त, कुछ मूर्तियों में वे लक्ष्मी के साथ आलिंगन-मुद्रा में विराजमान मिलते हैं, जिन्हें गोपीनाथ राव ने लक्ष्मी-नरसिंह की संज्ञा प्रदान की है।[६] कुछ मूर्तियाँ ऐसी भी उपलब्ध हैं, जिनमें नरसिंह हिरण्यकशिपु के साथ युद्ध करते प्रदर्शित हैं।[७] राव को ऐसी मूर्तियों का कोई शास्त्रीय आधार नहीं मिल सका है,[८] किन्तु मत्स्यपुराण[९] में नरसिंह को हिरण्यकशिपु से युद्ध करते हुए निर्मित करने का विवरण मिलता है। इस विवरण के अनुरूप बनी एक मूर्ति खजुराहो में भी उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त वहाँ की सब मूर्तियाँ स्थौण-नरसिंह की हैं, जिनमें देवता हिरण्यकशिपु का उदर विदारित करते प्रदर्शित हैं।

१ *EHI*, I, I, Pl. XXXIX Fig. 2 ; *II*, Pl. VIII, Fig. 3.
२ भा० पु०, २, ७, १४
३ *EHI*, I, I. pp 149-51. Pls. XLII, XLIII.
४ *Ibid.*, pp. 151-54. Pls XLVI. XLVII.
५ *Ibid.*, p. 154.
६ *Ibid.*, Pl. XLI, Figs. 1, 3.
७ *Ibid.*, Pls. XLIV, XLV.
८ *Ibid.*, p. 157.
९ युद्धमानश्च कर्तव्यः क्वचिच्चारण बान्धवैः ।
परिश्रान्तेन दैत्येन तर्ज्यमानो मुहुर्मुहुः ॥
दैत्यं प्रदर्शयेत्तत्र खड्गखेटकधारिणम् ।
—म० पु०, २६०, ४४-४५

स्थौण-नरसिंह-मूर्ति का विवरण विभिन्न शास्त्रों में उपलब्ध है। वैखानसागम[1] के अनुसार यह मूर्ति त्रिभंग खड़ी और बारह अथवा सोलह भुजाओं से युक्त हो। इसमें नरसिंह की बाईं जंघा पर हिरण्यकशिपु फैले हो, जिसका उदर उनके दो हाथो द्वारा विदारित किया जा रहा हो। नरसिंह का दाहिना एक हाथ अभय-मुद्रा मे हो और दूसरा खड्गधारी हो। वे बाएँ एक हाथ से हिरण्यकशिपु का मुकुट पकड़े हो और दूसरे को उठाकर दैत्य पर प्रहार करने को उद्यत हो। दाहिने एक हाथ से दैत्य के पैरो को पकड़े हों और अन्य दो हाथ—एक बायाँ और एक दाहिना—कानों तक उठे हो, जिनमें दैत्य के पेट से निकाली गई आँते पुष्पमाला की भाँति लिए हों। हिरण्यकशिपु के हाथों मे खड्ग और खेटक हो। नरसिंह के दाएँ-बाएँ पार्श्वों मे श्रीदेवी, भूदेवी, नारद तथा अजलि-मुद्रा मे हाथ जोडे प्रह्लाद खडे प्रदर्शित हो। इनके ऊपर इन्द्र तथा अन्य लोकपाल अजलि-मुद्रा मे हाथ जोड़े चित्रित हो। यदि मूर्ति अष्टभुजी हो तो दो हाथ हिरण्यकशिपु का उदर विदारित करने में लगे हों, चार में शख, गदा, चक्र और पद्म हों; और शेष दो मे पुष्पमाला के सदृश हिरण्यकशिपु की आँते हों। मूर्ति की ग्रीवा मोटी, स्कन्ध और नितब अपेक्षाकृत चौडे तथा उदर और कटि क्षीण हो।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण[2] के अनुसार नरसिह का मुख सिह का और देह नर की हो। वे पीन स्कन्ध, कटि तथा ग्रीवा और क्षीण मध्य तथा उदर मे युक्त हों। वे नीलवस्त्र धारण किए हो और सभी आभूषणों से अलकृत हो। उनका मुख एव केसर ज्वाला-युक्त हो और उनके सिर के पीछे प्रभामण्डल हो। वे आलीढ़-मुद्रा मे खडे हो, उनकी जानु पर नीलकमल की कान्ति वाला हिरण्यकशिपु पड़ा हो, जिसके वक्षःस्थल को वे अपने तीक्ष्ण नखो से विदारित करते प्रदर्शित हो। इस पुराण में यह कहा गया है कि हिरण्यकशिपु अज्ञान है, नरसिंह-रूप मे विष्णु ज्ञान है और वे अज्ञान के विनाशक है।

मत्स्यपुराण[3] के अनुसार नरसिंह को आठ भुजाओ तथा विस्फारित मुख एव नेत्रो से युक्त निर्मित करना चाहिए। उनके द्वारा विदारित हिरण्यकशिपु के विषय मे इस पुराण मे यह अतिरिक्त वर्णन है कि उसके पेट से आँते बाहर निकल आई हो, मुख से रुधिर बह रहा हो और उसका मुख तथा भृकुटी विकराल हो। साथ ही यह भी उल्लेख है कि कभी-कभी देवता को दैत्य से युद्ध करते हुए भी प्रदर्शित करना चाहिए, जिस युद्ध मे दोनो के पैर परस्पर गुथे हों और देवता ऐसे प्रतीत हो मानो खड्ग और खेटकधारी थके हुए दैत्य द्वारा उन पर बार-बार प्रहार हुआ है।

अग्निपुराण[4] मे नरसिह के चार हाथ बताए गए है : दो मे वे शख और चक्र धारण किए हो और दो से हिरण्यकशिपु को विदारित करते हो। रूपमण्डन[5] मे दैत्यराज के पेट को फाड़ती हुई केवल दो भुजाओं का उल्लेख है।

खजुराहो मे नरसिह अवतार की स्वतन्त्र मूर्तियाँ वराह अवतार की मूर्तियों से कम हैं।

---

१ *EHI*, I, I, pp. 152-53.

२ वि० ध०, ७८/२, १-५

३ म० पु०, २६०, ३१-३५

४ अ० पु०, ४९, १७

५ रूप०, ३, २५

इनमें आठ, दस, बारह तथा चौंसठ हाथ तक मिलते हैं। आठ भुजाओं वाली दो मूर्तियाँ हैं, जिनमें एक[1] में नरसिंह का बायाँ पैर मुड़कर एक कमलपत्र पर स्थित है और दाहिना खण्डित है। उनका सिर सिंह का और देह नर की है। वे विस्फारित मुख और नेत्रों से युक्त हैं और उनकी जिह्वा नीचे लटकती हुई प्रदर्शित है। उनके सिर पर छोटा-सा करण्ड-मुकुट है और उसके पीछे शिरश्चक्र है। वे ग्रैवेयक, यज्ञोपवीत, कटिसूत्र, कंकण, अंगद तथा वनमाला धारण किए है। उनका एक दायाँ और एक बायाँ हाथ बचा है, शेष टूट गए हैं। बचे हुए दाहिने हाथ से वे अपने बालों की एक लट पकड़े और बाएँ हाथ के नखों से हिरण्यकशिपु का वक्षःस्थल विदारित करते प्रदर्शित हैं। हिरण्यकशिपु उनकी जंघाओं पर पड़ा है, किन्तु अब उसकी प्रतिमा खण्डित है। उसके दाएँ हाथ में खड्ग है, जिससे देवता पर प्रहार करता-सा चित्रित है। देवता के दोनों पार्श्वों मे एक-एक दैत्य का चित्रण हुआ है। दोनों अपने हाथों में धारण की हुई शक्ति से उन पर प्रहार करते चित्रित हैं। शिरश्चक्र के दोनों ओर एक-एक देवी बैठी अंकित हैं। दोनों अपने दो ऊर्ध्व हाथो मे पद्म धारण किए है, चौथे हाथ में अमृतघट लिए हैं और एक का पहला हाथ अभय-मुद्रा मे है और दूसरी का टूटा है। ये विष्णु की दो पत्नियाँ हैं—श्री और भूमि।

दूसरी अष्टभुजी मूर्ति[2] में नरसिंह-रूप पूर्ववत् है, किन्तु उनकी ग्रीवा से वक्षःस्थल तक लहराते हुए केशों का अतिरिक्त प्रदर्शन किया गया है। इसमें हिरण्यकशिपु नरसिंह की जंघाओं पर पडा नहीं, वरन् त्रिभंग खडे देवता के दोनों पैरों के बीच दबा हुआ खडा है, मानो परस्पर युद्ध के परिणामस्वरूप नरसिंह ने उसे पराजित कर पैरों में दबा लिया है। इस प्रकार पहली मूर्ति के विपरीत इसमें देवता द्वारा इसका उदर विदारित होता हुआ नही प्रदर्शित है। अभाग्यवश देव और दैत्य दोनों के हाथ खण्डित हैं, अतएव उनमे धारण किए गए आयुधों का पता नही चलता। नरसिंह के दोनों ओर अन्य असुरों का अंकन हुआ है, जो उन पर खड्ग अथवा शक्ति से आक्रमण करते प्रदर्शित हैं। प्रभावली के ऊपरी दाएँ-बाएँ कोनो पर क्रमशः ब्रह्मा और शिव की बैठी प्रतिमाएँ हैं।

यहाँ दशभुजी दो मूर्तियाँ लेखक को मिली हैं, जिनमे एक[3] प्रत्यालीढ़-मुद्रा मे खड़ी है : बायाँ पैर पीछे की ओर प्रसारित है और आगे बढ़ा हुआ दायाँ मुड़कर एक पद्मपत्र पर स्थित है। इस प्रतिमा का सिर पूर्णतया नष्ट हो गया है और शेष चित्रण पूर्ववत् है। दस हाथो में केवल तीन बचे हैं, दो दाएँ और एक बायाँ। ऊपर उठे हुए इस बाएँ हाथ मे सिर के बालो की एक लट है और दायाँ एक अभय-मुद्रा मे और दूसरा सिंह-कर्ण-मुद्रा में प्रदर्शित है। खण्डित हाथो में दो के द्वारा जंघा पर पड़े हुए हिरण्यकशिपु का पेट विदारित होता रहा होगा। नरसिंह के दक्षिण पाद के नीचे खड्ग और खेटकधारी एक असुर चित्रित है और ऐसा एक असुर उनके बाएँ पार्श्व में भी है। शिरश्चक्र के दोनों ओर एक-एक चतुर्भुजी आकृति है। दोनो का पहला हाथ अभय-मुद्रा में, चौथा अमृतघट-युक्त और दूसरा तथा तीसरा पद्मधारी है। ये दोनो श्री और भूमि प्रतीत होती हैं।

---

१ प्र० सं० १५६
२ प्र० सं० १५७
३ प्र० सं० १५८

दूसरी दशभुजी मूर्ति[1] बहुत खण्डित अवस्था में है। मस्तक, पाद तथा भुजाएँ (एक भुजा को छोड़कर)—सब भग्न है। इस बचे हाथ मे नरसिंह अपने केशों की एक लट पकड़े हैं। दो हाथों द्वारा जंघाओं पर पड़े हिरण्यकशिपु का उदर विदारित करते रहे होंगे—ऐसे संकेत हैं। उनके पार्श्वों में निर्मित अन्य असुर-प्रतिमाएँ तथा मूर्ति के ऊपरी दोनों कोनों पर अंकित ब्रह्मा-शिव की आकृतियाँ भी खण्डित है।

द्वादशभुजी एक मूर्ति है,[2] जिसमें नरसिंह प्रत्यालीढ़-मुद्रा मे खड़े है : वाम पाद पीछे प्रसारित है और संकुचित दक्षिण पाद एक असुर द्वारा धारण की गई खेटक पर स्थित है। पूर्ववत् उनका सिर सिंह का और देह नर की है। स्कन्धो तक लटकती सिर की लम्बी जटाएँ, ग्रीवा से वक्षःस्थल तक लहराते केश, विस्फारित मुख तथा विकराल नेत्र दर्शनीय हैं। सिर के ऊपर करण्ड-मुकुट और पीछे शिरश्चक्र शोभायमान है। मुकुट के अतिरिक्त वे अन्य सामान्य आभूषणो से अलंकृत हैं, जिनमें भारी वनमाला दर्शनीय है। उनकी जंघाओ पर हिरण्यकशिपु पड़ा है : उसका सिर नरसिंह की दाहिनी और पैर बाईं जघा पर हैं। नरसिंह अपने दो हाथों के नखो से उसका उदर विदारित करते प्रदर्शित हैं। उनके शेष दस हाथ खण्डित हैं। उनके दोनो पार्श्वों मे खड्ग-खेटक तथा शक्ति से उन पर आक्रमण करते हुए अनेक असुरो का प्रदर्शन है। नरसिंह के दोनों पैरो के बीच चुप-चाप बैठी एक आकृति प्रह्लाद की हो सकती है। शिरश्चक्र के दोनों ओर पुष्पमाला-धारी एक-एक विद्याधर भी अंकित है।

खजुराहो मे चौसठ भुजाओं से युक्त भी एक नरसिंह-मूर्ति[3] उपलब्ध है (चित्र २८)। इसमे अतिभग खड़े नरसिंह अपने एक बाएँ हाथ से हिरण्यकशिपु की बाईं भुजा पकड़े प्रदर्शित है। शेष सब हाथ खण्डित अवस्था मे है। हिरण्यकशिपु उनकी बाईं जंघा पर पड़ा है। उसकी प्रतिमा भी खण्डित है, किन्तु उसका विदारित उदर और उससे बहते रुधिर का चित्रण अभी भी द्रष्टव्य है। देव-दैत्य दोनो सामान्य आभूषणों से अलकृत है। पादपीठ पर, नरसिंह के दाहिनी ओर चार असुरो का चित्रण है : एक खड्ग से और दूसरा शक्ति से नरसिंह पर प्रहार करने को उद्यत है और दो खण्डित हैं, जिनमें एक हताहत-सा लुढका पड़ा है। बाईं ओर भी आक्रमण करते हुए कई असुर हैं, जिनमे एक की प्रतिमा अपेक्षाकृत बडी है। नरसिंह का मस्तक टूट गया है, किन्तु उसके दोनो ओर बनी रथिकाओ में बैठे ब्रह्मा और शिव दर्शनीय हैं। मस्तक के ठीक ऊपर विष्णु-प्रतिमा-युक्त एक रथिका रही है, जो अब टूट गई। उपलब्ध किसी शास्त्र में इतनी भुजाओं से युक्त नरसिंह-प्रतिमा का विवरण नही मिलता। इन भुजाओं के चित्रण का आधार पुराणों का वह प्रसंग हो सकता है, जहाँ यह कहा गया है कि नरसिंह के चारों ओर फैली हुई सैकड़ो भुजाएँ थी, जिनके नख आयुध का काम देते थे।[4] खजुराहो की नरसिंह-मूर्तियो में यह विशालतम है। अभि-व्यक्ति और रचना, दोनों दृष्टियों से श्रेष्ठ यह मूर्ति अब खण्डित अवस्था में है। सम्भव है वराह

---

१ प्र० सं० १४९

२ प्र० सं० १५०

३ प्र० सं १५१ ; डॉ० उर्मिला अग्रवाल ने भ्रान्ति से इसे 'विष्णु का विकराल रूप' माना है, नरसिंह नहीं (उपर्युक्त, पृ० ४४, चित्र २२)।

४ चन्द्रांशुगौरैश्छुरितं तनूरुहैर्विष्वग्भुजानीकशतं नखायुधम् ॥

—भा० पु०, ७, ८, २२

अवतार के मन्दिर के समान वहाँ नरसिंह अवतार का भी एक मन्दिर रहा हो और यह मूर्ति उसमें प्रतिष्ठित रही हो।

उपर्युक्त स्वतन्त्र मूर्तियों के अतिरिक्त, इस अवतार के छोटे अंकन सामूहिक रूप से चित्रित अन्य अवतारों के साथ भी देखने को मिलते है। इनमे नरसिंह के दो अथवा चार हाथ प्रदर्शित हुए हैं (चित्र ५५, ५८)।

इस प्रकार खजुराहो मे नरसिंह-मूर्तियां मे कम से कम दो और अधिक से अधिक चौंसठ हाथ तक मिलते हैं। विस्फारित सिंह-मुख, विकराल नेत्र, लहराती केशराशि, आलीढ़-प्रत्यालीढ अथवा त्रिभंग मुद्रा, जघाओ पर पडे हिरण्यकशिपु, दो हाथो के नखों द्वारा विदारित उसका उदर अथवा वक्षःस्थल आदि के चित्रण मे शिल्प-शास्त्रो का पूर्ण अनुकरण किया गया है। नरसिंह पर आक्रमण करते हुए दैत्यो का चित्रण उस पौराणिक आख्यान पर आधारित है, जहाँ यह कहा गया है कि जिस समय नरसिह भगवान् ने हिरण्यकशिपु का हृदय विदारित कर उसे पटक दिया, उस समय सहस्रों शस्त्रों से युक्त दैत्य-दानव भगवान् पर प्रहार करने के लिए आ गए, किन्तु भगवान् ने अपनी भुजारूपी सेना, पादो, और नख रूपी शस्त्रों से चारो ओर खदेड-खदेड कर उन्हे मार डाला।[1]

खजुराहो-मूर्तियां के सदृश निर्मित गढ़वा की नरसिह-मूर्ति भी द्रष्टव्य है।[2]

वामन अवतार

विष्णु के पांचवे अवतार वामन की प्राचीनता वैदिक काल तक जा पहुँचती है, क्योंकि आदित्य-विष्णु की त्रिविक्रम पदवी से ही इस अवतार के सम्पूर्ण कथानक का क्रमिक विकास हुआ है। इस विकास की मध्यवर्ती कड़ी शतपथ ब्राह्मण की एक कथा है। इसके अनुसार एक बार असुरों ने पृथिवी को जीत कर उसे बाँटना प्रारम्भ किया। यज्ञ-भूत विष्णु को अग्रणी बनाकर देवता भी पृथिवी का एक अंश माँगने के लिए आगे बढ़े। किन्तु असुरो ने उन्हें केवल उतनी भूमि देना स्वीकार किया जितनी पर विष्णु शयन कर सकते हों। तब देवताओ ने यज्ञ-परिमाण विष्णु के साथ यज्ञ करके सम्पूर्ण पृथिवी को स्वायत्त कर लिया।[3] यहाँ तीन पगो का उल्लेख नही हुआ है, किन्तु एक अन्य मन्त्र मे कहा गया है कि विष्णु ने तीनो लोकों की परिक्रमा करके देवताओ के लिए वह शक्ति प्राप्त की जो आज उनके पास वर्तमान है।[4] पुराणों तथा अन्य शास्त्रों मे इस सम्पूर्ण कथा को विस्तृत किया गया है और उसे प्रभावशाली बनाने के लिए उसमे प्रह्लाद का पौत्र तथा विरोचन का पुत्र बलि (जो अपने पितामह की भाँति हरि का महान् भक्त था), वामन ब्रह्मचारी, वामन, दैत्यों के गुरु शुक्र और अन्य लोग सम्मिलित किए गए हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस विकसित कथानक में वैदिक 'तीन पग' एक महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं, क्योंकि वामन ने केवल उतनी भूमि बलि से माँगी थी जितनी वे तीन पगों में नाप सकते थे। बलि द्वारा तीन पग

---

१ नखांकुरोत्पाटितहृत्सरोरुहं विसृज्य तस्यानुचरानुदायुधान्।
अहन् समस्तान्नखशस्त्रपार्ष्णिभिर्दोर्दण्डयूथोऽनुपथान् सहस्रशः॥
—भा पु०, ७, ८, ३१

२ *II*, Pl. VIII, Fig. 4.

३ Macdonell, A. A., *The Vedic Mythology*, p. 41; सूर्यकान्त, वैदिक देवशास्त्र, पृ० ६२

४ वही

पृथ्वी प्रदान करने का वचन देने पर वामन ने सहसा विराट् रूप धारण करके दो ही पगों से पृथ्वी और स्वर्ग नाप लिया और तीसरा पग बलि के सिर पर रखकर उसे पाताल लोक में रहने के लिए भेज दिया।

वामन अवतार की मूर्तियाँ दो प्रकार की होती है, एक वामन की और दूसरी तीन पग नापते हुए विराट्रूप त्रिविक्रम की। लक्षण-ग्रन्थों मे इन दोनों प्रकार की मूर्तियों के विवरण मिलते है। यह आश्चर्य की बात है कि बृहत्संहिता मे पहले पाँच अवतारों का कोई विवरण नही मिलता, किन्तु एक स्थल पर केवल विरोचन-पुत्र बलि का उल्लेख हुआ है, जहाँ उसकी प्रतिमा को १२० अंगुल लम्बी बनाई जाने का निर्देश है।[१]

विष्णुधर्मोत्तरपुराण[२] के अनुसार वामन भगवान् छोटे अवयवों और मोटे शरीर वाले अर्थात् वामनाकृत निर्मित होने चाहिए। उनका शरीर दूर्वा घास के सदृश श्याम हो और वे कृष्ण अजिनोपवीत धारण किए हों। वे दण्डधारी और अध्ययन को उद्यत हो। अग्निपुराण[३] मे वामन-प्रतिमा छत्र और दण्डधारी वर्णित है। उत्तरभारतीय इस विवरण के विपरीत दक्षिण भारतीय वैखानसागम[४] मे यह उल्लेख है कि वामन ब्रह्मचारी बालक के रूप मे निर्मित हों, जिसके सिर पर शिखा हो और जो कौपीन, मेखला, कृष्ण अजिनोपवीत तथा अनामिका मे पवित्र धारण किए हो और साथ में पुस्तक लिए हो। उसके छत्र और दण्डधारी दो भुजाएँ हो। शिल्परत्न[५] मे इन हाथो मे छत्र और कमण्डलु होने का निर्देश है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण[६] के अनुसार त्रिविक्रम का वर्ण जलपूर्ण मेघ के समान हो। उनके हाथों मे दण्ड, पाश, शंख, चक्र, गदा और पद्म हो, जिनका प्रदर्शन आयुध-पुरुषों के रूप मे न होकर प्राकृतिक हो। उनके विस्फारित नेत्रों से युक्त (केवल) एक ऊर्ध्वमुख हो।[७] शिल्परत्न[८] के अनुसार त्रिविक्रम-मूर्ति का वाम पाद पृथ्वी पर स्थित हो और दक्षिण सम्पूर्ण नभस्थल के नापने के लिए ऊपर की ओर प्रसारित हो। वैखानसागम मे त्रिविक्रम-मूर्ति का विस्तृत विवरण मिलता है। इस आगम के अनुसार मूर्ति चतुर्भुजी अथवा अष्टभुजी निर्मित करनी चाहिए। यदि वह चतुर्भुजी हो तो उसके दो हाथों मे शंख और चक्र हो तथा एक दाहिना हाथ अभय अथवा वरद-मुद्रा मे और एक बायाँ ऊपर की ओर प्रसारित वाम पाद के समानान्तर प्रसारित हो। यदि प्रतिमा अष्टभुजी हो तो पाँच हाथो मे चक्र, शंख, गदा, शार्ङ्ग और हल हो तथा शेष तीन हाथ पूर्ववत् हो। इसके अतिरिक्त, मूर्ति मे त्रिविक्रम के मस्तक के ऊपर छत्र लगाए हुए इन्द्र, चामरधारी वायु और वरुण, सूर्य और चन्द्र, सनक और सनत्कुमार, त्रिविक्रम के प्रसारित पाद के ऊर्ध्व भाग को

१ बृहत्सं०, ५८, ३० : बलिरथवैरोचनिःशतंमिमम्।
२ वि०ध०, ८५, ५४-५५
३ अ०पु०, ४९, ९ : छत्री दण्डी वामनः ....।
४ *EHI*, I, II, Appendix C, p. 36.
५ वही, पृ० ३७
६ वि०ध०, ८५, ५५-५७
७ एकोर्ध्वमुखः कार्यो देवो विस्फारितेक्षणः।

—वही, श्लोक ५७

डॉ० अग्रवाल ने, यह सुख स्वयं त्रिविक्रम का न मान कर, लिखा है कि त्रिविक्रम की मूर्तियों में एक विस्फारित नेत्रवाला देवमुख बनाना चाहिए (मथुरा-कला, पृ० ६६)।
८ *EHI*, I, I, p. 167.

प्रक्षालित करते ब्रह्मा, अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़े हुए शिव, राक्षस नमुचि, गरुड, राक्षसों के गुरु शुक्र, वामन को पृथ्वी संकल्प करते हुए सपत्नीक राजा बलि तथा भेरीवादन करते हुए जाम्बवन्त चित्रित करने का भी उल्लेख है।[१]

डॉ० जितेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा है कि वामन के स्वतंत्र चित्रण बहुत दुर्लभ हैं,[२] किन्तु उनके इस कथन के विपरीत खजुराहो में वामन-मूर्तियों का बाहुल्य है और त्रिविक्रम मूर्तियाँ दुर्लभ हैं। वहाँ त्रिविक्रम की एक ही स्वतंत्र मूर्ति लेखक को मिली है और एक-दो छोटी त्रिविक्रम-आकृतियाँ अन्य विष्णु-मूर्तियों की प्रभावली में दशावतारों के मध्य अंकित हैं। एकमात्र यह त्रिविक्रम-मूर्ति[३] (चित्र ३२) भी खण्डित अवस्था में है। इसमें त्रिविक्रम का दक्षिण पाद पृथ्वी पर टिका प्रदर्शित है और ऊपर की ओर प्रसारित वाम पाद खण्डित है। वे हार, ग्रैवेयक, केयूर, मेखला, नूपुर, वनमाला, कौस्तुभमणि आदि सामान्य आभूषणों से अलंकृत हैं। दुर्भाग्यवश उनके चारों हाथ खण्डित हैं। ऊपर प्रसारित पाद के नीचे छत्रधारी एक वामनाकृति है, जिसका सिर और एक हाथ टूट गया है। इस वामन के सम्मुख पत्नी और अनुचरों के साथ बलि का चित्रण है, जिनकी प्रतिमाएँ कुछ खण्डित हैं। त्रिविक्रम के एक पार्श्व में चक्र-पुरुष और दूसरे में शंख-पुरुष खड़े हैं। त्रिविक्रम का सिर टूट गया है, किन्तु पीछे सुन्दर शिरश्चक्र सुरक्षित है। प्रभावली के एक ऊपरी कोने में ललितासन-मुद्रा में त्रिमुख और लम्बकूर्च ब्रह्मा है, जिनके हाथ अभय, स्रुक्, पुस्तक और कमण्डलु-युक्त हैं। इसी प्रकार दूसरे कोने में भी एक देव-प्रतिमा अंकित रही है, जो अब टूट गई है। यह प्रतिमा शिव की रही होगी।

विष्णु-मूर्तियों की प्रभावली में प्रदर्शित त्रिविक्रम-आकृतियों में एक उल्लेखनीय है। यह आकृति एक नृवराह-मूर्ति[४] की प्रभावली में अन्य अवतारों के साथ अंकित है। इसका दाहिना पैर पृथ्वी पर टिका प्रदर्शित है और बायाँ ऊपर की ओर प्रसारित है। आकृति द्विभुजी है, एक हाथ में गदा और दूसरे में पद्म है। साथ में अन्य कोई चित्रण नहीं है।

खजुराहो में वामनावतार का एक मन्दिर (वामन मन्दिर) है, जिसमें विशाल वामन-मूर्ति प्रतिष्ठित है। इस मूर्ति के अतिरिक्त, वहाँ अनेक वामन-मूर्तियाँ उपलब्ध हैं। इन मूर्तियों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग की मूर्तियाँ विशाल हैं और उनकी प्रभावली में अनेक पार्श्वचरों का चित्रण है। दूसरे प्रकार की मूर्तियाँ अपेक्षाकृत छोटी हैं और उनका पार्श्व-चित्रण सीमित है।

पहले वर्ग की मूर्तियाँ दूसरे वर्ग की अपेक्षा अधिक हैं। इस वर्ग की सर्वप्रथम उल्लेखनीय वामन मन्दिर की प्रधान मूर्ति[५] (चित्र ३३) है। इसमें भगवान् छोटे अवयवों और मोटे शरीर वाले वामन के रूप में समभंग खड़े प्रदर्शित हैं। उनके सिर पर घुँघराले केश हैं और वे हार, ग्रैवेयक, कुण्डल, कौस्तुभमणि, केयूर, यज्ञोपवीत, अजिनोपवीत, मेखला, नूपुर और वनमाला धारण किए हैं। अभाग्यवश उनकी चारों भुजाएँ खण्डित हैं। उनके दाएँ और बाएँ पार्श्वों में क्रमशः शंख और चक्र-

---

१ वही, पृ० १६४-६७
२ *DHI*, p. 419.
३ प्र० सं० १५८
४ प्र० सं० १३८
५ प्र० सं० १५३

पुरुष त्रिभंग खड़े हैं। शंख-पुरुष के पीछे भूदेवी (अथवा लक्ष्मी) और चक्र-पुरुष के पीछे गरुड़ खड़े हैं। प्रभावली के ऊपरी एक कोने में बनी रथिका में ब्रह्मा की और इसी प्रकार दूसरे कोने में बनी रथिका में शिव की प्रतिमा है। ब्रह्मा त्रिमुख, चतुर्भुज और लम्बकूर्च हैं और जटा-मुकुट धारण किए हैं। उनके पहले तीन हाथ अभय, स्रुव और कमल-युक्त है और चौथा खण्डित है। चतुर्भुज शिव अभय, त्रिशूल, सर्प और कमण्डलु-युक्त हैं। दोनों देवता बैठे हैं। वामन के पद्मपीठ के नीचे चरणचौकी में कूर्म पर विराजमान लक्ष्मी की आकृति है। इसके अतिरिक्त, मूर्ति की प्रभावली में वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, बुद्ध और कल्कि अवतारों के भी चित्रण है। प्रभावली का ऊपरी भाग कुछ खण्डित है, जिसमें मत्स्य और कूर्म अवतारों के भी अंकन रहे होंगे। इस प्रकार मूर्ति के पार्श्व-चित्रण में कोई विशेषता नहीं है, वह अन्य विशाल विष्णु-मूर्तियों के ही सदृश है।

इस वर्ग की दूसरी मूर्ति[1] (चित्र ३४) में वामन का चित्रण पूर्ववत् है, किन्तु इसका शिरश्चक्र विशेष दर्शनीय है। इस मूर्ति के भी चारों हाथ खण्डित हैं। पार्श्व-चित्रण पूर्ववत् है, किन्तु इसमें वामन के दाएँ-बाएँ पार्श्वों में आयुध-पुरुष नहीं प्रदर्शित है। चरणचौकी पर अंकित कूर्म पर पद्मासन-मुद्रा में विराजमान लक्ष्मी की प्रतिमा सुन्दर है। लक्ष्मी का दक्षिण हस्त अभय-मुद्रा में और वाम अमृतघट-युक्त है। प्रभावली के ऊपरी कोनों पर ब्रह्मा और शिव के अंकन पूर्ववत् है। इनके अतिरिक्त, वहाँ केन्द्र में पद्मासन-मुद्रा में विष्णु की खण्डित प्रतिमा भी देखी जा सकती है। शिरश्चक्र के ऊपर विद्याधरों के दो खण्डित युगल भी द्रष्टव्य है। अन्य अवतारों के अतिरिक्त मत्स्य और कूर्म अवतारों के भी अंकन हैं।

इस वर्ग की तीसरी उल्लेखनीय मूर्ति[2] उपर्युक्त मूर्तियों के सदृश है, किन्तु इसके दो ऊर्ध्व हाथ ही खण्डित है, शेष दो सुरक्षित हैं, जिनमें दाहिना वरद-मुद्रा में है और बाएँ का आयुध खण्डित होने के कारण स्पष्ट नहीं है। इसमें पहली मूर्ति की भाँति शंख और चक्र-पुरुषों का भी चित्रण है। ये दोनों आयुध-पुरुष करण्ड-मुकुट धारण किए है और अपने एक हाथ में सम्बन्धित आयुध लिए है। शेष पार्श्व-चित्रण पूर्ववत् है।

इस वर्ग की शेष सब मूर्तियाँ सामान्यतः उपर्युक्त मूर्तियों के ही सदृश है। इनमें एक द्विभुजी मूर्ति[3] (जिसके दोनों हाथ खण्डित हैं) है और शेष सब चतुर्भुजी है। इन चतुर्भुजी मूर्तियों में केवल एक ही मूर्ति[4] लेखक को ऐसी मिली है, जिसके वरद, गदा, चक्र और शंख-युक्त चारों हाथ सुरक्षित हैं। अन्य मूर्तियों के एक, दो, तीन अथवा चारों हाथ टूटे मिलते हैं। इनमें एक मूर्ति[5] का एक दाहिना हाथ दाएँ पार्श्व में खड़े चक्र-पुरुष के सिर पर रखा है और एक बायाँ इस ओर खड़े शंख-पुरुष के सिर पर रहा होगा, किन्तु यह हाथ अब टूटा है। सामान्यतः अन्य सभी मूर्तियों का पहला हाथ वरद-मुद्रा में मिलता है और अन्य बचे हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म में से एक,

१ प्र० सं० १५४
२ प्र० सं० १५५
३ प्र० सं० १५६
४ प्र० सं० १६०
५ प्र० सं० १५७

दो अथवा तीन तक हैं ।[1] सामान्यतः सभी मूर्तियाँ एकसदृश है, केवल उनके पार्श्व-चित्रण में कुछ भिन्नता दिखाई पड़ती है ।

दूसरे वर्ग की मूर्तियाँ पहले वर्ग की अपेक्षा कम है । ये पहले वर्ग की मूर्तियों के सदृश हैं, केवल इनका पार्श्व-चित्रण सीमित है । इस वर्ग की पहली उल्लेखनीय मूर्ति[2] एक रथिका मे है । इसमें भगवान् पहले वर्ग की मूर्तियों के समान छोटे अवयवो और मोटे शरीर वाले वामन के रूप मे प्रदर्शित हैं । वे समभंग खडे है, उनके सिर पर घुंघराली केशराशि है और वे सामान्य खजुराहो-आभूषणों से अलंकृत है । उनके चारो हाथ सुरक्षित है, पहला वरद-मुद्रा मे, दूसरा पद्म (कुण्डलित कमलनाल) से युक्त, तीसरा भी पद्म (कमल-कलिका) से युक्त और चौथा शंखधारी है । वामन के दाएँ-बाएँ पार्श्वों मे क्रमशः चक्र और पद्म-पुरुष खडे है । चक्र-पुरुष का दाहिना हाथ कट्यवलम्बित और बायाँ चक्रधारी है । पद्म-पुरुष का बायाँ हाथ कट्यवलम्बित है और दाहिने मे वे नाल-विहीन पद्म लिए हैं । इस वर्ग की दूसरी सुन्दर मूर्ति[3] भी पहली के समान एक रथिका मे समभंग खडी प्रदर्शित है । इसके चारो हाथों का चित्रण पूर्ववत् है, अन्तर केवल इतना है कि इसके दोनो ऊर्ध्व हाथों के पद्मों की बनावट पहली मूर्ति के पद्मों से भिन्न है । इस मूर्ति में दाएँ-बाएँ पार्श्वों में खड़े आयुध-पुरुषों (सम्भवतः शंख और चक्र-पुरुष) के नीचे एक भक्त-युगल भी अंजलि-मुद्रा मे हाथ जोड़े बैठा है । इस वर्ग की तीन अन्य उल्लेखनीय मूर्तियाँ लेखक को मिली है । इनमे एक के चारो हाथ पूर्ववत् वरद, पद्म, पद्म और शंख-युक्त है ।[4] दूसरी का पहला हाथ खण्डित है और शेष पूर्ववत् है ।[5] तीसरी का पहला हाथ वरद-मुद्रा में है और शेष तीन खण्डित है ।[6]

उपर्युक्त दोनो वर्गों की मूर्तियों मे वामन भगवान् विष्णुधर्मोत्तरपुराण के अनुसार छोटे अंगों और मोटे शरीर वाले वामन के रूप मे प्रदर्शित है, वैखानसागम के अनुसार ब्रह्मचारी बालक के रूप मे नही । उनके हाथो के चित्रण में किसी शास्त्र के निर्देश का पालन नही हुआ है और वे अपने तीन हाथो मे सामान्यतः चार प्रमुख वैष्णव लाञ्छनों—शंख, चक्र, गदा और पद्म—में से कोई तीन धारण किए है और एक हाथ वरद-मुद्रा मे प्रदर्शित है । इन मूर्तियो के पार्श्व-चित्रण मे कोई नवीनता नही है, वह विभिन्न रूपो की अन्य विष्णु-मूर्तियो के सदृश ही है ।

वामन की उपर्युक्त स्वतन्त्र मूर्तियो के अतिरिक्त, अनेक विष्णु-मूर्तियो की प्रभावली मे अंकित दशावतारो मे वामन (और कभी-कभी त्रिविक्रम) की आकृति भी मिलती है । ऐसे चित्रणो मे वामनाकृति सामान्यतः शास्त्रानुसार छत्रधारी प्रदर्शित है । एक दशावतार-पट्ट मे अन्य अवतारो के साथ खड़े हुए चतुर्भुज वामन की प्रतिमा गदा और चक्र से युक्त है, छत्रधारी नही (चित्र ५५, ५८) ।

परशुराम अवतार

भगवान् विष्णु मदोन्मत्त क्षत्रियों का संहार करने के लिए भार्गव राम अथवा परशुराम के

१ प्र० सं० १५८, १५९, १६१-६५
२ प्र० सं० १६६
३ प्र० सं० १६७
४ प्र० सं० १६९
५ प्र० सं० १६८
६ प्र० सं० १७०

रूप में अवतीर्ण हुए थे। भागवतपुराण में कहा गया है कि जब ब्राह्मण-द्रोही तथा आर्य-मर्यादा का उल्लंघन करने वाले क्षत्रिय पृथ्वी के कंटक बन गए, तब भगवान् ने महापराक्रमी परशुराम के रूप में अवतीर्ण होकर अपने परशु से इक्कीस बार उनका विनाश किया।[१] परशुराम के चरित्र एवं उनके द्वारा किए गए क्षत्रिय-संहार की विस्तृत कथा भी इस पुराण में मिलती है।[२] इसके अतिरिक्त, महाभारत तथा अग्नि, विष्णु आदि पुराणों में भी इस अवतार के वृत्तान्त उपलब्ध हैं।[3] इस अवतार की कथा से स्पष्ट है कि परशुराम क्षत्रियों के विरुद्ध ब्राह्मणों के वीरभाव के प्रतीक थे। वे एक आवेशावतार थे, क्योंकि क्षत्रियों का संहार करने के पश्चात् उन्होंने अपनी दैवी शक्ति, राघव राम के अवतीर्ण होने पर, उन्हें समर्पित कर दी और वे स्वयं तपश्चर्यार्थ महेन्द्र पर्वत चले गए। इस प्रकार यह अवतार परिमितकालिक और परिमितकार्मिक था।

परशुराम-प्रतिमा के विषय में लक्षण-ग्रन्थों में अधिक मतभेद नहीं है। नाम के अनुरूप उन्हें परशुधारी निर्मित करने में सभी शास्त्र एकमत हैं। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में वे जटामण्डल एवं कृष्ण मृगचर्म से युक्त तथा परशुधारी वर्णित हैं।[४] अग्निपुराण में धनुष, बाण, खड्ग और परशु से युक्त उनकी चतुर्भुजी प्रतिमा का उल्लेख है।[५] रूपमण्डन, विष्णुधर्मोत्तर का वर्णन स्वीकार कर, परशुराम-प्रतिमा की तीन विशेषताओं का उल्लेख करता है—जटा, अजिन और परशु।[६] वैखानसागम में जटा-मुकुट, यज्ञोपवीत तथा सभी आभूषणों से आभूषित परशुराम को द्विभुज बनाने का निर्देश है, जिनका दाहिना हाथ परशुधारी और बायाँ सूची-हस्त-मुद्रा में हो।[७]

खजुराहो में परशुराम की केवल तीन स्वतन्त्र मूर्तियाँ लेखक को मिली हैं। एक लक्ष्मण मन्दिर में और दो पार्श्वनाथ नामक जैन मन्दिर में उत्कीर्ण है। पहली मूर्ति[८] लगभग दो फुट ऊँची है और इसमें चतुर्भुज परशुराम त्रिभंग-मुद्रा में खड़े प्रदर्शित हैं। वे किरीट-मुकुट, वनमाला तथा अन्य सामान्य खजुराहो-आभूषणों से अलंकृत हैं और अपने चार हाथों में क्रमशः परशु, शंख, पद्म और चक्र धारण किए हैं। उनके बाईं ओर पादपीठ पर एक भक्त अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़े बैठा है।

परशुराम की स्वतन्त्र मूर्तियाँ बहुत कम मिलती हैं और उनकी चतुर्भुजी मूर्तियाँ तो अत्यन्त दुर्लभ हैं।[९] इस दृष्टि से खजुराहो की यह मूर्ति बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इसमें परशुराम शास्त्र-निर्देशानुसार जटा-मुकुट नहीं धारण किए हैं, वरन् अन्य विष्णु-मूर्तियों के सदृश किरीट-मुकुट से सुशोभित हैं। उनका एक हाथ शास्त्रों के निर्देशानुसार परशुधारी है, किन्तु उनके तीन हाथों के चित्रण में किसी शास्त्र का आधार नहीं लिया गया प्रतीत होता है। इनमें सामान्य विष्णु-मूर्तियों के सदृश शंख, चक्र और पद्म हैं। इस मूर्ति की तुलना ढाका की परशुराम-मूर्ति से की जा सकती है। यह

---

१ भा० पु०, ३, ७, २२
२ वही, ९, १५-१६
३ *EHI*, I, I, pp. 181-86
४ वि ध०, ८५, ६१-६२
५ अ०पु०, ४९, ५
६ रूप०, ३, २६
७ *EHI*, I, I, p. 186.
८ प्र० सं० १७१
९ *DHI*, p. 420.

मूर्ति भी चतुर्भुजी है और इसके तीन हाथों में खजुराहो-मूर्ति के सदृश परशु, शंख और चक्र प्रदर्शित हैं, किन्तु इसके एक हाथ में पद्म के स्थान पर गदा है।[1]

खजुराहो की दूसरी मूर्ति बहुत ही छोटी है। इसमें द्विभुज परशुराम त्रिभंग खड़े है। उनका दाहिना हाथ परशु-युक्त और बायाँ कट्यवलम्बित है।[2]

तीसरी मूर्ति[3] सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यह परशुराम और उनकी शक्ति की दो फुट दस इंच ऊँची एक आलिंगन-मूर्ति है (चित्र ३५)। इसमें भी परशुराम पहली मूर्ति के सदृश चतुर्भुज, त्रिभंग खड़े तथा किरीट-मुकुट सहित सामान्य आभूषणों से अलंकृत हैं। खजुराहो की अन्य स्थानक आलिंगन-मूर्तियों के सदृश इस मूर्ति में भी द्विभुजी देवी अपने स्वामी के वाम पार्श्व में आलिंगन-मुद्रा में त्रिभग खड़ी हैं। वे भी सामान्य आभूषणों से अलंकृत हैं। परशुराम के दक्षिणाधः कर (जो अब अर्धखण्डित है) में परशु था, पादपीठ पर टिका जो अभी भी सुरक्षित है, दक्षिणोर्ध्व खण्डित है, वामोर्ध्व चक्रधारी है और वामाधः देवी को आलिंगन-पाश में भरता हुआ उनके वाम पयोधर पर स्थित है। देवी के वाम कर में सनाल कमल है और दक्षिण देवता के दाएँ स्कन्ध पर आश्रित है।

पहली मूर्ति के सदृश इसमें भी देवता के दक्षिणाधः कर में परशु होने के कारण उनके परशुराम होने मे सन्देह नही किया जा सकता। साथ ही वामोर्ध्व कर मे चक्र की उपस्थिति से मूर्ति की वैष्णवी प्रकृति और भी स्पष्ट हो जाती है। श्री कृष्णदेव ने सर्वथा उचित ही इसे परशुराम और उनकी शक्ति की आलिंगन-मूर्ति माना है।[4] ऐसी मूर्ति का विवरण उपलब्ध किसी शास्त्र में नहीं मिलता और न भारत में अन्यत्र ही ऐसी मूर्ति के दर्शन होते हैं। खजुराहो-शिल्पी की यह अपनी रचना है। आलिंगन-मूर्तियों की झाँकी प्रस्तुत करने में तो वह सभी से आगे है। इस प्रकार प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से यह विलक्षण मूर्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

उपर्युक्त स्वतंत्र मूर्तियों के अतिरिक्त, खजुराहो में अन्य अवतारों के साथ सामूहिक रूप से चित्रित परशुधारी परशुराम की अनेक द्विभुजी प्रतिमाएँ देखने को मिलती हैं। दशावतारों के साथ चित्रित परशुराम के ऐसे चित्रण विष्णु के विभिन्न रूपों की विशाल मूर्तियों की प्रभावली मे द्रष्टव्य हैं। इनके अतिरिक्त, स्थानीय संग्रहालय का एक दशावतार-पट्ट भी उल्लेखनीय है, जिसमें अन्य अवतारों के साथ परशुराम का भी सुन्दर चित्रण है (चित्र ५५, ५८)। इसमे वे करण्ड-मुकुट धारण किए खड़े हैं। उनके दो हाथ है—दाहिना परशुधारी और बायाँ कट्यवलम्बित।

राम अवतार

हिन्दुओं के आदर्श नायक श्रीराम, राम अथवा रामचन्द्र अयोध्या के रघुवंशी राजा दशरथ के पुत्र थे। हिन्दुओं की आदर्श नारी सीता उनकी पत्नी थीं। राम के सम्पूर्ण जीवन की कथा ही वाल्मीकि के महाकाव्य रामायण का विषय है। सम्पूर्ण भारत में यह राम-कथा युगों-युगों से लोकप्रिय है। यही राम विष्णु के सातवें अवतार माने गए हैं।

---

१ वही
२ प्र० सं० २६९
३ प्र० सं० १७५
४ Deva, K., *AI*, No. 15, p. 61.

दाशरथि राम की मूर्तियों में सामान्यतः कोई जटिलता नही है। वराहमिहिर ने इस मूर्ति के विशेष विवरण की आवश्यकता नही समझी और इसीलिए वे केवल इतना ही लिखते है कि दशरथ के पुत्र राम की मूर्ति १२० अंगुल लम्बी बननी चाहिए।[१] अग्निपुराण[२] में यह उल्लेख है कि राम की प्रतिमा धनुष, बाण, खड्ग और शंख से युक्त चतुर्भुजी अथवा द्विभुजी निर्मित होनी चाहिए। विष्णुधर्मोत्तरपुराण[3] में यह कहा गया है कि राम राजलक्षणो से युक्त हों और उनके साथ भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी हो। ये तीनों राम के सदृश हों, किन्तु किरीट-मुकुट न धारण किए हों। रूपमण्डन[४] मे श्याम वर्ण राम की धनुर्बाणधारी द्विभुजी प्रतिमा का उल्लेख है। वैखानसागम[५] मे भी राम की द्विभुजी मूर्ति का विवरण है। इस आगम के अनुसार राम त्रिभंग-मुद्रा में खड़े हों और उनके दाहिने हाथ मे बाण और बाएँ मे धनुष हो। वे किरीट-मुकुट तथा अन्य आभूषणों से अलंकृत हों। उनके दक्षिण पार्श्व मे सीता खड़ी हों, जिनका सिर धम्मिल्ल और करण्ड-मुकुट से अलकृत हो। उनके बाएँ हाथ मे नीलोत्पल पुष्प हो और दाहिना प्रसारित हो। वे अपने प्रफुल्ल लोचनों से राम की ओर देखती चित्रित हो। राम-सीता के साथ लक्ष्मण और हनुमान् भी प्रदर्शित हो।

खजुराहो मे राम की छ: स्वतन्त्र मूर्तियाँ लेखक को प्राप्त हुई है, जिनमें पाँच मे राम अकेले और एक मे सीता और हनुमान् के साथ चित्रित हैं। चार मूर्तियाँ पार्श्वनाथ नामक जैन मन्दिर मे और दो लक्ष्मण मन्दिर मे उत्कीर्ण है। पहली मूर्ति[६] मे राम चतुर्भुज हैं और किरीट-मुकुट, वनमाला तथा अन्य सामान्य खजुराहो-आभूषणो से अलकृत हैं। वे पहले और तीसरे हाथों में क्रमशः गदा और शंख धारण किए है। उनके दो हाथ, दूसरा और चौथा, खण्डित है, किन्तु उनकी स्थिति से पता चलता है कि उनमे एक बाण रहा होगा। उनके बाएँ स्कन्ध पर एक धनुष और दाएँ पर एक निषग है, जिसके ऊपर निकले बाण दिखाई पड रहे हैं।

चार प्रतिमाएँ[७] एकसदृश है। ये चारों द्विभुजी और त्रिभंग हैं। इनमे राम किरीट के स्थान पर करण्ड-मुकुट धारण किए है और सामान्य आभूषणो से अलंकृत है। दोनो हाथो से वे एक बाण पकडे है और उनके बाएँ स्कन्ध पर धनुष है। ये मूर्तियाँ पहली मूर्ति की अपेक्षा बहुत छोटी है।

दो फुट दस इच ऊँची राम-सीता की आलिगन-मूर्ति[८] विशेष दर्शनीय है (चित्र ३६)। इसमे किरीट-मुकुट, वनमाला तथा अन्य सामान्य आभूषणो से अलकृत चतुर्भुज राम त्रिभंग खड़े हैं। उनका पहला हाथ दाएँ पार्श्व में खड़े हुए हनुमान् के सिर पर पालित-मुद्रा मे प्रदर्शित है, दूसरे और चौथे हाथो से वे एक लम्बा बाण पकड़े हैं, और उनका चौथा हाथ सीता को आलिगन-पाश मे भरता हुआ उनके बाम पयोधर पर स्थित है। राम के दाहिने स्कन्ध पर (पीछे की ओर)

---

१ बृहत्सं०, ५८, ३०
२ अ०पु०, ४९, ६
३ वि०ध०, ८५, १२-१३
४ रूप०, ३, २७
५ *EHI*, I, II, Appendix C, pp. 40-41.
६ प्र० सं० १७३
७ प्र० सं० १७४, १७५, २००, २०१
८ प्र० सं० १७६

एक निषंग है, जिसके ऊपर निकले बाण दिखाई पड़ रहे हैं। उनके बाएँ पार्श्व में सीता आलिंगन-मुद्रा में खड़ी हैं। उनके बाएँ हाथ में कुण्डलित कमलनाल (नीलोत्पल) है और दाहिना हाथ राम के दाहिने स्कन्ध पर आश्रित है। वे धम्मिल्ल, ग्रैवेयक, मुक्तामाला, कटिसूत्र आदि से अलंकृत हैं। राम के दाएँ पार्श्व में खड़े हुए वानरमुख हनुमान् की छोटी आकृति है, जो करण्ड-मुकुट से अलंकृत है। इसी आकृति के सिर पर राम का दक्षिणाधः कर पालित-मुद्रा में रखा प्रदर्शित है। सम्पूर्ण चित्रण सुन्दर है।

राम-सीता की मध्ययुगीन एक आलिंगन-मूर्ति ग्वालियर संग्रहालय में भी दृष्टव्य है।[1]

राम की उपर्युक्त स्वतन्त्र मूर्तियों के अतिरिक्त, अन्य अवतारों के साथ उनके अनेक चित्रण विभिन्न रूपों की विशाल विष्णु-मूर्तियों की प्रभावली में भी देखने को मिलते हैं। ऐसी प्रभावलियों में उनकी द्विभुजी प्रतिमा धनुर्बाणधारी है।

रामायण के दृश्य

लेखक को खजुराहो में केवल दो रामायण-दृश्य अंकित मिले हैं[2]—वालि-वध और अशोक-वाटिका में सीता। पहला दृश्य कन्दरिया मन्दिर में और दूसरा पार्श्वनाथ मन्दिर में उत्कीर्ण है।

वालि-वध—एक पतली रूपपट्टिका[3] (चित्र ३७) में उत्कीर्ण होने के कारण इस चित्रण की आकृतियाँ बहुत छोटी हैं। सम्पूर्ण दृश्य दो भागों में चित्रित है। बाईं ओर के आधे भाग में वानरराज सुग्रीव, राम और लक्ष्मण प्रदर्शित हैं। वानरमुख सुग्रीव अपना मस्तक नीचे की ओर किए और हाथ जानु पर रखे हुए लज्जित और चिन्तित-से बैठे हैं। उनके सम्मुख राम खड़े हैं, जिनके हाथ सुग्रीव के हाथों पर रखे हैं। राम के पीछे लक्ष्मण अपने दोनों हाथों से एक माला-सी पकड़े खड़े हैं। इस चित्रण में वालि से पराजित होकर लौटे सुग्रीव लज्जित होकर पृथ्वी की ओर ताकते हुए (वसुधामवलोकयन्) अपनी दुर्दशा राम को सुना रहे हैं और उनसे वालि का वध न करने का कारण पूछ रहे हैं। सुग्रीव के दीन वचन सुनकर रामचन्द्र दयापूर्वक उनके हाथों में हाथ रखकर उन्हें सान्त्वना दे रहे हैं और वालि पर बाण न छोड़ने का यह कारण समझा रहे हैं कि वालि-सुग्रीव युद्ध में दोनों के एकसदृश होने के कारण वे वालि को न पहचान सके। राम के पीछे खड़े लक्ष्मण के हाथों में वह गजपुष्पी लता है, जिसको सुग्रीव के गले में पहनाने का आदेश राम ने लक्ष्मण को दिया था, जिससे वालि-सुग्रीव युद्ध में वे सुग्रीव को पहचान सकें।[4]

दाहिनी ओर के भाग में वालि-सुग्रीव का युद्ध और राम द्वारा वालि पर बाण चलाने का दृश्य चित्रित किया गया है। वानरमुख वालि-सुग्रीव द्वन्द्वयुद्ध करते प्रदर्शित हैं और उनके एक ओर वृक्ष के पीछे छिपकर रामचन्द्र आलीढ-मुद्रा में खड़े हुए धनुष से बाण छोड़ने के लिए उद्यत

१ Thakore, S. R., *Catalogue of Sculptures in the Archaeological Museum, Gwalior, M B.*, p. 25.

२ इन दोनों दृश्यों की ओर लेखक का ध्यान श्री कृष्णदेव ने आकर्षित किया था, जिसके लिए लेखक उनका आभारी है।

३ प्र० सं० १७७

४ तुल० अभिज्ञानं कुरुष्व त्वमात्मनो वानरेश्वर।
येन त्वामभिजानीयां द्वन्द्वयुद्धमुपागतम्॥
गजपुष्पीमिमां फुल्लामुत्पाट्य शुभलक्षणाम्।
कुरु लक्ष्मण कण्ठेऽस्य सुग्रीवस्य महात्मनः॥

—रामा० ४, १२, ३८-३९

हैं। राम के पीछे खड़ी आकृति लक्ष्मण की है। द्वन्द्वयुद्ध के दूसरी ओर एक अन्य आकृति (?) है। यह सम्पूर्ण चित्रण रामायण के किष्किन्धा काण्ड में उपलब्ध वालि-वध के वृत्तान्त पर आधारित है।

रामायण का यह दृश्य राजस्थान के मध्ययुगीन मन्दिरों, जैसे केकीन्द के नीलकण्ठ-महादेव मन्दिर और किराडू के सोमेश्वर मन्दिर, मे भी अंकित हुआ है।[१]

अशोकवाटिका में सीता—पार्श्वनाथ मन्दिर की एक रथिका मे उत्कीर्ण इस दृश्य[२] में अशोकवाटिका में सीता और रामदूत हनुमान् के बीच हो रहे वार्तालाप का प्रदर्शन है। एक पंक्ति में (दाहिनी ओर से बाईं ओर) क्रमशः सीता, हनुमान् और पहरा देती हुई दो राक्षसियों के बैठे चित्रण है। सीता और हनुमान् के बीच मे (पीछे की ओर) एक अन्य नारी-आकृति (?) है। सीता धम्मिल्ल, हार, अंगद, ककण, वलय, कुण्डल और कटिसूत्र धारण किए हैं। उनके बाएँ हाथ मे कोई पदार्थ है, जो वस्त्र मे बँधा हुआ वह चूड़ामणि-आभूषण हो सकता है, जिसे उन्होने हनुमान् के द्वारा रामचन्द्र के पास भेजा था। उनका दाहिना हाथ व्याख्यान-मुद्रा मे प्रदर्शित है और इस हाथ के अँगूठे मे वे एक अँगूठी पहने है—राम द्वारा भेजी गई रामनामांकित अंगुलीय, जिसे हनुमान ने सीता को प्रदान किया है। सीता के सम्मुख बैठे वानरमुख हनुमान् उनकी बाते सुन रहे है। वे अंजलि-मुद्रा मे हाथ जोड़े है, मानो सीता की बाते सुनने के बाद उन्होंने हाथ जोड़कर अपनी बातें कहनी प्रारम्भ की है।[3] हनुमान् के पीछे दो राक्षसियाँ बैठी है। एक के दाहिने हाथ में खड्ग और बाएँ मे खेटक है और दूसरी के बाएँ हाथ मे खेटक तो है, किन्तु उसका दाहिना हाथ छिपा है। दोनों राक्षसियाँ विकृत मुख (राक्षस्यो विकृताननाः), फैले नेत्रों (विवृत्य नयने), पिचके पेट (निर्णतोदरी), लम्बे स्तनों (लम्बमान पयोधरा) तथा भयकर दर्शन (भीमदर्शना) से युक्त प्रदर्शित हैं। रावण के गृह मे बन्दी सीता की वे रखवाली कर रही हैं।[४] यह चित्रण रामायण के सुन्दरकाण्ड के वृत्तान्त पर आधारित है।

हनुमान्

वायु के पुत्र वानरश्रेष्ठ हनुमान् राम के परम मित्र, सहायक, दूत और भक्त थे। वे विद्वान् थे। कहा जाता है कि उन्होने साक्षात् सूर्य से व्याकरण की शिक्षा ली थी।[५] लका पर राम की विजय का बहुत बडा श्रेय उनको है। उनका समादर आर्यजाति की कृतज्ञता का उज्ज्वल उदाहरण है।[६] राम की पूजा के साथ-साथ उनकी भी पूजा बढी। आज भी उनके उपासको की सख्या भारत मे कम नही है।

खजुराहो मे उनकी दो-तीन स्वतन्त्र मूर्तियाँ उपलब्ध है, जिन्हे आज भी वहाँ के लोग

---

१ Agrawala, R. C., *IHQ*, Vol. XXX, No. 2, p. 157

२ प्र० सं०, १०८

३ तुल० सीतायास्तद्वचः श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः।
शिरस्यंजलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत्॥
—रामा०, ५, ३९, १३

४ तुल० रावणान्तःपुरे घोरे प्रविष्टा चारुहासिनि।
रावणस्य गृहे रुद्धा राक्षसीभिरभिरक्षिता॥
—वही, ५, २४, ३१

५ सम्पूर्णानन्द, हिन्दू देव परिवार का विकास, पृ० १६८

६ वही

नियमित रूप से पूजते हैं। इनमें से कम से कम एक मूर्ति खजुराहो-मन्दिरों की समकालीन है। यह महाकाय मूर्ति (चित्र ३८)[1] एक आधुनिक मठिया में प्रतिष्ठित है, जिसे हनुमान् मन्दिर कहते हैं। इस मूर्ति के पादपीठ में एक छोटा लेख उत्कीर्ण है, जिसकी तिथि हर्ष संवत् ३१६ (९२२ ई०) है। खजुराहो का यह प्राचीनतम तिथि-युक्त लेख है।[2] इस मूर्ति में हनुमान् का दाहिना पैर पादपीठ पर रखा है और कुछ ऊपर उठा हुआ बायाँ एक पद्मपत्र पर स्थित है, जिसके नीचे सपत्नीक अपस्मारपुरुष प्रदर्शित है। हनुमान् के मात्र दो हाथ है, ऊपर उठा हुआ दाहिना सिर पर रखा है और बायाँ मुड़कर वक्ष पर है। उनकी लम्बी लागूल ऊपर की ओर मुड़ कर उनके सिर पर है। वे लम्बी वनमाला भी धारण किए हैं। उनके दाईं ओर कटि के पास अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़कर बैठे हुए भक्त की छोटी आकृति है। शेष मूर्तियाँ लगभग पूर्ववत् हैं।[3] ये भी प्राचीन प्रतीत होती हैं।

कृष्णावतार

वसुदेव-देवकी के पुत्र कृष्ण आठवें अवतार माने जाते हैं। उनका जीवन-चरित्र अनेक पुराणों—हरिवंश, भागवत, विष्णु आदि तथा अन्य विभिन्न ग्रन्थों मे प्राप्त होता है। उनका व्यक्तित्व इतना उदात्त, लोकरंजक एवं व्यापक रहा है कि न केवल भारतीय साहित्य मे उसका बहुमुखी वर्णन मिलता है, बरन् ललित-कलाएँ भी उससे ओतप्रोत हैं। शिल्पियों के लिए तो कृष्ण-लीला अत्यन्त प्राचीन काल से एक मधुर विषय रही है और उन्होने कृष्ण की जीवन-झाँकी विविध रूपों में अंकित कर अपनी कला को धन्य माना है। ऐसे अनेक चित्रण भारत के विभिन्न भागों में, काश्मीर से महाबलिपुरम् और बंगाल से सौराष्ट्र तक, पाए गए हैं। किन्तु इन सभी चित्रणों में, विविधता और शिल्पीकरण की दृष्टि से, खजुराहो-चित्रण बेजोड़ हैं।

खजुराहो में कृष्ण-लीला-सम्बन्धी मूर्तियाँ अधिकांशतः लक्ष्मण मन्दिर में उत्कीर्ण हैं। इस मन्दिर के प्रदक्षिणापथ के चारों ओर, गर्भगृह-जंघा पर इन बारह दृश्यो की मूर्तियाँ हैं : पूतना-वध, शकट-भंग, तृणावर्त-वध, यमलार्जुन-उद्धार, बत्सासुर-वध, कालिय-मर्दन, अरिष्टासुर-वध, कुब्जानुग्रह, कुवलयापीड-वध, चाणूर-युद्ध, शल-युद्ध तथा बलराम द्वारा लोमहर्षण का वध। ये सब अत्यन्त सुन्दर मूर्तियाँ हैं। इस प्रकार कृष्ण-लीला-चित्रण की दृष्टि से खजुराहो मे यह सर्वाधिक महत्व का मन्दिर है। इस मन्दिर की यमलार्जुन-मूर्ति के सदृश एक सुन्दर मूर्ति पार्श्वनाथ नामक जैन मन्दिर में भी उत्कीर्ण है और इस दृश्य का एक छोटा अंकन विश्वनाथ मन्दिर में भी लेखक को मिला है। इसके अतिरिक्त, पूतना-वध का भी एक छोटा चित्रण इस मन्दिर में प्राप्त है। स्थानीय संग्रहालय में कृष्ण-जन्म की एक सुन्दर मूर्ति सुरक्षित है। उपर्युक्त मूर्तियों के अतिरिक्त, खजुराहो मे दो शिलापट्ट भी उपलब्ध हैं, जिनमें कृष्ण-लीला के अनेक दृश्य चित्रित हैं।

---

१ प्र० सं०, १७६

२ Deva, K., *Khajuraho*, p. 34.

३ एक मूर्ति निनोरा-ताल के पूर्वी तट पर, जवारी मन्दिर के निकट बनी एक आधुनिक मढिया में प्रतिष्ठित है और एक खजुराहो गाँव के भीतर बने एक आधुनिक मन्दिर (बजरंगबली-महादेव) में है।

कृष्ण-जन्म

खजुराहो संग्रहालय में सुरक्षित कृष्ण-जन्म की मूर्ति बड़ी सुन्दर है[१] (चित्र ३९)। इसमें कृष्ण की माँ देवकी शेष-शय्या (एक पर्यंक पर व्यवस्थित शेष-कुण्डलियों) पर दाएँ करवट लेटी हुई प्रदर्शित हैं। उनके साथ शिशु कृष्ण लेटे हुए है। विष्णु भगवान् के ये बालरूप होने के कारण ही शेष इनको शय्या दे रहे हैं (इस संदर्भ में विष्णु की शेषशायी मूर्तियाँ द्रष्टव्य है)। देवकी विशाल किरीट-मुकुट (वैष्णव लाञ्छन), हार, ग्रैवेयक, कुण्डल, कंकण, वलय, केयूर तथा मुक्ता-ग्रथित कटिसूत्र—आभूषणो से अलंकृत हैं। किरीट-मुकुट के ऊपर शेष-फणों का विशाल घटाटोप है। ऊपर की ओर मुड़ा हुआ उनका दाहिना हाथ उनके किरीट-मुकुटधारी मस्तक को आश्रय दिए है और बायाँ वे अपने दाहिने स्तन पर रखे हैं, मानो निकट लेटे हुए कृष्ण को वे दूध पिलाने के लिए उद्यत हों, जिनका मुख इसी स्तन के पास है। मूर्ति खण्डित होने के कारण देवकी के चरण टूट गए है। सम्भव है अन्य स्थानों से प्राप्त ऐसी मूर्तियों के सदृश इसमें भी उनके चरणों का सवाहन करती हुई लक्ष्मी चित्रित रही हों। पर्यक के नीचे एक पद्म के ऊपर एक शख (दोनो वैष्णव लाञ्छन) रखा है, जिसके सम्मुख बैठी हुई चामरधारिणी की एक नन्हीं-सी आकृति है। पर्यंक से अलग (घटाटोप के पीछे) एक अन्य अनुचरी बैठी है, जिसके दाहिने हाथ में चामर और बाएँ में पूर्ण विकसित पद्म है। चित्रण के सबसे ऊपर पंक्तिबद्ध बैठे नवग्रहों की आकृतियाँ है, जिनमे से कुछ ग्रह मूर्ति खण्डित होने के कारण लुप्त हो गए हैं।

खजुराहो की इस मूर्ति के सदृश निर्मित कृष्ण-जन्म की तीन अन्य मध्यभारतीय मूर्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं। इसमें एक ग्वालियर संग्रहालय[२] और दो धुबेला संग्रहालय[३] में सुरक्षित हैं। लगभग इसी प्रकार की अनेक मूर्तियाँ भारत के अन्य भागों में भी प्राप्त हुई है, जिन्हें कुछ विद्वानो ने कृष्ण-जन्म और कुछ ने माँ-शिशु, सद्योजाता,[४] यशोदा-कृष्ण, बुद्ध-जन्म, महावीर-जन्म अथवा महेश्वर-जन्म[५] माना है। निस्सन्देह ऐसी सब तथाकथित माँ-शिशु मूर्तियों मे कृष्ण-जन्म का ही चित्रण नही हुआ। उदाहरणार्थ खजुराहो सग्रहालय (सं० १८३७) की दूसरी माँ-शिशु मूर्ति (चित्र ४०) दर्शनीय है, जिसे कृष्ण-जन्म नही माना जा सकता। इसमे पहली मूर्ति के सदृश माँ और शिशु शेष-पर्यंक पर लेटे अवश्य है, किन्तु इसका और चित्रण पूर्णतया भिन्न है। इसमें माँ के मस्तक पर करण्ड-मुकुट है, किरीट नही और शिशु के सिर पर घुंघराली केशराशि का अभाव है। मूर्ति में कही भी शंख, पद्म आदि कोई वैष्णव लाञ्छन नही चित्रित है। मूर्ति के ऊपरी भाग में पंक्तिबद्ध उत्कीर्ण पाँच पुरुष-मस्तकों (चार जटा-मुकुट और एक किरीट-मुकुट से युक्त), वृक्ष, सिंह पर आरूढ़ देवी, गणेश आदि का प्रदर्शन बड़ा ही विचित्र है। इस मूर्ति का अभिज्ञान कठिन है।

---

१ म० सं० १८०; डॉ० उर्मिला अग्रवाल ने भ्रान्ति से इसे सद्योजाता माना है (उपर्युक्त, पृ० ८१, चित्र ५९)।
२ Thakore, S. R., *op cit.*, p. 13; Coomaraswamy. A. K., *op. cit.*, pp. 86, 242, Fig. 178.
३ Dikshit, S. K., *A Guide to the State Museum Dhubela*, pp. 28-29, Pls., XII, XIII.
४ द्र० वही, पृ० ८८
५ द्र० Agrawala, R. C., *IHQ*, Vol. XXX, No. 4, pp. 343-44.

पूतना-वध

खजुराहो में उपलब्ध पूतना-वध के चित्रणो मे से सर्वोत्तम वहाँ के लक्ष्मण मन्दिर मे दर्शनीय है (चित्र ४१)[१]। इसमे बालकृष्ण राक्षसी पूतना का दूध पीते हुए प्रदर्शित है। राक्षसी ललितासन-मुद्रा में बैठी है और कृष्ण नग्न खड़े है। कृष्ण अपने दोनों हाथों से राक्षसी के बाएँ स्तन को जोर से दबाकर पी रहे हैं। दूध पीने के साथ ही साथ वे उसके प्राण भी पीते जा रहे हैं, जिससे उसके स्तनों मे असह्य पीड़ा हुई है और उसका राक्षसी रूप प्रकट हो गया है। उसके गाल और पेट बिलकुल पिचके हुए हैं, नेत्र उलट गए है, शरीर की नसे और अस्थियाँ उभर आई है और हाथ ऊपर की ओर फैल गए है—मानो वह रो-रो कर कृष्ण से जीवन-दान की याचना कर रही हो। कृष्ण के मुख पर सतोष और प्रसन्नता तथा राक्षसी के मुख पर असह्य पीड़ा तथा भय के भावों को उभारने मे शिल्पी को असाधारण सफलता मिली है।

पूतना-वध के छोटे-छोटे तीन चित्रण खजुराहो में और उपलब्ध हैं—दो कृष्ण-लीला-पट्टों[२] मे (चित्र ५२)[३] और एक[४] विश्वनाथ मन्दिर की एक रूपपट्टिका मे। इनमे भागवतपुराण (स्कन्ध १०, अ० ६) के विवरण के अनुसार राक्षसी की गोद में लेटे हुए कृष्ण उसका एक स्तन पी रहे हैं।

कृष्ण-लीला के इस दृश्य ने शिल्पियों को सदैव प्रोत्साहन प्रदान किया है। इस दृश्य के प्राचीनतम निदर्शन बादामी की गुफाओं (छठवीं शती ई०) मे मिलते है, किन्तु खजुराहो के लक्ष्मण मन्दिर की मूर्ति कलाभिव्यक्ति की दृष्टि से इनसे बहुत आगे है।[५] राजस्थान के विभिन्न स्थानों, जैसे ओसियाँ,[६] केकीन्द (प्राचीन किष्किन्धा)[७] तथा अटरू,[८] मे प्राप्त इस लीला के मध्ययुगीन चित्रण भी द्रष्टव्य है।

शकट-भंग

इस दृश्य को प्रदर्शित करती एक स्वतत्र मूर्ति खजुराहो मे उपलब्ध है और एक छोटा चित्रण कृष्ण-लीला-पट्ट में अंकित है। स्वतत्र मूर्ति (चित्र ४२)[९] मे चतुर्भुज कृष्ण एक छकड़े को उलटते हुए प्रदर्शित हैं। वे अपने दो प्राकृतिक हाथों से छकड़े के अग्रभाग को पकड़े है, बाएँ पैर से उसे नीचे दबाए है और दाहिना पैर उसके ऊपर रखे है। उनका ऊपरी दाहिना हाथ कटक-मुद्रा में है और बाएँ मे धारण किया गया पदार्थ कक्षा-सा प्रतीत होता है। यहाँ वे शिशु-रूप मे नहीं, युवा-रूप में चित्रित है। उनके सिर पर घुँघराली केशराशि है और वे ग्रैवेयक, कुण्डल, मुक्ता-

१ प्र० सं० १८१; तुल० Deva, K., *Lalit Kalā*, No. 7, p. 89, Pl. XXXIV, Fig 11 ; Agarwal, U., *op cit.*, p. 40, Fig. 17.
२ प्र० सं० १८६, १८७
३ प्र० सं० १८७
४ प्र० सं० १८२
५ Deva, K., *op. cit.*, p. 89.
६ Agrawala, R. C., *op. cit.*, p. 346.
७ वही, पृ० ३४८
८ अग्रवाल, रत्नचन्द्र, मरु-भारती, वर्ष ८, अंक १, (जनवरी, १९६०), पृ० ६८
९ प्र० सं० १८३ ; तुल० Deva, K., *op. cit.*, p. 87, Pl. XXXII, Fig. 6 ; Agarwal, U., *op. cit.*, p. 40, Fig. 18.

माला, केयूरों, वलयों, मुक्ताग्रथित मेखला तथा नूपुरों से अलंकृत हैं। वे नृत्य-मुद्रा में प्रदर्शित है, मानो खेल-खेल में उन्होंने यह करतब कर दिखाया हो।

इस दृश्य का एक छोटा चित्रण वहाँ उपलब्ध एक कृष्ण-लीला-पट्ट[१] में भी मिलता है (चित्र ५२)। इसमें आलीढ़-मुद्रा में खड़े हुए बालकृष्ण अपने दोनों हाथों से छकड़े के जुआ को पकड़ कर उसे उलटते हुए प्रदर्शित है।

कृष्ण की इस लीला की कथा भागवतपुराण[२] में मिलती है। इसके अनुसार शिशु कृष्ण एक छकड़े के नीचे लेटे हुए थे, जिसे उन्होंने अपने पैर के धक्के से उलट दिया था।

कृष्ण-लीला का यह दृश्य भारतीय शिल्पियों के बीच पर्याप्त लोकप्रिय रहा है। इसका प्राचीनतम चित्रण मण्डोर के गुप्तकालीन स्तम्भ में मिलता है, जिसमें शय्या पर पड़े शिशु कृष्ण अपने पैर के धक्के से छकड़े को उलटते हुए प्रदर्शित है।[3] गुप्तकालीन दूसरा चित्रण देवगढ़ में दर्शनीय है।[४] बादामी की दो गुफाओं (छठवीं शती ई०) में भी यह लीला अंकित मिलती है।[५] उपर्युक्त सभी चित्रणों के विपरीत खजुराहो में कृष्ण शिशु-रूप में चित्रित न होकर बाल अथवा युवा-रूप में चित्रित हुए हैं। खजुराहो के चित्रणों के सदृश युवा कृष्ण द्वारा शकट-भंग का दृश्य मोहागपुर में भी द्रष्टव्य है।[६] खजुराहो की भाँति यह चित्रण भी मध्ययुगीन है और खजुराहो के शिलापट्ट में अंकित चित्रण के समरूप है। इस लीला के मध्ययुगीन चित्रण राजस्थान में भी मिले है।[७]

तृणावर्त-वध

खजुराहो में कृष्ण की इस लीला की मात्र एक सुन्दर मूर्ति[८] उपलब्ध है (चित्र ४३)। इसमें कृष्ण तृणावर्त के स्कन्धों पर बैठे प्रदर्शित है। विकरालमुख तृणावर्त कृष्ण के पैरों को कस कर पकड़े है और उन्हे उड़ाकर लिए जा रहा है। भागवतपुराण[९] के अनुसार तृणावर्त नाम का एक दैत्य कंस का निजी सेवक था। कंस की प्रेरणा से कृष्ण के वध के उद्देश्य से वह झंझावात बन कर गोकुल आया और बैठे हुए शिशु कृष्ण को आकाश में उड़ा ले गया। यशोदा कृष्ण को अनुपस्थित देखकर और उन्हे आँधी में उड़ गया मानकर अत्यन्त व्याकुल होकर रोने लगी। किन्तु कृष्ण के भारी बोझ को न सम्हाल सकने के कारण दैत्य अधिक न बढ़ सका और उसका वेग शान्त हो गया। कृष्ण ने उसका गला इस प्रकार जकड़ रखा था कि वह इस अद्भुत शिशु को अपने से अलग न कर सका। वह निश्चेष्ट हो गया, उसके नेत्र बाहर निकल आए, वाणी अवरुद्ध हो गई और अन्ततः उसके प्राण-पखेरू उड़ गए। वह कृष्ण के साथ नीचे आ गिरा। नीचे गिरे दैत्य के

---

१ प्र० सं० १६०

२ भा० पु०, १०, ७

३ Deva, K., *op. cit.*, p. 87; Agrawala, R.C., *JASL & S*, Vol. XXIII, No 1, p. 63, Pl I, Fig. 1.

४ Vats, M. S., *MASI*, No. 70, Pl. XVIII, b.

५ Deva, K., *op. cit.*, pp. 87-88.

६ Banerji, R. D., *MASI*, No. 23, pp. 100-103, Pl. XLII, b; see also Deva, K., *op. cit.*, p. 88.

७ Agrawala, R. C., *IHQ*, Vol. XXX, No. 4, pp. 341, 346, 350.

८ प्र० सं० १८४ ; तुल० Deva, K., *op. cit.*, p. 83 ; Agarwal, U., *op. cit* , p. 90, Fig. 68, जहाँ भ्रान्ति से इस मूर्ति को नरवाहन पर आरूढ़ चित्रित माना गया है।

९ भा० पु०, १०, ७

साथ कृष्ण को देखकर यशोदा और अन्य गोपियां विस्मय में पड़ गईं और कृष्ण को जीवित पाकर सभी आनन्दविभोर हो उठीं।

इस मूर्ति में तृणावर्त की उड़ान का चित्रण है। उसके स्कन्धों पर नृत्य-मुद्रा मे बैठे हुए कृष्ण का चित्रण शिशु-रूप मे न होकर युवा-रूप मे हुआ है। कृष्ण के सिर पर घुंघराले बाल है और वे हार, ग्रैवेयक, कुण्डलों, केयूरों, ककणों, नूपुरों, कौस्तुभमणि और मेखला से अलंकृत है। तृणावर्त भी कुण्डल, हार, ग्रैवेयक, उपवीत, वलय तथा मेखला-बद्ध वस्त्र धारण किए है।

कृष्ण-लीला का यह दृश्य शिल्प में बहुत कम अंकित हुआ है। बादामी के एक विशाल कृष्ण-लीला-पट्ट[१] (छठवी शती ई०) मे इस दृश्य का एक और चित्रण दर्शनीय है, जिसमें उड़ते हुए महाकाय राक्षस के स्कन्धों पर नन्हें-से कृष्ण बैठे प्रदर्शित हैं।

यमलार्जुन-उद्धार

इस लीला के कई चित्रण खजुराहो मे मिलते हैं, जिनमें दो विशेष दर्शनीय हैं—एक है लक्ष्मण मन्दिर मे और दूसरा पार्श्वनाथ मन्दिर मे। लक्ष्मण मन्दिर की मूर्ति (चित्र ४४)[२] सर्व-प्रथम उल्लेखनीय है। इसमें नृत्य करते हुए कृष्ण अपने दोनों हाथों से दो अर्जुन वृक्षो (यमलार्जुन) को उखाड़ते हुए प्रदर्शित हैं। यमलार्जुन-उद्धार की कथा भागवतपुराण[3] में मिलती है। ये अर्जुन वृक्ष धनाध्यक्ष कुबेर के दो पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव थे, जो देवर्षि नारद के शाप से वृक्ष बनकर यमलार्जुन नाम से प्रसिद्ध हुए। कृष्ण के सान्निध्य से ये दोनो यक्षकुमार शापमुक्त हुए थे। कृष्ण ने अपनी कमर मे बँधे हुए ऊखल से इन वृक्षों को उखाडा था, जिनसे दोनो यक्षकुमार प्रकट हुए थे। इस मूर्ति में युवा कृष्ण किरीट-मुकुट, कुण्डल, हार, ग्रैवेयक, कौस्तुभमणि, यज्ञोपवीत, ककण, मुक्ताग्रथित मेखला और नूपुर धारण किए हैं और वे कटि से नीचे एक वस्त्र से आच्छादित है।

पार्श्वनाथ मन्दिर की मूर्ति[४] आकार और निर्माण-शैली की दृष्टि से उपर्युक्त मूर्ति के सदृश है। दो शिलापट्टों में उत्कीर्ण इस दृश्य के चित्रण अपेक्षाकृत बहुत छोटे हैं (चित्र ५२)।[५] तीसरा चित्रण[६] भी इन्हीं के सदृश है। इन तीनों चित्रणों मे पूर्ववत् कृष्ण अपने दोनों हाथों से दो वृक्षों को उखाड़ते हुए प्रदर्शित हैं। खजुराहो की इन प्रतिमाओं के सदृश एक प्रतिमा पहाड़पुर[७] (नवी शती ई०) और एक (मध्ययुगीन) अटरु[८] मे भी द्रष्टव्य है। इस लीला की पूर्ववर्ती प्रतिमाओं में, भागवतपुराण के विवरण का पूर्ण अनुकरण कर, कृष्ण की कमर से बँधे ऊखल द्वारा वृक्षों का उखड़ना प्रदर्शित किया गया है। ऐसे चित्रण बादामी की गुफाओं (छठी शती ई०) और सीरपुर के लक्ष्मण मन्दिर में द्रष्टव्य हैं।[९]

---

१ Goetz, H., *Journal of Oriental Institute Baroda*, Vol. I, No. 1, pp. 51 ff., Pl. II, Fig. 4 (n); see also Deva, K., *op. cit.*, p. 83.

२ प्र० सं० १८५; तुल० Deva, K., *op. cit.*, p. 88, Pl. XXXIII, Fig. 9.

३ भा०पु० १०, १०

४ प्र० सं० १८६

५ प्र० सं० १६७

६ प्र० सं० १८७

७ Dikshit, K. N., *MASI*, No. 55, Pl. XXVIII d ; see also Deva, K., *op. cit.*, p. 88.

८ अग्रवाल, रत्नचन्द्र, नट-भारती, वर्ष ८, अंक १ (जनवरी, १९६०), पृ० ६८

९ Deva, K., *op. cit.*, p. 89.

वत्सासुर-वध

खजुराहो मे उपलब्ध कृष्णायन के इस दृश्य में कृष्ण वत्सासुर का वध करते हुए प्रदर्शित हैं (चित्र ४५)[१]। भागवतपुराण[२] के अनुसार एक दिन कृष्ण और बलराम ग्वालबालों के साथ यमुना-तट पर बछड़े चरा रहे थे। उसी समय एक दैत्य उन्हें मारने के उद्देश्य से बनावटी बछड़े का रूप धारण कर बछड़ों के झुण्ड मे सम्मिलित हो गया। कृष्ण ने उसे पहचान लिया और पूंछ के साथ उसके दोनों पैर पकड़ कर आकाश में घुमाते हुए उसे मार डाला। खजुराहो की इस मूर्ति में कृष्ण अपना बायाँ पैर पृथ्वी पर रखे हैं और दाएँ पैर के बल बछड़े पर आरूढ हैं। वे अपने एक दाहिने हाथ से उसकी पूंछ और एक बाएँ हाथ से उसका मुख मरोड़ रहे है। उनके ऊपरी दाएँ-बाएँ हाथ कपित्थ-मुद्रा में प्रदर्शित हैं। युवा कृष्ण के सिर पर घुँघराली केशराशि है और वे कुण्डल, हार, ग्रैवेयक, यज्ञोपवीत, केयूर, कंकण, नूपुर तथा मेखला धारण किए हैं। छठवीं शती ई० से ही यह दृश्य शिल्पियों में लोकप्रिय रहा है। इसका प्राचीनतम चित्रण बादामी मे द्रष्टव्य है।[३]

कालिय-दमन

खजुराहो में कालिय-दमन की एक सुन्दर मूर्ति है (चित्र ४७)[४]। इसमे कृष्ण अपने दाहिने पैर से कालिय नाग की पूँछ का मर्दन करते हुए नृत्य-मुद्रा में प्रदर्शित हैं। उनके दोनों अधः करो मे कमलनाल हैं। बाएँ कर के कमलनाल का निचला छोर नागराज के मुख में प्रविष्ट है, मानो इससे कृष्ण उसके मुख को पिरो रहे हों। उनका ऊपरी दाहिना हाथ नृत्य-मुद्रा में और बायाँ पूर्ण विकसित पद्म अथवा चक्र से युक्त है। कालिय का ऊर्ध्व शरीर पुरुषाकृत और अधः सर्पपुच्छाकृत है। उसके सिर पर नागत्व सूचक तीन फणों का घटाटोप है। उसकी डाढ़ी मे बाल हैं और वह कुण्डल, हार, केयूर और कंकण धारण किए है। वह बड़ी दीनतापूर्वक अपने हाथ अजलि-मुद्रा मे जोडे है और सिर ऊपर उठाकर कृष्ण से विनती करता हुआ प्रदर्शित है। कृष्ण किरीट-मुकुट तथा अन्य सामान्य खजुराहो-आभूषणो से अलंकृत हैं।

कृष्ण-लीला का यह दृश्य भारतीय शिल्प में अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। इसका प्राचीनतम अकन मण्डोर के गुप्तकालीन स्तम्भ[५] में मिलता है, जिसमे प्रत्यालीढ-मुद्रा मे प्रदर्शित कृष्ण अपने दाहिने पैर से कालिय की पूंछ का और बाएँ पैर से उसके फणों का मर्दन करते प्रदर्शित हैं। उनके दाहिने हाथ मे कमल-पुष्पो का गुच्छा है और बाएँ मे पाश है, जिससे उन्होंने कालिय को बाँध रखा है। इस दृश्य की एक खण्डित मूर्ति मथुरा[६] में उपलब्ध है। इसमें कृष्ण मुकुट, कुण्डल, हार एवं वलय धारण किए हैं। उनके द्वारा बाएँ हाथ में धारण किए गए पाश से स्पष्ट है कि

१ प्र० सं० १८८ ; तुल० Deva, K., *op. cit.*, p. 89, Pl. XXXII, Fig. 5.

२ भा० पु०, १०, ११

३ Deva, K., *op. cit.*, p. 89.

४ प्र० सं० १८९ ; तुल० Deva, K., *op. cit.*, pp. 85-86, Pl. XXXII, Fig., 4.

५ *ASIAR*, 1905-06, pp. 135 ff., Figs. 1-2, 1909-10, pp. 93 ff., Pl. XLIV; see also Deva, K., *op. cit.*, p. 86 ; Agrawala, R.C., *JASL & S*, Vol. XXIII, No. 1, p. 64, Pl. I, Fig. 2.

६ वाजपेयी, कृ० द०, कला-निधि, वर्ष १, अंक २, पृ० १३४, फलक ३, ब्रजभारती, वर्ष १५, अंक ३, पृ० ३३-३४; और भी देखिए : कृष्णदेव, उपर्युक्त, पृ० ८६

उन्होंने नागराज पर विजय पा ली है। यह पाश नागराज के सिर के चारो ओर लिपटा है। नागराज के सिर पर नागत्व सूचक फणों का घटाटोप प्रदर्शित है। कृष्ण के उठे हुए बाएँ चरण के निकट, हाथों मे उपहार लिए हुए अवनतमुखी नागराज्ञी अपने पति की प्राणरक्षा के लिए प्रार्थना करती-सी प्रदर्शित हैं, जिनकी दयनीय मुद्रा के चित्रण में शिल्पी को अत्यधिक सफलता मिली है। कालिय-दमन की एक मृण्मूर्ति भी मथुरा से प्राप्त हुई है।[१] भुवनेश्वर से प्राप्त छठवी शती ई० के ऐसे चित्रण में कदम्ब वृक्ष के साथ यमुना-तट का भी प्रदर्शन हुआ है।[२] बादामी की गुफाओ में भी यह दृश्य अकित मिलता है।[3] एक मध्ययुगीन चित्रण ओसियाँ में भी देखा जा सकता है।[४] इन सभी प्रतिमाओ के अवलोकन से ज्ञात होता है कि खजुराहो-चित्रण मे कुछ मौलिकता है। इसमें कालिय की डाढ़ी में बालों का चित्रण हुआ है, जैसा अन्य किसी स्थान की मूर्ति मे नही मिलता और उसके मुख मे कमलनाल प्रविष्ट कर उसे पाश-बद्ध करने का नवीन ढग अपनाया गया है।

अरिष्टासुर-वध

खजुराहो मे उपलब्ध अरिष्टासुर-वध की स्वतत्र-मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है[५] (चित्र ४६)। इसमे द्विभुज कृष्ण अपने दाहिने हाथ से वृषभ (अरिष्टासुर) के दाहिने सीग को और बाएं हाथ से उसके मुख को जोर से मरोड रहे हैं और अपने दाहिने पैर से उसे दबाकर वश में किए हुए नृत्य करते प्रदर्शित हैं। युवा कृष्ण के सिर पर घुंघराली केशराशि है और वे सामान्य आभूषणो से अलकृत हैं। उनके मुख-मण्डल पर झलकता अलौकिक शान्ति का भाव, बड़े सहज भाव से अरिष्टासुर को वश में करने की उनकी मुद्रा और असुर की अपार वेदनाजनित दयनीयता विशेष दर्शनीय है।

यह मूर्ति भागवतपुराण[६] की कथा के ठीक अनुरूप निर्मित है, जिसमे यह कहा गया है कि कृष्ण ने अरिष्टासुर के सीग पकड़ लिए और उसे पृथ्वी पर गिरा कर अपने पैरों से इस प्रकार कुचला जैसे कोई गीला कपड़ा निचोड़ता है।

एक कृष्ण-लीला-पट्ट में अंकित अरिष्टासुर-वध का एक और दृश्य खजुराहो मे मिलता है, जिसमे प्रत्यालीढ़-मुद्रा मे खड़े कृष्ण अपने दाहिने हाथ से सम्मुख खड़े वृषभ के दाहिने सीग को और बाएँ हाथ से उसके मुख को मरोड़ते प्रदर्शित है। यह दृश्य मण्डोर के गुप्तकालीन स्तम्भ[७] और बादामी की गुफाओं[८] में भी चित्रित है। इस लीला के मध्ययुगीन चित्रण राजस्थान के विभिन्न स्थानों में भी मिले है।[९]

---

१ Goetz, H., *op. cit.*, Pl. 1, Fig. 1; see also Deva, K., *op. cit.*, p. 86.
२ Goetz, H., *op cit.*, Pl. 1, Fig. 2; see also Deva, K., *op. cit.*, p. 86.
३ Deva, K., *op cit*, p. 86.
४ Agrawala, R. C., *IHQ*, Vol. XXX, No 4, p. 346
५ म० सं० १६०; तुल० Deva, K., *op. cit.*, p. 88, Pl. XXXIV, Fig. 10; Agarwal, U., *op. cit*, p. 40.
६ भा० पु०, १०, ३६
७ *ASIAR*, 1909-10, Pl XLIV; see also Deva, K., *op. cit.*, p 88; Agrawala, R. C., *JASL & S*, Vol. XXIII, No. 1, p. 64, Pl. I, Fig. 2.
८ Deva, K., *op. cit.*, p. 88.
९ Agrawala, R.C., *IHQ*, Vol. XXX, No. 4, pp. 346, 348, 350, मरु-भारती, वर्ष ८, अंक १ (जन०, १९६०), पृ० १८

कुब्जानुग्रह

खजुराहो में उपलब्ध कुब्जानुग्रह की मूर्ति (चित्र ४८)[1] विशेष दर्शनीय है। इसमें कंस-भवन में प्रवेश करने के पूर्व मथुरा नगरी मे विचरण करते हुए कृष्ण-बलराम और उनके सम्मुख खड़ी हुई कुब्जा का चित्रण है। कुबड़ी युवती के रूप में चित्रित कुब्जा अपने हाथ ऊपर उठाकर अगराग कृष्ण को भेंट कर रही है, जिसे कृष्ण प्रसन्नतापूर्वक अपने दाहिने हाथ मे ग्रहण कर रहे हैं। मन्द-मन्द मुस्कराते हुए सुन्दर-सुकुमार रसिक के रूप में चित्रित कृष्ण बलराम की ओर मुड़कर उनसे कुब्जा की भेंट स्वीकारने की अनुमति ले रहे हैं। कृष्ण की भाँति बलराम भी द्विभुज है। उनका दाहिना हाथ चिन्मुद्रा मे है और बाएँ मे वे हल धारण किए है। कृष्ण किरीट-मुकुट, वनमाला तथा अन्य सामान्य आभूषणों से अलंकृत हैं। कृष्ण के समान बलराम भी अलंकृत है, किन्तु उनके सिर पर मुकुट न होकर नागत्व-सूचक फणों का घटाटोप है।

यह अत्यन्त सजीव मूर्ति है। कृष्ण, बलराम और कुब्जा—तीनो का चित्रण भावपूर्ण है। कृष्ण के मुस्कराते मुख पर चपलता का भाव चित्रित है और उनके द्वारा भेंट स्वीकृत होने पर कुब्जा आनन्द से फूली नही समा रही है। कृष्ण की सुन्दरता, सुकुमारता, रसिकता, मन्द मुस्कान, चारु चितवन और उनके प्रेमालाप पर उसने अपना हृदय न्योछावर कर दिया है। कृष्ण की चपलता के विपरीत बलराम मे गम्भीरता है और उनमें बड़े भाई की गुरुता का भाव प्रदर्शित करने मे शिल्पी ने असाधारण कौशल दिखाया है।

इस कृष्ण-लीला के अन्य शिल्प-निदर्शन बहुत ही कम उपलब्ध हैं। खजुराहो के अतिरिक्त, मोहागपुर[2] के दो अर्धचित्रों मे ही यह दृश्य अंकित मिलता है।

कुवलयापीड-वध

कृष्ण द्वारा कुवलयापीड नामक हाथी के वध का एक सुन्दर चित्रण (चित्र ४९)[3] भी खजुराहो में उपलब्ध है। इसमें त्रिभंग खड़े हुए विनतमुख तथा चतुर्भुज कृष्ण अपने दो हाथों से कुवलयापीड की सूँड जोर से मरोड़ रहे है और अपने बाएँ पैर से कुवलयापीड को नीचे दबाए हैं। उनके ऊपरी दाहिने हाथ में गदा है, जिससे उस पर प्रहार करने को उद्यत है। उनका ऊपरी बायाँ हाथ खण्डित है। वे किरीट-मुकुट तथा अन्य सामान्य आभूषणों से आभूषित है। कुवलयापीड पर उन्होंने पूर्ण विजय पा ली है, जो अत्यन्त पीड़ित दिखाई पड़ रहा है। इस चित्रण का आधार भागवतपुराण[4] की वह कथा है, जिसमे यह उल्लेख है कि कृष्ण ने कुवलयापीड की सूँड़ पकड़ कर उसे धरती पर पटक दिया था और उसके धराशायी हो जाने पर उन्होंने सिंह के समान खेल ही खेल मे उसे पैरो से दबा कर मार डाला।

कुवलयापीड-वध का प्राचीनतम चित्रण बादामी[5] (छठवीं शती ई०) मे मिलता है और तब से यह दृश्य निरन्तर मूर्तिकारों मे लोकप्रिय रहा है, किन्तु खजुराहो की यह मूर्ति अत्यन्त

---

१ म० सं० १४१ ; तुल० Deva, K., *op cit*, pp. 86-87, Pl. XXXIII, Fig. 8.

२ Banerji, R. D., *op. cit.*, pp. 103-06, Pls. XLIII, XLIV; see also Deva, K., *op. cit*, p. 87.

३ म० सं० १४२ ; तुल० Deva, K., *op. cit.*, p. 85, Pl. XXXI, Fig. 3 ; Agarwal, U., *op. cit*, p. 92, Fig 69 डॉ० उर्मिला अग्रवाल ने इस मूर्ति को गजारूढ़ कुबेर मानने की भूल की है।

४ भा० पु०, १०, ४३

५ Deva, K, *op. cit.*, p. 85.

प्रभावशाली है और विलक्षण भी। सामान्यतः अन्य स्थानों की मूर्तियों में कुवलयापीड कृष्ण की तुलना में बहुत ही बड़ा प्रदर्शित है, किन्तु खजुराहो में यह कृष्ण से छोटा है, जिसे कृष्ण बड़े सहजभाव से वश में किए हुए हैं।

चाणूर-वध

एक मूर्ति मे कृष्ण कंस के एक मल्ल, सम्भवतः चाणूर, की टाँग खीच कर उसका वध करते प्रदर्शित है (चित्र ५०)[१]। इसमें चतुर्भुज कृष्ण अपने एक बाएँ हाथ से मल्ल की गर्दन जोर से पकड़े है और दाएँ-बाएँ दो प्राकृतिक हाथो से उसकी दाहिनी टाँग खीच रहे हैं। शेष एक दाहिने हाथ से वे गदा ऊपर उठा कर मल्ल पर प्रहार करने को उद्यत हैं। टाँग खीचे जाने पर मल्ल अपना सन्तुलन खो बैठा है और वह द्वन्द्वयुद्ध में पराजित होकर पूर्णतया कृष्ण के वश मे है। अपना दाहिना हाथ वह सिर के ऊपर उठाकर गदा के प्रहार से अपनी रक्षा के लिए प्रयत्नशील है और अत्यन्त भयभीत दिखाई पड़ रहा है। कृष्ण किरीट-मुकुट, कुण्डल, हार, ग्रैवेयक, अगद, वलय, मेखला, नूपुर और वनमाला धारण किए हैं। चाणूर की डाढ़ी के बालो का प्रदर्शन हुआ है और वह भी कुण्डल, ग्रैवेयक, वलय तथा मेखला से अलंकृत है।

कृष्ण-चाणूर-युद्ध का एक चित्रण खजुराहो के एक कृष्ण-लीला-पट्ट में भी मिलता है। इसमें चाणूर उपर्युक्त मूर्ति के सदृश पराजित नही चित्रित है, वरन् वह द्विभुज कृष्ण से मल्ल-युद्ध करता प्रदर्शित है। इस चित्रण से मिलते-जुलते चित्रण बादामी की गुफाओं और सीरपुर के लक्ष्मण मन्दिर में प्राप्त है।[२]

शल-वध

एक अन्य मूर्ति (चित्र ५१)[३] में भी कृष्ण एक मल्ल से युद्ध करते प्रदर्शित है। यह कस का शल नामक मल्ल हो सकता है। द्विभुज कृष्ण अपने दाहिने हाथ से गदा उठाकर उस पर प्रहार करने को उद्यत हैं और बाएँ हाथ से प्रतिद्वन्द्वी के उठे हुए दाहिने हाथ को पकडे है। उसने गदा के प्रहार से अपने सिर की रक्षा करने के लिए यह हाथ उठा लिया है। उसका बायाँ हाथ तर्जनी-मुद्रा में है। कृष्ण किरीट-मुकुट, वनमाला तथा अन्य सामान्य आभूषणों से अलंकृत हैं। शल कुछ भीमकाय चित्रित है और वह भी मुकुट और वनमाला को छोड़कर कृष्ण के सदृश आभूषण धारण किए है। द्वन्द्वयुद्ध के इस दृश्य मे ओजस्विता, उत्तेजना और शक्ति के प्रदर्शन में शिल्पी को अपूर्व सफलता मिली है। इस दृश्य के अन्य अंकन बादामी और सीरपुर में भी द्रष्टव्य हैं।[४]

केशी-वध

खजुराहो में केशी-वध की कोई स्वतंत्र मूर्ति नही मिली है, किन्तु वहाँ उपलब्ध दोनों कृष्ण-लीला-पट्टों में कृष्ण की इस लीला का चित्रण हुआ है। केशी-वध की कथा भागवतपुराण[५]

---

१ प्र० सं० १४३ ; तुल० Deva, K., *op. cit.*, pp. 84-85, Pl. XXXI, Fig. 2.
२ Deva, K., *op. cit.*, p. 85.
३ प्र० सं० १४४ ; तुल० Deva, K., *op. cit.*, p. 86, Pl. XXXII. Fig. 7.
४ Deva, K., *op. cit.*, p. 86.
५ भा० पु०, १०, ३७

में मिलती है। केशी एक दैत्य था, जो कंस की प्रेरणा से अश्व के रूप में आकर कृष्ण को मारना चाहता था। पहले पट्ट[1] में कृष्ण और अश्व केशी के बीच हो रहे युद्ध का प्रदर्शन है। प्रचण्ड केशी अपने आगे के पैर उठाए कृष्ण पर झपटता हुआ प्रदर्शित है और कृष्ण अपने दाहिने हाथों से उस पर प्रहार कर रहे हैं। दूसरे पट्ट[2] (चित्र ५२) में खड़े हुए केशी के पैर ऊपर नहीं उठे हैं और उस पर प्रहार करते हुए कृष्ण उसके सम्मुख हैं। इसमें कृष्ण की आकृति खण्डित है।

कृष्ण की यह लीला भारतीय मूर्ति-कला में कुषाणकाल से ही लोकप्रिय रही है। इस लीला के प्राचीनतम चित्रण (कुषाणकालीन) मथुरा से प्राप्त हुए है। ऐसा एक चित्रण मथुरा संग्रहालय[3] में और एक कराची संग्रहालय[4] मे सुरक्षित है। मण्डोर के एक गुप्तकालीन स्तम्भ मे भी केशी-वध का सुन्दर अंकन है।[5] इसी काल का एक चित्रण वलभी (सौराष्ट्र) से उपलब्ध हुआ है।[6] एक चित्रण सीरपुर के लक्ष्मण मन्दिर (६०० ई०) मे देखा जा सकता है।[7] इनके अतिरिक्त मध्ययुगीन अनेक चित्रण राजस्थान के विभिन्न स्थानों, जैसे आबानेरी,[8] ओसियां,[9] किराडू,[10] तथा अटरू,[11] में पाए गए हैं।

कृष्ण-लीला-पट्ट

खजुराहो मे कृष्णायन के अनेक दृश्यो से अंकित दो शिलापट्ट प्राप्त हुए है। पहला शिलापट्ट[12] विशाल है और सुरक्षित अवस्था मे है। इसके आधे भाग मे कंस की कारागार का चित्रण है, जिसमें अनुचर-अनुचरियों के अतिरिक्त वसुदेव और नवजात कृष्ण के साथ देवकी प्रदर्शित हैं। कारागार का बोध कराने के लिए चित्रण के प्रारम्भ और अन्त मे एक-एक खड्गधारी रक्षक खड़ा प्रदर्शित है। चित्रण के प्रारम्भ में खड्गधारी रक्षक के निकट लम्बकूर्च वसुदेव बैठे हैं, जिनकी ओर मुख किए दो अनुचरियां खड़ी है। ये कृष्ण-जन्म का समाचार देने के लिए वसुदेव के पास आई हुई प्रतीत होती हैं। इसके पश्चात् कृष्ण-जन्म का दृश्य है, जिसमें नवजात कृष्ण के साथ देवकी अर्धशायी प्रदर्शित है। उनके पास तीन अनुचरियां है। चित्रण के अंत में खड़ी हुई देवकी नवजात शिशु को, यशोदा के पास ले जाने के लिए, वसुदेव को दे रही हैं।

शिलापट्ट के शेष आधे भाग मे कृष्ण-लीला के कई दृश्य अंकित हैं—प्रारम्भ में बाललीला का एक सुन्दर चित्रण है। इसमे दो गोपियां दधि मथ रही हैं और नन्हे-से कृष्ण दधि-भाण्ड का

१ प्र० सं० १४६
२ प्र० सं० १४७
३ Joshı, N. P., *Mathura Sculptures*, No. 58. 4476, pp. 68-69, Fig. 64.
४ Agrawala, R. C., *IHQ*, Vol. XXXVIII, No. 1, p. 86.
५ Agrawala, R. C., *JASL & S*, Vol. XXIII, No. 1, p. 64, Pl. I. Fig. 2.
६ Shah, U. P., *Sculptures from Śāmalājī and Roḍā*, pp. 24-25, 118, Fig. 12, *JIM*, Vol. VIII, Pl. V, Fig. 9, and Vol. IX, Pl. XXI. Fig. 21.
७ Deva, K., *JMPIP*, No. 2, p. 40.
८ Agrawala, R. C., *Bhāratīya Vıdyā*, Vol. XVI, No. 2, pp. 79-80, *Lalıt Kalā*, Nos. 1-2, pp. 131-32, Pl. LIII. Fig 4.
९ Agrawala, R. C., *IHQ*, Vol. XXX, No. 4, p. 346.
१० वही, पृ० ३५०
११ अग्रवाल, रत्नचन्द्र, मरु-भारती, वर्ष ८, अंक १ (जनवरी, १९६०), पृ० ६८
१२ प्र० सं० १४८; तुल० Agarwal, U., *op. cit.*, pp. 39-40, Fig. 16.

आश्रय लिए हुए खड़े हैं, मानो नवनीत के लिए मचल रहे हो। दूसरा दृश्य पूतना-वध का है, जिसमें राक्षसी की गोद में लेटे हुए शिशु कृष्ण दूध के साथ उसके प्राण पी रहे हैं। इस दृश्य के पश्चात् एक स्थूलकाय व्यक्ति के दक्षिण स्कन्ध पर शिशु कृष्ण बैठे चित्रित हैं। सम्भवतः यह तृणावर्त-वध का दृश्य है। इसके पश्चात् क्रमशः यमलार्जुन-उद्धार, अरिष्टासुर और केशी का वध तथा अंत में कृष्ण-चाणूर का द्वन्द्वयुद्ध चित्रित है। अन्तिम चार दृश्यों में कृष्ण युवा-रूप में और शेष सभी दृश्यों में वे शिशु अथवा बाल-रूप में चित्रित है।

दूसरा शिला पट्ट (चित्र ५२)[१] अपेक्षाकृत छोटा है और इसका एक भाग खण्डित है। इसमें पूतना-वध, यमलार्जुन-उद्धार, कृष्ण द्वारा कंस के एक मल्ल का वध, शकट-भंग और केशी-वध के दृश्य अंकित है।

बलराम अवतार

बलराम के 'वीर' और 'व्यूह' रूपों की चर्चा पहले की जा चुकी है, किन्तु विभव-सूची में भी उनका एक महत्वपूर्ण स्थान है। कृष्ण के ये बड़े भाई थे और कृष्ण के साथ-साथ इनका जीवन-चरित्र भी विभिन्न पुराणों और अन्य ग्रन्थों में मिलता है।

बलराम की मूर्तियाँ शुगकाल में ही बनने लगी थी। कृष्ण के सखा और साथी के रूप में भी वे कृष्ण-लीला-पट्टों में प्रायः चित्रित हुए हैं। आज उनकी स्वतंत्र मूर्तियाँ बहुत कम उपलब्ध है, किन्तु खजुराहो में उनका अभाव नहीं है। वहाँ चार स्वतन्त्र मूर्तियाँ लेखक को प्राप्त हुई हैं।

पहली मूर्ति कुछ खण्डित अवस्था में है।[२] इसमें चतुर्भुज बलराम द्विभंग खड़े हैं। उनके पहले तीन हाथ टूटे है और चौथा कट्यवलम्बित है। वे कुछ स्थूलकाय है और करण्ड-मुकुट, कुण्डल, हार, ग्रैवेयक, कौस्तुभमणि, केयूर, वलय, वनमाला तथा मुक्ताग्रथित मेखला धारण किए है। उनके मुकुट के ऊपर नाग-फणों का विशाल घटाटोप है। उनके दोनों पार्श्वों में दो-दो अनुचरियाँ खड़ी चित्रित है। दाएँ पार्श्व की एक अनुचरी अपने स्वामी के लिए एक वारुणी-पात्र लिए है। मूर्ति के तीन हाथ खण्डित होने के कारण आयुधों का पता नहीं चलता, फिर भी नाग-फणों के घटाटोप और वारुणी-पात्र की उपस्थिति से इसके बलराम होने में कोई सन्देह नहीं है। आबानेरी (राजस्थान) की एक पूर्ववर्ती बलराम-मूर्ति में भी वारुणी-पात्र से युक्त खड़ी एक अनुचरी देखी जा सकती है।[३] ऐसा चित्रण पहाड़पुर की उत्तर गुप्तकालीन चतुर्भुजी बलराम-मूर्ति में भी मिलता है।[४]

दूसरी मूर्ति[५] में बलराम ललितासन में बैठे हैं और वे करण्ड-मुकुट, हार, ग्रैवेयक, कुण्डल, यज्ञोपवीत, कटिसूत्र, केयूर, कंकण आदि सामान्य आभूषणों से अलंकृत है। उनके मुकुट के ऊपर पाँच नाग-फणों का विशाल घटाटोप है। उनके चार हाथ हैं—पहले में वे चषक, दूसरे में गदा, तीसरे में पद्म (कमलनाल) और चौथे में हल धारण किए हैं। प्रभावली के ऊपरी दोनों कोनों में ललितासन में बैठे चतुर्भुज देवता (?) की एक-एक प्रतिमा अंकित है। इन दोनों के दो ऊर्ध्व करो

१ प्र० सं० १६७
२ प्र० सं० १६८
३ Agrawala, R. C., *JIH*, Vol. XXXIX, Part I, pp. 126-27, Pl. I.
४ Saraswati, S. K., *A Survey of Indian Sculpture*, Pl. XXVIII, Fig. 122, *Early Sculptures of Bengal*, pp. 55-58, Fig. 11; Sastri, A. M., *Nagpur University Journal*, Vol. XVI. p. 7, Fig. 3.
५ प्र० सं १६९

में एक-एक पुष्प है और उनका दक्षिणाध: कर अभय-मुद्रा में तथा वामाध: घट-युक्त है। नीचे दाएँ-बाएँ कोनों पर एक-एक पार्श्वचर खड़ा अंकित है। मूर्ति सुन्दर है और पूर्णतया सुरक्षित अवस्था में है।

तीसरी मूर्ति (चित्र ५३)[१] में बलराम द्वारा सूत लोमहर्षण के वध का दृश्य प्रदर्शित है। बलराम अपना दाहिना पैर आगे बढ़ाकर अपने दोनों हाथों से पकड़े हुए हल से सूत लोमहर्षण पर प्रहार कर रहे हैं। स्थूलकाय बलराम कुण्डल, हार, ग्रैवेयक, कौस्तुभमणि, केयूर, वलय, यज्ञोपवीत, मुक्ताग्रथित मेखला, नूपुर आदि सामान्य आभूषणों से अलंकृत है। उनके सिर के ऊपर पाँच नाग-फणों का घटाटोप है। सूत एक चौकी पर बैठे हैं। उनका बायाँ पैर चौकी के नीचे है और जानु से मुड़कर चौकी पर रखा हुआ दाहिना एक योग-पट्ट से बँधा है। वे लम्बकूर्च और लम्बोदर हैं, तथा कुण्डलों, ग्रैवेयक, केयूरों, ककणो, मुक्ताग्रथित मेखला तथा यज्ञोपवीत से अलंकृत है। बलराम उत्तेजित है, किन्तु सूत शांत और अविचल।

बलराम द्वारा सूत रोमहर्षण के वध की कथा भागवतपुराण[२] मे इस प्रकार मिलती है: एक समय बलराम ने नैमिषारण्य क्षेत्र की यात्रा की। उन दिनों वहाँ बड़े-बड़े ऋषि सत्संगरूप महान् सत्र कर रहे थे। बलराम को आया देखकर उन सभी ने अपने-अपने आसनो से उठकर उनका अभिनन्दन किया, और यथायोग्य प्रणाम-आशीर्वाद करके उनकी अर्चना की, किन्तु व्यास-गद्दी पर बैठे हुए महर्षि व्यास के शिष्य सूत रोमहर्षण ने न तो उठकर उनका स्वागत किया और न हाथ जोड़ कर प्रणाम ही। सूत की इस उद्दण्डता को देख बलराम क्रुद्ध हुए और तुरन्त अपने हाथ मे स्थित कुश की नोक से उन पर प्रहार कर उनका वध कर डाला।

इस मूर्ति में बलराम अपने विशेष आयुध हल से सूत का वध करते हुए प्रदर्शित है, भागवत-पुराण के कथानुसार कुश से नही। इस दृश्य की केवल दो मूर्तियाँ अन्यत्र मिलती हैं: एक सीरपुर के लक्ष्मण मन्दिर[३] में और धौलपुर से उपलब्ध दूसरी भारत-कला-भवन, बनारस में।[४]

चौथी बलराम और उनकी पत्नी रेवती की आलिंगन-मूर्ति (चित्र ५४) है।[५] इसमें बलराम और रेवती आलिंगन-मुद्रा में त्रिभंग खड़े हैं। चतुर्भुज बलराम करण्ड-मुकुट, कुण्डलों, हार, ग्रैवेयक, कौस्तुभमणि, उपवीत, मेखला, केयूरों, कंकणों, नूपुरो और वनमाला से अलंकृत है। उनके दाएं पार्श्व मे खड़ी रेवती भी धम्मिल्ल, हार, ग्रैवेयक, कुण्डल, मुक्ताग्रथित कटिसूत्र, नूपुर आदि सामान्य आभूषण धारण किए है। बलराम का दक्षिणाध: कर रेवती को आलिंगनपाश में भरता हुआ उनके वक्ष:स्थल को स्पर्श कर रहा है। उनके दक्षिणोर्ध्व और वामोर्ध्व कर क्रमश: चषक और हल से युक्त है और वामाध: कट्यवलम्बित है। रेवती के दाएँ हाथ में सनाल कमल है और बायाँ बलराम को आलिंगन करता हुआ उनके वाम स्कन्ध पर आश्रित है। बलराम के मुकुट के ऊपर प्रदर्शित सात नाग-फणों का सुन्दर घटाटोप विशेष दर्शनीय है। शिल्पीकरण की दृष्टि से मूर्ति सुन्दर है।

बलराम-रेवती की एक अन्य मूर्ति ओसियाँ (राजस्थान) के हरि-हर मन्दिर में देखी जा

---

१ प्र० सं० २०० ; तुल० Deva, K., *op. cit.*, pp. 83-84.

२ भा० पु० १०, ७८

३ *ASIAR*, 1909-10, pp. 11 ff., Pl. II; see also Deva, K., *op. cit.*, p. 84.

४ Deva, K., *op. cit.*, p. 84, Pl. XXXI, Fig. 1.

५ प्र० सं० २०१

सकती है। इसमें बलराम और रेवती की आलिंगन-मुद्रा खजुराहो-मूर्ति के सदृश है, किन्तु रेवती बलराम के बाएँ पार्श्व में खड़ी प्रदर्शित हैं।[1] राजपूताना संग्रहालय, अजमेर में सुरक्षित बलराम-रेवती की मूर्ति भी दर्शनीय है, किन्तु इसमें आलिंगन-मुद्रा का अभाव है।[2]

उपर्युक्त स्वाधीन मूर्तियों के अतिरिक्त दशावतारों के सामूहिक चित्रणों में भी बलराम की द्विभुजी आकृतियाँ मिलती हैं (चित्र ५५, ५६)।

बलराम-प्रतिमा-लक्षण विभिन्न शास्त्रों में मिलते हैं। बृहत्संहिता[3] में वे हल धारण किए हुए और मदोन्मत्त नेत्रों से युक्त वर्णित हैं। उनके और कृष्ण के बीच में द्विभुजी, चतुर्भुजी अथवा अष्टभुजी एकानंशा देवी के होने का भी उल्लेख है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण[4] में मदोन्मत्त नेत्रों से युक्त बलराम हल के साथ मुसल भी धारण किए हैं। अग्निपुराण[5] में हल, मुसल, गदा और पद्म से युक्त उनकी चतुर्भुजी प्रतिमा का उल्लेख है। समराङ्गण-सूत्रधार[6] में भी वे चतुर्भुज हैं, किन्तु यहाँ उन्हें रेवती के साथ और तालकेतु (तालध्वज) से युक्त चित्रित करने का निर्देश है। हल और मुसल का उल्लेख पूर्ववत् है।

सामान्यतः शास्त्रों में बलराम के दो आयुधों—हल और मुसल—पर विशेष जोर दिया गया है। खजुराहो की प्रतिमाओं में केवल हल ही मिलता है, मुसल नहीं। वहाँ की आलिंगन-मूर्ति समराङ्गण-सूत्रधार के विवरण से साम्य रखती है, जहाँ बलराम को रेवती के साथ चित्रित करने का निर्देश है।[7]

बुद्ध और कल्कि अवतार

खजुराहो में विष्णु के बुद्धावतार की कोई स्वाधीन मूर्ति नहीं उपलब्ध हुई है। स्थानीय संग्रहालय में भूमि-स्पर्श-मुद्रा में आसीन बुद्ध की एक विशाल मूर्ति अवश्य सुरक्षित है, किन्तु वह विष्णु के बुद्धावतार की मूर्ति नहीं है, जैसा कि भ्रान्ति से डॉ० उर्मिला अग्रवाल ने माना है।[8] किन्तु वहाँ सामूहिक रूप से चित्रित दशावतारों में बुद्धावतार भी प्रदर्शित है। इस दृष्टि से खजुराहो-संग्रहालय का दशावतार-पट्ट दर्शनीय है, जिसमें बुद्ध अपना दाहिना हाथ अभय-मुद्रा में किए खड़े हैं (चित्र ५५, ५६)। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की विशाल विष्णु-मूर्तियों की प्रभावलियों में भी अन्य अवतारों के साथ बुद्ध भी भूमि-स्पर्श अथवा अभय-मुद्रा में देखे जा सकते हैं।

बुद्धावतार की भाँति कल्कि अवतार की भी कोई स्वाधीन मूर्ति खजुराहो में नहीं मिली। बुद्ध की भाँति कल्कि भी दशावतारों के सामूहिक चित्रण में ही देखने को मिलते हैं। उपर्युक्त दशावतार-पट्ट में बुद्ध के सम्मुख चित्रित अश्वारूढ़ कल्कि विशेष दर्शनीय हैं (चित्र ५५,५६)। विभिन्न प्रकार की विशाल विष्णु-मूर्तियों की प्रभावली में सामूहिक रूप से प्रदर्शित दशावतारों के मध्य सामान्य रूप से अश्वारूढ़ कल्कि का चित्रण देखा जा सकता है।

---

१ Agrawala, R. C., *op. cit.*, p. 126, Fig. 2.

२ वही, पृ० १२३

३ बृहत्सं०, ५८, ३६-३८

४ वि० ध०, ८५, ७३

५ अ० पु०, ४९, १२

६ स० सू०, ७७, ३६-३८; द्र० प्र० ल०, पृ० ८० और प्रतिमा-विज्ञान, पृ० १२८-२९

७ रेवतीसहितः कार्यो बलदेवः प्रतापवान् ॥ —वही

८ Agarwal, U., *op. cit.*, p. 41, Fig. 19.

दशावतार-पट्ट

खजुराहो में एक सुन्दर दशावतार-पट्ट प्राप्त हुआ है (चित्र ५५, ५७-५९)।[१] इसमें एक पंक्ति मे क्रमशः कूर्म, नरसिंह, वामन, परशुराम, बलराम, बुद्ध और कल्कि अवतारों का सजीव चित्रण है। इनमें से प्रत्येक प्रतिमा का उल्लेख सम्बन्धित अवतार की मूर्तियों के साथ किया जा चुका है।

दशावतारों की सम्मिलित मूर्ति

खजुराहो में एक मूर्ति बड़ी विलक्षण मिली है, जिसमें सब अवतारों का सम्मिलित प्रदर्शन है। इस मूर्ति (चित्र ५६)[२] मे सामान्य आभूषणों से अलंकृत एकादशमुख विष्णु त्रिभंग खड़े हैं। उनका केन्द्रीय मुख विशाल है और वे किरीट-मुकुट से अलंकृत हैं। इस मुख के दोनों ओर अपेक्षाकृत छोटे पाँच-पाँच मुख संयुक्त हैं, जिनमें से दाहिनी ओर एक सिंहमुख और बाईं ओर एक वराहमुख है। केन्द्रीय मुख विष्णु के 'पर' रूप का और शेष दस मुख उनके दस अवतारों का प्रतिनिधित्व करते है। मूर्ति अष्टभुजी है, जिसके एक बाएँ हाथ में खेटक है और शेष सात हाथ खण्डित है। विष्णु के दाएँ पार्श्व मे पद्मधारिणी लक्ष्मी खड़ी हैं और बाएँ में सर्पधारी गरुड़ खड़े है। लक्ष्मी और गरुड़ के पीछे खडे क्रमश. चक्र और शंख पुरुष प्रदर्शित हैं। इन दोनों के पीछे की ओर एक-एक चामरधारिणी अनुचरी का भी चित्रण हुआ है। इनके अतिरिक्त, पादपीठ पर एक भक्त-युगल भी बैठा चित्रित है। प्रभावली के ऊपरी कोनों पर क्रमशः ब्रह्मा और शिव उत्कीर्ण हैं। दोनों चतुर्भुज हैं और ललितासन में बैठे हैं। ब्रह्मा त्रिमुख है और उनके चार हाथ क्रमशः अभय, स्रुव, पुस्तक और कमण्डलु-युक्त हैं। ब्रह्मा के समान शिव का भी पहला और चौथा हाथ क्रमशः अभय-मुद्रा मे और कमण्डलु-युक्त है, किन्तु दूसरे और तीसरे में वे क्रमश. त्रिशूल और सर्प लिए है।

४. विष्णु के अन्य अवतार एवं रूप

हरि-हर-पितामह (दत्तात्रेय)

विभिन्न शास्त्रों मे उपलब्ध विष्णु-अवतारों की विभिन्न सूचियों का विवरण देते समय (पृ० ६१) यह उल्लेख किया जा चुका है कि दत्तात्रेय भी विष्णु के एक अवतार माने जाते हैं। वस्तुतः ये विष्णु के एक गौण अवतार है। इनके जन्म एवं जीवन-चरित्र की विस्तृत कथा मार्कण्डेय-पुराण में मिलती है।[३]

विष्णुधर्मोत्तरपुराण[४] में दत्तात्रेय की मूर्ति के विषय में केवल इतना उल्लेख है कि वे वाल्मीकि के सदृश निर्मित किए जाएँ। अपराजितपृच्छा[५] और रूपमण्डन[६] में दत्तात्रेय की मूर्ति 'हरि-हर-पितामह' नाम से वर्णित है। इन दोनों शिल्प-शास्त्रों में उपलब्ध इस मूर्ति का विवरण एकसमान है। इनके अनुसार हरि-हर-पितामह के चार मुख, छः भुजाएँ और केवल एक देह हो और वे एक

१ प्र० सं० १०२
२ प्र० सं० १०३
३ *EHI*, I, I, pp. 251-52.
४ वि० ध०, ८५, ६९
५ अपरा०, २१३, ३०-३१
६ रूप०, ४, ३२-३३

पीठ पर स्थित हों। वे दाहिने हाथों में अक्षमाला, त्रिशूल और गदा तथा बाएँ में कमण्डलु, खट्वांग और चक्र धारण किए हों। इन छः लाञ्छनों मे अक्षमाला और कमण्डलु ब्रह्मा के, चक्र और गदा विष्णु के तथा त्रिशूल और खट्वाग शिव के लाञ्छन हैं।

दत्तात्रेय-चित्रण का एक दूसरा ढंग भी है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव एक पंक्ति में खड़े प्रदर्शित होते है। इस चित्रण के इन तीनो देवताओं की प्रतिमाएँ उनकी साधारण प्रतिमाओं के सदृश ही होती हैं।[1] खजुराहो में दत्तात्रेय का चित्रण इसी ढंग से हुआ है। वहाँ केवल दो मूर्तियाँ लेखक को मिली है। पहली मूर्ति (चित्र ६०)[2] मे ब्रह्मा, विष्णु और शिव की पृथक्-पृथक् प्रतिमाएँ एक पंक्ति मे निर्मित है। केन्द्र मे विष्णु हैं, उनके दाईं ओर ब्रह्मा और बाईं ओर शिव है। तीनों चतुर्भुज और समभंग खड़े है। ब्रह्मा त्रिमुख और लम्बकूर्च है। उनका सिर टूटा होने के कारण मुकुट लुप्त हो गया है। वे हार, ग्रैवेयक, कुण्डल, यज्ञोपवीत, केयूर, वलय, मेखला और वनमाला धारण किए है। उनका पहला हाथ वरद-मुद्रा में है और शेष तीन मे क्रमशः स्रुक्, कमल-नाल-युक्त पुस्तक और कमण्डलु है। उनके दाएँ पार्श्व मे एक अनुचरी खड़ी और बाएँ मे एक जटा-मुकुटधारी अनुचर खड़ा है। साथ मे बैठे हुए एक भक्त-युगल का भी चित्रण है।

विष्णु किरीट-मुकुट धारण किए है और ब्रह्मा के सदृश अलंकृत हैं। उनका पहला और तीसरा हाथ खण्डित है तथा दूसरे और चौथे मे वे क्रमशः गदा और शख धारण किए है। उनके दाएँ पार्श्व में लक्ष्मी और बाएँ मे सर्पधारी गरुड़ खड़े है। भक्त-युगल का चित्रण पूर्ववत् है।

शिव का मस्तक खण्डित है और वे पूर्ववत् अलकृत है। उनका पहला हाथ अक्षमाला-युक्त वरद-मुद्रा मे है और वे दूसरे तथा चौथे मे क्रमशः त्रिशूल और कमण्डलु धारण किए है। तीसरा हाथ खण्डित है। उनके दाएँ पार्श्व मे एक अनुचरी खड़ी और बाएँ मे एक अनुचर खड़ा प्रदर्शित है। बैठा हुआ भक्त-युगल भी पूर्ववत् चित्रित है।

दत्तात्रेय के दूसरे चित्रण[3] की ब्रह्मा-प्रतिमा टूट कर लुप्त हो गई है और उसमे अब विष्णु और शिव की ही प्रतिमाएँ शेष हैं। विष्णु और शिव -- दोनों पहली प्रतिमा के सदृश चतुर्भुज और समभंग है। विष्णु किरीट-मुकुट तथा वनमाला सहित सामान्य आभूषणों से अलकृत हैं और उनके मस्तक के पीछे सुन्दर शिरश्चक्र का प्रदर्शन है। उनके चारो हाथ खण्डित है और उनके दोनो पार्श्वों में दो चक्र-पुरुष खड़े है। चरणों के नीचे पादपीठ पर पद्मासन में लक्ष्मी बैठी है। उनका दाहिना हाथ अभय-मुद्रा में है और बाएँ में वे अमृतघट लिए हैं। विष्णु के दाएँ पार्श्व में खड़े चक्र-पुरुष के पीछे राम और बुद्ध तथा बाएँ पार्श्व के चक्र-पुरुष के पीछे परशुराम और कल्कि के चित्रण हैं।

शिव जटा-मुकुट धारण किए है और इसके अतिरिक्त वे विष्णु के समान अलकृत है। उनके मस्तक के पीछे भी शिरश्चक्र है। उनके भी चारो हाथ खण्डित हैं। उनके दाएँ-बाएँ पार्श्वों मे एक-एक अनुचरी खड़ी है और बाईं ओर की अनुचरी के पीछे एक अनुचर भी खड़ा है। जटा-मुकुटधारी इस अनुचर के दाहिने हाथ मे त्रिशूल है और इसका बायाँ हाथ कट्यवलम्बित है। इसे त्रिशूल-पुरुष मान सकते है। शिव के चरणों के नीचे पादपीठ पर उनका वाहन नन्दी बैठा अंकित है।

१ *EHI*, I, I, p. 252.
२ प्र० सं० २०५
३ प्र० सं० २०६

इस प्रकार विष्णु और शिव के साथ उनके अपने-अपने पार्श्वचर चित्रित हैं, किन्तु मूर्ति मे विष्णु की ही प्रधानता है। उनके मस्तक के पीछे बने शिरश्चक्र में विशेषता है और उसके ऊपर बनी एक रथिका में उनके योगासन रूप की छोटी प्रतिमा अंकित है। मूर्ति के ऊपरी कोने पर भी एक रथिका है, जिसमें विष्णु के नरसिंहावतार की छोटी प्रतिमा चित्रित है। यह रथिका शिव के मस्तक के निकट होने पर भी इसमे विष्णु का ही एक अवतार प्रदर्शित है।

खजुराहो की उपर्युक्त मूर्तियो के सदृश एक दत्तात्रेय-मूर्ति हलेबिद् के होयसलेश्वर मन्दिर में भी द्रष्टव्य है।[1]

वैकुण्ठ

इतिहास—वैदिक परम्परा मे वैकुण्ठ इन्द्र से सम्बद्ध एक देव है, किन्तु परवर्ती साहित्य मे 'वैकुण्ठ' इन्द्र का ही एक नाम बताया गया है।[2] दुर्गाचार्य के अनुसार विकुण्ठा नाम की एक आसुरी थी, जिसके तप:प्रभाव से इन्द्र पुत्र होकर उत्पन्न हुए। अतः इन्द्र का नाम वैकुण्ठ माना जाता है।[3] किन्तु महाभारत मे वैकुण्ठ की गणना विष्णु के एक सहस्र नामों मे हुई है (द्र० विष्णुसहस्रनाम)। पुराणो मे भी विष्णु का ही एक नाम विकुण्ठ अथवा वैकुण्ठ बताया गया है। भागवतपुराण[4] मे स्वयं भगवान् कहते है, "मेरी निर्मल सुयश-सुधा का अवगाहन कर चण्डालपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् तुरन्त पवित्र हो जाता है, इसीलिए मेरा नाम विकुण्ठ है।" इस कथानुसार पापो को कुण्ठित करने के कारण भगवान् का नाम विकुण्ठ पड़ा। इसी पुराण[5] मे अन्य स्थल पर वैकुण्ठ की व्युत्पत्ति भी इस प्रकार दी गई है—शुभ्र ऋषि की पत्नी विकुण्ठा के गर्भ से स्वयं भगवान् ने जन्म लिया था, इसीलिए वे वैकुण्ठ कहलाए। विष्णुपुराण[6] में भी वैकुण्ठ नाम पड़ने का यही कारण दिया गया है। भागवतपुराण में भगवान् के लोक का भी नाम वैकुण्ठ बताया गया है। भगवान् ने लक्ष्मी की प्रार्थना से, उनको प्रसन्न करने के लिए, वैकुण्ठधाम की रचना की थी।[7] इस प्रकार पुराण वैकुण्ठ को विष्णु के अवतार और लोक के रूप मे वर्णित करते हैं।

वैकुण्ठ अवतार की एक रोचक कथा यशोवर्मन् के वि० स० १०११ के खजुराहो अभिलेख[8] में मिलती है। इसके अनुसार विष्णु ने कपिल आदि तीन असुरों को मारने के लिए वैकुण्ठरूप धारण किया था। वराह और पुरुष-सिंह (नरसिंह) के रूपों से युक्त इन असुरों का एक ही सम्मिलित शरीर था। उन्हें ब्रह्मा से यह वर मिला था कि उनका वध उन्हीं का रूप धारण करने वाला ही कर सकता था। इसीलिए विष्णु ने सौम्य, वराह, नरसिंह और कपिल—इन चार मुखों से युक्त वैकुण्ठ अवतार धारण किया। यह कथा साहित्य में कहीं नहीं मिलती।

१ *EHI*, I, I, pp 252-53, Pl. LXXII, Fig. 1.
२ Pathak, V. S., *JMPIP*, No. 2, p. 9, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० ६३१ ; Tripathi, L. K., *Bhāratī*, No. 4, p. 116.
३ वही
४ भा०पु०, ३, १६, ६
५ वही, ८, ५, ४
६ वि० पु०, ३, १, ४१
७ भा० पु०, ८, ५, ५
८ *EI*, Vol. I, p. 124.

वैकुण्ठ काश्मीरागम अथवा तंत्रांतर सम्प्रदाय के प्रमुख इष्ट हैं। वैष्णवागम के तीन प्रमुख भेद हैं—वैखानस, पांचरात्र एवं सात्वत। आठवीं शती से पांचरात्र में दो भेद हो गए—(१) काश्मीरागम अथवा तंत्रांतर तथा (२) आगम अथवा तंत्र। जिस प्रकार वैखानसों के प्रधान देव 'आदिमूर्ति', सात्वतों के 'वासुदेव' हैं, उसी प्रकार काश्मीरागम के हैं 'वैकुण्ठ'।[1] वैखानसों के अनुसार चार विष्णुलोकों में एक लोक वैकुण्ठ है, अन्य तीन हैं—आमोद, प्रमोद और संमोद।[2]

इस प्रकार वैकुण्ठ का इतिहास अति प्राचीन है। प्रारम्भ में वे इन्द्र से सम्बद्ध रहे और फिर विष्णु के एक गौण अवतार माने गए। पूर्व मध्ययुग में उनका महत्व बहुत बढ़ गया और वे काश्मीरागम अथवा तंत्रांतर सम्प्रदाय के प्रधान देव बन गए।

प्रतिमा-लक्षण—वैकुण्ठ-प्रतिमा-लक्षण विभिन्न शास्त्रों में उपलब्ध है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण[3] में विष्णु के चार रूपों (व्यूहों)—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—की एक सम्मिलित मूर्ति को वैकुण्ठ नाम दिया गया है और कहा गया है कि इस मूर्ति के चार मुख होने चाहिए, जिनके कारण यह चतुर्मूर्ति हुई। इन चार मुखों में पूर्वी मुख, जो प्रधान है, सौम्य हो; दक्षिणी, जो ज्ञानमुख है, सिंहमुख के सदृश हो; और पश्चिमी, जो ऐश्वर्यमुख है, रौद्र हो। यहाँ उत्तरी मुख का कोई उल्लेख नहीं है। दूसरे प्रसंग[4] में ये चार मुख इन चार गुणों—बल, ज्ञान, ऐश्वर्य तथा शक्ति—के प्रतीक बताए गए हैं और इनका सम्बन्ध क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के साथ स्थापित किया गया है। इन चार मुखों के विषय में अन्य स्थल[5] पर यह निर्देश है कि पूर्वी मुख सौम्य हो, दक्षिणी नरसिंह, पश्चिमी कपिल और उत्तरी वराह का हो।

वैकुण्ठ के चतुर्मुख होने की विशिष्टता की पुष्टि जयाख्यसंहिता[6] के एक ध्यान से भी हो

---

१ पाठक, विश्वम्भरशरण, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० ६३२-३३

२ वही, पृ० ६३३

३ एकमूर्ति धरः कार्या (? र्यो) वैकुण्ठेश्चापि भक्तितः।
चतुर्मुखः स कर्तव्यः प्रायुक्त वदनः प्रभुः॥
चतुर्मूर्तिः स भवति कृते मुखचतुष्टये।
पूर्वं सौम्यमुखं कार्यं वस्तु मुखपातनं विदुः॥
कर्तव्यं सिंहवक्त्राभं ज्ञानवक्त्रं तु दक्षिणम्।
पश्चिमं वदनं रौद्रं यत्तदैश्वर्यमुच्यते॥
—वि०ध०, ८५, ४३–४५

४ बलं ज्ञानं तथैश्वर्यं शक्तिश्च चतुर्थकम्।
विशेषं देवदेवस्य तस्य वक्त्रचतुष्टकम्॥
वासुदेवस्य भगवांस्तथा संकर्षणः प्रभुः।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च बलाद्याः परिकीर्तिताः॥
—वही, ४७, ८-१०

५ सौम्यं तु वदनं पूर्वं नारसिंहं तु दक्षिणम्।
कापिलं पश्चिमं वक्त्रं तथा वाराहमुत्तरम्॥
—वही, ४४, ११-१२

६ अनादि निधनं देवं जगत्स्रष्टारमीश्वरम्।
ध्यायेच्चतुर्मुखं विप्र शंख, चक्र गदाधरम्॥
चतुर्वक्त्रं सुनयनं सुखाग्नी पद्मपाणिनम्।
वैकुण्ठं नारसिंहास्यं वाराहं कपिलाननम्॥

जाती हैं। इस ध्यान में वे वैकुण्ठ (सौम्य), नरसिंह, वराह, और कपिल के चार मुखों से युक्त, शुक्लवर्ण, गरुड़ारूढ़, किरीट, कौस्तुभ आदि से अलंकृत तथा शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए चतुर्भुज वर्णित है।

उपर्युक्त यशोवर्मन् के खजुराहो अभिलेख[१] के प्रथम श्लोक से भी वैकुण्ठ के चार मुखों—विष्णु (सौम्य), वराह, नरसिंह और कपिल—का बोध होता है। यहाँ उनकी भुजाओं की ओर कोई संकेत नहीं है।

अपराजितपृच्छा,[२] रूपमण्डन[३] और देवतामूर्तिप्रकरण[४] में वैकुण्ठ-मूर्ति का एक-समान विवरण मिलता है। इन शिल्प-शास्त्रों के अनुसार वैकुण्ठ के चार मुख और आठ भुजाएँ हों और

शुक्लं खगेश्वरारूढं सर्वाभरणभूषितम्।
सर्वलक्षणसम्पन्नं नानाम्बरधरं विभुम्॥
किरीटकौस्तुभधरं कर्पूरालिप्तविग्रहम्।
सुधांशुशतसन्निभं सर्वदेवनमस्कृतम्॥

—जयाख्यसंहिता, ६, ७३–७४

१ Kielhorn. *EI*, Vol I, pp. 122-35 :

दधानानेको वः किरिपुरुषसिं [होजस] वपुं।
स [या] न्कालोत्कीर्या तनुमसुरमुख्यानकवरात्॥
जघान त्रीनुग्रान्त्र (न्त्रि) जगति कपिलादीनवतु वः।
स वैकुण्ठः कण्ठध्वनिचकितनिःशेषभुवनः॥ [1]

"May that Vaikuntha protect you who, frightening the whole world with his roaring, as boar and as man-lion, slew the three chief Asuras Kapila and the rest, (who were) terrible in the world, (and who) possessed one body which by the boon of Brahman enjoyed freedom from fear (and) could be destroyed (only) by (Vaikuntha) having assumed those forms."

द्र० डॉ० पाठक का अनुवाद (उपर्युक्त, पृ० ६११): "वह वैकुंठ हमारा रक्षण करें, जिसके कंठ की ध्वनि से सारा संसार चकित हो गया है और जिसने उन कपिल आदि उग्र तीन असुरों को मारा, जो वराह और पुरुष-सिंह के रूपों को धारण किए हुए थे तथा जो ब्रह्मा के वर से उसी रूप वाले के द्वारा ही वध्य थे।"

श्री त्रिपाठी (Tripathi, L. K., *op. cit.*, pp 115-16) इस श्लोक की प्रथम पंक्ति का यह पाठ प्रस्तावित करते हैं :

दधानानेको वः किरिपुरुष सिंहानन वपुं

और श्लोक का अनुवाद इस प्रकार : "May that Vaikuntha protect us who, frightening the whole world with his roaring, slew the three chief Asuras Kapila and the rest, (who were) terrible in the world, (and who) possessed one body, with boar, human and lion faces, which by the boon of Brahman could be destroyed (only) by (one having) identical form."

श्री त्रिपाठी के प्रस्तावित पाठ और अनुवाद के अनुसार वैकुण्ठ के केवल तीन मुखों का बोध होता है, कपिल-सहित तीन असुरों के तीन मुख—वराह, पुरुष और सिंह। इनमें से पुरुषमुख तीन में से एक असुर का ही हुआ, अतएव विष्णु के सौम्य (पुरुष) मुख के लिए स्थान ही न बचा। डॉ० पाठक के अनुवाद से वैकुण्ठ के चार मुखों का बोध होता है : कपिलमुख (वह मुख कैसा हो, इसका बोध नहीं होता), शेष दो असुरों के क्रमशः वराह और पुरुष-सिंह (नरसिंह) मुख तथा स्वयं विष्णु का सौम्य (पुरुष) मुख। विष्णुधर्मोत्तर, जयाख्यसंहिता, अपराजितपृच्छा आदि शास्त्र भी वैकुण्ठ के इन्हीं चार मुखों की पुष्टि करते हैं, अतएव लेखक को यही अनुवाद मान्य है। इसमें सन्देह नहीं कि अधिकांश वैकुण्ठ-मूर्तियाँ त्रिमुखी ही मिली हैं, किन्तु उनका प्रधान पुरुषमुख (अभिलेख के) किसी एक असुर का नहीं, वरन् स्वयं विष्णु का है। चौथा कपिलमुख पीछे की ओर बनना चाहिए, जो सम्भवतः दृष्टिगोचर न होने के कारण ही अधिकांश मूर्तिकारों द्वारा नहीं बनाया गया।

२ अपरा०, २१९, २५–२७

३ रूप०, ३, ५२–५५

४ देव० प्र०, ५, ६१–६३

वे गरुड़ पर आरूढ़ हों। उनके दाहिने हाथों में गदा, खड्ग, बाण तथा चक्र और बाएँ में शंख, खेटक, धनुष तथा पद्म हों। चार मुखों में सामने का पुरुषमुख (पुरतः पुरुषाकारो), दक्षिण का नरसिंहमुख (दक्षिणे नारसिंहश्च), ऊपर (पीछे) का स्त्रीमुख (अपरे श्रीमुखाकारो' अथवा 'अपरं स्त्रीमुखाकारं') और उत्तर का वराहमुख (वाराहास्यस्तथोत्तरे) हो।

विष्णुधर्मोत्तर और जयाख्यसंहिता के समान इन शिल्प-शास्त्रों में भी वैकुण्ठ चतुर्मुख बताए गए हैं, किन्तु इनमे पश्चिमी मुख कपिलानन के स्थान पर श्रीमुख अथवा स्त्रीमुख वर्णित है। डॉ० पाठक के विचार से इस स्त्रीमुख की परम्परा भ्रान्ति से अपराजितपृच्छा के रचयिता भुवनदेवाचार्य ने प्रवर्तित कर दी और इसी परम्परा का अनुकरण रूपमण्डन और देवतामूर्ति-प्रकरण के रचयिता सूत्रधार मण्डन ने कर दिया।[1] डॉ० पाठक के इस विचार से श्री त्रिपाठी[2] का सहमत न होना उचित प्रतीत होता है। अभी तक जो चतुर्मुखी वैकुण्ठ-मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं, उनमें कपिलानन का चित्रण एकसमान नहीं है। कहीं वह आसुरी मुख[3] के रूप मे बना है तो कहीं अश्वमुख[4] के रूप में। इससे स्पष्ट है कि कपिलानन के निर्माण में स्थानीय भिन्नताएँ प्रचलित रही है। बहुत सम्भव है यह स्त्रीमुख के रूप में भी कहीं निर्मित होता रहा हो और भुवनदेवाचार्य ने इसी परम्परा का अनुकरण कर 'श्रीमुख' बनाने का निर्देश किया हो, किसी भ्रान्ति के कारण नहीं। भुवनदेवाचार्य विश्वरूप[5] और अनन्त[6] के सम्बन्ध में भी वैकुण्ठ के इन्हीं चार मुखों (पुरुष, नरसिंह, स्त्री और वराह) का उल्लेख करते हैं (भुजाओं की संख्या में भिन्नता होने के कारण ही ये रूप वैकुण्ठ से भिन्न हैं)। ऐसा सम्भव नहीं कि 'कपिलानन' से अनभिज्ञ होने के कारण भुवन-देवाचार्य ने 'श्रीमुख' का उल्लेख किया हो, क्योंकि उन्होंने त्रैलोक्यमोहन[7] का चौथा मुख 'कपिलानन' ही बताया है और शेष मुखों का उल्लेख पूर्ववत् किया है—मनुष्य, नरसिंह और वराह। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि अपराजितपृच्छा का जयाख्यसंहिता से मतभेद केवल वैकुण्ठ के पश्चिमी मुख के सम्बन्ध मे ही नहीं है, वरन् हाथों के सम्बन्ध मे भी है। जयाख्यसंहिता के चार हाथो के स्थान पर अपराजितपृच्छा में आठ हाथों का उल्लेख है।

वैकुण्ठ के चतुर्मुख होने की विशिष्टता सर्वमान्य है, किन्तु परमारों के नागपुर शिलालेख[8] से, डॉ० पाठक के अनुसार,[9] उनके तीन मुखों का बोध होता है, क्योंकि इसमे वैकुण्ठ, ब्रह्मा, शिव आदि की गणना उनके मुखों की संख्या के क्रम से हुई है।

वैकुण्ठ-मूर्तियों के केन्द्र—वैकुण्ठ-मूर्तियों का निर्माण गुप्तकाल से प्रारम्भ हुआ। इस काल

---

१ पाठक, विश्वरूपस्वरूप, उपर्युक्त, पृ० ४३।
२ Tripathi, L. K., *op cit.*, p. 119.
३ *ASIAR*, 1913-14, p. 45.
४ द्र० प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ० १३५, चित्र ५३।
५ अपरा०, २१८, २८-३१
६ वही, २१८, ३३-३७
७ वही, २१४, ३८-४१
८ वैकुण्ठः कमलालयाय चतुरास्याय स्वयंभू पुनः
पंचास्याय हराय षण्मुख इति [illegible] पुनाय च।
तेनाभीरपि [illegible] [illegible]
यस्यापि [illegible] ॥३४॥—*EI*, Vol. II, pp. 183 ff.
९ Pathak, V.S., *JMPIP*, No. 2, pp. 12-13.

की अनेक मूर्तियाँ मथुरा में मिली हैं, जो मथुरा[१] तथा अन्य संग्रहालयों[२] में सुरक्षित हैं। पूर्व मध्ययुग में काश्मीर वैकुण्ठ-पूजा का विशेष केन्द्र हुआ। वहाँ विभिन्न स्थलों पर इस काल की अनेक मूर्तियाँ पाई गई हैं।[३] कुरुक्षेत्र,[४] वाराणसी,[५] खजुराहो तथा राजस्थान[६] और गुजरात[७] के विभिन्न स्थानों पर भी अनेक वैकुण्ठ-मूर्तियाँ प्राप्त हुई है, जो प्रायः मध्ययुगीन हैं। उस युग मे ये स्थान वैकुण्ठ-पूजा के केन्द्र रहे प्रतीत होते हैं। इनमे खजुराहो का विशेष स्थान है, क्योंकि इस एक स्थान मे ही अनेक वैकुण्ठ-मूर्तियाँ और एक भव्य वैकुण्ठ-मन्दिर उपलब्ध है।

खजुराहो-प्रतिमाएँ—यशोवर्मन् के वि॰ सं॰ १०११ के खजुराहो अभिलेख (जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है) का उद्देश्य एक वैकुण्ठ-मन्दिर के निर्माण और उसमें वैकुण्ठ-प्रतिमा की प्रतिष्ठा का वर्णन करना है। यशोवर्मन् द्वारा निर्मित वह वैकुण्ठ-मन्दिर खजुराहो का लक्ष्मण मन्दिर है और उसके गर्भगृह की विशाल वैकुण्ठ-मूर्ति आदि प्रतिष्ठित मूर्ति है। अभिलेख में इस मूर्ति का इतिहास भी दिया गया है—कैलास से यह तिब्बत के राजा (भोटनाथ) के पास आई, उससे चम्बा (कीर) के राजा साही ने प्राप्त किया, साही से हेरम्बपाल ने शक्ति से छीना और हेरम्बपाल के पुत्र हयपति देवपाल से यशोवर्मन् को मिली।[८] इस मूर्ति के अतिरिक्त खजुराहो मे लेखक को तीन और वैकुण्ठ-मूर्तियाँ मिली हैं। इन चार मूर्तियों में तीन त्रिमुखी है और एक है चतुर्मुखी।

लक्ष्मण मन्दिर की आदि प्रतिष्ठित मूर्ति (चित्र ६१)[९] खजुराहो की विशालतम वैकुण्ठ-मूर्ति

---

१ M.M Nos D28, 771, 2419 (चतुर्मूर्ति), 2480, 2503, 2525, *CBIMA*, pp. 107-8, 111, 113; Nagar, M. M, *JUPHS*, Vol. XVIII, Parts 1 & 2, p. 100 (डॉ॰ वासुदेवशरण अग्रवाल और श्री नागर ने इन्हें भ्रमवश 'विश्वरूप विष्णु' अथवा 'महाविष्णु' माना है); Diskalkar, D.B., *JUPHS*, Vol V, Pt. I, p. 25, Pl. 5.

२ Coomaraswamy, A. K, *Bulletin of the Museum of Fine Arts, Boston*, Vol. XVII, No. 104, p. 60.

३ *ASIAR*, 1913-14, p. 45, 1915-16, pp. 62 ff ; Kak, R. C., *Handbook of the Archaeological and Numismatic Sections of the Sri Pratap Singh Museum, Srinagar*, pp. 49-51; Vogel, J Ph., *Antiquities of the Chamba State*, pp 208, 219; Banerjea, J. N., *Proceedings of Indian History Congress*. 1940, pp. 61-64.

४ *ASIAR*, 1922-23, p. 89 ; cf. Agrawala, R. C., *Adyar Library Bulletin*, Vol XVIII, Pt 3-4, p. 261.

५ *II*, p. 8, Pl. IV; Sivaramamurti, C, *JASL*, Vol. XXI, No 2, Pl. XV, Fig. 32, जहाँ इसे त्रैलोक्यमोहन लिखा गया है। मूर्ति के हाथ टूटे होने के कारण उनकी संख्या का निश्चित अनुमान नहीं लग सकता, फिर भी यह षोडशभुजी नहीं प्रतीत होती। त्रैलोक्यमोहन के लिए भुजाओं की यह संख्या आवश्यक है—द्र॰ अपरा॰, २१९, ३८ :

त्रैलोक्यमोहनं वक्ष्ये संसारे मोहकारकम्।
स षोडशभुजैर्युक्तस्ताक्ष्यस्थश्च महाबलः॥

६ Agrawala, R.C., *op cit.*, pp 261-62, राजस्थान-भारती, वर्ष ४, अंक ४ (अगस्त, १९५५), पृ॰ १८-१९

७ Majumdar, M R., *IHQ*, Vol. XVI, No 3, p. 531, Pl. II; Cousens, Henry, *Somnath and other Mediaeval Temples in Kathiawad*, Pl. XXXV.

८ कैलासा (त्) भोटनाथः सुहृदिति च ततः कीरराजः प्रपेदे
साहिस्तस्मादवाप द्विपतुरगबलं (ब) सैनात् हेरम्ब (म्ब) पालः।
तत्सूनोर्देवपालात्तमथ हयप (तेः) प्राप्य निन्ये प्रतिष्ठां
वैकुण्ठं कुण्ठितारिः क्षिति (धरति) लकः श्रीयशोवर्मराजः॥—*EI*, Vol. I, p. 129, V. 43.

९ म॰ सं॰ ४०० ; तुल॰ Pathak, V. S., *op. cit.*, p. 12, Pl. II; Tirpathi, L. K., *op. cit.*, p. 119; Agarwal, U., *op. cit.*, p. 44.

है, जो चार फुट से कुछ अधिक ऊँची है। इसमें चतुर्भुज वैकुण्ठ समभंग खड़े हैं। उनके तीन मुख हैं—सामने का सौम्य पुरुषमुख प्रधान है, दक्षिण मुख नरसिंह का और वाम वराह का है। पीछे की ओर चौथा मुख नही प्रदर्शित है। केन्द्रीय मस्तक किरीट-मुकुट से अलंकृत है और इसके पीछे सुन्दर शिरश्चक्र है। वैकुण्ठ के चारों हाथ खण्डित हैं और वे मुकुट के अतिरिक्त, हार, ग्रैवेयक, कौस्तुभ, कुण्डलों, केयूरों, यज्ञोपवीत, लटकती मुक्ता-लड़ियों से युक्त मेखला तथा नूपुरों से अलंकृत हैं। उनके दाएँ-बाएँ पार्श्वों में क्रमशः चक्र और शंख-पुरुष खड़े हैं। चक्र-पुरुष के दाएँ पार्श्व मे पद्मधारिणी लक्ष्मी खड़ी हैं और शंख-पुरुष के पीछे की ओर दाहिना हाथ स्तुति-मुद्रा में उठाए गरुड खड़े हैं। वैकुण्ठ के चरणो के नीचे कूर्म पर पद्मासन में बैठी लक्ष्मी की एक अन्य छोटी आकृति है। शिरश्चक्र के ऊपर, दाएँ, और बाएँ बनी तीन रथिकाओं में क्रमशः सूर्य-नारायण, ब्रह्मा और शिव की छोटी प्रतिमाएँ है। चतुर्भुज सूर्य-नारायण योगासन-मुद्रा मे हैं और उनके दोनों ऊर्ध्व हाथों में पद्म हैं। त्रिमुख ब्रह्मा के चार हाथ क्रमशः अभय, स्रुक्, पुस्तक और कमण्डलु और शिव के अभय, त्रिशूल, सर्प और कमण्डलु से युक्त हैं। मूर्ति की प्रभावली में अधिकाश अवतार चित्रित है। पादपीठ पर एक भक्त-युगल भी बैठा है।

यह मूर्ति एक मकरतोरण के मध्य स्थित है। मकरतोरण और उसकी शाखाओं मे भी घना चित्रण है। तोरण के ठीक ऊपर केन्द्र मे बनी एक रथिका मे सूर्य-नारायण की चतुर्भुजी प्रतिमा है, जिसके दो ऊर्ध्व हाथो में पद्म हैं और दो अधः हाथ योग-मुद्रा में प्रदर्शित है। तोरण की दोनों शाखाओं में भी छोटी-छोटी रथिकाएँ है। इनमे ललितासन विष्णु की आठ प्रतिमाएँ हैं, जिनमे सात चतुर्विंशति मूर्तियों के सात रूपो (रूपमण्डन के अनुसार)—गोविन्द, अनिरुद्ध, नारायण, केशव, वामन, श्रीधर और दामोदर—को प्रदर्शित करती हैं और एक का पहला हाथ अभय-मुद्रा में है और शेष तीन क्रमशः गदा, चक्र और शंख से युक्त हैं। इन रथिकाओ के अतिरिक्त, शाखाओं में श्री, पुष्टि और गणपति भी उत्कीर्ण हैं। दोनों ओर कोनों पर शंखधारी एक-एक अनुचर भी है।

खजुराहो-कला की यह एक सुन्दर कृति है। केन्द्रीय पुरुष-मुख पर झलकता आनन्द-मिश्रित परम शान्ति का भाव दर्शक को मोह लेता है।

दूसरी त्रिमुखी मूर्ति[1] के तीनों मुख पूर्ववत् पुरुष, नरसिह और वराह के है। उपर्युक्त मूर्ति के सदृश यह भी चतुर्भुजी है, किन्तु इसमे वैकुण्ठ त्रिभंग खड़े हैं, समभग नही। चार भुजाओं में बाईं दोनों खण्डित हैं और दाहिनी पद्म और गदा से युक्त हैं। पार्श्व-चित्रण में शंख और चक्र-पुरुष, लक्ष्मी, गरुड़ तथा अधिकांश अवतार प्रदर्शित हैं। मूर्ति के ऊपरी भाग में योगासन विष्णु, ब्रह्मा और शिव की आकृतियाँ हैं।

उपर्युक्त दोनों मूर्तियाँ जयाख्यसंहिता के अनुसार बनी जान पड़ती है। इनके चार भुजाएँ हैं, जो शंख, चक्र, गदा और पद्म से युक्त रही होंगी। पहली मूर्ति की तो चारों भुजाएँ खण्डित है, किन्तु दूसरी मूर्ति की सुरक्षित दो भुजाओं में पद्म और गदा अभी विद्यमान हैं। मुखों के निर्माण में अवश्य जयाख्यसंहिता का पूर्ण पालन नहीं हुआ है, क्योंकि दोनों मूर्तियाँ चतुर्मुखी न होकर त्रिमुखी हैं, यद्यपि ये तीनों मुख—पुरुष, नरसिंह और वराह—निर्देशानुसार ही बने हैं। पीछे की

---

१ प्र० सं० २०६

ओर का चौथा मुख (कपिलानन) सम्भवतः दृष्टिगोचर न होने के कारण ही नहीं निर्मित हुआ है।

तीसरी त्रिमुखी मूर्ति भी दूसरी के समान त्रिभंग है, किन्तु यह चतुर्भुजी न होकर अष्टभुजी है (चित्र ६४)[1]। इसकी मनोहारी त्रिभग-मुद्रा भी विशेष दर्शनीय है। इसमें भी तीनों मुख पूर्ववत् हैं—केन्द्रीय पुरुषमुख प्रधान है और उसके दाएँ-बाएँ क्रमशः सिंह और वराह के मुख हैं। केन्द्रीय मस्तक पर किरीट-मुकुट शोभायमान है। मुकुट के अतिरिक्त, वैकुण्ठ सामान्य आभूषणों से अलंकृत है। आठ हाथो में केवल तीन सुरक्षित हैं, शेष टूट गए हैं। इन सुरक्षित हाथो में दो दाएँ-बाएँ प्राकृतिक हैं, क्रमशः पद्म और शंख से युक्त और तीसरा दाहिनी ओर का सबसे ऊपर का है, चक्र से युक्त। एक दाहिने हाथ में तीन बाण रहे हैं—हाथ खण्डित है, किन्तु बाणों के कुछ अंश अवशिष्ट हैं। वैकुण्ठ के दाएँ और बाएँ पार्श्वों में क्रमशः सर्पधारी गरुड़ और पद्मधारिणी लक्ष्मी है। पादपीठ के दोनों कोनो पर एक-एक करण्ड-मुकुटधारी अनुचर खड़ा है, जिसका एक हाथ नाल-विहीन पद्म से युक्त और दूसरा कट्यवलम्बित है। इन्हें पद्म-पुरुष मान सकते हैं। मूर्ति के ऊपरी एक कोने मे ब्रह्मा और दूसरे मे शिव चित्रित है। वैकुण्ठ के चरणों के निकट अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़े एक भक्त भी बैठा है।

इस मूर्ति की अष्टभुजी होने की विशिष्टता अपराजितपृच्छा, रूपमण्डन आदि शिल्प-शास्त्रो के वैकुण्ठ विवरण से साम्य रखती है। इसमें भी पूर्ववत् तीन ही मुख हैं और चौथा (इन शास्त्रो का श्रीमुख अथवा स्त्रीमुख) नही प्रदर्शित है।

उपर्युक्त तीनों मूर्तियों में चौथा मुख (कपिलानन अथवा स्त्रीमुख) नही प्रदर्शित हुआ है। पीछे की ओर का यह मुख दृष्टिगोचर न होने के कारण ही नहीं निर्मित हुआ प्रतीत होता है। खजुराहो में अन्य चतुर्भुज देवों की मूर्तियों मे भी तीन ही मुख बनाए गए हैं, पीछे की ओर का चौथा मुख छोड दिया गया है। उदाहरण के लिए ब्रह्मा (चित्र ६०), हरि-हर-हिरण्यगर्भ (चित्र ७९-८१) आदि की मूर्तियाँ देखी जा सकती है।

खजुराहो में एक चतुर्मुखी वैकुण्ठ-मूर्ति (चित्र ६२, ६३)[2] भी उपलब्ध है। यह चतुर्भुजी प्रतीत होती है, यद्यपि सभी भुजाएँ टूट गई है। इसमें वैकुण्ठ किंचित् द्विभंग खड़े हैं। उनके तीन मुख पूर्ववत् है (केन्द्रीय पुरुष, दक्षिण नरसिंह और वाम वराह) और चौथा जो अश्वमुख[3] है, पीछे की ओर बनाया गया है। पुरुष-मस्तक पर किरीट-मुकुट और वराह तथा नरसिंह मस्तकों पर करण्ड-मुकुट शोभायमान हैं। अश्व-मस्तक का ऊपरी भाग खण्डित है, अतएव उसका अलंकरण अदृश्य है। इनके अतिरिक्त, वैकुण्ठ कुण्डल, कौस्तुभ, हार, ग्रैवेयक, मेखला, यज्ञोपवीत, वैजयन्ती, नूपुर आदि सामान्य आभूषणों से अलंकृत हैं। मुकुट के ऊपर प्रभामण्डल के स्थान पर मकरतोरण है, जिसमें एक ओर ब्रह्मा और दूसरी ओर शिव बैठे अंकित हैं। वैकुण्ठ के दाएँ पार्श्व मे एक चामरधारिणी खड़ी और बाएँ मे एक अनुचर खड़ा प्रदर्शित है। पार्श्व-चित्रण में अधिकाश अवतार

---

१ प्र० सं० ३१०

२ प्र० सं० ३०८; तुल० Pathak. V. S., *op. cit* . p. 14, Pl. III, राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० ६३५; Tripathi, L. K., *op., cit.*, p. 118.

३ डॉ० पाठक आश्चर्यवश इस मुख को 'वृषभाकार' मानते हैं (वही), किन्तु श्री कृष्णदेव (*JMPIP*, No. 2, p. 14, foot-note 4) और श्री त्रिपाठी (उपर्युक्त) ने उचित ही इसे अश्वमुख माना है। मूर्ति के सूक्ष्म निरीक्षण से इसके अश्वमुख होने में संदेह नहीं रह जाता।

दृष्टिगोचर होते हैं। वैकुण्ठ के चरणों के निकट कोई आकृति (भूदेवी ?) बैठी रही है। अब इसके वैकुण्ठ के चरणों के ऊपर फैलाकर रखे गए दो हाथ मात्र ही अवशिष्ट हैं। पादपीठ पर एक भक्त युगल भी बैठा दर्शनीय है।

चतुर्मुखी और चतुर्भुजी होने के कारण इस मूर्ति को जयाख्यसंहिता के आधार पर बनी मान सकते हैं। इसके तीन मुख उपर्युक्त मूर्तियों के सदृश हैं और चौथा 'कपिलानन' अश्वमुख के रूप में बनाया गया है। मेवाड़ में बिजौलिया के महाकाल मन्दिर मे भी सिंह, अश्व और नरसिंह के मुखों से युक्त स्त्रीरूप में निर्मित एक वैष्णव मूर्ति उत्कीर्ण है।[१] खजुराहो-मूर्ति के समान काश्मीर मे भी एक चतुर्मुखी वैकुण्ठ-प्रतिमा प्राप्त हुई, किन्तु इसका चौथा मुख आसुरी है।[२] इस मुख का समाधान तो उपर्युक्त खजुराहो अभिलेख से हो जाता है (कपिल एक असुर था, जिसके वध के लिए विष्णु ने कपिलानन धारण किया था), किन्तु कपिलानन को अश्वमुख के रूप में निर्मित करने की परम्परा क्यों चल पड़ी ? कपिल की भाँति हयग्रीव भी एक असुर था और उसे भी एक वरदान प्राप्त था कि उसका वध न कोई पुरुष कर सकता था और न कोई पशु ही। अतएव विष्णु को अश्वमुख और मनुष्यदेह मे अवतीर्ण होकर उसका वध करना पड़ा था। अपने इस रूप मे विष्णु हयग्रीव नाम से भी प्रसिद्ध हुए।[3] इस प्रकार इन असुरों की कथाओ मे साम्य है। बहुत सम्भव है इस साम्य के कारण कपिल और हयग्रीव के विषय मे परिभ्रान्ति का जन्म हुआ हो और इस परिभ्रान्ति के फलस्वरूप कपिलमुख को हयग्रीवमुख (अश्वमुख) के रूप मे बनाए जाने की परम्परा चल पड़ी हो। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि खजुराहो के वैकुण्ठ मन्दिर (लक्ष्मण मन्दिर) की दक्षिण, पश्चिम, और उत्तर की भद्र-रथिकाओं मे क्रमशः वराह, नरसिंह और हयग्रीव[४] की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार वैकुण्ठ के साथ नरसिंह और वराह मुखों के अतिरिक्त, हयग्रीव मुख का सम्बन्ध अधिक स्पष्ट हो जाता है। कुछ वैष्णव संहिताओं मे बहुमुख विष्णु का एक वागीश्वर (हयग्रीव) मुख उल्लिखित भी है।[५] विश्वरूप विष्णु की कुछ मूर्तियों के मुखो में से एक अश्वमुख भी देखने को मिलता है।[६]

---

१ *Progress Report of Archaeological Survey, Western Circle*, 1905, p. 53; cf. Agrawala, R. C., *Adyar Library Bulletin*, Vol. XVIII, Part 3-4, p. 261, *Bhāratīya Vidyā*, Vol. XX-XXI, p. 304, Pl. 4, राजस्थान-भारती, वर्ष ४, अंक ३ (अगस्त, १९५५), पृ० १८

२ अवन्तीपुर के उत्खनन में प्राप्त इस मूर्ति के विषय में दयाराम साहनी लिखते हैं—"A point in connection with this class of statues which cannot yet be explained, is the presence of a demoniacal head carved on the back of the statue, as it were a fourth head of the deity. As is customary with these figures, the demon in question has grinning teeth, protruding tushes and eyes, a short chin and terrific eye-brows. His hair is tied up in a big knot."

—*ASIAR*, 1913-14, p. 45.

३ *EHI*, I, I, p. 260.

४ डॉ० पाठक के अनुसार दो रथिकाओं में वराह और एक में नरसिंह है। इस प्रकार उन्होंने भ्रान्ति से इस हयग्रीव को भी वराह माना है। श्री कृष्णदेव ने सर्वथा उचित ही इसके हयग्रीव होने की संभावना व्यक्त की है। द्र० *JMPIP*, No. 2, p. 15.

५ Schroeder, F. O., *Introduction to the Pāñcarātra-Ahirbudhnya Samhitā*, 46; cf. Prasad, M., *Bhāratī*, No. 4, p. 142.

६ Prasad, M., *op. cit.*, p. 141, Fig. 10; Shah, U. P., *Sculptures from Śāmalājī and Roḍā*, p. 69, Fig. 48.

अनन्त

अनन्त-मूर्ति वैकुण्ठ-मूर्ति के सदृश ही चतुर्मुखी होती है, किन्तु इसमे आठ के स्थान पर बारह हाथ होते हैं। दाहिने हाथो मे गदा, खड्ग, चक्र, वज्र, अंकुश तथा बाण और बाएँ मे शंख, खेटक, धनुष, पद्म, दण्ड और पाश होने का उल्लेख शिल्प-शास्त्रों में हुआ है।[1]

खजुराहो में अनन्त की दो मूर्तियाँ ही लेखक को मिली हैं। एक मूर्ति[2] विश्वनाथ मन्दिर के शिखर की एक रथिका मे होने के कारण पूर्ण सुरक्षित अवस्था में है। इसमे अनन्त त्रिभंग-मुद्रा मे खड़े है। उनका प्रधान केन्द्रीय मुख पुरुष का और दो दाएँ-बाएँ मुख क्रमशः सिंह और वराह के है। केन्द्रीय मस्तक किरीट-मुकुट और पार्श्व मस्तक करण्ड-मुकुट से अलंकृत है। इनके पीछे एक सुन्दर शिरश्चक्र है। मुकुट के अतिरिक्त वे सामान्य आभूषणों से आभूषित है। उनके सभी बारह हाथ सुरक्षित है। अक्षमाला से युक्त पहला हाथ वरद-मुद्रा मे है और शेष हाथ क्रमशः पद्म, खड्ग, पाश, तीन बाण, चक्र, खेटक, धनुष, अंकुश, शख, सर्प और कमण्डलु धारण किए है। उनके दाएँ-बाएँ पार्श्वों मे एक-एक चामरधारिणी खड़ी है और इनके पीछे क्रमशः चक्र और शंख-पुरुष खड़े है। पादपीठ पर एक भक्त-युगल भी बैठा प्रदर्शित है। प्रभावली के ऊपरी कोनों पर ब्रह्मा और शिव की छोटी प्रतिमाएँ उकेरी हैं। त्रिमुख और लम्बकूर्च ब्रह्मा का पहला हाथ अभय-मुद्रा मे है और शेष तीन मे वे स्रुव, पुस्तक और कमण्डलु धारण किए हैं। शिव का भी पहला और चौथा हाथ क्रमशः अभय-मुद्रा मे और कमण्डलु-युक्त है और दूसरे तथा तीसरे में वे क्रमशः त्रिशूल और सर्प धारण किए है।

दूसरी अनन्त मूर्ति[3] कन्दरिया मन्दिर के शिखर मे उपलब्ध है। यह मूर्ति भी उपर्युक्त मूर्ति के सदृश त्रिभग खड़ी है, किन्तु इसमे बारह हाथों के स्थान पर दस हाथों का ही चित्रण हुआ है। इनमे से तीन हाथ सुरक्षित है, शेष टूट गए हैं। सुरक्षित दो दाहिने हाथों में से एक वरद-मुद्रा मे है और दूसरा चक्रधारी है। बाईं ओर का एकमात्र सुरक्षित हाथ खेटकधारी है। पहली मूर्ति के सदृश यह भी अलकृत है। अनन्त के दाएँ पार्श्व मे एक चामरधारिणी खड़ी और बाएँ मे एक चामरधारी खड़ा प्रदर्शित है। पादपीठ पर एक भक्त-युगल भी बैठा चित्रित है।

विश्वरूप

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त (१०, ९०) मे विश्व की रचना एक दैत्य के शरीर से हुई बताई गई है। देवताओं ने दैत्य का यज्ञ किया। हविष रूप इस पुरुष का सिर आकाश बन गया, उसकी नाभि वायु बन गई और उसके पैर धरती बन गए। उसके मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि, तथा प्राण से वायु की उत्पत्ति हुई। उसका मुख ब्राह्मण बना, उसकी भुजाएँ राजन्य, जघाएँ वैश्य और पैर शूद्र बने। सूक्त का यह विवरण विश्वदेवतावादी है, क्योंकि वहाँ (१०, ९०, २) कहा गया है कि पुरुष ही यह सब कुछ है, दोनों भूत और भविष्य।[4] यही विवरण परवर्ती काल में विकसित विष्णु के विश्वरूप की धारणा का मूल है। इस रूप के दर्शन सर्वप्रथम

१ अपरा०, २१९, ३३-३७; रूप०, ३, ९८-१९; दैव० म०, ५, ९८-१०१
२ प्र० सं० २११
३ प्र० सं० २१२
४ Macdonell, A. A., *The Vedic Mythology*, pp. 12-13 ; वैदिक देवशास्त्र, पृ० २२-२३

भगवद्गीता में होते है। अर्जुन की प्रार्थना पर कृष्ण अपना विश्वरूप अथवा विराट्रूप प्रकट करते हुए अर्जुन से कहते है, "हे भरतवंशी! आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, अश्विनो और मरुतों को देख, पहले न देखे हुए बहुत से आश्चर्यों को देख, और हे अर्जुन! अब मेरे इस शरीर में एक स्थान पर स्थित चराचर-सहित सम्पूर्ण जगत् को देख तथा और भी जो कुछ देखने की इच्छा है देख।"[1] यह रूप सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त और सीमा-रहित था। इसमें भगवान् अनेक मुखो और नेत्रों से युक्त तथा अनेक अद्भुत दर्शनो वाले थे। वे दिव्य माला, वस्त्रों और आभूषणो से अलंकृत थे और अनेक दिव्य आयुध धारण किए हुए थे।[2]

प्रतिमा-लक्षण—विष्णुधर्मोत्तरपुराण[3] में विश्वरूप-प्रतिमा का विस्तृत विवरण मिलता है। इसके अनुसार प्रारम्भ मे चार वैष्णव मुख बनाने चाहिए। उनके ऊपर ईशान-मुख को छोड़कर शेष माहेश्वर मुख बनाने चाहिए। उनके ऊपर ब्रह्मा के मुख बनाने चाहिए। फिर और ऊपर अर्धचन्द्राकार अन्य मुख बनाने चाहिए। इसी प्रकार सब देवताओ तथा दूसरो के मुख बनाने चाहिए, जिनमे नाना प्रकार के जन्तुओं के भी मुख हो। विभिन्न मस्तकों के विभिन्न भागो मे चित्रसूत्र मे वर्णित दृष्टियाँ प्रदर्शित होनी चाहिए। देवता को ऐसा बनाना चाहिए मानो भयंकर जन्तुओं के मुखों के माध्यम से वे सब कुछ ग्रस रहे हों। शिल्पी को अपनी क्षमता के अनुसार उनकी भुजाएँ बनाना चाहिए और नृत्तशास्त्र-सम्बन्धी अपने ज्ञान द्वारा उन्हें अधिक से अधिक मुद्राओं मे प्रदर्शित करना चाहिए। कुछ हाथों मे विभिन्न प्रकार के आयुध हों और कुछ मे यज्ञदण्ड तथा शिल्प, कला एवं वाद्य के यन्त्र हो।

उपर्युक्त विवरण के अन्त में यह भी उल्लेख है कि वे वैकुण्ठ के रूप में भी निर्मित हो सकते हैं। उनकी देह के विभिन्न भागो मे चित्रकर्म द्वारा तीनों लोकों का प्रदर्शन होना चाहिए और अनेक रूपधारी इस देवता के अनेक मस्तको पर सभी वर्ण चित्रित होने चाहिए।

अपराजितपृच्छा,[4] रूपमण्डन[5] और देवतामूर्तिप्रकरण[6] में विश्वरूप-प्रतिमा का एक-समान विवरण मिलता है। इन शिल्प-शास्त्रों के अनुसार विश्वरूप के चार मुख और बीस भुजाएँ हों। दाहिनी भुजाएँ पताका, हल, शंख, वज्र, अंकुश, बाण, चक्र, बीजपूरक तथा वरद-मुद्रा और बाईं पताका, दण्ड, पाश, गदा, धनुष, कमल, शृङ्गी, मुसल तथा अक्षमाला से युक्त हों और शेष दो योग-मुद्रा में हों। वे गरुड़ पर स्थित हों और उनके मुख क्रम से नर, नरसिंह, स्त्री और वराह के हों।

विश्वरूप-मूर्ति का जन्म और विकास—वैकुण्ठ-मूर्तियो की भाँति विश्वरूप-मूर्तियों का निर्माण भी गुप्तकाल से प्रारम्भ हुआ। इस काल की अनेक मूर्तियाँ मिली है, जिनमे अलीगढ़ से प्राप्त और अब मथुरा संग्रहालय मे सुरक्षित मूर्ति[7] प्राचीनतम मानी जा सकती है। इसमें वैकुण्ठ

---

१ भगवद्गीता ११, ६-७

२ वही, १०-११

३ वि० ध०, ८३, २-१३

४ अपरा०, २१६, २८-३२

५ रूप०, ३, ५५-५७

६ दे० प्र०, ४, ६४-६७

७ M.M. No. 2989. Nagar, M.M., *JUPHS*, Vol. XVIII, Parts 1-2, pp. 98-100; Agrawala, V.S., *Indian Art*, p. 255, Fig. 171, भारतीय कला, पृ० ३१२-१३, चित्र ३६०, मथुरा-कला, पृ० ५५ ; Prasad, M., *Bhārati*, No. 4, pp. 146, 147 (श्री महेश्वरी प्रसाद ने भ्रान्तिवश इसे वैकुण्ठ माना है).

के सदृश तीन मुख हैं—केन्द्रीय पुरुषाकार, दक्षिण नारसिंह और वाम वाराह। इनके पीछे विशाल प्रभामण्डल था, जो अंशतः अवशिष्ट है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार, इस पर "नवग्रह, सप्तर्षि और सनक, सनन्दन, सनातनल, सनत्कुमार इन चार ऋषिपुत्रों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।"[१] मूर्ति चतुर्भुजी रही है।

गुप्तकालीन एक मूर्ति गढ़वा में भी मिली है, किन्तु यह चतुर्भुजी न होकर अष्टभुजी है।[२]

गुप्तकाल मे इन मूर्तियों के निर्माण की परम्परा उत्तर प्रदेश तक ही सीमित नहीं थी, वरन् गुजरात तक प्रचलित थी। इस काल में निर्मित शामलाजी की विश्वमूर्ति[3] तो विशेष दर्शनीय है। यह भी गढ़वा-मूर्ति के समान अष्टभुजी है, किन्तु इसकी अन्य विशेषताएँ भिन्न है। यह सम्पूर्ण मूर्ति लगभग सुरक्षित अवस्था मे है। इसमें विष्णु वीरासन-मुद्रा में बैठे प्रदर्शित है। अलीगढ़-मूर्ति के समान यह भी त्रिमुखी है, किन्तु इसके तीनों मुख पुरुषाकार हैं। इसमें केन्द्रीय मस्तक के मुकुट के पीछे से हयग्रीव प्रकट होते दिखाए गए है। हयग्रीव के ऊपर त्रिमुखी महेश-मूर्ति है और फिर सबसे ऊपर ब्रह्मा है। इनके अतिरिक्त, विशाल प्रभामण्डल पर अनेक प्रतिमाएँ अंकित है, जिनमें राम, बलराम, कृष्ण, वराह, इन्द्र, अग्नि, सूर्य तथा चन्द्र का अभिज्ञान सरल है। विष्णु के चरणों के पास दो नाग तथा अन्य पार्श्वचर हैं।

शामलाजी की मूर्ति के सदृश, किन्तु कुछ बाद में निर्मित, एक मूर्ति बड़ोदा संग्रहालय[४] मे भी सुरक्षित है। इसमे भी विष्णु त्रिमुख हैं और वीरासन-मुद्रा में बैठे हैं। तीनों मुख पूर्ववत् पुरुषाकार है। इन दोनों मूर्तियो के ये मुख एलिफैण्टा की महेशमूर्ति के सदृश प्रदर्शित हैं।[५]

विश्वरूप-मूर्तियों के निर्माण की यह परम्परा उत्तरभारत में मध्ययुग तक अक्षुण्ण रही। पूर्व मध्ययुग में गुप्तकालीन तीन मुखो के स्थान पर पांच मुख बनने लगे, किन्तु भुजाओ की संख्या आठ से आगे नहीं बढ़ी। उदाहरणार्थ आठवी शती मे निर्मित कन्नौज की प्रसिद्ध मूर्ति[६] देखी जा सकती है, जो प्रतीहार-कला की अनुपम कृति है। इसमें महाविष्णु द्विभंग खड़े हैं और उनके पांच मुख है। केन्द्रीय पुरुषमुख प्रधान है और उसके दाईं ओर मत्स्य और कूर्म तथा बाईं ओर वराह और सिंह के मुख है। उपर्युक्त गुप्तकालीन अधिकाश मूर्तियो के समान यह मूर्ति भी अष्टभुजी है। दाएँ हाथो में पहला टूटा है, जिसमें खड्ग रही है (खड्ग का ऊपरी भाग अवशिष्ट है), दो मे क्रमशः पद्म (?) और गदा हैं और एक अभय-मुद्रा में है। बाएँ तीन हाथो मे क्रमशः खेटक, चक्र और शख है और एक का आयुध अस्पष्ट है। विष्णु के चरणों के पास तीन नागों के अतिरिक्त, लक्ष्मी, गरुड़ आदि पार्श्वचर हैं। विशाल प्रभामण्डल पर परशुराम, राम, कल्कि, एकादशरुद्र,

१ मथुरा-कला, पृ० ६५
२ *ASI*, Vol. X, p. 13, Pl VII G ; cf. Agrawala, V. S., *Gupta Art*, p. 9.
३ Shah, U.P , *op. cit.*, pp. 66-70, fig. 48.
४ *Ibid* , pp. 69-70, fig. 50.
५ *Ibid.*, p. 69 : "The three faces of the deity are remarkably so close to the faces of Maheśamūrti at Elephanta that one would be tempted at first sight to identify the two Sculptures as representing Śiva as Maheśamūrti (as at Elephanta). Instead of the *jaṭā* at Elephanta, the deity in these figures wears elaborate conical *mukuṭas.*"
६ Munshi, K.M., *Saga of Indian Sculpture,* fig. 66 ; Sivaramamurti, C., *Indian Sculpture*, pp. 98-99, Pl. 33 ; Prasad, M., *op. cit.*, pp. 137-41, Fig. 9.

द्वादशादित्य, अष्टभैरव तथा सबसे ऊपर ब्रह्मा उत्कीर्ण हैं। इनके अतिरिक्त, मूर्ति के शेष भाग पर बलराम, इन्द्र, सरस्वती, गणेश, कार्तिकेय आदि विविध देव-प्रतिमाएँ अंकित हैं।

इस मूर्ति के समान मोरियम (पटना जिला) की मूर्ति[१] भी पंचमुखी और अष्टभुजी है, किन्तु इसमें प्रधान पुरुषमुख के दाईं ओर कूर्म और सिंह तथा बाईं ओर वराह और अश्व के मुख हैं। इसमें विष्णु समभंग खड़े है और उनके दाएँ-बाएँ निचले हाथ क्रमशः चक्र-पुरुष और गदा-देवी के सिर पर स्थित है। एक हाथ (दाहिना) अभय-मुद्रा में है और शेष हाथो में खड्ग, पद्म, खेटक, धनुष और शंख है। इस मूर्ति का प्रभामण्डल और उसका चित्रण शामलाजी और कन्नौज की मूर्तियो की तुलना में बहुत सीमित है। सबसे ऊपर अनेक पुरुषमुख अर्धचन्द्राकार व्यवस्थित है। उनके नीचे आदित्यों और फिर उनके नीचे रुद्रों के चित्रण है। इस मूर्ति की दो अन्य विशिष्टताएँ भी उल्लेखनीय है—पादपीठ पर पाँच मत्स्यों की आकृतियाँ है और किरीट के ऊपर कोई पक्षी-जैसी आकृति है। श्री महेश्वरी प्रसाद के विचार से यह पक्षी-जैसी आकृति हंस की हो सकती है, क्योकि ईश्वर और पारमेश्वर संहिताओं मे हंस का उल्लेख बहुमुख विष्णु के एक मुख के रूप में हुआ है।[२]

इन मूर्तियों मे पाँच मुख बनाने की परम्परा आगे तक चलती रही। ग्वालियर संग्रहालय की मध्ययुगीन विश्वरूप-मूर्ति[३] भी पंचमुखी है। इसके पाँच मुख (पुरुष, मत्स्य, कूर्म, वराह और नरसिंह) तो कन्नौज-मूर्ति की परम्परा मे बने है, किन्तु हाथ आठ के स्थान पर दस है। दाहिने चार हाथ टूटे है और शेष एक में परशु है। बाएं हाथों मे चक्र, शंख, पद्म, गदा और दण्ड (यज्ञदण्ड[४]) है। मूर्ति में ऊपर दशावतार और नीचे छः पार्श्वचर—दो बैठे और चार खड़े—अंकित हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मध्ययुग में इन मूर्तियों मे आठ से अधिक हाथ बनने लगे। बंगाल मे एक बीस भुजाओं से युक्त मूर्ति भी उपलब्ध है, किन्तु इसमें मुख एक ही है।[५]

खजुराहो-मूर्ति—खजुराहो मे विश्वरूप की केवल एक मूर्ति (चित्र ६५))[६] लेखक को मिली है, जिसमे विष्णु त्रिभंग खड़े है। वहाँ की वैकुण्ठ और अनन्त मूर्तियो के सदृश इसमें भी प्रधानतया तीन मुख है—केन्द्र का पुरुषाकार (जो खण्डित है) और उसके दाहिने नारसिंह तथा बाएँ वाराह। नारसिंह और वाराह मुखो के पीछे क्रमशः मत्स्य और कूर्म के मुख बने है, जो बहुत ही छोटे होने के कारण मूर्ति के सूक्ष्म अवलोकन से ही दृष्टिगोचर होते है। इन मुखो के ऊपर नौ पुरुष-मुख हैं, जो अर्धचन्द्राकार व्यवस्थित हैं। मूर्ति द्वादशभुजी रही है और अब अधिकांश भुजाएँ खण्डित है। दाईं भुजाओं मे एक चक्रधारी है, एक गदाधारी रही है (भुजा खण्डित है, किन्तु गदा अंशतः अवशिष्ट है) और शेष खण्डित है। बाईं भुजाओं मे केवल एक बची है, जो

---

१ Prasad, M., *op. cit.*, pp. 141-42. Fig 10.

२ वही, पृ० १४२

३ Thakore, S. R., *op. cit.*, p. 26

४ मु० चि० प०, ८३ (विश्वरूपनिर्माण), ९-१० :

हस्ताः कार्यास्तथैवास्य सर्वायुधविभूषकाः ॥
यज्ञदण्डधराश्चान्ये विप्रमाल्यधरास्तथा ।

५ *DHI*, p. 426, Pl. XXVI, Fig 2

६ प्र० सं० २०४

कट्यवलम्बित है । विष्णु वैजयन्तीमाला-सहित सामान्य आभूषणों से अलंकृत हैं । उनके दाएँ पार्श्व में एक गदाधारी और बाएँ में एक खड्गधारी अनुचर खड़ा है । ये दोनो करण्ड-मुकुट धारण किए हैं । खड्गधारी के पीछे पुरुष-विग्रह में गरुड़ खड़े हैं, जिनका मस्तक खण्डित है और गदाधारी के पीछे एक अनुचरी चौकी पर पर्यंकासन में बैठी है, जिसके हाथ अंजलि-मुद्रा में हैं । मूर्ति के ऊपरी एक कोने में ब्रह्मा और दूसरे मे शिव उत्कीर्ण हैं ।

इस मूर्ति के निर्माण में विष्णुधर्मोत्तर के निर्देश का अंशतः पालन हुआ है । यह पुराण विश्वरूप-मूर्ति में प्रधानतया चार वैष्णव मुख बनाने का निर्देश करता है[1] और इन चार मुखो की पुष्टि पुनः इस कथन द्वारा करता है कि यह मूर्ति वैकुण्ठ-मूर्ति के समान बन सकती है ।[2] यह स्मरणीय है कि इस पुराण में वैकुण्ठ के लिए ये चार वैष्णव मुख—पुरुष, कपिल, वराह और नरसिंह—निर्धारित है ।[3] उपर्युक्त खजुराहो-मूर्ति में वैकुण्ठ-मूर्ति के सदृश ही तीन मुख (पुरुष, नरसिंह और वराह) हैं और पीछे का चौथा मुख दृष्टिगोचर न होने के कारण नही बन सका है । अपराजितपृच्छा, रूपमण्डन आदि शिल्प-शास्त्रों में भी वैकुण्ठ के समान विश्वरूप के चार मुखो (क्रमशः पुरुष, नरसिंह, स्त्री और वराह) का उल्लेख है ।[4] इन मुखों के अतिरिक्त, मत्स्य और कूर्म के छोटे-छोटे मुख तथा ऊपर की ओर अर्धचन्द्राकार बने नौ पुरुष-मुख विष्णुधर्मोत्तर के 'अन्य मुख' हैं ।[5] ये अन्य मुख किस रूप मे बनने चाहिए—इसकी व्याख्या इस पुराण में नही हुई है, किन्तु ऐसी मूर्तियों में मत्स्य आदि मुख बनाए जाने का उल्लेख वि० सं० ११६१ के एक नागपुर शिलालेख में हुआ है ।[6] मत्स्य, कूर्म आदि मुख बनाए जाने की परम्परा का प्रादुर्भाव आठवीं शती में होता है (द्र० उपर्युक्त कन्नौज-मूर्ति) और मध्ययुग तक यह परम्परा अक्षुण्ण रहती है, जैसा कि उपर्युक्त ग्वालियर, खजुराहो आदि स्थानों की मूर्तियों से सिद्ध है ।

विष्णुधर्मोत्तर मे हाथों की संख्या निर्धारित न होकर केवल इतना उल्लेख है कि मूर्ति के हाथ शिल्पी की क्षमता के अनुसार बनने चाहिए ।[7] खजुराहो-मूर्ति मे बारह हाथ है, जो मूर्ति के मुखो की संख्या (कुल छः—प्रदर्शित पांच और एक पीछे की ओर हुआ मान कर) को ध्यान में रख कर बनाए गए प्रतीत होते है । मूर्ति के ब्रह्मा और शिव खजुराहो की सामान्य विष्णु-मूर्तियो की परम्परा में ही उत्कीर्ण हैं । इस प्रकार इसमे अन्य स्थानो की विश्वरूप-मूर्तियों का विशाल

१ वि० ध०, ८३, १-२ :

रूपेण येन कर्तव्यो विश्वरूपधरो हरिः ।
× × ×
चत्वारो देवस्य कर्तव्यास्तथा चत्वारो वैष्णवा मुखाः ।

२ वही, ८३, ११ : रूपमन्यत्प्रकर्तव्यं वैकुण्ठ वदतोऽच्युत ।

३ वही, ८४, ११-१२

४ द्र० प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ० १३८

५ वि० ध०, ८३, ४ :

ततश्चान्ये मुखाः कार्याः सितवर्णमुखं तथैव च ।
सर्वेषामपि देवानां तथान्यानपि कारयेत् ॥

६ येऽश्वरूपं समभ्यस्य मीनाद्याकृतिकीर्तनात् ।
रसाभिजनिर्मिताशेषविश्वो विष्णुः पुनातु वः ॥

—*EI*, Vol. II, pp. 180 ff., V. 7.

७ वि०ध०, ८३, ८ :

यथा शक्त्या च कर्तव्यास्तस्य देवस्य बाहवः ।

प्रभामण्डल, उसमें उत्कीर्ण नाना प्रकार की देव-प्रतिमाएँ, विष्णु-चरणों के निकट प्रदर्शित नाग आदि अनुपस्थित हैं।

बहुमुखी विष्णु-प्रतिमाएँ (वैकुण्ठ, अनन्त, विश्वरूप आदि) तंत्रान्तर अथवा काश्मीरागम सम्प्रदाय से सम्बन्धित रही है।[1] ऊपर वर्णित विभिन्न स्थानों की वैकुण्ठ, अनन्त और विश्वरूप-मूर्तियों से सम्पूर्ण उत्तरापथ में गुप्तकाल से मध्ययुग तक इस सम्प्रदाय के प्रचलित रहने पर प्रकाश पड़ता है। खजुराहो तो मध्ययुग में इस सम्प्रदाय का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा प्रतीत होता है।

लक्ष्मी-नारायण

खजुराहो में जितने अधिक देवता अपनी शक्तियों के साथ आलिंगन-मुद्रा में प्रदर्शित है, उतने सम्भवतः भारत में कहीं नही। इन आलिंगन-मूर्तियों में लक्ष्मी-नारायण और उमा-महेश्वर का बाहुल्य है।

वहाँ लक्ष्मी-नारायण की मूर्तियाँ तीन प्रकार की मिलती है। पहले प्रकार की मूर्तियों में विष्णु और लक्ष्मी आलिंगन-मुद्रा में त्रिभंग खड़े प्रदर्शित हैं, दूसरे प्रकार में विष्णु ललितासन-मुद्रा में बैठे हैं और उनकी एक जंघा पर लक्ष्मी भी इसी मुद्रा में बैठी है, तथा तीसरे प्रकार में दूसरे प्रकार की भाँति बैठे हुए लक्ष्मी-नारायण गरुड़ पर आरूढ़ हैं। पहले प्रकार की मूर्तियाँ सर्वाधिक हैं, किन्तु दूसरे प्रकार की मूर्तियाँ भी कम नहीं है। तीसरे प्रकार की मूर्तियाँ अवश्य ही बहुत कम हैं।

पहले प्रकार की कुछ मूर्तियाँ शिल्पीकरण की दृष्टि से विशेष दर्शनीय है। इनमें से कुछ का विवरण यहाँ दिया गया है। पहली मूर्ति[2] (चित्र ६६) में विष्णु और लक्ष्मी आलिंगन-मुद्रा में खड़े है। विष्णु किरीट-मुकुट, वैजयन्तीमाला तथा अन्य सामान्य आभूषणों से अलंकृत है। लक्ष्मी भी धम्मिल्ल, कुण्डल, हार, ग्रैवेयक आदि सामान्य आभूषणों से आभूषित हैं। कटि से नीचे वे एक वस्त्र भी धारण किए हैं। विष्णु का पहला हाथ पादपीठ पर स्थित गदा के ऊपर रखा है, दूसरे और तीसरे में वे क्रमशः चक्र और शंख धारण किए है और चौथे से वे लक्ष्मी को आलिंगन-पाश में भरते हुए उनके वाम वक्षःस्थल को स्पर्श कर रहे हैं। लक्ष्मी अपने बाएँ हाथ में पद्म (कुण्डलित कमलनाल) धारण किए हैं और दाहिने हाथ से विष्णु को आलिंगन करते हुए इसे उनके दाएँ स्कन्ध पर रखे हैं।

दूसरी मूर्ति (चित्र ६७)[3] में विष्णु और लक्ष्मी पूर्ववत् खड़े है। इसमे विष्णु के पहले हाथ में पद्म, दूसरे में शंख और तीसरे में चक्र है तथा चौथे से पूर्ववत् लक्ष्मी के वक्षःस्थल को स्पर्श कर रहे है। लक्ष्मी का चित्रण पूर्ववत् है, अन्तर केवल इतना है कि वे अपने बाएँ हाथ में पद्म के स्थान पर दर्पण लिए है।

तीसरी मूर्ति[4] में विष्णु अपने पहले हाथ में शंख (जो अंशतः खण्डित है), दूसरे में गदा

---

१ Prasad, M., *op. cit.*, pp. 142 ff.

२ प्र० सं० २१३

३ प्र० सं० २१४

४ प्र० सं० २१५

और तीसरे में चक्र धारण किए हैं। उनका चौथा हाथ पूर्ववत् है। इसमें लक्ष्मी का दाहिना हाथ पूर्ववत् है और बायाँ खण्डित है।

चौथी मूर्ति[१] में विष्णु का पहला हाथ कट्यवलम्बित और तीसरा चक्र-युक्त है। दूसरा हाथ खण्डित है और चौथा पूर्ववत् है। लक्ष्मी के बाएँ हाथ में नाल-विहीन पद्म है और उनका दाहिना हाथ पूर्ववत् विष्णु के दाएँ स्कन्ध पर है।

इस प्रकार की शेष सभी मूर्तियाँ[२] सामान्यतः उपर्युक्त मूर्तियों के सदृश ही हैं। कुछ मूर्तियों में लक्ष्मी विष्णु के बाएँ पार्श्व के स्थान पर दाहिने पार्श्व में खड़ी मिलती हैं। ऐसी मूर्तियों में विष्णु का चौथे के स्थान पर पहला हाथ लक्ष्मी के दक्षिण वक्षःस्थल पर स्थित है। कभी-कभी विष्णु चतुर्भुज न होकर द्विभुज ही चित्रित हुए हैं।[३]

दूसरे प्रकार की मूर्तियों में विष्णु ललितासन में बैठे हैं और उनकी वाम जंघा पर लक्ष्मी भी इसी मुद्रा में बैठी हैं। विष्णु और लक्ष्मी का अलंकरण और उनके हाथों का चित्रण सामान्यतः पहले प्रकार की मूर्तियों के सदृश ही है। इस प्रकार की अनेक मूर्तियाँ[४] वहाँ उपलब्ध हैं।

तीसरे प्रकार की मूर्तियों[५] में लक्ष्मी-नारायण गरुड़ पर आरूढ़ चित्रित हैं। सामान्यतः विष्णु अपना बायाँ पैर मोड़कर गरुड के स्कन्धों पर रखे हैं और दाहिना ललितासन-मुद्रा के समान नीचे लटकाए हैं, जिसे गरुड अपने दाहिने हाथ में धारण किए है। विष्णु की मुड़ी हुई वाम जंघा पर लक्ष्मी अपनी दक्षिण जंघा मोड़कर बैठी है और ललितासन-मुद्रा में बायाँ पैर नीचे लटकाए हैं, जिसे गरुड अपने बाएँ हाथ से आश्रय दिए हैं। विष्णु और लक्ष्मी उपर्युक्त मूर्तियों के सदृश अलंकृत हैं और उनके हाथों का चित्रण भी पहले और दूसरे प्रकार की मूर्तियों के सदृश ही हुआ है। पुरुष-विग्रह में चित्रित गरुड लक्ष्मी-नारायण को लेकर उड़ता हुआ प्रदर्शित है।

खजुराहो-क्षेत्र (बुन्देलखण्ड) से उपलब्ध पहले प्रकार की एक लक्ष्मी-नारायण की आलिंगन-मूर्ति इलाहाबाद संग्रहालय में सुरक्षित है, जिसे श्री शिवराममूर्ति ने "कल्याणसुन्दर विष्णु" माना है।[६]

हयग्रीव

हयग्रीव नामक एक राक्षस था। हिरण्यकशिपु के समान उसे भी यह वरदान प्राप्त था कि उसका वध न कोई मनुष्य कर सकता था और न कोई पशु ही। उसने देवताओं को सताना प्रारम्भ किया। इस पर देवता सहायता के लिए देवी के पास गए। देवी ने उन्हें विष्णु के पास भेज दिया। सभी देवों ने विष्णु की स्तुति की और उनसे अश्व-मुख और मनुष्य-शरीर में पृथ्वी पर अवतीर्ण होकर राक्षस के वध करने का निवेदन किया। विष्णु प्रसन्न हुए और इस रूप में पृथ्वी में जन्म लेकर उन्होंने हयग्रीव का वध किया। अपने इस रूप में विष्णु हयग्रीव नाम से प्रसिद्ध हुए। यह कथा देवी-भागवत में मिलती है।[७]

---

१ प्र० सं० २११
२ प्र० सं० २१७-२३१
३ प्र० सं० २३२
४ प्र० सं० २३३-२३८
५ प्र० सं० २४०-२४२
६ Sivaramamurti, C., *JASL*, Vol. XXI, No. 2, p. 79, Pl. IV, Fig. 7.
७ *EHI*, I, I, p. 260.

विष्णुधर्मोत्तर[१] मे हयग्रीव-प्रतिमा का विवरण मिलता है। इसके अनुसार हयग्रीव का सिर अश्व का हो और उनके चरण पृथ्वी के हाथों मे स्थित हों। उनके आठ भुजाएँ हो—चार में शंख, चक्र, गदा और पद्म हों और चार पुरुष-विग्रह में निर्मित चार वेदो के सिर पर स्थित हों। यहाँ पर हयग्रीव को संकर्षण का अंग माना गया है।

खजुराहो मे हयग्रीव की मात्र दो प्रतिमाएँ लेखक को प्राप्त हुई हैं।[२] पहली प्रतिमा[3] मे अश्वमुख और मनुष्य-देहधारी हयग्रीव एक पद्मपीठ पर समभंग खड़े हैं (चित्र ६८)। वे करण्ड-मुकुट, हार, ग्रैवेयक, कौस्तुभमणि, कुण्डल, वलय, केयूर, मुक्ता-लड़ियो से ग्रथित मेखला, नूपुर और विशाल वनमाला धारण किए हैं। मस्तक के पीछे कमलपत्रांकित शिरश्चक्र है। उनके चार हाथ है—पहला वरद-मुद्रा में और दूसरा चक्रधारी है और शेष दो खण्डित है। उनके दाएँ पार्श्व में लक्ष्मी और बाएँ में सर्पधारी गरुड खड़े है। लक्ष्मी के पीछे की ओर करण्ड-मुकुटधारी गदा-पुरुष और गरुड़ के पीछे करण्ड-मुकुटधारी चक्र-पुरुष त्रिभंग खडे हैं। पादपीठ के दाएँ-बाएँ कोनों पर पद्मधारिणी एक-एक देवी और खडी प्रदर्शित हैं। मूर्ति के ऊपरी कोनो पर (शिरश्चक्र के दोनों ओर) ब्रह्मा और शिव की प्रतिमाएँ हैं। दोनों बैठे है और जटा-मुकुट धारण किए है। ब्रह्मा त्रिमुख हैं और उनका पहला हाथ अभय-मुद्रा मे है तथा शेष तीन स्रुव, पुस्तक और कमण्डलु से युक्त हैं। शिव का पहला और चौथा हाथ ब्रह्मा के समान क्रमशः अभय-मुद्रा मे और कमण्डलु-युक्त है। दूसरे और तीसरे में वे क्रमशः त्रिशूल और सर्प धारण किए है।

दूसरी मूर्ति[४] खण्डित अवस्था मे है और पहली की अपेक्षा छोटी है। इसमे अश्वमुख हयग्रीव ललितासन-मुद्रा मे बैठे हैं। उनकी चार भुजाओं मे दो बाईं भुजाएँ सुरक्षित हैं और दोनों दाहिनी टूट गई हैं। सुरक्षित भुजाओं में वामोर्ध्व चक्रधारी और वामाधः शंखधारी है। वे करण्ड-मुकुट और सामान्य आभूषणों से अलंकृत है। मुकुट के पीछे शिरश्चक्र है। साथ मे कोई पार्श्वचर नही है।

इनके अतिरिक्त ऊपर वर्णित (पृ० १३५-३६) चतुर्मुखी वैकुण्ठ-मूर्ति भी द्रष्टव्य है, जिसका पीछे का मुख हयग्रीव का है (चित्र ६३)।

करि-वरद (गजेन्द्र-मोक्ष)

इस रूप में विष्णु ने गजेन्द्र को एक ग्राह से मुक्त किया था। गजेन्द्र-मोक्ष की विस्तृत कथा भागवतपुराण[५] में मिलती है। एक समय जब गजेन्द्र बहुत सी हथिनियो के साथ एक सरोवर में जल-क्रीड़ा कर रहा था, एक बलवान् ग्राह ने उसका पैर पकड लिया। गजेन्द्र ने अपने को छुड़ाने की बड़ी चेष्टा की, किन्तु छुडा न सका। शिथिल होने पर उसने विष्णु का ध्यान किया और उनकी स्तुति की। गजेन्द्र को पीड़ित जान कर विष्णु प्रकट हुए और उसे मुक्त किया। विष्णु के इस रूप के अनेक शिल्प-निदर्शन भारत में मिलते हैं।

---

१ वि० ध०, अ० ८०

२ डॉ० उर्मिला अग्रवाल ने खजुराहो में उपलब्ध अनेक चतुर्भुज वृषमुख अष्टवसुओं की मूर्तियों को हयग्रीव मानने की भूल की है (उपर्युक्त, पृ० ५२-५३, चित्र २१)।

३ प्र० सं० २४३

४ प्र० सं० २४४

५ भा० पु०, स्कन्ध ८, अ० २-४

खजुराहो में तीन करि-वरद-मूर्तियाँ लेखक को प्राप्त हुई हैं, जिनमें एक मूर्ति (चित्र ६६)[1] पर्याप्त सुरक्षित अवस्था में है। इसमें विष्णु का दाहिना पैर कुछ मुड़ कर पादपीठ पर स्थित है और मुड़ा हुआ बायाँ गजेन्द्र के ऊपर रखा प्रदर्शित है। गजेन्द्र को एक बहुत ही लम्बे सर्प ने जकड़ रखा है। यह सर्प गजेन्द्र के अगले बाएँ पैर और शरीर में लिपटा हुआ है। अष्टभुज विष्णु एक बाएँ हाथ से गजेन्द्र की सूँड़ पकड़ कर उसे अपनी ओर खींच रहे है और अपने छः हाथों मे धारण किए गदा, पद्म, खड्ग, चक्र, खेटक और शंख से सर्प पर प्रहार करने को उद्यत है। उनका एक बायाँ हाथ खण्डित है। वे किरीट-मुकुट और वनमाला-सहित सामान्य आभूषणों से अलंकृत है। उनके दाएँ-बाएँ पार्श्वों में एक-एक करण्ड-मुकुटधारी अनुचर खड़ा है। दाहिने पार्श्व के अनुचर के एक हाथ में गदा है और उसका दूसरा हाथ कट्यवलम्बित है। बाएँ पार्श्व के अनुचर का बायाँ हाथ कट्यवलम्बित है, किन्तु दाहिने हाथ का लाञ्छन स्पष्ट नहीं है। पादपीठ पर विष्णु के दाएँ पैर के निकट एक उपासक अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़े बैठा है। मूर्ति के ऊपरी कोनो पर ब्रह्मा और शिव की खण्डित प्रतिमाएं है।

दूसरी मूर्ति[2] उपर्युक्त मूर्ति के सदृश है, किन्तु यह अत्यन्त खण्डित अवस्था मे है। इसमें भी गजेन्द्र के पैरों और शरीर को एक लम्बा साँप जकड़े है। यहाँ भी विष्णु अष्टभुज है, किन्तु उनके सभी हाथ टूट गए हैं। पहली मूर्ति के समान उनके एक हाथ मे खड्ग रहे होने के संकेत मिलते हैं। इस मूर्ति मे खड़ी हुई पद्मधारिणी लक्ष्मी और स्तुति-मुद्रा में दाहिना हाथ उठा कर खड़े हुए गरुड के भी चित्रण हैं।

तीसरी मूर्ति[3] भी खण्डित अवस्था में है। इसमें विष्णु अष्टभुज न होकर चतुर्भुज हैं। उनके दक्षिण करों में गदा और चक्र हैं, वामाधः कर से वे गजेन्द्र की सूँड़ पकड़े हैं तथा वामोर्ध्व खण्डित है। इस मूर्ति मे पार्श्व-चित्रण का अभाव है।

विष्णु के इस रूप की मूर्तियाँ गुप्तकाल में बनने लगी थीं। उस युग की एक अत्यन्त सुन्दर मूर्ति देवगढ़ में उपलब्ध है।[4] इसमे भी गजेन्द्र के पैर एक लम्बे सर्प द्वारा जकड़े प्रदर्शित हैं। खजुराहो-प्रतिमाओं के विपरीत इसमें विष्णु उड़ते हुए गरुड़ पर आरूढ़ है और उनके सम्मुख नागराज्ञी-सहित नागराज अंजलि-मुद्रा मे हाथ जोड़े प्रदर्शित हैं। गजेन्द्र अपनी उठी हुई सूँड द्वारा विष्णु को पुष्प भेंट कर रहे है। ऊपर की ओर विद्याधरों के दो युगल भी चित्रित है।

इन उत्तरभारतीय प्रतिमाओं के विपरीत, जिनमे ग्राह का चित्रण एक लम्बे सर्प के रूप में हुआ है, अन्य स्थानों, विशेष रूप से दक्षिणभारत, की प्रतिमाओं में ग्राह एक मकर[5] अथवा कूर्म[6]

१ प्र० सं० २५५; डॉ० उर्मिला अग्रवाल द्वारा इस मूर्ति का वास्तविक अभिज्ञान नहीं हो सका है। उन्होंने लक्ष्मण मन्दिर (जिसे भूल से वहाँ उन्होंने विश्वनाथ मन्दिर लिखा है) की कुवलयापीड-वध की मूर्ति के साथ इसका उल्लेख किया है और इन दोनों को गज-वाहन से युक्त कुबेर माना है (उपर्युक्त, पृ० ४५, पाद-टिप्पणी ३)।

२ प्र० सं० २५७

३ प्र० सं० २५६

४ Agrawala, V. S., *Gupta Art*, Pl. XIII, Fig. 19; Sivaramamurti, C., *Indian Sculpture*, Pl. 14, *AI*, No. 6, Pl. XII, Fig. C; *DHI*, Pl. XXVII, Fig. 1; etc.

५ *EHI*, I, 1, p. 268, Pl. LXXX, Fig. 1.

६ Sivaramamurti, C., *JASL*, Vol. XXI, No. 2, Pl. XIX, Fig. 38.

के रूप में प्रदर्शित हैं। मकर, सर्प आदि किसी बड़े जल-जन्तु को ग्राह कह सकते हैं,[1] इसलिए इन सब मूर्तियों में उसका चित्रण शास्त्र-निर्देशानुसार ही हुआ है।

५. गरुड़, आयुध-पुरुष एवं द्वारपाल

गरुड़

खजुराहो में गरुड़ के चित्रण तीन प्रकार के मिलते हैं : स्वतंत्र, विष्णु अथवा लक्ष्मी-नारायण को स्कन्धों पर बैठाए हुए तथा विभिन्न प्रकार की विष्णु-मूर्तियों में पार्श्वचर के रूप में। इन सब में गरुड़ पुरुष-विग्रह में हैं। उनकी स्वतंत्र मूर्तियाँ केवल दो हैं। एक (चित्र ७३)[2] वहाँ के संग्रहालय मे है। इसमें वे वाम पद को मोड़े और दक्षिण जानु को पादपीठ पर रखे बैठे है। उनके मात्र दो भुजाएँ हैं, जिन्हे वे अंजलि-मुद्रा में जोड़े है। वे हार, ग्रैवेयक, कौस्तुभ, कुण्डलो, केयूरो, कंकणों, उपवीत तथा मुक्ता-ग्रथित मेखला से अलंकृत हैं। उनके बैठने की मुद्रा रूपमण्डन के विवरण से साम्य रखती है, किन्तु उस विवरण के विपरीत, जहाँ चार भुजाओ का उल्लेख है, यहाँ मात्र दो भुजाएँ हैं। ये दो भुजाएँ अवश्य उस विवरण के अनुरूप अंजलि-मुद्रा में प्रदर्शित हैं।[3]

दूसरी मूर्ति[4] भी पहली के सदृश है, किन्तु इसके सिर और डाढी मे घुँघराले बाल हैं। यह लक्ष्मण मन्दिर के शिखर में पश्चिम की ओर है।

दूसरे प्रकार की मूर्तियो मे गरुड अपने स्कन्धो पर विष्णु (चित्र २०) अथवा लक्ष्मी-नारायण को बैठा कर उड़ते हुए प्रदर्शित हैं। उनके सिर पर सामान्यत ऊर्ध्वकेश हैं और वे विष्णु के समान ही सामान्य आभूषणों से अलंकृत हैं। उनके स्कन्धों पर विष्णु अथवा लक्ष्मी-नारायण सुखासन-मुद्रा में बैठे हैं और वे (गरुड़) अपने दोनों हाथों से उनके चरणों को आश्रय दिए हैं।

विभिन्न प्रकार की अधिकांश विष्णु-मूर्तियो की प्रभावली में अन्य पार्श्वचरो के साथ गरुड भी खड़े प्रदर्शित हुए हैं। ऐसे चित्रणो मे उनकी प्रतिमा छोटी है। उनके सिर पर ऊर्ध्वकेश हैं और कभी-कभी उनकी डाढी मे बालों का भी प्रदर्शन हुआ है। सामान्यतः उनका दाहिना हाथ स्तुति-मुद्रा में उठा और बायाँ सर्पधारी है।

इस प्रकार खजुराहो की सभी मूर्तियों मे गरुड़ पुरुष-विग्रह मे प्रदर्शित हैं और वे द्विभुज हैं। अन्य स्थानो से प्राप्त मूर्तियों के विपरीत खजुराहो की गरुड़-मूर्तियाँ पंख-विहीन हैं।

आयुध-पुरुष

विभिन्न देव-देवियों द्वारा धारण किए जाने वाले आयुध और लाञ्छन, जैसे शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि, भी पुरुष-विग्रह में चित्रित हुए है, जिन्हे आयुध-पुरुष कहा जाता है। विभिन्न

---

१ Monier-Williams, M.. *A Sanskrit-English Dictionary*, p. 372.

२ प्र० सं० २४८

३ जानुद्वयं चार्धस्थं तथा विरचिताञ्जलिः।
× × ×
घोणाग्रे कुंचितः पक्षावुन्नतावस्तु बाहुना।
पृथिव्यां संस्थितो वाम पादः स्यात्तदासनम्॥
—रूप०, ३, ५८-५९

४ प्र० सं० २४९

शास्त्रों में इन आयुध-पुरुषों के प्रतिमा-लक्षण मिलते हैं, जिनमें कुछ पुल्लिंग, कुछ स्त्रीलिंग और कुछ नपुंसकलिंग में वर्णित हैं। उदाहरण के लिए शक्ति और गदा स्त्री-रूप में, चक्र और पद्म नपुंसक-रूप में, और वज्र, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश और त्रिशूल पुरुष-रूप में वर्णित हैं।[1] संस्कृत में किसी आयुध-नाम के लिंग के आधार पर ही शास्त्रों द्वारा उसके आयुध-पुरुष का भी लिंग निर्धारित किया गया है। उदाहरण के लिए शक्ति और गदा स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं अतएव उनके प्रदर्शन स्त्री-रूप मे हुए हैं। चक्र और पद्म नपुंसकलिंग हैं, इसीलिए उनके आयुध-पुरुषों का वर्णन नपुसक-रूप में हुआ है। इसी प्रकार वज्र, दण्ड आदि पुल्लिंग हैं, फलतः उनके पुरुष-रूप में चित्रित करने का निर्देश है।[2]

शास्त्रो के अनुसार आयुध-पुरुष करण्ड-मुकुट तथा सब आभूषणों से अलंकृत निर्मित हों। उनके एक मुख, दो नेत्र तथा अंजलि-मुद्रा में जुड़ी दो भुजाएँ हों। यदि हाथ अंजलि-मुद्रा में हों तो आयुध-विशेष सिर पर धारण किए गए मुकुट के ऊपर रखा हो, अन्यथा आयुध हाथो के बीच में हो।[3]

मूर्ति-कला में आयुध-पुरुषो के चित्रण का वैशिष्ट्य विष्णु-प्रतिमाओं में ही अधिक देखने को मिलता है। अन्य देवी-देवताओ के आयुध-पुरुषों की मूर्तियाँ नही के बराबर मिलती हैं। विष्णु-आयुध-पुरुषों के प्राचीनतम चित्रण गुप्तकालीन हैं, जो मथुरा संग्रहालय की अनेक विष्णु-मूर्तियो में द्रष्टव्य हैं।[4]

आयुध-पुरुषो की स्वतन्त्र मूर्तियाँ दुर्लभ-सी हैं, किन्तु खजुराहो में इनका अभाव नहीं है। वहाँ शंख, चक्र और पद्म-पुरुषों की स्वतन्त्र मूर्तियाँ उपलब्ध हैं।

शंख-पुरुष

चक्र और पद्म-पुरुषों की तुलना में वहाँ शंख-पुरुष की प्रतिमाएँ अधिक हैं। लेखक को ग्यारह प्रतिमाएँ मिली हैं, जिनमें एक[5] अपनी सुन्दरता के कारण विशेष दर्शनीय है। इसमे शंख-पुरुष त्रिभंग खड़े हैं। उनके सिर पर विशाल किरीट-मुकुट है और वे बनमाला-सहित विष्णु के समान अलकृत हैं। उनका दाहिना हाथ कट्यवलम्बित है और बाएँ में वे आयुध-विशेष (शंख) धारण किए हैं।

शंख-पुरुष की शेष सभी प्रतिमाएँ[6] उपर्युक्त प्रतिमा के सदृश द्विभुजी हैं। उनमें कुछ के सिर पर किरीट और कुछ के करण्ड-मुकुट हैं और कुछ मुकुट-विहीन भी हैं। सामान्यतः सभी का एक हाथ कट्यवलम्बित है और एक मे वे शंख धारण किए हैं।

चक्र-पुरुष

खजुराहो मे चक्र-पुरुष की चार प्रतिमाएं लेखक को मिली हैं। पहली मूर्ति (चित्र ७०)[7]

---

१ *EHI*, I, I, p. 288.
२ वही
३ वही, पृ० २८८-८९
४ मथुरा-कला, पृ० ६३-६४
५ प्र० सं० २५०
६ प्र० सं० २५१-२५६, २६१-२६४
७ प्र० सं० २५७

में चक्र-पुरुष त्रिभंग-मुद्रा में खड़े हैं। उनका दाहिना हाथ कट्यवलम्बित और बायाँ चक्रधारी है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि चक्र-पुरुष किरीट अथवा करण्ड-मुकुट के स्थान पर जटा-मुकुट धारण किए हैं। मुकुट के अतिरिक्त वे सामान्य आभूषणों से अलंकृत हैं, किन्तु वनमाला का अभाव है। दूसरी मूर्ति[1] में चक्र-पुरुष के सिर पर करण्ड-मुकुट शोभायमान है। मुकुट के अतिरिक्त वे सामान्य आभूषणों से अलंकृत हैं। उनके दोनों हाथों का प्रदर्शन पहली प्रतिमा के सदृश है। तीसरी मूर्ति[2] भी पूर्ववत् है, किन्तु यह किरीट-मुकुट से अलंकृत है। चौथी[3] का दाहिना हाथ चक्रधारी और बायाँ कट्यवलम्बित है।

पद्म-पुरुष

इस आयुध-पुरुष की भी चार स्वतन्त्र मूर्तियाँ लेखक को मिली हैं, जिनमें एक विशेष दर्शनीय है (चित्र ७१)[४]। इसमे पद्म-पुरुष त्रिभंग खड़े हैं और करण्ड-मुकुट तथा वनमाला-सहित विष्णु के सदृश अलंकृत हैं। उनका दाहिना हाथ कट्यवलम्बित है और बाएँ में वे नाल-विहीन पूर्ण विकसित पद्म धारण किए है। दूसरी और तीसरी मूर्तियाँ[५] पहली के सदृश हैं, किन्तु इनके दाहिने हाथ पद्मधारी और बाएँ कट्यवलम्बित है। चौथी मूर्ति जटा-मुकुटधारी है।[६] इसका भी दायाँ हाथ पद्म-युक्त और बायाँ कट्यवलम्बित है।

उपर्युक्त स्वतंत्र मूर्तियों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की अधिकाश विष्णु-मूर्तियों के पार्श्व-चित्रण मे शंख और चक्र-पुरुषों का प्रदर्शन मिलता है। कुछ मूर्तियो में पद्म-पुरुष भी चित्रित हुआ है। अन्य स्थानों की मूर्तियों के विपरीत खजुराहो में आयुध-पुरुष वामन-रूप में नही चित्रित हैं।

द्वारपाल

खजुराहो के लक्ष्मण, वामन और जवारी नामक वैष्णव मन्दिरों में विष्णु-द्वारपालो के अनेक युगल खड़े मिलते हैं। लक्ष्मण मन्दिर मे केवल एक युगल मिलता है और यह युगल गर्भगृह-द्वार पर प्रदर्शित है। जगदम्बी मन्दिर में दो युगल महामण्डप-द्वार पर, एक अन्तराल-स्तम्भों पर और एक गर्भगृह-द्वार पर—कुल चार युगल उपलब्ध है। वामन मन्दिर मे प्रतीहारों की संख्या सबसे अधिक है। महामण्डप के स्तम्भों पर चारों दिशाओ की ओर कुल पाँच युगल हैं और एक युगल गर्भगृह-द्वार पर है। जवारी मन्दिर में मात्र एक युगल गर्भगृह-द्वार पर मिलता है।

ये सभी प्रतीहार सामान्यत: चतुर्भुज हैं और त्रिभंग खड़े हैं, किन्तु लक्ष्मण मन्दिर के दोनों प्रतीहार द्विभुज हैं। ये दोनो जटा-मुकुट धारण किए हैं और विष्णु के सदृश सामान्य आभूषणो से

१ प्र० सं० २५८
२ प्र० सं० २६६
३ प्र० सं० २६६
४ प्र० सं० २५८
५ प्र० सं० २६०, २६७
६ प्र० सं० २६८

अलंकृत हैं। ये दोनों राम की भाँति अपने दोनों हाथों से एक बाण पकड़े हैं और स्कन्ध पर एक धनुष धारण किए हैं। एक का चित्र द्रष्टव्य है (चित्र ७२)।

ये प्रतीहार जटा-मुकुट, करण्ड-मुकुट अथवा किरीट-मुकुट धारण किए है। मुकुट के अतिरिक्त ये वनमाला-सहित सामान्य आभूषणों से अलकृत हैं। चार हाथो में ये वैष्णव आयुधों—शंख, गदा, पद्म आदि—मे से कुछ धारण किए हैं, किन्तु कुछ सर्प, खड्ग आदि भी लिए मिलते है। कुछ का एक हाथ अभय अथवा कट्यवलम्बित-मुद्रा मे भी मिलता है। कुछ के पादपीठ पर एक उपासक अजलि-मुद्रा में हाथ जोड़े भी प्रदर्शित है।

परिशिष्ट (अध्याय ३)

विष्णु-प्रतिमाओं के प्राप्ति-स्थान

स्थानक मूर्तियाँ

प्र० सं०	प्राप्ति-स्थान
१	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, प्रधान मूर्ति ।
२	जगदम्बी मन्दिर, उत्तरी जंघा, ऊर्ध्व रथिका ।
३	खजुराहो संग्रहालय, सं० १११
४	वही, सं० ३२
५	वही, सं० २८
६	वही, सं० ११७
७	वही, सं० ३६
८	वही, सं० ३४
९	वही, सं० ४७
१०	वही, सं० १२४
११	वही, सं० ३५
१२	मातंगेश्वर मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तरी रथिका ।
१३	चतुर्भुज मन्दिर, प्रधान मूर्ति ।
१४	जवारी मन्दिर, प्रधान मूर्ति ।
१५	विश्वनाथ मन्दिर, प्रधान (गर्भगृह का) शिखर, उत्तर-पूर्व की ओर रथिका ।
१६	धुबेला संग्रहालय, सं० ११३
१७	वही, सं० १२४
१८	खजुराहो संग्रहालय, सं० १२३५
१९	वही, सं० ११८४
२०	वही, सं० ११९३
२१	लक्ष्मण मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तर-पूर्व, जंघा की ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति ।
२२	वही ।
२३	वही, अधः मूर्ति-पंक्ति ।
२४	लक्ष्मण मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तर, जंघा की ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति ।
२५	वही ।
२६	लक्ष्मण मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तर-पश्चिम, जंघा की ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति ।
२७	वही ।
२८	लक्ष्मण मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिण-पश्चिम, जंघा की ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति ।

प्र० सं०	प्राप्ति-स्थान
२६	वही ।
३०	लक्ष्मण मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिण, जघा की ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति ।
३१	वही ।
३२	लक्ष्मण मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिण-पूर्व, जंघा की ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति ।
३३	वही ।
३४	जगदम्बी मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तर-पश्चिम, जंघा की मध्य मूर्ति-पंक्ति ।
३५	वही ।
३६	वही ।
३७	वही, अधः मूर्ति-पंक्ति ।
३८	जगदम्बी मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिण-पश्चिम, जघा की मध्य मूर्ति-पंक्ति ।
३९	जगदम्बी मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिण, जंघा की अधः मूर्ति-पंक्ति ।
४०	जगदम्बी मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिण-पूर्व, जंघा की अधः मूर्ति-पंक्ति ।
४१	जगदम्बी मन्दिर, अन्तर्भाग, गर्भगृह-द्वार ।
४२	वही ।
४३	जगदम्बी मन्दिर, गर्भगृह-द्वार, ललाटबिम्ब ।
४४	चित्रगुप्त मन्दिर, प्रधान शिखर, उत्तर की ओर रथिका ।
४५	खजुराहो संग्रहालय, सं० १३०
४६	वही, सं० ४२
४७	वही, सं० ३१
४८	वही, सं० १२७
४९	वही, सं० ४१
५०	वही, स० १०४०
५१	वही, सं० १२६
५२	प्रतापेश्वर मन्दिर,[1] जगती, पूर्व की ओर ।
५३	वामन मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तर-पूर्व, जंघा की ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति ।
५४	वही ।
५५	वही, अधः मूर्ति-पंक्ति ।
५६	वही ।
५७	वामन मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तर, जघा की ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति ।
५८	वही ।
५९	वही ।
६०	वही, अधः मूर्ति-पंक्ति ।
६१	वामन मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिण-पूर्व, जंघा की ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति ।

१ यह एक आधुनिक मन्दिर है, किन्तु इसकी जगती में अनेक मध्ययुगीन मूर्तियाँ जुड़ी हैं ।

प्र० सं० प्राप्ति-स्थान

६२ वही ।
६३ वही, अधः मूर्ति-पंक्ति ।
६४ वही ।
६५ वामन मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिण, जघा की ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति ।
६६ वही ।
६७ वही ।
६८ वही, अधः मूर्ति-पंक्ति ।
६९ वही ।
७० वही ।
७१ वामन मन्दिर, गर्भगृह-द्वार, ललाटबिम्ब ।
७२ पार्श्वनाथ मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तर, जंघा की मध्य मूर्ति-पंक्ति ।
७३ वही, अधः मूर्ति-पंक्ति ।
७४ वही ।
७५ पार्श्वनाथ मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिण, जघा की मध्य मूर्ति-पंक्ति ।
७६ पार्श्वनाथ मन्दिर, बहिर्भाग, पश्चिम, जंघा की मध्य मूर्ति-पंक्ति ।
७७ पार्श्वनाथ मन्दिर के पीछे सयुक्त छोटा मन्दिर, दक्षिण, जघा की मध्य मूर्ति-पक्ति ।
७८ पार्श्वनाथ मन्दिर, अर्धमण्डप का शिखर, उत्तर की ओर ।
७९ वही, पूर्व की ओर ।
८० वही, दक्षिण की ओर ।
८१ कन्दरिया मन्दिर, बहिर्भाग, प्रदक्षिणापथ के पश्चिमी गवाक्ष के ऊपर, उत्तर की ओर एक रथिका ।
८२ कन्दरिया मन्दिर, बहिर्भाग, प्रदक्षिणापथ के उत्तरी गवाक्ष के ऊपर, उत्तर की ओर एक रथिका ।
८३ विश्वनाथ मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तर-पश्चिम, जंघा, मध्य मूर्ति-पंक्ति ।
८४ वही ।
८५ वही, अधः मूर्ति-पंक्ति ।
८६ विश्वनाथ मन्दिर, प्रधान शिखर, पूर्व की ओर एक रथिका ।

आसन मूर्तियाँ

८७ लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, गर्भगृह-द्वार, ललाटबिम्ब ।
८८ लक्ष्मण मन्दिर, अन्तर्भाग, दक्षिणी ऊर्ध्व भद्र-रथिका ।
८९ वही, पश्चिमी ऊर्ध्व भद्र-रथिका ।
९० वही, उत्तरी ऊर्ध्व भद्र-रथिका ।
९१ खजुराहो संग्रहालय, सं० ९३०
९२ वही, सं० ९३२

प्र० सं० प्राप्ति-स्थान

९३ वही, सं० ९३६
९४ वही, सं० ९३३
९५ वही, सं० १२५
९६ ब्रह्मा मन्दिर, बहिर्भाग, पश्चिमी द्वार के ऊपर।
९७ वामन मन्दिर, शिखर, उत्तर की ओर रथिका।
९८ विश्वनाथ मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, दक्षिण, जंघा की रथिका।
९८अ कन्दरिया मन्दिर, महामण्डप का शिखर, महामण्डप के उत्तरी गवाक्ष के ठीक ऊपर एक रथिका।
९९ लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पूर्वी गौण मन्दिर, पश्चिम, जंघा।
१०० खजुराहो संग्रहालय का द्वार-उत्तरंग।
१०१ खजुराहो संग्रहालय, सं० २१
१०२ वही, स० २४
१०३ प्रतापेश्वर मन्दिर, जगती, पूर्व की ओर।
१०४ दूलादेव मन्दिर, गर्भगृह-द्वार-उत्तरंग।
१०५ चतुर्भुज मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तर, अधः भद्र-रथिका।
१०६ चतुर्भुज मन्दिर, गर्भगृह-द्वार, ललाटबिम्ब।
१०७ जवारी मन्दिर, गर्भगृह-द्वार, ललाटबिम्ब।
१०८ कन्दरिया मन्दिर, गर्भगृह-द्वार-उत्तरग।
१०९ कन्दरिया मन्दिर, बहिर्भाग, प्रदक्षिणापथ के उत्तरी गवाक्ष के ऊपर, पश्चिम की ओर एक रथिका।
११० महादेव मन्दिर, द्वार-उत्तरग।
१११ विश्वनाथ मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, प्रवेश-द्वार, ललाटबिम्ब।
११२ लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पूर्वी गौण मन्दिर, प्रवेश-द्वार, ललाटबिम्ब।
११३ लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पश्चिमी गौण मन्दिर, प्रवेश-द्वार, ललाटबिम्ब।
११४ लक्ष्मी मन्दिर, प्रवेश-द्वार, ललाटबिम्ब।
११५ जगदम्बी मन्दिर, दक्षिण, अधिष्ठान-रथिका।
११६ खजुराहो सग्रहालय, सं० १९
११७ पार्वती मन्दिर, प्रवेश-द्वार, ललाटबिम्ब।
११८ दूलादेव मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तर, ऊर्ध्व भद्र-रथिका।
११९ ब्रह्मा मन्दिर, प्रवेश-द्वार, ललाटबिम्ब।
१२० कन्दरिया मन्दिर, अन्तर्भाग, प्रदक्षिणापथ, दक्षिण-पूर्वी कोने की एक रथिका।
१२१ कन्दरिया मन्दिर, अन्तर्भाग, प्रदक्षिणापथ, दक्षिण, ऊर्ध्व भद्र-रथिका।
१२२ कन्दरिया मन्दिर, जगती, दक्षिण-पूर्व की ओर।
१२३ विश्वनाथ मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, उत्तरी जंघा की एक रथिका।
१२४ विश्वनाथ मन्दिर, गर्भगृह-द्वार, उत्तरंग।

प्र० स० प्राप्ति-स्थान

शयन मूर्तियाँ

१२५ खजुराहो संग्रहालय, सं० ५६६
१२६ वही, सं० ५५
१२७ धुबेला संग्रहालय, सं० १६४
१२८ लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, भीतर प्रतिष्ठित।

दशावतार-मूर्तियाँ

१२९ लक्ष्मण मन्दिर, गर्भगृह-द्वार।
१३० वही।
१३१ वराह मन्दिर।
१३२ लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पूर्वी गौण मन्दिर, दक्षिणी जघा, एक रथिका।
१३३ लक्ष्मण मन्दिर, अन्तर्भाग, दक्षिणी अधः भद्र-रथिका।
१३४ जगदम्बी मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिणी ऊर्ध्व भद्र-रथिका।
१३५ चित्रगुप्त मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तरी अधः भद्र-रथिका।
१३६ खजुराहो संग्रहालय, सं० ८५६
१३७ वही, सं० ८५७
१३८ वही, सं० ८६०
१३९ वही, सं० ८५४
१४० वही, सं० ८५५
१४१ वही, सं० १०४०
१४२ वही, सं० ८६१
१४३ वामन मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिणी अधः भद्र-रथिका।
१४४ जवारी मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तरी अधः भद्र-रथिका।
१४५ विश्वनाथ मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, पूर्वी अधः भद्र-रथिका।
१४६ कन्दरिया मन्दिर, अन्तर्भाग, प्रदक्षिणापथ, दक्षिण-पश्चिमी कोने की एक रथिका।
१४७ जवारी मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिणी अधः भद्र-रथिका।
१४८ विश्वनाथ मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, उत्तरी जंघा।
१४९ वामन मन्दिर, बहिर्भाग, पश्चिमी अधः भद्र-रथिका।
१५० लक्ष्मण मन्दिर, अन्तर्भाग, पश्चिमी अधः भद्र-रथिका।
१५१ खजुराहो संग्रहालय, सं० १२५२
१५२ वही, सं० ८५६
१५३ वामन मन्दिर, प्रधान मूर्ति।
१५४ खजुराहो सग्रहालय, सं० ४३१
१५५ वही, सं० ८४७
१५६ लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पश्चिमी गौण मन्दिर, भीतर।

प्र० सं०	प्राप्ति-स्थान
१५७	लक्ष्मण मन्दिर, अन्तर्भाग, महामण्डप, उत्तर-पूर्व की ओर एक रथिका।
१५८	चित्रगुप्त मन्दिर, अन्तर्भाग, गर्भगृह-द्वार के निकट दक्षिण की ओर एक रथिका।
१५९	खजुराहो संग्रहालय, सं० ४३३
१६०	वही, सं० ४५३
१६१	वही, सं० ४५२
१६२	खजुराहो संग्रहालय।
१६३	वही, सं० ४३५
१६४	वामन मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तर की ओर, अधः भद्र-रथिका।
१६५	विश्वनाथ मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, पश्चिम की ओर एक रथिका।
१६६	जगदम्बी मन्दिर, बहिर्भाग, पश्चिम की ओर, अधिष्ठान की छोटी रथिका।
१६७	खजुराहो सग्रहालय, सं० ४४३
१६८	वही, स० ४४९
१६९	खजुराहो सग्रहालय।
१७०	विश्वनाथ मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, उत्तर की ओर एक रथिका।
१७१	पार्श्वनाथ मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तरी जघा, मध्य मूर्ति-पंक्ति।
१७२	पार्श्वनाथ मन्दिर, बहिर्भाग, पश्चिमी जघा, अध· मूर्ति-पंक्ति।
१७३	वही, मध्य मूर्ति-पंक्ति।
१७४	पार्श्वनाथ मन्दिर, अर्धमण्डप का शिखर, उत्तर की ओर।
१७५	वही।
१७६	पार्श्वनाथ मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तरी-जंघा, अधः मूर्ति-पंक्ति।
१७७	कन्दरिया मन्दिर, दक्षिण की ओर, अधिष्ठान की अधः रूपपट्टिका।
१७८	पार्श्वनाथ मन्दिर, दक्षिण की ओर, शिखर की एक रथिका।
१७९	मन्दिरों के पश्चिमी समूह से खजुराहो गाँव की ओर जाती सडक के किनारे बनी एक आधुनिक मठिया मे, जो हनुमान् मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है।
१८०	खजुराहो संग्रहालय, स० १६१०
१८१	लक्ष्मण मन्दिर, अन्तर्भाग, गर्भगृह, उत्तर की ओर, ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति।
१८२	विश्वनाथ मन्दिर, प्रदक्षिणापथ, दक्षिणी बाहरी दीवार के ऊपर बनी एक रूपपट्टिका।
१८३	लक्ष्मण मन्दिर, अन्तर्भाग, गर्भगृह, दक्षिण की ओर, ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति।
१८४	वही, दक्षिण की ओर।
१८५	वही, उत्तर की ओर।
१८६	पार्श्वनाथ मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिण की ओर, मध्य मूर्ति-पंक्ति।
१८७	विश्वनाथ मन्दिर, प्रदक्षिणापथ, दक्षिणी बाहरी दीवार के ऊपर बनी एक रूपपट्टिका।
१८८	लक्ष्मण मन्दिर, अन्तर्भाग, गर्भगृह, ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति, उत्तर की ओर।
१८९	वही, पश्चिम की ओर।
१९०	वही, उत्तर की ओर।

प्र० सं० प्राप्ति-स्थान

१९१ वही, पश्चिम की ओर।
१९२ वही, दक्षिण की ओर।
१९३ वही।
१९४ वही, पश्चिम की ओर।
१९५ विश्वनाथ मन्दिर, प्रदक्षिणापथ, दक्षिणी बाहरी दीवार के ऊपर बनी एक रूपपट्टिका।
१९६ खजुराहो संग्रहालय, स० १३५०
१९७ पार्श्वनाथ मन्दिर के निकट, दक्षिण-पूर्व की ओर बना एक आधुनिक मन्दिर।
१९८ लक्ष्मण मन्दिर, प्रदक्षिणापथ, पश्चिमी दीवार।
१९९ कन्दरिया मन्दिर, बहिर्भाग, प्रदक्षिणापथ के उत्तरी गवाक्ष के ऊपर, पूर्व की ओर एक रथिका।
२०० लक्ष्मण मन्दिर, अन्तर्भाग, गर्भ-गृह, ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति, दक्षिण की ओर।
२०१ पार्श्वनाथ मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिणी जघा, अध: मूर्ति-पंक्ति।
२०२ खजुराहो संग्रहालय, स० १२०७
२०३ चित्रगुप्त मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिणी अधः भद्र-रथिका।

अन्य अवतार एवं रूप

२०४ लक्ष्मण मन्दिर, अन्तर्भाग, महामण्डप की एक रथिका।
२०५ खजुराहो सग्रहालय, स० ६४
२०६ वही, सं० ६३
२०७ लक्ष्मण मन्दिर, गर्भगृह मे प्रतिष्ठित प्रधान मूर्ति।
२०८ खजुराहो संग्रहालय, सं० ७९
२०९ वही, सं० १३५३
२१० कन्दरिया मन्दिर, अन्तर्भाग, गर्भगृह, अधः मूर्ति-पंक्ति, दक्षिण की ओर।
२११ विश्वनाथ मन्दिर, प्रधान शिखर, उत्तर की ओर एक रथिका।
२१२ कन्दरिया मन्दिर, शिखर, पूर्व की ओर एक रथिका।
२१३ पार्श्वनाथ मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिणी जंघा, अध: मूर्ति-पंक्ति।
२१४ वही।
२१५ खजुराहो संग्रहालय, स० ११
२१६ चित्रगुप्त मन्दिर, बहिर्भाग, जघा, दक्षिण-पश्चिम की ओर, अधः मूर्ति-पंक्ति।
२१७ जगदम्बी मन्दिर, बहिर्भाग, पश्चिमी जंघा, ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति।
२१८ जगदम्बी मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिणी अधः भद्र-रथिका।
२१९ चित्रगुप्त मन्दिर, बहिर्भाग, जंघा, दक्षिण-पश्चिम की ओर, मध्य मूर्ति-पंक्ति।
२२० वही, अधः मूर्ति-पंक्ति।
२२१ खजुराहो संग्रहालय, सं० ५
२२२ वही, सं० १५

प्र० सं०	प्राप्ति-स्थान
२२३	वामन मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तरी ऊर्ध्व भद्र-रथिका ।
२२४	पार्श्वनाथ मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तरी जंघा, मध्य मूर्ति-पंक्ति ।
२२५	पार्श्वनाथ मन्दिर, बहिर्भाग, पूर्वी जंघा (उत्तर की ओर), अधः मूर्ति पंक्ति ।
२२६	वही, दक्षिणी जंघा, मध्य मूर्ति-पंक्ति ।
२२७	वही, अधः मूर्ति-पंक्ति ।
२२८	वही, पश्चिमी जंघा, मध्य मूर्ति-पंक्ति ।
२२९	वही ।
२३०	वही, अधः मूर्ति-पंक्ति ।
२३१	कन्दरिया मन्दिर, महामण्डप का शिखर, दक्षिण-पूर्व की ओर एक रथिका ।
२३२	पार्श्वनाथ मन्दिर, बहिर्भाग, पश्चिमी जंघा, मध्य मूर्ति-पंक्ति ।
२३३	चित्रगुप्त मन्दिर, गर्भगृह-द्वार ।
२३४	खजुराहो संग्रहालय, सं० ६
२३५	वही, सं० ८
२३६	जवारी मन्दिर, बहिर्भाग, दक्षिणी ऊर्ध्व भद्र-रथिका।
२३७	जवारी मन्दिर, अर्धमण्डप, मकरतोरण में बाहर की ओर ।
२३८	कन्दरिया मन्दिर, अन्तर्भाग, उत्तरी अधः भद्र-रथिका ।
२३९	कन्दरिया मन्दिर, जगती, दक्षिण-पूर्व ।
२४०	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, दक्षिणी जंघा ।
२४१	खजुराहो संग्रहालय, सं० ३
२४२	वही, सं० २
२४३	लक्ष्मण मन्दिर, अन्तर्भाग, अधः भद्र रथिका, उत्तर की ओर ।
२४४	वामन मन्दिर, उत्तर की ओर, अधिष्ठान-रथिका ।
२४५	खजुराहो संग्रहालय, सं० १८७५
२४६	दूलादेव मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तरी जंघा, ऊर्ध्व मूर्ति-पंक्ति ।
२४७	वामन मन्दिर, अन्तर्भाग, महामण्डप, एक रथिका ।

गरुड़ एवं आयुध-पुरुष

२४८	खजुराहो संग्रहालय, सं० २८१
२४९	लक्ष्मण मन्दिर, उरःशृंग, पश्चिम की ओर ।
२५०	खजुराहो संग्रहालय, सं० २८२
२५१	पार्श्वनाथ मन्दिर, बहिर्भाग, उत्तरी जंघा, मध्य मूर्ति-पंक्ति ।
२५२	पार्श्वनाथ मन्दिर, अर्धमण्डप का शिखर, उत्तर की ओर ।
२५३	वही, दक्षिण की ओर ।
२५४	वही ।
२५५	विश्वनाथ मन्दिर, प्रधान (गर्भगृह का) शिखर, उत्तर-पूर्व की ओर ।

प्र० सं०	प्राप्ति-स्थान
२५६	वही, एक रथिका।
२५७	खजुराहो संग्रहालय, सं० २५४
२५८	विश्वनाथ मन्दिर, अर्धमण्डप का शिखर, उत्तर की ओर।
२५९	खजुराहो संग्रहालय, सं० २६०
२६०	विश्वनाथ मन्दिर, अर्धमण्डप का शिखर, उत्तर की ओर।
२६१	लक्ष्मण मन्दिर, महामण्डप का दक्षिणी गवाक्ष।
२६२	वही।
२६३	वही।
२६४	खजुराहो संग्रहालय, सं० ७३
२६५	वही, सं० १०३४
२६६	लक्ष्मण मन्दिर, महामण्डप का दक्षिणी गवाक्ष।
२६७	खजुराहो संग्रहालय, सं० २७९
२६८	वही, सं० ४२५
२६९	लक्ष्मण मन्दिर, महामण्डप का दक्षिणी गवाक्ष।
२७०	वही।
२७१	वही।

सूर्य

४
सूर्य

पाँच प्रमुख हिन्दू सम्प्रदायों मे सूर्य-उपासकों का एक और सम्प्रदाय है। आज भारत मे सौर सम्प्रदाय के प्रधान देवता के रूप में तो सूर्य पूजे ही जाते है, साथ ही एक आदित्य और ग्रह के रूप में भी उनकी उपासना होती है। सूर्य-पूजा की यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन है।

सूर्य-पूजा का उद्‌भव और विकास

आकाश मे दिखाई पड़ने वाले ज्योतिष्पिण्ड के रूप में सूर्य की पूजा वैदिक काल से होती आ रही है। वेदों मे सूर्य तथा उनके अनेक रूपो, जैसे सविता, पूषन्, भग, विवस्वत्, मित्र, अर्यमन् और विष्णु, के उल्लेख मिलते हैं। वहाँ इन सौर देवों में सूर्य सर्वाधिक स्थूल हैं। सविता प्रारम्भ मे सूर्य का एक विशेषण मात्र था, किन्तु सूर्य से पृथक् पड़कर सविता सूर्य की अपेक्षा कहीं अधिक सूक्ष्म देवता बन गए। वैदिक कवियों की दृष्टि मे सविता सूर्य की दिव्य शक्ति का मानवीय रूप है, जबकि सूर्य देव एक अधिक स्थूल देवता।[1] पूषन् के चरित्र का आधार सूर्य की मृलीक शक्ति है, जो प्रधानतया ग्रामीण देवता के रूप मे व्यक्त हुई है।[2] सूर्य के साथ भग के सम्बन्ध बहुत स्पष्ट नही है, किन्तु यास्क के अनुसार वे पूर्व मध्याह्न के अधिष्ठाता है।[3] वैदिक सूक्तों में उन्हे धन का वितरण करने वाला माना गया है।[4] विवस्वान् सम्भवतः उदय होते हुए सूर्य के प्रतिरूप है। अधिकाश विद्वान् उन्हें केवल सूर्य के रूप में देखते हैं।[5] विवस्वान् की कल्पना भारत-ईरानी काल तक जाती है, वहाँ वे वीवंह्वन्त (यम के पिता) के तद्रूप है।[6] अवेस्ता मे वीवह्वन्त सोम तैयार करने वाले प्रथम व्यक्ति है।[7] ओल्डेनबर्ग वीवह्वन्त के साथ विवस्वान् की तुलना कर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विवस्वान् को प्रकाश-देव मानने के लिए मिलने वाले प्रमाण अपर्याप्त हैं, इसलिए वे वस्तुतः प्रथम याज्ञिक है, और हैं मानव-जाति के पूर्वज भी।[8]

---

१ सूर्यकान्त, वैदिक देवशास्त्र, पृ० ७१
२ वही, पृ० ८४
३ वही, पृ० १०४
४ वही, पृ० १०३
५ वही, पृ० ९८
६ वही
७ वही
८ वही

मित्र एक भारत-ईरानी देवता हैं और उनके सम्प्रदाय के ईरानी रूप ने उत्तरभारतीय सूर्य-पूजा को किस प्रकार प्रभावित किया है—इसकी विवेचना बाद में की गई है। अर्यमन् का उल्लेख ऋग्वेद में अनेक बार आया है, तथापि उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं पर बहुत कम प्रकाश पड़ता है। अर्यमन् नाम भारत-ईरानी काल तक जा पहुँचता है, क्योंकि इसका उल्लेख अवेस्ता में भी प्राप्त है।[1] सौर देवों में विष्णु सर्वाधिक रोचक हैं और भागवत सम्प्रदाय के विकास में उनके द्वारा दिए गए महत्वपूर्ण योगदान की विवेचना पिछले अध्याय में की जा चुकी है।

इनमें से अधिकांश देवता कुछ अन्य देवों, जैसे अंश, दक्ष, मार्तण्ड आदि, से मिलकर आदित्यगण नामक देव-समूह के रूप में जाने गए हैं। पूर्व वैदिक काल में आदित्यों की संख्या कुछ अनिश्चित-सी है, किन्तु बाद में उनकी संख्या बारह निश्चित हुई है और वे द्वादशादित्य कहे गए हैं। ऋग्वेद में छः अदितियों से अधिक का उल्लेख नहीं हुआ है और इन छः का उल्लेख भी केवल एक बार। ये हैं : मित्र, अर्यमन्, भग, वरुण, दक्ष और अंश।[2] अथर्ववेद के अनुसार अदिति के आठ पुत्र थे[3] और तैत्तिरीय ब्राह्मण इन आठ नामों का उल्लेख इस प्रकार करता है : धाता, अर्यमन्, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र और विवस्वान्।[4] शतपथ ब्राह्मण के एक मन्त्र में आदित्यों की संख्या मार्तण्ड को जोड़ देने पर आठ हो गई है, किन्तु दो अन्य मन्त्रों में उनकी संख्या बारह है और उनकी तद्रूपता बारह महीनों के साथ स्थापित की गई है।[5] महाकाव्यों और पौराणिक साहित्य में उनकी संख्या बारह बनी रहती है। वे हैं : धातृ, मित्र, अर्यमन्, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान्, पूषन्, सविता, त्वष्टा और विष्णु। यह सूची सभी शास्त्रों में एक-जैसी नहीं है, यद्यपि कुछ नाम विभिन्न सूचियों मे समान है। यह उल्लेखनीय है कि इस सूची में वैदिक आदित्यों के ही नाम नहीं सम्मिलित हैं, वरन् परवर्ती हिन्दू त्रिमूर्ति—ब्रह्मा, विष्णु और शिव—के वैदिक रूप (धाता, विष्णु और रुद्र) भी सम्मिलित है।[6] भारतीयों के धार्मिक जीवन मे इन द्वादशादित्यों और साथ ही नवग्रहों की पूजा का महत्वपूर्ण स्थान चला आ रहा है। नवग्रहों की विवेचना अगले अध्याय में की गई है।

सूर्य की ऋग्वैदिक अनेक विशिष्टताओं से वेदोत्तरकालीन उनके अनेक लक्षण प्रभावित हुए हैं। ऋग्वेद में एक स्थान पर सूर्य को उषा द्वारा लाया गया श्वेत और चमकीला अश्व बताया गया है।[7] यही वर्णन सूर्य के अश्ववाहन तार्क्ष्य के विचार का मूल है। अन्य स्थानों पर उनके रथ को एक अश्व द्वारा, जिसका नाम एतश है,[8] सात अश्वों द्वारा[9] अथवा अगणित अश्वों द्वारा[10] खींचे जाने का उल्लेख है। परवर्ती साहित्य एवं कला में चित्रित उनके रथ के चार, पाँच अथवा

१ वही, पृ० १०३
२ ऋ०, २, २७, १
३ अथ०, ८, ९, २१
४ तै० ब्रा०, १, १, ९, १–३
५ शत०ब्रा०, ६, १, २, ८; ११, ६, ३, ८
६ *DHI*, pp. 428-29.
७ ऋ०, ७, ७७, ३
८ वही, ७, ६३, २
९ वही, ५, ४५, ९
१० वही, १, ११५, [illegible] १०, ३७, [illegible] १०, ४९, ७

सात अश्वों के विचार का उद्भव भी यहीं से हुआ है। महाकाव्यों और पुराणों में एक विस्तृत कथा मिलती है कि सूर्य ने विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा के साथ विवाह किया था। सूर्य के तेज को न सह सकने के कारण संज्ञा ने अपनी छाया सूर्य के पास छोडकर उन्हें त्याग दिया। विश्वकर्मा ने सूर्य के तेज को कम करने का प्रयास किया, जिससे उनकी पुत्री उसे सह सके। इस कथा के मूल में भी त्वष्टा की पुत्री सरण्यू और विवस्वत् के विवाह का वैदिक वृत्तान्त है।[1]

सूर्य और उनके विविध रूपो की पूजा उत्तर वैदिक काल मे होती रही और वेदोत्तर काल में तो इसका और भी विकास हुआ। दोनों महाकाव्य सूर्य-सन्दर्भों से भरे पड़े हैं। महाभारत में एक स्थान पर उन्हे देवेश्वर कहा गया है (भासि दिवि देवेश्वरो यथा)।[2] गुप्तकालीन और परवर्ती सस्कृत साहित्य मे ऐसे अनेक सन्दर्भ मिलते है। इन सब तथ्यों से स्पष्ट है कि सूर्य-पूजा का प्रचार व्यापक था और सूर्य-उपासकों का एक पृथक् सम्प्रदाय था। इस सम्प्रदाय के अनुयायी उत्तर और दक्षिण भारत मे समान रूप से थे। उनका विश्वास था कि सूर्य परमात्मा और जगत्कर्ता है। अपनी इस मान्यता की पुष्टि वे श्रुतियो और स्मृतियों के उद्धरणों से करते थे : सूर्य समस्त जगत् की आत्मा है (ऋ०, १, ११५, १ : सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च)। आनन्दगिरि ने इनके छः वर्गों का उल्लेख किया है। सभी लाल चन्दन का तिलक लगाते, लाल फूलों की माला पहनते और आठ अक्षरो की सूर्यगायत्री का जप करते थे।[3] पूर्व मध्यकालीन कवि मयूरभट्ट द्वारा सूर्य की स्तुति मे लिखे गए सूर्यशतक नामक काव्य को श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था।[4]

सूर्य-पूजा के उपर्युक्त विकास मे विदेशी प्रभाव के कोई दर्शन नही होते, किन्तु ई० की प्रथम शतियो से, उत्तरभारत मे सौर सम्प्रदाय के एक विशिष्ट दिशा मे हुए विकास में निस्सन्देह विदेशी प्रभाव का योगदान रहा है। इसके पर्याप्त साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक प्रमाण उपलब्ध है। मन्दिरों में विभिन्न देव-प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा के प्रसंग में वराहमिहिर[5] यह निर्धारित करते हैं कि सूर्य-प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा मग करें और साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि जो मनुष्य जिस देवता के उत्तम भक्त हों, वे उस देवता की प्रतिष्ठा अपने विधान से करें। इससे स्पष्ट है कि मग सूर्य के विशेष उपासक थे। इस सम्बन्ध में भविष्यपुराण (अ० १३९) में एक कथा मिलती है (वराह, साम्ब आदि पुराणों में भी यह कथा पाई जाती है)। इसके अनुसार जाम्बवती से उत्पन्न कृष्ण के पुत्र साम्ब ने मूलस्थान (आधुनिक मुल्तान) में चन्द्रभागा (आधुनिक चेनाब) के तट पर एक सूर्य-मन्दिर का निर्माण किया था, किन्तु किसी स्थानीय ब्राह्मण ने इस मन्दिर के पुरोहित का पद नही स्वीकार किया। तब साम्ब ने उग्रसेन के पुरोहित गौरमुख से बात की। उन्होंने साम्ब को शकद्वीप से मगों को लाने के लिए कहा, जो सूर्य के विशेष उपासक थे। फलत: अपने पिता के गरुडवाहन पर सवार हो साम्ब शकद्वीप गए और वहाँ से कुछ मग अपने साथ लाए, जिन्हे सूर्य-मन्दिर के पुरोहित-पद प्रदान किए गए।[6] गया जिले के गोविन्दपुर

---

१ *DHI*, pp. 429-30.

२ म० भा० (शि०), ३, ३६, ११

३ *VSMRS*, p. 152.

४ *DHI*, p. 430.

५ बृहत्सं०, ६०, १९

६ *VSMRS*, p. 153.

के शक सं० १०५९ (११३७-३८ ई०) के अभिलेख में भी मग साम्ब द्वारा देश में लाए गए वर्णित है।[१] ये मग प्राचीन ईरान के सूर्य-उपासक मगि थे। इस तथ्य से परिचित अल्बेरूनी ने भी लिखा है कि प्राचीन ईरानी पुरोहित भारत आए और वे यहां मग नाम से जाने गए।[२]

इन तथ्यों से स्पष्ट है कि ईरानी सूर्य अथवा मिहिर की पूजा प्राचीन ईरानी पुरोहितों मगियों द्वारा भारत आई, किन्तु किसके प्रयास से और किन परिस्थितियों में, यह कहना कठिन है। भारत में साम्ब द्वारा इसके लाए जाने की अनुश्रुति १२वी शती के पूर्वार्ध में प्रचलित थी, जैसा कि उपर्युक्त अभिलेख से स्पष्ट है। चन्द्रभागा के तट पर निर्मित जिस मन्दिर का उल्लेख पुराणों में हुआ है, मुल्तान में स्थित उस मन्दिर और उसमें प्रतिष्ठित मूर्ति का विवरण चीनी यात्री ह्वेनसांग ने दिया है। चार शतियों बाद अल्बेरूनी ने भी उसे देखा था।[३] कुछ पुराणों में साम्ब द्वारा साम्बादित्य नामक सूर्य-प्रतिमा को मथुरा में स्थापित किए जाने का भी उल्लेख मिलता है।[४] कनिष्क की मुद्राओं में मिरो (मिहिर) नाम के साथ एक आकृति अंकित मिलती है। मिहिर ईरानी मिह्र (जो वैदिक मित्र के अवेस्ता-रूप मिथ्र का विकृत रूप है) का संस्कृत रूप है। मिहर सम्प्रदाय का जन्म ईरान में हुआ और इसका विस्तार एशियामाइनर और रोम तक होता चला गया। कनिष्क-मुद्राओं के साक्ष्य से स्पष्ट है कि पूर्व में भी इसका विस्तार हुआ। इन तथ्यों के आधार पर भण्डारकर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत में इस सम्प्रदाय का प्रवेश कनिष्ककाल के आस-पास हुआ और मुल्तान का मन्दिर, जो इस सम्प्रदाय का भारतीय मूल स्थान था, लगभग इसी युग में निर्मित हुआ।[५]

पुरातत्त्व सम्बन्धी प्रमाणों से विदित है कि इसके बाद उत्तरभारत में अनेक सूर्य-मन्दिर निर्मित हुए। इन मन्दिरों का निर्माण विदेशी प्रभाव के परिणाम-स्वरूप ही हुआ जान पड़ता है, क्योंकि ऊपर वर्णित विदेशी प्रभाव से मुक्त सौर सम्प्रदाय में किसी सूर्य मन्दिर के संकेत नहीं मिलते।[६] कुमारगुप्त प्रथम और बन्धुवर्मन् के मन्दसोर शिलालेख में दशपुर (मध्य प्रदेश के मन्दसोर का प्राचीन नाम) में जुलाहों की एक श्रेणी द्वारा एक सूर्य-मन्दिर निर्मित किए जाने का उल्लेख है।[७] स्कन्दगुप्तकालीन इन्दोर ताम्रपत्र अभिलेख से विदित होता है कि इन्द्रपुर (उ० प्र० के बुलन्दशहर जिले में स्थित इन्दोर का प्राचीन नाम) में एक सूर्य-मन्दिर था।[८] मिहिरकुल हूण के ग्वालियर शिलालेख में गोप (ग्वालियर) पहाड़ी पर मातृचेट द्वारा निर्मित किए गए एक अन्य सूर्य-मन्दिर का उल्लेख हुआ है।[९] जीवितगुप्त द्वितीय (मगध का एक परवर्ती गुप्त शासक) के समय के देवबरणार्क (प्राचीन वारुणिका) अभिलेख से भी आरा (जिला शाहाबाद, बिहार) से पचीस मील दक्षिण-पश्चिम में एक सूर्य-मन्दिर रहे होने की सूचना मिलती है।[१०] इनके अतिरिक्त,

---

१ वही
२ वही, पृ० १५३-५४
३ वही, पृ० १५४
४ *DHI*, p. 431.
५ *VSMRS*, p. 154.
६ वही, पृ० १५५
७ *CII*, Vol. III, p. 80.
८ वही, पृ० ७०
९ वही, पृ० १६१-६३
१० वही, पृ० २१४-१५

मध्ययुग मे तो सारे भारत में अनेक सूर्य-मन्दिरों का निर्माण हुआ। ऐसे अनेक मन्दिर, विशेषकर पश्चिमी भारत में मुल्तान से कच्छ तथा उत्तरी गुजरात तक पाए गए हैं, जिनमें मोढेरा (गुजरात) का मन्दिर विशेष दर्शनीय है, जो विक्रम स० १०८३ (१०२६-२७ ई०) में निर्मित हुआ था।[१] इसी प्रकार भारत के पूर्वी छोर में प्रचलित सूर्य-मन्दिरों की इस परम्परा का जीता-जागता उदाहरण कोणार्क का प्रसिद्ध मन्दिर है। मध्यभारत भी मध्ययुगीन सूर्य-मन्दिरो से अछूता न रहा। इस प्रदेश के दो सूर्य-मन्दिर दर्शनीय हैं: एक है मन्खेरा (जिला टीकमगढ़) में,[२] जिसका निर्माण प्रतीहारों ने कराया था, और दूसरा है खजुराहो में (चित्रगुप्त मन्दिर), जो चन्देलों द्वारा निर्मित हुआ। दक्षिणभारत में भी मध्यकालीन सूर्य-मन्दिर और सूर्य-प्रतिमाएँ उपलब्ध हैं, किन्तु वहाँ विदेशी प्रभाव-युक्त सौर सम्प्रदाय का उत्तरभारतीय रूप प्रचलित हुआ नही प्रतीत होता है। इसीलिए उत्तर और दक्षिण भारतीय सूर्य-मूर्तियों में भिन्नता मिलती है।

सूर्य-प्रतिमा-लक्षण

सूर्य-प्रतिमा का प्राचीनतम विवरण बृहत्संहिता[३] मे उपलब्ध है, जहाँ कुण्डल, हार तथा मुकुट से सुशोभित कमल की द्युति और मुस्कराते प्रसन्न मुख वाले सूर्यदेव, उदीच्यवेष, कंचुक तथा अव्यग धारण किए, पैरों से वक्ष तक चोलक से ढके और हाथों में पद्म लिए हुए चित्रित हैं। यहाँ सूर्य के रथ, अश्वो और अन्य अनुचरो का कोई उल्लेख नहीं है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण[४] में सूर्य-प्रतिमा का विस्तृत विवरण उपलब्ध है, जिसके अनुसार सिन्दूरी प्रभा वाले, सभी आभूषणों से अलकृत, स्मश्रु-युक्त, कवचधारी तथा चतुर्भुज सूर्य उदीच्यवेष में हों और वे अपने दाएँ-बाएँ दो हाथों मे पुष्पमाला के रूप मे बनी रश्मियाँ धारण किए हों। उनके बाएँ और दाएँ पार्श्वों में क्रमश. सुन्दर रूप वाले तथा चर्म (खेटक) और शूल से युक्त दण्ड; एवं गहरे पीत वर्ण वाले तथा पत्र और लेखनी से युक्त पिंगल चित्रित हों। दोनों उदीच्यवेष में हों और उनके सिरों पर सूर्य के दो शेष हाथ स्थित हों। सूर्य के बाईं ओर सिंहांकित ध्वज हो। उनके चार पुत्र—रेवन्त, यम और दो मनु—उनके दोनो ओर हों और इसी प्रकार उनकी चार पत्नियाँ—राज्ञी, निक्षुभा, छाया और सुवर्चला (सुवर्चसा)—भी उनके पार्श्वों मे चित्रित हों। ग्रहपति सूर्य स्वभावतया सभी ग्रहों से घिरे हो।[४] वे एक चक्र, छ आरों और सात अश्वों वाले रथ पर आसीन हों और साथ मे सारथी अरुण हो। उनके सात अश्व ये सात छन्द—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती कहे गए है और उनकी चार रानियाँ—राज्ञी, निक्षुभा, छाया और सुवर्चसा—क्रमश. पृथ्वी, आकाश, छाया और प्रभा मानी गई हैं।

१ Burgess, J., *Archaeological Survey of Western India*, Vol. IX—*The Architectural Antiquities of Northern Gujrat*, Plates I, VII. XLVII-LVI.

२ Deva, *K*, *AI*, No. 15, p. 44.

३ बृहत्सं०, ५८, ४६-४८

४ वि० ध०, अ० ६७

५ राव इस वर्णन को मत्स्यपुराण का मानते है और विष्णुधर्मोत्तर के श्लोकों (६७, २-११) को मत्स्यपुराण का मान कर उद्धृत करते हैं (*EHI*, I, II, 308-9, Appendix C, pp. 87-88); डॉ० शुक्ल भी राव का अनुकरण करते हैं (प्र० ल०, पृ० २४७)।

विश्वकर्म-शिल्प[1] मे भी सूर्य-प्रतिमा का विस्तृत विवरण उपलब्ध है। यद्यपि यह विवरण कुछ भ्रामक है, फिर भी इसके निम्नांकित तथ्य किसी सीमा तक विश्वसनीय हैं : सूर्य के रथ में एक चक्र, सात अश्व और एक सारथी हो। वे वक्ष में कंचुक और वर्म धारण किए हों और उनके दोनों हाथों में पद्म हों। उनके दाएँ और बाएँ पार्श्वों मे क्रमशः निक्षुभा और राज्ञी हो, जो 'सर्वाभरण संयुक्ता' तथा 'केशहार समुज्ज्वला' हों। साथ मे दण्ड-स्कन्द और पिंगल द्वारपाल हों, जो खड्गधारी हों अथवा दण्ड-स्कन्द शंखधारी हों। यहाँ पर अश्वारूढ़ वार्च के चित्रण का अतिरिक्त उल्लेख है।

सूर्यानुचरों का विस्तृत विवरण भविष्यपुराण[2] मे उपलब्ध है। वहाँ दण्ड और पिंगल के विषय में यह वर्णन मिलता है : सूर्य ने जब अपने ताप से असुरो को भस्म करना प्रारम्भ किया तो असुरो ने उन पर आक्रमण कर दिया। देवताओं को सूर्य की सहायता के लिए विवश होना पड़ा और इस उद्देश्य से उन्होंने सूर्य के बाएँ और दाएँ क्रमशः स्कन्द और अग्नि को स्थित कर दिया। स्कन्द जगत् के दुष्टो को दण्ड देने वाले हैं, अतएव उन्हे दण्डनायक कहा गया है (सुर-सेनापति होने के कारण भी वे दण्डनायक कहे गए हैं) और अग्नि अपने पीतवर्ण के कारण पिंगल नाम से जाने गए हैं। इसी पुराण मे सूर्य के अनुचरो के नाम राज्ञ और स्रोष[3] भी बताए गए हैं और वे क्रमशः स्कन्द और शिव माने गए है। साथ ही यह भी उल्लेख हुआ है कि दोनो पार्श्वों में एक-एक अश्विन् देवता भी स्थित हो।

मत्स्यपुराण[4] मे भी सूर्य के एक चक्र और सात अश्वों वाले रथ का उल्लेख है। इस पुराण के अनुसार इस रथ में पद्मिनीपत्र की द्युति वाले सारथी अरुण हो, जिनके पार्श्व मे रश्मियों से युक्त, भुजंग रज्जु से बद्ध, सुवलय ग्रीवा वाले सप्ताश्व स्थित हों। विचित्र मुकुट तथा नाना प्रकार के आभूषणों से आभूषित सूर्य स्कन्धों तक उठी अपनी दोनो भुजाओं मे कमल धारण किए हों। उनका शरीर चोलक से आच्छादित हो और तेज से आवृत उनके दोनों चरण दो वस्त्रों से ढके हों। उनके पार्श्वों में खड्गधारी दण्डि और पिंगल हो। इनके अतिरिक्त, इस पुराण में एक अन्य अनुचर, लेखनी-युक्त धाता (ब्रह्मा) का उल्लेख हुआ है, जिसे सूर्य के एक पार्श्व मे चित्रित किए जाने का निर्देश है। सूर्य-पत्नियो का यहाँ कोई उल्लेख नही है। इस पुराण मे नवग्रह-प्रसंग में भी सूर्य का संक्षिप्त विवरण मिलता है, जहाँ पद्मधारी द्विभुज सूर्य सप्ताश्व रथ पर पद्मासन वर्णित हैं।[5]

---

१ *Viśvakarma Śilpa* (manuscript) as quoted by Nagendra Nath Vasu in the *Archaeological Survey of Mayurbhanj*; *cf* *EHI*, I, II, pp. 302-4 ; *II*, p. 17 ; *IBBSDM*, p. 151. नागेन्द्रनाथ वसु ने, दण्ड और स्कन्द को भिन्न मान कर, दण्ड को यम के अर्थ में लिया है, किन्तु राव ने भविष्यपुराण के आधार पर उचित ही लिखा है कि दण्ड का तात्पर्य दण्डनायक से है, जो स्कन्द के लिए ही प्रयुक्त हुआ है।

२ भविष्य पु०, १२४, १३-३९; तुल० *EHI*, I, II, pp. 304–05.

३ यह उल्लेखनीय है कि अवेस्ता में भी सूर्य-अनुचर का नाम 'स्रौष वरेज़ा' अथवा कभी-कभी केवल 'स्रौष' वर्णित है (*EHI*, I, II, p 305)।

४ म० पु०, २६१, १-८; द्र० Agrawala, V. S., *Matsya Purāṇa—A Study*, p. 361.

५ म० पु०, ९४, १; हेमाद्रि ने भी यही विवरण उद्धृत किया है, चतु०, व्रत ख०, अ० १, पृ० १४९; राव म० पु० के इस श्लोक को विष्णुधर्मोत्तर के नाम से उद्धृत करते हैं और उनका अनुकरण कर भट्टाचार्य और डॉ० शुक्ल इसे वि० ध० का मानते हैं (*EHI*, I, II, Appendix C, p. 89 ; *II*, p. 17 ; प्र० स०, पृ० २४७)।

अग्निपुराण[1] के अनुसार दोनों हाथों में पद्म लिए हुए सूर्य एक चक्र और सात अश्वों वाले रथ पर अथवा एक अश्व पर आरूढ़ हों। उनके दाईं ओर मसिभाजन और लेखनी लिए हुए कुण्डी और बाईं ओर दण्ड लिए हुए पिंगल हो तथा उनके पार्श्व में बालव्यजन-धारिणी राज्ञी और निष्प्रभा (निक्षुभा) भी चित्रित हो।

दक्षिण भारतीय शास्त्रों, अंशुमद्भेदागम और सुप्रभेदागम, के अनुसार सूर्य के दो भुजाएँ हों, जिनमें वे पद्म धारण किए हों। ये भुजाएँ इस प्रकार निर्मित हों जिससे पद्म-युक्त उनकी मुष्ठियाँ स्कन्धो तक पहुँचें। उनका मस्तक कान्तिमण्डल से घिरा हो और वे करण्ड-मुकुट, हार, यज्ञोपवीत, मणि-कुण्डलो तथा अनेक आभूषणो से अलंकृत हों। वे एक वस्त्र मात्र धारण किए हों और उनका शरीर उत्तरीय से ढका हो। वे पद्मपीठ पर खड़े हो अथवा पूर्ण सुसज्जित सात अश्वों वाले षड्भुजीय रथ पर आरूढ़ हों, जिसमें एक चक्र हो और पंगु अरुण सारथी हों। उनके दाएँ उषा और बाएँ प्रत्युषा देवियाँ खड़ी हों।[2] एक दूसरे शास्त्र में उनकी चार पत्नियाँ—राज्ञी, सुवर्णा, सुवर्चसा और छाया—वर्णित है।[3] एक अन्य आगम (पूर्वकारणागम)[4] के अनुसार सूर्य का वामार्ध शरीर श्याम वर्ण की नारी के रूप में चित्रित हो। शिल्परत्न[5] के अनुसार सूर्य के दोनों ओर क्रमशः मण्डल (दण्ड होना चाहिए) और पिंगल नामक द्वारपाल हों। यहाँ पर सूर्य का किरीट-मुकुट पुष्पराग (पद्मराग) से निर्मित बताया गया है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर और दक्षिण भारतीय शास्त्रों में उपलब्ध सूर्य-प्रतिमा-लक्षणों मे अधिक भेद नही है, किन्तु उत्तरभारतीय शास्त्रों में उदीच्यवेष—शरीर के पूर्णतया ढके होने तथा वर्म, अव्यंग और उपानह[6] धारण किए होने—को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। इन शास्त्रकारो द्वारा उत्तरभारतीय सूर्य-सम्प्रदाय के विदेशी तत्वों पर अधिक बल प्रदान किया गया है। अव्यंग तो ईरानियो की पवित्र मेखला ऐव्याओंघन् (Aivyāonghen) का ही भारतीय रूप है।[7]

सूर्य-मूर्तियों का विकास

सूर्य-सम्बन्धी किसी सम्प्रदाय के उद्भव और विकास के पूर्व भारतीय कला मे सूर्य का चित्रण चक्र, वर्तुल स्वर्ण-पत्र, कमल आदि प्रतीकों के माध्यम से हुआ है। इन प्रतीकों का प्रयोग वैदिक कर्मकाण्डियों द्वारा यज्ञों के अवसर पर किया जाता था। भारतीय ऐतिहासिक युग के कुछ प्राचीनतम अवशेषों—आहत (पंचमार्क्ड) और ढली (कास्ट) मुद्राओं—में ऐसे प्रतीक अंकित

---

१ अ० पु०, ५१, १–३। पिंगल का ही दूसरा नाम कुण्डी है। इस प्रकार यहाँ सूर्य के दोनों ओर पिंगल चित्रित होने का उल्लेख हुआ है। अन्य शास्त्रों के समान यहाँ भी सूर्य के दाईं ओर मसिभाजन और लेखनी-युक्त उनको चित्रित करने का निर्देश है, किन्तु बाईं ओर पुनः वह दण्ड लिए हुए बताए गए हैं। इस ओर पिंगल के स्थान पर दण्डि के चित्रित होने का निर्देश होना चाहिए था।

२ *EHI*, I, II, pp. 306-7.

३ वही, पृ० ३०७

४ वही

५ वही

६ 'उपानद्गूढमिदं पादयुगलम्'—डॉ० बनर्जी द्वारा (बिना शास्त्र का नाम दिए) उद्धृत, *DHI*, p. 437.

७ *VSMRS*, p. 153.

मिलते हैं। इनके अतिरिक्त, उद्देहिक और पंचाल के मित्र शासकों, सूर्यमित्र और भानुमित्र, की मुद्राओं के पृष्ठभाग मे भी अंकित सौर चक्र द्रष्टव्य है।[१]

भारतीय कला मे पुरुष-विग्रह में सूर्य-चित्रण का प्रारम्भ अधिक विलम्ब से नही हुआ, यद्यपि ऐसे प्रारम्भिक चित्रण बौद्ध धर्म से ही सम्बन्धित रहे। बोधगया से उपलब्ध प्रथम शती ई० पू० के शिलाप्राकार मे दो धनुर्धारिणी नारियों के साथ सूर्य एक चक्र और चार अश्वों वाले रथ में बैठे हुए प्रदर्शित हैं।[२] इस प्रकार उषा और प्रत्युषा का प्राचीनतम निदर्शन यहाँ देखने को मिलता है। इस प्रदर्शन मे अधकार के राक्षस पुरुष-विग्रह मे चित्रित हुए प्रतीत होते है, क्योंकि देवता के प्रत्येक ओर एक पुरुष का अर्धांग चित्रित किया गया है। सूर्य के इस चित्रण का आधार ऋग्वेद का वह वर्णन प्रतीत होता है, जहाँ वे एक, सात अथवा अगणित अश्वों द्वारा चालित रथ में स्थित वर्णित हैं। प्रथम शती ई० पू० का दूसरा निदर्शन भाजा की बौद्ध गुहा मे दर्शनीय है, जहाँ सूर्य दो नारियों के साथ एक रथ पर आरूढ हैं और इस रथ के चक्र हवा में उड़ते-से नग्न बौने राक्षसों के ऊपर से निकलते चित्रित है।[3] द्वितीय शती ई० के लालाभगत (डेरापुर तहसील, जिला कानपुर) के स्तम्भ मे उत्कीर्ण सूर्य-प्रतिमा मे भी एक चक्र और चार अश्वो वाला रथ, देवता के प्रत्येक ओर एक अनुचरी और पुरुष-विग्रह मे चित्रित अधकार के राक्षस द्रष्टव्य है।[४] इस चित्रण के सदृश, किन्तु इससे पहले (प्रथम शती ई०) का एक अन्य चित्रण अनन्तगुम्फ (उड़ीसा में भुवनेश्वर के निकट) में भी दर्शनीय है।[५] इन प्रदर्शनो के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि भारत के विभिन्न भागों के इन निदर्शनों का प्रतिमा-विज्ञान लगभग एकसदृश था।

उपर्युक्त प्रतिमाओं के बाद निर्मित सूर्य-मूर्तियाँ प्रचुर विदेशी प्रभाव से युक्त एक नए प्रकार की हैं, जिनके विकास के अध्ययन में ई० की प्रारम्भिक शतियों मे निर्मित गधार और विशेषत: मथुरा से उपलब्ध मूर्तियाँ हमारी सहायता करती हैं। गंधार प्रदेश से प्राप्त एक काले सिलेटी पत्थर मे सूर्य चार अश्वों वाले रथ पर बैठे अंकित है। वे उपानह (बूट) धारण किए है और उनके प्रत्येक ओर एक अनुचरी है।[६] मथुरा की प्राचीनतम (कुषाणकालीन) सूर्य-प्रतिमाओं में एक प्रतिमा[७] विशेष उल्लेखनीय है, जिसमें सूर्य चार अश्वों और एक चक्र वाले रथ पर आसीन हैं। उनके दाएँ हाथ में कमल-कलिका और बाएँ मे एक छोटी-सी खड्ग है। उनके पीछे प्रभा-मण्डल है और वे चोलक तथा उपानह (बूट) धारण किए है। इस प्रतिमा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सूर्य के स्कन्धों मे दोनो ओर, गरुड-प्रतिमाओ के सदृश, एक-एक पंख संयुक्त है। इन दोनों प्रतिमाओ के चार अश्वो वाले रथ उपर्युक्त बोधगया की प्रतिमा की

---

१ *DHI*, pp. 137-39, 432.

२ Marshall, J. H., *JRAS*. 1908, pp. 1096-97, Pl. IV, Fig. 3; Mitrá, Rājendralāla, *Buddha Gayā*, Pl. L; Coomaraswamy, A. K., ***History of India and Indonesian Art***, p. 67, Fig. 61.

३ E H. Johnston के विचार से इस दृश्य में संयुक्तनिकाय में वर्णित शक्र और असुरों के बीच हुए युद्ध की कथा चित्रित है (*JISOA*, Vol. VII, 1939, pp. 1-7, Pls. I & II)।

४ *ASIAR*, 1929-30, p. 133, Pl XXXI, d, e.

५ *DHI*, p. 433.

६ *Ibid.*, p. 434, Pl. XXVIII, Fig. 3.

७ M. M. No. D 46, *MMC*, pp. 104-5; Vogel, J. Ph., *La Sculpure de Mathurā*, p. 46, Pl. XXXVIII a; *ASIAR*, 1909-10, pp. 75-76, Pl. XXVIII, C; *CBIMA*, p. 167; Coomaraswamy, A. K., *op. cit.*, pp. 67-68, Fig. 103; *DHI*, p. 434.

परम्परा में चित्रित हुए हैं। मथुरा की कुषाणकालीन एक अन्य मूर्ति और भी रोचक है। इसमें सूर्य का रथ मात्र दो अश्वों द्वारा चालित है। सूर्य चोलक तथा उपानह (बूट) सहित शकों का वेष धारण किए हैं। उनके दाएँ हाथ मे एक कमल-कलिका और बाएँ में एक छोटी-सी खड्ग है।[१] मथुरा संग्रहालय की कुषाणकालीन ऐसी कुछ अन्य मूर्तियां भी दर्शनीय हैं, जिनमें दो अश्वों वाले रथ का ही चित्रण है।[२] प्रचुर विदेशी प्रभाव से युक्त सूर्य-प्रतिमाओं के ऐसे चित्रण उत्तरभारत में गुप्तकाल के अंत तक होते रहे, धीरे-धीरे उनका भारतीयकरण होता गया और फिर हो गया मध्ययुगीन उत्तरभारतीय सूर्य-प्रतिमाओ के स्वीकृत रूप में रूपान्तर।

पूर्व गुप्तकालीन सूर्य-प्रतिमाएँ कुषाणकालीन प्रतिमाओं के सदृश हैं, किन्तु उन्होंने अब कुछ नया रूप लेना प्रारम्भ कर दिया था। नियामतपुर और कुमारपुर (बंगाल) तथा भूमरा (म० प्र०) की सूर्य-प्रतिमाएँ सामान्य विशिष्टताओं तथा वेष की दृष्टि से मथुरा की कुषाण-कालीन मूर्तियों के सदृश है, किन्तु ये सब स्थानक मूर्तियां है और इनके साथ रथ का चित्रण नही हुआ है। सामान्यतः सूर्यदेव अपने हाथो में सनाल विकसित पद्म धारण किए हैं और साथ मे उनके अनुचर—दण्ड और पिंगल—दण्ड, कमल आदि अथवा लेखनी और मसिभाजन लिए हुए चित्रित है।[३] मथुरा की ऐसी एक पूर्व गुप्तकालीन मूर्ति मे एक अपूर्व लक्षण देखने को मिलता है—सूर्य अपने दोनो हाथों से पुष्पमाला को दोनों छोरों से पकड कर अपने सामने किए हैं। इसमे सूर्य और उनके दो अनुचर उपानह तथा लम्बे चोलक धारण किए है। अश्वों और रथ का यहाँ भी अभाव है।[४] संगमरमर की अत्यन्त मनोरम एक गुप्तकालीन सूर्य-मूर्ति भी दर्शनीय है, जिसमे सूर्य एक रथ मे आसीन है और रथ के अश्वो को सारथी अरुण संचालित कर रहे हैं। सूर्य के दाईं ओर लेखनी और मसिभाजन लिए हुए लम्बकूर्च पिंगल और बाईं ओर एक लम्बा दण्ड लिए हुए दण्ड चित्रित है। खैरखनेह (अफगानिस्तान) से उपलब्ध यह मूर्ति अब काबुल सग्रहालय की निधि है।[५] राजशाही संग्रहालय की उत्तर गुप्तकालीन एक मूर्ति में मूर्ति-विकास के और अधिक दर्शन होते है। इस मूर्ति मे पार्श्वचरों की संख्या मे वृद्धि हुई है—दण्ड-पिंगल के अतिरिक्त, सारथी अरुण तथा धनुर्धारिणी देवियां उषा-प्रत्युषा (जो बोधगया के चित्रण मे सर्वप्रथम प्रकट हुई है) उपस्थित है। सूर्यदेव किरीट-मुकुट तथा अन्य आभूषणो से अलंकृत हैं और वे धोती पहने हैं। उनके बाईं ओर छोटी-सी खड्ग लटकती चित्रित है और पैरो मे धारण किए गए उपानह आंशिक रूप में दृष्टिगोचर होते है। मस्तक के पीछे सुवर्तुल प्रभामण्डल है और हाथो मे पुष्प-गुच्छों से युक्त कमलनाल है।[६]

गुप्तकाल मे सूर्य-प्रतिमाओ का इतना तो विकास हुआ, किन्तु अभी सूर्य के साथ उनकी रानियो, राज्ञी, निक्षुभा आदि, के चित्रण का प्रादुर्भाव नही हुआ, जो हुआ पूर्व मध्ययुग मे। पूर्ण

---

१ M. M. No. 269, Vogel, J. Ph, *op. cit.*, p. 46, Pl. XXXIII b; Coomaraswamy, *op. cit.*, Fig. 64; Diskalkar, D. B., *JUPHS*, Vol. V, Pt. I, pp. 31-32; *CBIMA*, pp. 167-68

२ Nos. 886, 894, 938, 2029, *CBIMA*, p. 168.

३ *DHI.*, p. 435.

४ *Ibid.*, Pl. XXIX, Fig. 3.

५ *JISOA*, Vol. XXV, Pl. XIV. 2; *DHI*, p. 435.

६ *DHI*, p. 436.

विकसित मध्ययुगीन सूर्य-प्रतिमाओं मे दण्ड और पिंगल, उषा और प्रत्युषा तथा अरुण और सप्ताश्व रथ के अतिरिक्त, सूर्य-पत्नियो—राज्ञी, निक्षुभा, छाया, सुवर्चसा तथा भूदेवी महाश्वेता—और कभी-कभी दो अश्विन् देवताओं के चित्रण देखते बनते हैं। इन विशिष्टताओं से युक्त मध्ययुगीन अनेक सूर्य-मूर्तियाँ पूर्व से पश्चिम तक समस्त उत्तरभारत मे उपलब्ध हुई हैं, जिनमें विविधता और निजी वैशिष्ट्य के कारण खजुराहो-मूर्तियो का एक महत्वपूर्ण स्थान है। दक्षिणभारतीय सूर्य-मूर्तियो का प्रतिमा-विज्ञान उत्तरभारतीय मूर्तियो से अधिक भिन्न नही है। राव ने इन मूर्तियों का सावधानीपूर्वक तुलनात्मक अध्ययन कर उनके कुछ सामान्य भेदों को स्पष्ट किया है।[१] सामान्यतः राव का अवलोकन खरा उतरता है, किन्तु वह पूर्णतया अपवाद-मुक्त नही है।[२]

खजुराहो की सूर्य-प्रतिमाएँ

खजुराहो मे शैव, वैष्णव और शाक्त सम्प्रदायो के साथ-साथ सौर सम्प्रदाय के व्यापक प्रचार का जीता-जागता उदाहरण वहाँ उपलब्ध एक सूर्य-मन्दिर (चित्रगुप्त अथवा भरतजी) और अनेक सूर्य-मूर्तियाँ है। इन मूर्तियो मे से कुछ मे सूर्य धातृ-सूर्य, सूर्य-नारायण और हरि-हर-हिरण्य-गर्भ के रूप में प्रदर्शित हुए है। सूर्य-नारायण और हरि-हर-हिरण्यगर्भ की कुछ मूर्तियों को छोड कर, जो शैव मन्दिरो मे उत्कीर्ण है, शेष मूर्तियाँ सामान्यत. वैष्णव और सौर मन्दिरो[३] तथा स्थानीय संग्रहालय मे उपलब्ध है। शिव की विशिष्टताओं से युक्त होने के कारण हरि-हर-हिरण्य-गर्भ-मूर्तियाँ तो शैव मन्दिरो में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है।[४]

यहाँ सर्वप्रथम सूर्य-मूर्तियो का विवरण दिया गया है; फिर क्रमशः धातृ-सूर्य, सूर्य-नारायण तथा हरि-हर-हिरण्यगर्भ का। इसके पश्चात् इन मूर्तियों की सामान्य विशेषताओ की चर्चा की गई है और फिर अन्त में रेवन्त और सूर्य-प्रतीहारों का विवरण भी दिया गया है।

सूर्य-मूर्तियों को उनकी स्थिति की दृष्टि से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(क) स्थानक और (ख) आसन। नवग्रह-पट्टो मे चित्रित सूर्य-प्रतिमाओ का विवरण अगले अध्याय में अन्य ग्रहों के साथ सामूहिक रूप से दिया गया है।

(क) स्थानक मूर्तियाँ

स्थानक मूर्तियों की सख्या आसन मूर्तियो की अपेक्षा अत्यधिक है। सभी स्थानक मूर्तियाँ सामान्यत: समरूप हैं, किन्तु पार्श्वचित्रण की दृष्टि से उन्हें दो प्रकारो में विभाजित कर सकते है। प्रथम प्रकार के अन्तर्गत वे मूर्तियाँ आती है, जिनके साथ अनेक पार्श्वचरों का चित्रण मिलता है और द्वितीय प्रकार की मूर्तियों में पार्श्वचित्रण अपेक्षाकृत कम है अथवा उसका नितान्त अभाव है।

---

१ *EHI*, I, II, pp. 311-12.

२ *DHI*, p. 440.

३ किन्तु नवग्रह-पट्टों में अंकित सूर्य प्रायः सब मन्दिरों में देखे जा सकते हैं।

४ शैव मन्दिर दूलादेव में उपलब्ध प्रतिमा के प्रसंग में डॉ० क्रैमिश लिखती हैं: "Such an image is a support of meditation on Sadāśiva and has its place of special importance on a temple of Śiva" (Kramrisch, S., *Hindu Temple*, Vol. II, p. 373).

प्रथम प्रकार

इस प्रकार की सभी मूर्तियों में सूर्य की अन्य विशेषताओं के अतिरिक्त, सामान्यतः राज्ञी-निक्षुभा, उषा-प्रत्युषा, दण्ड-पिंगल, दो अश्विन् देवता तथा भूदेवी महाश्वेता के चित्रण मिलते है ।

सर्वप्रथम उल्लेखनीय सूर्य-मन्दिर (चित्रगुप्त) की प्रधान मूर्ति है, जिसकी ऊँचाई सात फुट है । खजुराहो की यह विशालतम सूर्य-प्रतिमा है (चित्र ७४)[१] । इसमें सूर्य समभंग खड़े हैं । उनकी दोनों भुजाएँ खण्डित है, जिनमे पूर्ण विकसित पद्म रहे होगे। उनके मस्तक के पीछे सुवर्तुल प्रभामण्डल है और वे सुविशाल किरीट-मुकुट, कुण्डल, हार, ग्रैवेयक, यज्ञोपवीत, कौस्तुभ, बनमाला और मेखला (अव्यंग) से अलंकृत हैं । उनके वक्ष में वर्म है और वे पैरों मे ऊँचे उपानह (बूट) धारण किए है । बाएँ और दाएँ पार्श्वों मे उनके अनुचर दण्ड और पिंगल चित्रित हैं । पिंगल द्विभंग खड़े हैं और उनका मस्तक खण्डित है । उनके बाएँ हाथ में लम्बा पत्र और दाएँ में लेखनी है । वे पत्र पर लेखनी से लिखते हुए प्रदर्शित हैं । उनके पीछे एक अश्वमुख अश्विन् देवता खड़े हैं, जिनके बाएँ हाथ में घट है और जिनका दाहिना हाथ खण्डित है । अश्विन् देवता के पीछे सूर्य की एक रानी करण्ड-मुकुटधारिणी निक्षुभा खड़ी चित्रित हैं, जो दाहिने हाथ से नीचे लटकते हुए अपने वस्त्र को पकडे हैं और बाएँ हाथ मे एक पद्म धारण किए हैं । सूर्य के बाएँ पार्श्व में द्विभंग खड़े हुए दण्ड का मस्तक और उनकी दोनो भुजाएँ खण्डित हैं। उनके पीछे मस्तक से खण्डित दूसरे अश्विन् देवता की स्थानक प्रतिमा है । इस प्रतिमा का बायाँ हाथ घट-युक्त और दाहिना कट्यव-लम्बित है । अश्विन् देवता के पीछे सूर्य की दूसरी रानी करण्ड-मुकुटधारिणी राज्ञी खड़ी हैं, जो दाहिने हाथ मे एक पद्म और बाएँ मे अपना वस्त्र पकड़े हैं । पिंगल के दाईं ओर (अश्विन् देवता के सामने) एक अपेक्षाकृत छोटी पुरुष-प्रतिमा है, जिसका दाहिना हाथ कट्यवलम्बित और बायाँ दण्डधारी है । इसी के सदृश दूसरी प्रतिमा दण्ड के बाईं ओर (दूसरे अश्विन् देवता के सामने) भी है । इसका सिर खण्डित है और इसके दाएँ हाथ में दण्ड है । इन दो के अतिरिक्त, निक्षुभा और राज्ञी के नीचे और भी छोटी एक-एक बैठी पुरुष-प्रतिमा है । एक का दायाँ हाथ अभय-मुद्रा में और बायाँ घट-युक्त है और दूसरी का मस्तक और उसकी दोनों भुजाएँ टूटी है । ये चारों सूर्य के चार पुत्र—यम, रेवन्त और दो मनु—हो सकते है। इनके अतिरिक्त, पादपीठ के कोनो पर एक भक्त-युगल बैठा अंकित है ।

पादपीठ के नीचे सूर्य के रथ के सात अश्व पंक्तिबद्ध उत्कीर्ण हैं । केन्द्रीय अश्व के ऊपर सारथी पंगु अरुण हैं (जिनका अर्धांग मात्र प्रदर्शित है), जो दाएँ हाथ में सप्ताश्वों की रश्मियाँ धारण किए हैं और जिनका कशा-युक्त बायाँ हाथ अश्वों के संचालनार्थ ऊपर उठा हुआ चित्रित है । अरुण और सूर्य के बीच मे, सूर्य के चरणों के निकट खड़ी भूदेवी महाश्वेता की प्रतिमा खण्डित हो गई है, किन्तु देवी के उपानह-युक्त (बूटधारी) चरणों के चिन्ह अवशेष हैं । प्रभावली के ऊपरी केन्द्र में (सूर्य के किरीट के ठीक ऊपर) जटा-मुकुटधारी शिव योग-मुद्रा में बैठे है । उनके शेष दाएँ और बाएँ हाथों में क्रमशः त्रिशूल और सर्प हैं । प्रभावली में सबसे ऊपर एक विद्याधर-युगल भी उत्कीर्ण है । प्रभावली में सूर्य के दोनों ओर आठ-आठ नारियाँ आलीढ और प्रत्यालीढ मुद्राओं

---

१ प्र० सं० ८

में अंकित हैं। इनमें दो उषा और प्रत्युषा हो सकती है, किन्तु शेष के चित्रण का उद्देश्य कहना कठिन है।

इस प्रकार की दूसरी प्रतिमा (चित्र ७५)[1] उपर्युक्त प्रतिमा के सदृश है, किन्तु इसमें पार्श्वचरों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। इसमें सूर्य पद्मपीठ पर समभंग खड़े है, उनके दोनों हाथ खण्डित हैं और वे सामान्य खजुराहो-आभूषणों से अलंकृत हैं। वे वक्ष में वर्म और चरणों में ऊँचे उपानह धारण किए है और कटि से जानु तक उनकी देह एक कसे वस्त्र से ढकी है। उनके दाएँ पार्श्व में रानी निक्षुभा खड़ी हैं, जो सामान्य आभूषणों से अलकृत है। सूर्य के सदृश कटि से जानु तक उनकी देह भी वस्त्र से आच्छादित है। उनके बाएँ हाथ में चामर है और उनका दाहिना हाथ कट्यवलम्बित है। निक्षुभा के सदृश सूर्य के बाएँ पार्श्व में दूसरी रानी राज्ञी का चित्रण है, किन्तु उनका दाहिना हाथ चामरधारी और बायाँ कट्यवलम्बित है। निक्षुभा के पीछे लेखनी और पत्र लिए हुए लम्बकूर्च पिंगल त्रिभंग खड़े है। उनके पीछे करण्ड-मुकुटधारी एक अश्विन् देवता खड़े है, जिनके एक हाथ में कमण्डलु है। इसी प्रकार बाईं ओर राज्ञी के पीछे त्रिभंग खड़े दण्ड की प्रतिमा है, जिसका दाहिना हाथ शक्तिधारी और बायाँ कट्यवलम्बित है। इसके पीछे दूसरे अश्विन् देवता हैं। सूर्य के चरणों के निकट खड़ी भूदेवी की प्रतिमा पूर्णतया लुप्त हो गई है। ऊपर प्रभावली में सूर्य के दाईं ओर ब्रह्मा और बाईं ओर शिव बैठे चित्रित है। त्रिमुख ब्रह्मा जटा-मुकुटधारी तथा लम्बकूर्च हैं। उनका पहला हाथ अभय-मुद्रा मे, तीसरा और चौथा क्रमशः पुस्तक और कमण्डलु-युक्त और दूसरा टूटा है। शिव भी जटा-मुकुटधारी है। उनका पहला हाथ वरद-मुद्रा में है और शेष हाथों में वे क्रमशः त्रिशूल, सर्प और कमण्डलु धारण किए है। ब्रह्मा और शिव के नीचे धनुर्धारिणी उषा और प्रत्युषा आलीढ-प्रत्यालीढ मुद्राओं मे चित्रित है। प्रभावली मे सब से ऊपर विद्याधरो के कुछ युगल भी उत्कीर्ण है। इस प्रतिमा के पादपीठ पर उत्कीर्ण सप्ताश्व और सारथी अरुण विशेष दर्शनीय है।

इस प्रकार की तीसरी प्रतिमा[2] दूसरी प्रतिमा के सदृश है, किन्तु इसमे राज्ञी और निक्षुभा के सामने चित्रित दण्ड और पिंगल की प्रतिमाएँ अपेक्षाकृत छोटी है। इस प्रतिमा के पादपीठ पर एक कोने मे एक उपासक और दूसरे कोने मे एक उपासिका का भी चित्रण है। दोनो अजलि-मुद्रा में हाथ जोड़े बैठे है। प्रभावली में ऊपर, सूर्य के दाईं ओर विष्णु और बाईं ओर ब्रह्मा की छोटी प्रतिमा अंकित है।

चौथी प्रतिमा[3] उपर्युक्त प्रतिमाओं के सदृश है, किन्तु इसका मस्तक खण्डित है और इसमे दण्ड के दाएँ हाथ में लम्बी खड्ग और बाएँ मे खेटक का चित्रण है। इसमें दण्ड, पिंगल और दोनो अश्विन् देवताओं के सामने एक-एक बैठी बाल-प्रतिमा भी अंकित है। इन चारों को सूर्य के चार पुत्र—यम, रेवन्त और दो मनु—मान सकते है। इस प्रतिमा की एक विशेषता यह है कि इसके पादपीठ पर सात के स्थान पर पाँच अश्वों का ही चित्रण है।

इस प्रकार की अन्य प्रतिमाएँ सामान्यतः उपर्युक्त प्रतिमाओ के सदृश है, किन्तु कभी-

१ प्र० सं० २३
२ प्र० सं० २५
३ प्र० सं० २१

कभी कुछ भिन्नता देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए एक प्रतिमा[1] चतुर्भुजी है, यद्यपि इसके चारों हाथ खण्डित हैं। ये धातृ-सूर्य अथवा सूर्य-नारायण हो सकते हैं। इसमें सूर्य वर्म और उपानह तो धारण किए हैं, किन्तु अश्वों और अरुण का अभाव है। इसमें दण्ड खड्ग और खेटक से युक्त चित्रित है। अश्वों और अरुण के बिना एक और प्रतिमा है,[2] किन्तु इसमे दो भुजाएँ हैं, दोनों टूटी है। खड्ग और खेटकधारी दण्ड एक अन्य प्रतिमा में भी देखे जा सकते हैं।[3] एक प्रतिमा में दण्ड और पिंगल दोनो दण्डधारी चित्रित हैं।[4]

कुछ प्रतिमाएँ अत्यधिक खण्डित अवस्था में हैं।[5] ऐसी एक प्रतिमा का पादपीठ दर्शनीय है, जिसमें सात के स्थान पर पाँच अश्वो का चित्रण है।[6]

द्वितीय प्रकार

द्वितीय प्रकार की मूर्तियों मे पार्श्वचरों की संख्या बहुत कम है। इस प्रकार की प्रथम मूर्ति[7] मे सूर्य समभंग खड़े हैं। उनके दोनों हाथो मे पूर्ण विकसित पद्म है, जो स्कन्धों के ऊपर पहुँचे प्रदर्शित है। वे पैरो मे उपानह और वक्ष मे वर्म धारण किए है तथा किरीट-मुकुट, हार, ग्रैवेयक, कुण्डल, अंगद, वनमाला, यज्ञोपवीत और अव्यंग—आभूषणों से अलंकृत हैं। उनके चरणों के सामने भूदेवी महाश्वेता पद्मासन मे बैठी चित्रित है। इस मूर्ति की यह विशेषता है कि इसमे दण्ड सूर्य के दाएँ पार्श्व मे, और पिंगल बाएँ पार्श्व मे चित्रित हुए हैं। पिंगल लेखनी और पत्र से युक्त है और दण्ड शक्तिधारी हैं। इनके अतिरिक्त, न तो किसी पार्श्वचर का और न अश्वो तथा अरुण का ही चित्रण है।

उपर्युक्त प्रतिमा के सदृश एक और प्रतिमा है,[8] किन्तु इसमें पिंगल के अतिरिक्त दण्ड भी लम्बकूर्च है। इसमें भूदेवी महाश्वेता और प्रभावली में एक ओर ब्रह्मा और दूसरी ओर शिव भी चित्रित है।

इस प्रकार की तीसरी प्रतिमा[9] मे सूर्य का चित्रण तो उपर्युक्त प्रतिमाओ के सदृश है, किन्तु इसमे दण्ड-पिंगल का चित्रण न होकर सूर्य के पार्श्वों में उनकी दो रानियां, राज्ञी और निक्षुभा, चित्रित है। दोनों खड़ी है और अपने एक हाथ मे चामर लिए हुए है। इसमे सप्ताश्व, अरुण और भूदेवी महाश्वेता भी अंकित है। ऐसी चौथी प्रतिमा[10] मे अश्वो और अरुण का चित्रण न होकर धनुर्धारिणी उषा-प्रत्युषा चित्रित है।

इस प्रकार की दो प्रतिमाएँ ऐसी भी हैं, जिनमे भूदेवी के अतिरिक्त अन्य किसी पार्श्वचर का चित्रण नही हुआ है। एक मे सूर्य समभंग खड़े हैं और अपनी दोनो भुजाओं में पूर्ण विकसित

१ प्र० सं० १७
२ प्र० सं० २
३ प्र० सं० १६
४ प्र० सं० १४
५ प्र० सं० १६, २०, २३
६ प्र० सं० पृ० २०
७ प्र० सं० १
८ प्र० सं० ३
९ प्र० सं० २६
१० प्र० सं० १३

पद्म धारण किए हैं। उनके चरणों के पास भूदेवी खड़ी चित्रित हैं।[1] दूसरी प्रतिमा[2] भी इसी के सदृश है, किन्तु इसमें एक भक्त-युगल भी प्रदर्शित है।

(ख) आसन मूर्तियाँ

खजुराहो में सूर्य की स्थानक मूर्तियों की तुलना में आसन मूर्तियाँ बहुत कम है। इस वर्ग की सर्वप्रथम उल्लेखनीय मूर्ति[3] मे सूर्य पद्मपीठ पर पद्मासन में प्रदर्शित हैं। उनका मस्तक और उनकी दोनों भुजाएँ खण्डित है। वे केयूर, यज्ञोपवीत एवं कटिसूत्र से अलंकृत हैं। पद्मपीठ के नीचे सप्ताश्व चित्रित है, किन्तु अरुण अनुपस्थित है। सूर्य के बाईं ओर अश्वमुख अश्विन् देवता त्रिभग खड़े हैं, जिनका दायाँ हाथ अभय-मुद्रा मे और बायो कमण्डलुधारी है। इनके पीछे दण्ड त्रिभंग खड़े हैं, उनका दायाँ हाथ खड्गधारी और बायाँ कट्यवलम्बित है। इसी प्रकार सूर्य के दाहिनी ओर दूसरे अश्विन् देवता है, जिनका मस्तक खण्डित है। इनका दायाँ हाथ वरद-मुद्रा मे और बायाँ कमण्डलुधारी है। इनके पीछे पिंगल द्विभंग खड़े हैं, जो लेखनी-पत्र से युक्त है। ऊपर, प्रभावली के एक कोने में (सूर्य के दाहिनी ओर) पद्मासन में बैठे सूर्य की एक छोटी आकृति है, जिसके बाएँ हाथ में स्कन्धों के ऊपर पहुँचा पूर्ण विकसित पद्म है और जिसका दायाँ हाथ टूटा है। प्रभावली का दूसरा कोना खण्डित है, सम्भव है उधर भी सूर्य की एक छोटी आकृति रही हो। इस मूर्ति में राज्ञी, निक्षुभा और वक्ष में वर्म भी नहीं प्रदर्शित है। अन्य प्रतिमाओं के विपरीत भूदेवी के अंकन का भी अभाव है। अतएव इस प्रतिमा को दक्षिणभारतीय परम्परा मे निर्मित माना जा सकता है। सूर्य के पद्मधारी दोनों हाथ टूटे होने से यह कहना कठिन है कि उनमे दक्षिणभारतीय परम्परा के अनुसार कमल-कलिकाएँ थी अथवा उत्तरभारतीय परम्परा के अनुसार स्कन्धो के ऊपर तक पहुँचे पूर्ण विकसित पद्म। किन्तु प्रभावली मे अंकित छोटी सूर्य-प्रतिमा के एक हाथ के पूर्ण विकसित पद्म से (जो उत्तरभारतीय परम्परा में चित्रित है) प्रधान सूर्य के हाथों के भी उत्तरभारतीय परम्परा में चित्रित होने का अनुमान लगाया जा सकता है।

इस वर्ग की दूसरी प्रतिमा[4] मे भी सूर्य पद्मासन चित्रित हैं और वे अपने दोनों हाथों मे पूर्ण विकसित पद्म धारण किए हैं। वे किरीट-मुकुट तथा अन्य सामान्य आभूषणो से अलंकृत हैं। उनके वक्ष में वर्म प्रदर्शित है, किन्तु पद्मासन होने के कारण चरणो में उपानह नही है। यहाँ भूदेवी महाश्वेता खड़ी चित्रित है। इस मूर्ति की विशेषता यह है कि पादपीठ पर सात के स्थान पर आठ अश्व उत्कीर्ण हैं। सम्भवत शिल्पी की भूल से एक अश्व अधिक अंकित हो गया है।

तीसरी प्रतिमा[5] भी दूसरी के सदृश है, किन्तु इसमें सूर्य के वक्ष में वर्म का चित्रण नहीं है। अतएव इसे दक्षिणभारतीय परम्परा मे चित्रित मान सकते हैं। यहाँ अश्वो का भी अभाव है।

कुछ आसन मूर्तियों मे सूर्य उत्कुटकासन में बैठे हुए चित्रित हैं।[6] वे सामान्य आभूषणों

१ प्र० सं० ६
२ प्र० सं० १२
३ प्र० सं० ११
४ प्र० सं० १०
५ प्र० सं० १६
६ प्र० सं० [illegible], १८, ३१

से अलंकृत हैं और दोनों हाथों मे पूर्ण विकसित पद्म धारण किए हैं। चरणों के सामने भूदेवी महाश्वेता चित्रित हैं। ऐसी दो प्रतिमाओं के पादपीठ पर सप्ताश्व अंकित हैं।[१]

धातृ-सूर्य

धातृ एक आदित्य हैं। उनका नाम द्वादशादित्य-सूची में सर्वप्रथम आता है। विश्वकर्मशास्त्र[२] के अनुसार उनके चार भुजाएँ हों—दो प्राकृतिक पद्मधारी और शेष दाईं और बाईं क्रमशः पौष्करी माला और कमण्डलु से युक्त।

खजुराहो में सूर्य के इस रूप की चार मूर्तियाँ सूर्य-मन्दिर (चित्रगुप्त) के गर्भगृह द्वार के उत्तरंग मे उत्कीर्ण है। तीन मूर्तियाँ[३] समरूप हैं, जिनमे एक ललाटबिम्ब मे है (चित्र ७७) और दो उत्तरंग के दक्षिणी और उत्तरी किनारों पर हैं। ये तीनो रथिकाओ मे प्रदर्शित हैं और उपर्युक्त साधारण सूर्य-प्रतिमाओं के सदृश हैं, अन्तर केवल इतना है कि ये चतुर्भुजी हैं, द्विभुजी नहीं। इनमे समभग खड़े देवता किरीट-मुकुट, वनमाला तथा अन्य सामान्य आभूषणों से अलंकृत हैं और वक्ष मे वर्म तथा चरणों में उपानह भी धारण किए हैं। उनके दो ऊर्ध्व हाथो में पूर्ण विकसित सनाल पद्म है, जो स्कन्धो के ऊपर पहुँचे हैं। शेष दाहिना हाथ वरद-मुद्रा में और बायाँ कमण्डलुधारी है (एक प्रतिमा[४] का यह हाथ टूटा है)। उनके पार्श्वों मे रानियाँ, चामरधारिणी राज्ञी और निक्षुभा, खड़ी है और चरणो के सामने समभग खड़ी भूदेवी का चित्रण परम्परागत है। सप्ताश्व, अरुण आदि अन्य किसी पार्श्वचर का प्रदर्शन नही है।

चौथी मूर्ति (चित्र ७८)[५] ललाटबिम्ब और उत्तरंग के दक्षिणी कोने के बीच मे बनी एक रथिका में है। इसमे त्रिभंग खड़े देवता जटा-मुकुट धारण किए हैं। मुकुट के अतिरिक्त, वे सामान्य आभूषणो से अलंकृत है, किन्तु वक्ष मे वर्म और चरणो में उपानह नही हैं। इन भिन्नताओं के होते हुए भी देवता चतुर्भुज है और उनके चारो हाथो के लाञ्छन पूर्ववत् है (दोनो हाथो के पद्म अवश्य पूर्ण विकसित नही है; वे कुण्डलित कमलनाल के रूप में चित्रित है), अतएव उनके धातृ होने मे सन्देह नही किया जा सकता।

उपर्युक्त प्रतिमाएँ विश्वकर्मशास्त्र के विवरण से साम्य रखती हैं; अन्तर केवल इतना है कि इनका एक दाहिना हाथ पौष्करी माला से युक्त न होकर वरद-मुद्रा में है। द्वादशादित्यों की पृथक् प्रतिमाएँ अन्यत्र दुर्लभ है; वे सामान्यतः सूर्य-मूर्तियो के परिकरों अथवा प्रभावलियों मे अंकित हैं।[६] इस दृष्टि से खजुराहो की ये मूर्तियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनसे मिलती-जुलती ग्यारहवी शती की एक सुन्दर मूर्ति महेन्द्र (बंगाल) से प्राप्त हुई है, जो षड्भुजी है। चार भुजाएँ खजुराहो-मूर्तियो के सदृश (दो पद्मधारी और दो क्रमशः वरद-मुद्रा और कमण्डलु से युक्त) हैं और दो अतिरिक्त भुजाओं में दाईं अक्षमाला-युक्त और बाईं अभय-मुद्रा में है। इन अतिरिक्त भुजाओ और कमण्डलु

१ प्र० सं० ४, २९

२ दक्षिणे पौष्करी माला करे वामे कमण्डलुः।
पद्माभ्यां शोभितकरा सा धात्री प्रथमा स्मृता॥
—*EHI*, I, II, Appendix C, p. 86, प्र० सं०, पृ० २४६

३ प्र० सं० ५, ६, ७

४ प्र० सं० ६

५ प्र० सं० ७अ

६ *DHI*, p. 441.

के साथ ही अक्षमाला के चित्रण द्वारा इस मूर्ति में ब्रह्मा की विशिष्टताओं को भी संयुक्त किया गया है। धातृ एक आदित्य का नाम तो है ही, किन्तु धाता अथवा विधाता ब्रह्मा का भी एक नाम है। इस मूर्ति में ये दोनों रूप मिलाकर दर्शाए गए प्रतीत होते है। डॉ० बनर्जी ने उचित ही इसे समन्वित (syncretic) मूर्तियो के अन्तर्गत रखा है।[१]

सूर्य-नारायण

विष्णु के साथ सूर्य के घनिष्ठ सम्बन्ध की चर्चा तीसरे अध्याय के प्रारम्भ में की जा चुकी है। वस्तुतः सूर्य विष्णु के ही एक स्वरूप हैं और सम्भवतः सूर्य की मूर्ति उनकी राजसी मूर्ति है।[२] अजमेर सग्रहालय के बारहवी शती के एक अभिलेख मे सूर्य को विष्णु का दक्षिण नेत्र कहा गया है—दक्षिणमीक्षणं मुररिपोर्देवो रविः पातु वः।[3] विष्णु और सूर्य के समन्वित रूप की मूर्तियाँ भारत के विभिन्न भागों में पाई गई हैं। खजुराहो भी इन मूर्तियों से अछूता नही है।

खजुराहो में सूर्य-नारायण की मूर्तियाँ दो प्रकार की हैं: स्थानक और आसन। स्थानक प्रकार की तीन मूर्तियाँ लेखक को मिली हैं, जिनका उल्लेख विष्णु की साधारण प्रकार की स्थानक मूर्तियों के अन्तर्गत किया जा चुका है। पहली मूर्ति[४] मे चतुर्भुज देवता करण्ड-मुकुट धारण किए हुए त्रिभंग खड़े हैं। उनके दो ऊर्ध्व हाथों में पद्म हैं और शेष दाहिने और बाएँ मे क्रमशः चक्र और शंख है। दूसरी मूर्ति[५] पूर्ववत् है, किन्तु इसका एक दाहिना हाथ चक्रधारी न होकर वरद-मुद्रा मे है। तीसरी मूर्ति[६] भी पहली के सदृश है, किन्तु इसका एक दाहिना हाथ कट्यवलम्बित है। इनमें दो ऊर्ध्व हाथों के पद्म के अतिरिक्त, सूर्य की अन्य कोई विशेषताएँ, जैसे उपानह, वर्म, सप्ताश्व, अरुण आदि, नही है।

आसन प्रकार के कई चित्रण खजुराहो में हैं, किन्तु स्वतन्त्र मूर्तियां लेखक को केवल दो मिली है; शेष चित्रण विष्णु-मूर्तियों की प्रभावलियों में अंकित है। इन स्वतन्त्र मूर्तियों में चतुर्भुज सूर्य-नारायण पद्मपीठ पर ध्यान-मुद्रा में आसीन हैं। उनके दो ऊर्ध्व हाथों मे पद्म (कुण्डलित कमल-नाल) हैं और दो अधः योग-मुद्रा मे प्रदर्शित हैं। उनके मस्तक पर किरीट-मुकुट शोभायमान है और वे सामान्य आभूषणों से अलकृत हैं। एक मूर्ति[७] में सूर्य-नारायण के दाएँ-बाएँ पार्श्वों में क्रमशः शंख और चक्र-पुरुष खड़े है और दूसरी[८] मे कोई पार्श्वचर नही है। इन मूर्तियो का उल्लेख योगासन विष्णु-मूर्तियों के अन्तर्गत हो चुका है।

विष्णु और उनके अन्य रूपों की अनेक मूर्तियों[९] मे ऊपर की ओर केन्द्र में छोटी-सी विष्णु-प्रतिमा के स्थान पर सूर्य-नारायण की प्रतिमा अंकित हुई है और उसके दाएँ-बाएँ क्रमशः ब्रह्मा और शिव के सामान्य चित्रण है (चित्र ३०)[१०]। लक्ष्मण मन्दिर की वैकुण्ठ-मूर्ति[११] मे सूर्य-नारायण

१ *DHI*, p. 550. Pl XLVII, Fig. 3.
२ *II*, p. 18.
३ *EI*, Vol. XXIX, p. 182, V. 33; तुल० अग्रवाल, रत्नचन्द्र, शोध-पत्रिका, भाग ८, अंक ४, पृ० १
४ अध्याय ३ (विष्णु), प्र० सं० ५३
५ वही, प्र० सं० ४०
६ वही, प्र० सं० ३६
७ वही, प्र० सं० ६८
८ वही, प्र० सं० ६८अ
९ वही, प्र० सं० ६, १४, १४२ आदि।
१० वही, प्र० सं० १४२
११ वही, प्र० सं० २०७

की ऐसी दो प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं—पहली वैकुण्ठ के शिरश्चक्र के ऊपर बनी रथिका में (चित्र ६१) और दूसरी इसके ठीक ऊपर परिकर के मकर-तोरण में बनी अन्य रथिका में (यह चित्र में नहीं प्रदर्शित है)। पहली प्रतिमा का पृथक् चित्र भी दिया जा रहा है (चित्र ७६)। स्वतंत्र मूर्तियों के सदृश ही इन सब प्रतिमाओं मे चतुर्भुज सूर्य-नारायण किरीट से अलंकृत, ध्यान-मुद्रा मे आसीन और दो ऊर्ध्व हाथों में कमलनाल धारण किए हुए प्रदर्शित हैं।

खजुराहो-मूर्तियों के विपरीत अन्यत्र उपलब्ध सूर्य-नारायण-मूर्तियों में सूर्य की विशिष्टताएँ, जैसे उपानह, वर्म, अश्विन् देवता आदि, भी प्रदर्शित है। उदाहरण के लिए राजस्थान की मूर्तियाँ द्रष्टव्य हैं। ये सामान्यतः खजुराहो-मूर्तियों की भाँति चतुर्भुजी हैं, किन्तु एक मूर्ति षड्भुजी भी है। चतुर्भुजी मूर्तियों के दो हाथों में पद्म और दो में वैष्णव आयुध गदा और चक्र है। ऐसी मूर्तियाँ अटरू[1] और बड़ोदा (प्राचीन वटपद्रक)[2] नामक स्थानों पर उपलब्ध हैं। षड्भुजी मूर्ति झालावाड़ संग्रहालय[3] में सुरक्षित है। पूर्व मध्ययुगीन इस मूर्ति के दो हाथों में पद्म हैं और शेष चार में वैष्णव आयुध गदा, चक्र, शख आदि हैं। इसमे और साथ ही अटरू की मूर्ति मे सूर्य-नारायण के सिर के ऊपर सर्प-फण का घटाटोप भी प्रदर्शित है।

हरि-हर-हिरण्यगर्भ

विष्णु की विशिष्टताओ से युक्त सूर्य की उपर्युक्त प्रतिमाओ के अतिरिक्त, खजुराहो में ब्रह्मा विष्णु और शिव की विशिष्टताओं से युक्त भी सूर्य की प्रतिमाएँ उपलब्ध हैं।

त्रिमूर्ति के साथ सूर्य की एकात्मकता का उल्लेख शास्त्रों मे मिलता है। मार्कण्डेयपुराण[4] मे प्रकाशवान् सूर्य के त्रिधा स्वरूप को ही ब्रह्मा, शिव और विष्णु का शरीर बताया गया है। शारदा-तिलकतन्त्र[5] के एक पीठमन्त्र मे ब्रह्मा, विष्णु और शिव के साथ सूर्य (जो असामान्य ढंग से 'सौर' कहे गए है) की एकात्मकता का उल्लेख हुआ है। शिव, ब्रह्मा और विष्णु से संयुक्त सूर्य की प्रतिमा का विवरण भी शिल्प-शास्त्रों मे मिलता है। अपराजितपृच्छा मे इसे 'हरि-हर-हिरण्यगर्भ' नाम दिया गया है। इस शिल्प-शास्त्र के अनुसार यह प्रतिमा चतुर्मुखी और अष्टभुजी हो और इसमें चारो देवताओं का निवास हो : सामने की ओर सूर्य दो (प्राकृतिक) हाथों में पद्म, दाईं ओर शिव खट्वाङ्ग और त्रिशूल, बाईं ओर विष्णु शंख और चक्र तथा (पीछे की ओर) ब्रह्मा कमण्डलु और अक्षमाला धारण किए हुए चित्रित हो।[6] शारदातिलक मे भी सूर्य की चतुर्मुखी और अष्टभुजी प्रतिमा का

---

१ अग्रवाल, रत्नचन्द्र, उपर्युक्त, पृ० २

२ वही

३ वही, पृ० १-२

४ मार्क० पु०, १०६, ७१

५ शरीरभाजं चतुर्ध्येयं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥
सौराय योगपीठाय नमः पञ्चाक्षरम् ।
पीठमन्त्रोऽयमाख्यातो दिनेशस्य जगत्पतेः ॥
—शारदा०, १४, ४१-४२

६ चतुर्वक्त्रं चाष्टबाहुं चतुर्मूर्तिसमाकुलम् ।
अग्रभागगतो मुख्यः कार्यः पद्महस्तो दिवाकरः ॥
खट्वाङ्गत्रिशूलहस्तो रुद्रो दक्षिणतः शुभः ।
कमण्डलुं चाक्षसूत्रधरो स्यात् पितामहः ॥
वामे तु संस्थितश्चैव शंखचक्रधरो हरिः ।
—अपरा० २१३, ३१-३४

उल्लेख है।[१] भट्टाचार्य सूर्य की ऐसी प्रतिमाओं से अनभिज्ञ थे[२], किन्तु भारत के विभिन्न भागों में ऐसी अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध हैं। खजुराहो में ही छः प्रतिमाएँ लेखक को मिली हैं, जिनमें चार स्थानक हैं और दो आसन। ये सब अपराजितपृच्छा के विवरण से साम्य रखती हैं।

स्थानक

चार स्थानक मूर्तियों में एक सुन्दर मूर्ति[३] लक्ष्मण मन्दिर के दक्षिण-पूर्वी गौण मन्दिर में उत्कीर्ण है (चित्र ८१)। एक फुट नौ इंच ऊँची यह प्रतिमा एक पद्मपीठ पर समभंग खड़ी है। इसके तीन मुख और आठ भुजाएँ हैं। केन्द्र का मुख प्रधान है और छोटे-छोटे दो मुख प्रतिमा के दोनों स्कन्धों पर प्रदर्शित हैं। केन्द्रीय मस्तक किरीट-मुकुट और कर्ण-कुण्डलों से अलंकृत है। इन आभूषणों के अतिरिक्त, प्रतिमा हार, ग्रैवेयक, कंकण, अव्यंग, वनमाला, यज्ञोपवीत और कौस्तुभमणि से आभूषित है। वह कटि से जानु तक एक वस्त्र, वक्ष में वर्म और चरणों में उपानह धारण किए है। सामने की दो भुजाओं में स्कन्धों के ऊपर पहुँचे पूर्ण विकसित पद्म प्रदर्शित हैं। शेष हाथों में दाईं ओर का एक वरद-मुद्रा में और दूसरा अक्षमाला-युक्त प्रदर्शित है तथा तीसरा खण्डित है, जिसमें त्रिशूल था (त्रिशूल का ऊपरी भाग अवशिष्ट है)। बाईं ओर के हाथों में सर्प, शंख और कमण्डलु चित्रित हुए हैं। खजुराहो की अन्य सूर्य-प्रतिमाओं के सदृश यहाँ भी पद्मपीठ पर सूर्य के चरणों के निकट देवी महाश्वेता बैठी प्रदर्शित हैं। सूर्य के दाएँ पार्श्व में शक्तिधारी दण्ड त्रिभंग खड़े हैं और इसी प्रकार बाएँ पार्श्व में लेखनी और पत्र से युक्त, लम्बकूर्च तथा लम्बे उदर वाले पिंगल चित्रित हैं।

दूसरी प्रतिमा[४] विश्वनाथ मन्दिर में उत्कीर्ण है। दो फुट चार इंच ऊँची इस प्रतिमा का कोई भी अंग खण्डित नहीं है। पहली प्रतिमा के सदृश यह भी त्रिमुखी, अष्टभुजी और समभंग है। पहली प्रतिमा के विपरीत इस प्रतिमा में केन्द्रीय मुख के अतिरिक्त शेष दो मुख भी सुन्दर चित्रित हुए हैं और वे बहुत छोटे नहीं हैं। केन्द्रीय मस्तक में किरीट-मुकुट और पार्श्व मस्तकों में जटा-मुकुट सुशोभित हैं। केन्द्रीय मस्तक के पीछे सुवर्तुल कान्तिमण्डल है, जिसके दाएँ-बाएँ कोनों पर विद्याधरों का एक युगल उत्कीर्ण है। पहली प्रतिमा के सदृश यह भी उपानह, वर्म तथा सामान्य आभूषण धारण किए है। सामने के दो हाथों में पूर्ण विकसित पद्म हैं। शेष हाथों में दाईं ओर का एक अक्षमाला-युक्त वरद-मुद्रा में चित्रित है, दूसरा त्रिशूलधारी और तीसरा शंख-युक्त है। बाईं ओर के शेष तीन हाथों में क्रमशः चक्र, सर्प और कमण्डलु का चित्रण है। इस प्रतिमा में देवी महाश्वेता और द्वारपालों के अतिरिक्त, सूर्य की दो रानियाँ, चामरधारिणी राज्ञी और निक्षुभा, तथा दो अश्विन् देवता भी चित्रित हैं।

तीसरी प्रतिमा जवारी मन्दिर में द्रष्टव्य है।[५] सामान्यतः यह दूसरी प्रतिमा के सदृश है, किन्तु इसकी आठों भुजाएँ खण्डित हैं और इसमें राज्ञी-निक्षुभा तथा अश्विन् देवताओं के चित्रण नहीं हैं। दण्ड और पिंगल के साथ ही दो अन्य पार्श्वचर और धनुर्धारिणी उषा-प्रत्युषा अवश्य उत्कीर्ण हैं।

---

१ *II*, p. 18.
२ *Ibid.*—"No such statue is known to have been discovered as yet."
३ प्र० सं० २०
४ प्र० सं० ३४
५ प्र० सं० ३१

दो फुट चार इंच ऊँची चौथी स्थानक मूर्ति[1] (चित्र ८०) चित्रगुप्त मन्दिर में उपलब्ध है। यह प्रतिमा उपर्युक्त प्रतिमाओं के सदृश है, किन्तु इसमें पार्श्वचरों की संख्या अधिक है। देवी महाश्वेता, दण्ड-पिंगल, दो अश्विन् देवता, चामरधारिणी राज्ञी-निक्षुभा और धनुर्धारिणी उषा-प्रत्युषा के चित्रण देखे जा सकते हैं। अभाग्यवश आठ भुजाओं में मात्र दो दाहिनी भुजाएँ बची हैं, शेष खण्डित हैं। इन दो में एक अक्षमाला-युक्त वरद-मुद्रा में है और दूसरी चक्रधारी है। इस प्रतिमा की प्रभावली में ब्रह्मा और शिव की एक-एक छोटी प्रतिमा भी उत्कीर्ण है। ब्रह्मा त्रिमुख और चतुर्भुज हैं, जिनका पहला हाथ अभय-मुद्रा में है और शेष क्रमशः स्रुक्, पुस्तक और कमण्डलु से युक्त हैं। शिव भी चतुर्भुज है। उनका भी पहला हाथ अभय-मुद्रा में है और शेष हाथों में वे त्रिशूल, सर्प और कमण्डलु धारण किए हैं।

उपर्युक्त मूर्तियों के सदृश ही एक मूर्ति मार्कण्डा मन्दिर, मार्कण्डा (जिला चाँदा, महाराष्ट्र) मे उत्कीर्ण हैं (चित्र ८२), किन्तु यह अधिक सुन्दर है। यह भी समभंग, त्रिमुखी और अष्टभुजी है और सामान्य आभूषणो से अलंकृत है। इसकी एक अतिरिक्त विशेषता देवता का उत्तरीय है, जिसके दोनों छोर समान रूप से दाहिने और बाएँ हाथों के निकट फहरा रहे है। देवता के वक्ष में वर्म नही है, किन्तु चरणों मे ऊँचे उपानह हैं। चरणों के सामने भूदेवी का परम्परागत चित्रण है। पंक्तिबद्ध उड़ते-से सप्ताश्वो और उनको सचालित करते हुए अरुण का चित्रण बड़ा सुन्दर है। देवता के दोनों पार्श्वों मे पत्र और लेखनी से युक्त किरीट-मुकुटधारी एक-एक अनुचर त्रिभग खड़ा है। ये दोनों पिंगल-रूप में चित्रित हैं (एक ओर पिंगल और दूसरी ओर दण्ड का चित्रण होना चाहिए था)। देवता के सामने के दो हाथो मे पूर्ण विकसित पद्म हैं। एक दाहिना हाथ अक्षमाला से युक्त वरद-मुद्रा में है। दो दाहिने हाथ टूटे हैं, जिनमें एक त्रिशूलधारी था (त्रिशूल का ऊपरी भाग अवशिष्ट है) और दूसरे मे शख रहे होने की सम्भावना है। बाईं ओर के शेष तीन हाथों मे क्रमशः स्रुक्, चक्र और कमण्डलु है। इस प्रकार एक दाहिने हाथ का चित्रण मात्र ही खजुराहो-प्रतिमाओ से भिन्न है, जिसमें सर्प के स्थान पर स्रुक् है।

हरि-हर-हिरण्यगर्भ की एक स्थानक मूर्ति चिदम्बरम् मन्दिर मे भी उपलब्ध है।[2] खजुराहो-प्रतिमाओं के सदृश यह भी त्रिमुखी और अष्टभुजी है, किन्तु इसके दो प्राकृतिक हाथ पद्मधारी न होकर अभय और वरद मुद्राओ मे प्रदर्शित हैं। अन्य हाथों के लाञ्छन भी खजुराहो-प्रतिमाओं से आंशिक रूप मे ही मिलते हैं। इसमे भी सूर्य की दो रानियाँ, सप्ताश्व और अरुण चित्रित हैं। दक्षिणभारतीय प्रतिमा होने के कारण देवता के चरण नग्न है।

आसन

खजुराहो में हरि-हर-हिरण्यगर्भ की आसन मूर्तियाँ केवल दो हैं, जिनमें पहली एक आधुनिक मन्दिर (प्रतापेश्वर) की जगती में जुड़ी है (चित्र ७९)[3]। इसमें देवता पद्मपीठ पर पद्मासन-मुद्रा

---

१ प्र० सं० ३८; तुल० Gangoly, O. C., *The Art of the Chandelas*, p. 35, Pl. 30 (यहाँ भ्रान्ति से इसको एकादशमुख विष्णु माना गया है).

२ *SIIGG*, p. 236, Fig. 144.

३ प्र० सं० ३८

में बैठे हैं। स्थानक मूर्तियों के सदृश इसमे भी तीन मुख और आठ भुजाएँ हैं। केन्द्रीय मस्तक में किरीट और पार्श्व-मस्तकों में जटा-मुकुट शोभायमान हैं। मुकुट के अतिरिक्त, प्रतिमा हार, ग्रैवेयक, कुण्डल, अंगद, कंकण, कौस्तुभमणि, यज्ञोपवीत और मेखला (अव्यंग) से अलंकृत है। सामने के दो प्राकृतिक हाथो मे पूर्ण विकसित पद्म रहे हैं, किन्तु वे अब टूट गए हैं और मुष्टियों में कमलनालों के कुछ अंश मात्र शेष हैं। शेष तीन दाएँ हाथो में एक अक्षमाला-युक्त वरद-मुद्रा में है और दो क्रमशः चक्र और त्रिशूल से युक्त है। बाएँ हाथों मे क्रमशः सर्प, शंख और कमण्डलु चित्रित है। पद्मासन होने के कारण चरण नग्न हैं। वक्ष मे वर्म का भी चित्रण नहीं हुआ है। फलतः इसे किसी सीमा तक दक्षिणभारतीय परम्परा मे चित्रित मान सकते है। पद्मपीठ के नीचे सप्ताश्व उत्कीर्ण है, किन्तु अरुण अनुपस्थित हैं। प्रभावली मे मुकुट के दोनो ओर पुष्पमालाधारी एक-एक विद्याधर अंकित है। अन्य किसी पार्श्वचर का चित्रण नही है।

दूलादेव मन्दिर में उपलब्ध दूसरी पद्मासन मूर्ति लगभग दो फुट ऊँची है और एक सुन्दर कलाकृति है।[1] यह मूर्ति उपर्युक्त मूर्ति के सदृश है, किन्तु इसकी कुछ विशेषताएँ उल्लेखनीय है। इसमे देवता के वक्ष मे वर्म प्रदर्शित है और कटि से जानु तक उनकी देह वस्त्र से आच्छादित है। पद्मासन-मुद्रा मे होने के कारण चरण नग्न है। सामने के दो हाथो मे पूर्ण विकसित पद्म है। एक दाहिना हाथ खण्डित है, दूसरा अक्षमाला-युक्त वरद-मुद्रा मे और तीसरा त्रिशूलधारी है। पद्म के अतिरिक्त, बाएँ हाथों मे सर्प, चक्र (जिसका आधा भाग टूट गया है)[2] और कमण्डलु हैं। पादपीठ पर केवल तीन अश्वो के चित्राभास द्रष्टव्य है। अश्वो और देवता के चरणों के बीच अन्य सूर्य-प्रतिमाओं के सदृश देवी महाश्वेता[3] बैठी अंकित हैं।

हरि-हर-हिरण्यगर्भ की ऐसी एक आसन मूर्ति देलमल (उत्तरी गुजरात) मे लिम्बोजी माता के मन्दिर में भी द्रष्टव्य है।[4] खजुराहो-प्रतिमाओ के सदृश यह भी त्रिमुखी और अष्टभुजी है तथा इसमे भी सूर्य के दो हाथ पद्मधारी; शिव के त्रिशूल और सर्प-युक्त; और ब्रह्मा के कमण्डलु-युक्त और वरद-मुद्रा मे चित्रित हैं (विष्णु के दो हाथ खण्डित है, जिनमे शंख और चक्र रहे होगे)। किन्तु इसमें देवता गरुड़ पर आरूढ हैं और उनके नीचे ब्रह्मा और शिव के वाहन क्रमशः हंस और नन्दी चित्रित हैं। इसमें भी देवता उपानह और वर्म धारण किए है, किन्तु सप्ताश्वों और अरुण का अभाव है।

खजुराहो की उपर्युक्त प्रतिमाएँ सामान्यतः अपराजितपृच्छा के विवरण से साम्य रखती है। वे सभी अष्टभुजी और त्रिमुखी हैं। चौथे मुख के पीछे की ओर होने की कल्पना कर ली गई है और

---

१ प्र० सं० ३०; तुल० Kramrisch, St. *op. cit.*, pp. 373-74, Pl.VI; Agarwal, U., *Khajurāho Sculptures and their Significance*, p. 106, Fig 79. डॉ० उर्मिला अग्रवाल ने इस मूर्ति का बड़ा ही भ्रान्तिपूर्ण विवरण दिया है और साथ ही डॉ० क्रैमिश द्वारा दिए गए उचित विवरण की आलोचना की है। उन्होंने (डॉ० अग्रवाल ने) लिखा है कि यह मूर्ति षड्भुजी है और इसमें केवल दो देवताओं, शिव और सूर्य, का समन्वय है। इतना ही नहीं, उन्होंने इस मूर्ति के चित्र को एक अन्य मूर्ति का माना है।

२ डॉ० क्रैमिश इस खण्डित चक्र का अवलोकन करने में असमर्थ रही हैं और उनका यह अनुमान भी उचित नहीं है कि खण्डित दाहिने हाथ में गदा रही होगी (उपर्युक्त, पृ० ३७४)। इस खण्डित हाथ में निस्सन्देह शंख रहा होगा, क्योंकि खजुराहो की सब ऐसी मूर्तियों में विष्णु के आयुध शंख और चक्र ही प्रदर्शित हुए हैं। अपराजितपृच्छा द्वारा भी हरि-हर-हिरण्यगर्भ की प्रतिमा के विष्णु-हाथों में शंख और चक्र होने का निर्देश हुआ है।

३ डॉ० क्रैमिश ने इस आकृति को भूल से बालक माना है (उपर्युक्त, पृ० ३७४), किन्तु सूक्ष्म अवलोकन से पता चलता है कि यह पुरुष-प्रतिमा नहीं, वरन् नारी-प्रतिमा है, जिसका दाहिना हाथ अभय-मुद्रा में और बायाँ घट-युक्त है।

४ Burgess, J., *op. cit.*, pp. 88-89, Pls LXIX and LXXI, 7.

इसीलिए वह नहीं प्रदर्शित हुआ है। प्रदर्शित तीन मुखों में किरीट-मुकुट-धारी केन्द्रीय मुख सूर्य (विष्णु अथवा सूर्य-नारायण) का, और जटा-मुकुट-धारी दो पार्श्व-मुखों में एक ब्रह्मा का और दूसरा शिव का माना जा सकता है। आठ भुजाओं में प्रत्येक देवता की दो भुजाएँ हैं, जिनमें एक दाईं ओर और दूसरी बाईं ओर चित्रित हुई है। सूर्य के दोनों हाथो में पूर्ण विकसित पद्म, विष्णु के हाथो में शंख और चक्र, तथा शिव के हाथों में सर्प और त्रिशूल (एक प्रतिमा का हाथ त्रिशूल-युक्त न होकर वरद-मुद्रा मे है) चित्रित हैं। ब्रह्मा का एक हाथ वरद-मुद्रा में प्रदर्शित होकर अक्षमाला-युक्त है (एक प्रतिमा मे वरद-मुद्रा में न होकर मात्र अक्षमालाधारी है) और दूसरा कमण्डलु-युक्त है। वैसे तो सभी हाथो का चित्रण अपराजितपृच्छा के विवरण से मिलता है, किन्तु शिव का एक हाथ इस विवरण से भिन्न है, जिसमें खट्वाङ्ग के स्थान पर सर्प का प्रदर्शन हुआ है।

सूर्य, विष्णु, शिव और ब्रह्मा की समन्वित मूर्तियों का प्रादुर्भाव पूर्व मध्ययुग में हुआ प्रतीत होता है और शीघ्र ही इनका प्रचलन बड़ा व्यापक हो गया, जैसा कि भारत के विभिन्न भागों में उपलब्ध ऐसी अनेक मूर्तियों से विदित है। गुजरात, महाराष्ट्र और दक्षिणभारत की कुछ मूर्तियों का विवरण खजुराहो-मूर्तियों के साथ ऊपर दिया जा चुका है। राजस्थान में भी अनेक मूर्तियाँ किराड़, ओसियाँ, राणपुर, झालरापाटन आदि स्थानों में पाई गई है।[1]

सामान्य विशेषताएँ

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि खजुराहो मे उपलब्ध विभिन्न रूपो की सूर्य-प्रतिमाएँ सामान्यतः शिल्प-शास्त्रो के विवरण से साम्य रखती हैं। अधिकांश प्रतिमाओं में सूर्य उत्तरभारतीय शास्त्रो के अनुसार उदीच्यवेष—वक्ष मे वर्म, चरणों में उपानह आदि—धारण किए हैं। दक्षिण-भारतीय परम्परा मे निर्मित कुछ प्रतिमाओं के वक्ष मे वर्म और चरणों में उपानह नही प्रदर्शित है। सामान्य सूर्य-प्रतिमाएँ दो भुजाओं से युक्त हैं, जिनमे स्कन्धों के ऊपर तक पहुँचे पूर्ण विकसित पद्म है। धातृ-सूर्य और सूर्य-नारायण की प्रतिमाएँ चतुर्भुजी और हरि-हर हिरण्यगर्भ की अष्टभुजी है। इन सब की दो भुजाएँ पद्मधारी है। अनेक मूर्तियों की कुछ भुजाएँ अब तक टूट गई है।

इन मूर्तियो मे राज्ञी, निक्षुभा, छाया और सुवर्चसा नामक सूर्य की चार रानियों में मात्र दो, राज्ञी और निक्षुभा, का चित्रण है। ये सूर्य के दोनों पार्श्वों में एक-एक चामर धारण किए हुए प्रदर्शित है, किन्तु एक मूर्ति में इन्हे पद्म-युक्त भी देखा जा सकता है। इनके अतिरिक्त, धनुर्धारिणी उषा-प्रत्युषा का भी आलीढ अथवा प्रत्यालीढ-मुद्रा में परम्परागत चित्रण हुआ है। सामान्यतः सब मूर्तियों मे सूर्य के चरणों के सामने एक बैठी अथवा खडी देवी की छोटी प्रतिमा अंकित हुई है, जिसका एक हाथ अभय-मुद्रा में और दूसरा घट-युक्त है। सूर्य के चरणो के पास इस प्रकार की देवी का अंकन मध्ययुगीन उत्तरभारतीय प्रायः सब सूर्य-प्रतिमाओं में मिलता है। गोपीनाथ राव ने अजमेर सग्रहालय की एक सूर्य-प्रतिमा के प्रसंग में इस देवी का अभिज्ञान कठिन बताया है।[2] भट्टसाली ने बंगाल की सूर्य-मूर्तियों के संदर्भ में इस देवी को सूर्य की एक

---

१ Agrawala, R. C., *Adyar Library Bulletin*, Vol. XVIII, Part 3-4, pp. 259-60, *Journal of the Ganga Nath Jha Research Institute*, Vol. XIV (1-4), pp. 58-59, शोध-पत्रिका, भाग ६, अंक २-३, पृ० १-६, राजस्थान-भारती, वर्ष ४, अंक ४, पृ० १६-१८

२ *EHI*, I, II, p. 317, Pl. XCIII, Fig. 2.

पत्नी उषा माना है।[1] किन्तु रामप्रसाद चंदा और गंगुली ने इसे भूदेवी कहा है।[2] डॉ० बनर्जी के अनुसार भी यह सूर्य की एक पत्नी भूदेवी महाश्वेता है।[3] भविष्यपुराण (अ० १२४ और १३०) से भी यह देवी महाश्वेता प्रतीत होती है, जो दुर्गा अथवा सरस्वती का ही एक नाम है।[4] फलतः लेखक ने भी इस देवी को भूदेवी महाश्वेता के नाम से वर्णित किया है। इन मूर्तियों में सामान्यतः सूर्य के पुत्रों का चित्रण नहीं हुआ है, किन्तु दो मूर्तियों में वे चित्रित हुए प्रतीत होते हैं। एक मूर्ति में ये चारों बैठे और दूसरी में दो खड़े और दो बैठे चित्रित हैं। अधिकांश मूर्तियों में हुआ दण्ड (अथवा दण्डित) और पिंगल (अथवा कुण्डी) तथा दो अश्विन् देवताओं का चित्रण शास्त्र-निर्दिष्ट एवं परम्परागत है।

खजुराहो-मूर्तियों में एक चक्र से युक्त रथ नहीं प्रदर्शित है, पादपीठों पर रथ के अश्व और सारथी अरुण मात्र उत्कीर्ण हैं। चित्रित अश्वों की सामान्य संख्या सात है, किन्तु यह उल्लेखनीय है कि एक (हरि-हर-हिरण्यगर्भ) प्रतिमा में मात्र तीन और दो प्रतिमाओं में मात्र पाँच अश्व प्रदर्शित हैं तथा एक प्रतिमा में उनकी संख्या (सम्भवतः शिल्पी की भूल से) आठ तक पहुँच गई है। सब उड़ते-से अश्व पंक्ति-बद्ध उत्कीर्ण हुए हैं। केन्द्रीय अश्व पर अरुण विराजमान हैं, जो बाएँ हाथ में अश्वों की रश्मियाँ धारण किए हैं और कशा-युक्त दाहिना हाथ ऊपर उठा कर अश्वों को संचालित करते प्रदर्शित हैं। भारत की अन्य सूर्य-प्रतिमाओं के सदृश खजुराहो-प्रतिमाओं में भी अरुण का अर्धांग (ऊर्ध्व) मात्र चित्रित है। गर्भावस्था में पूरा समय व्यतीत करने के पूर्व ही अरुण के जन्म की कथा महाभारत में मिलती है। समय के पूर्व जन्म होने के कारण वे पंगु रह गए और इसीलिए शिल्प में भी वे अर्धांग प्रदर्शित हुए हैं।[5]

रेवन्त

रेवन्त सूर्य के एक पुत्र हैं। सूर्य के साथ भारत में उनकी भी पूजा होती रही है। खजुराहो में रेवन्त का एक भी चित्रण नहीं मिलता, यद्यपि कुछ विद्वानों ने लक्ष्मण मन्दिर की जगती की रूपपट्टिका में प्रदर्शित एक अश्वारोही को रेवन्त माना है, जिसके सिर पर एक परि-चारक छत्र उठाए है।[6]

बृहत्संहिता में अश्वारूढ़ रेवन्त को अपने साथियों के साथ मृगया क्रीड़ा में व्यस्त बताया गया है।[7] विष्णुधर्मोत्तर में केवल यह उल्लेख मिलता है कि रेवन्त सूर्य के सदृश और अश्वारूढ़ हो।[8] विद्वानों द्वारा लक्ष्मण मन्दिर में उत्कीर्ण अश्वारोही को रेवन्त मानने का आधार बृहत्संहिता का ही वर्णन प्रतीत होता है।

---

१ *IBBSDM*, pp. 161, 169. Pl. LVIII.

२ Chanda, R. P., *Medieval Indian Sculpture in the British Museum*, p. 67, Pl. XX; Ganguly, M., *Handbook to the Sculptures in the Museum of the Bangiya Sahitya Parishad*, pp. 74, 77, Pl. XVII.

३ *DHI*, p. 439.

४ *IBBSDM*, pp. 151-52.

५ वही, पृ० १६२

६ धामा, बी० एल० तथा चन्द्रा एस० सी०, खजुराहो (हिन्दी अनु०), पृ० १८

७ बृहत्सं०, ५८, ५६

८ वि० ध०, ७०, ५

लक्ष्मण मन्दिर की जगती की रूपपट्टिका में दो अश्वारोही दक्षिण की ओर और एक उत्तर की ओर उत्कीर्ण है। दक्षिण की ओर उत्कीर्ण दोनों अश्वारोही खड्गधारी हैं और उनके सिरों पर अश्वों के पीछे पैदल चलते हुए अनुचरों द्वारा छत्र लगाए गए हैं। उत्तर की ओर चित्रित अश्वारोही के आगे खड्ग और खेटकधारी एक पैदल सैनिक है और पीछे की ओर पैदल चलता छत्रधारी अनुचर है और फिर हाथी पर सवार सैनिक हैं। ये तीनों अश्वारोही रणयात्रा के साथ चलते हुए राजकुमार प्रतीत होते हैं। मात्र अश्वारोही होने के कारण इन आकृतियों को रेवन्त नही माना जा सकता, क्योंकि ये न तो खजुराहो की अन्य देव-प्रतिमाओं के सदृश मुकुट, वनमाला, कौस्तुभमणि आदि सामान्य आभूषणों से अलंकृत हैं और न भारत में अन्यत्र उपलब्ध रेवन्त-प्रतिमाओं[1] से ही मेल खाती हैं।

सूर्य-प्रतीहार

भविष्यपुराण में सूर्य-मन्दिर के चार द्वारों पर स्थित प्रतीहारों के नाम इस प्रकार दिए गए है : प्रथम द्वार पर धर्म और अर्थ, द्वितीय पर गरुड़ और यम, तृतीय पर कुबेर और विनायक तथा चतुर्थ पर रैवत (रेवन्त) और दिण्डि (दण्ड)। रैवत को सूर्य का एक पुत्र और दिण्डि को शिव कहा गया है।[2] *अपराजितपृच्छा*[3] मे उपलब्ध सूर्य-प्रतीहारों के वर्णन में उनकी संख्या तो आठ ही है, किन्तु उनके नाम भिन्न हैं। चार द्वारो पर स्थित वे हैं : दण्डी और पिंगल, आनन्द और नन्दक, चित्र और विचित्र, तथा किरणाक्ष और सुलोचन। रूपमण्डन[4] में भी इसी प्रकार आठ प्रतीहारों का वर्णन है।

खजुराहो के सूर्य-मन्दिर (चित्रगुप्त) के अन्तर्भाग में बारह प्रतीहार-मूर्तियाँ उपलब्ध है : चार युगल महामण्डप के चारों स्तम्भों पर और एक-एक युगल अन्तराल और गर्भगृह-द्वारों पर। गर्भगृह-द्वार पर स्थित प्रतीहार-युगल का अभिज्ञान सरल है, उत्तर की ओर दण्ड और दक्षिण की ओर पिंगल हैं। चतुर्भुज दण्ड द्विभग खड़े है, उनके मस्तक का मुकुट खण्डित है। उनके पहले हाथ में खड्ग (जिसकी मात्र मूठ शेष है) और तीसरे में कमलनाल है, चौथा नीचे रखी खेटक पर स्थित है और दूसरा टूटा है। जटा-मुकुट और लम्बकूर्च से युक्त पिंगल त्रिभंग खड़े हैं। उनके चार हाथो मे पहला और तीसरा टूटा है, दूसरे में कमलनाल और चौथे में पत्र है। पहले खण्डित हाथ में लेखनी रही होगी।

शेष दस प्रतीहार-प्रतिमाएँ अत्यन्त खण्डित अवस्था मे है। एक के मस्तक में करण्ड-मुकुट है और शेष के मस्तक टूट गए हैं। इनमें छः द्विभंग और चार त्रिभंग खड़े हैं। सभी प्रतिमाएँ चतुर्भुजी हैं, जिनमें चार के सब हाथ टूटे है। पाँच प्रतिमाओं के तीन हाथ टूटे हैं और एक कटि-हस्त अथवा पद्मधारी है। एक प्रतिमा के दो हाथ टूटे है और शेष दो में एक कट्यवलम्बित और दूसरा पद्मधारी है। अधिकांश के पादपीठ पर अंजलि-मुद्रा मे हाथ जोड़ कर बैठा हुआ एक भक्त प्रदर्शित है।

---

१ *ASIAR*, 1928-29, Pl. LIV (b) ; *IBBSDM*, p. 177. Pl. LXX (a) ; *DHI*, pp. 442-43, Pl. XXIX, Fig. 2; Bidyabinod, B. B., *JASB*, 1909, pp. 391-92, Pl. XXX ; Sanyal, N. B., *IHQ*, Vol. III, No. 3, pp. 469-72 ; Banerji, R. D., *MASI*, No. 23, Pl. XLVI (a).

२ *EHI*, I, II, pp. 305-6.

३ अपरा०, २२०, १-१३

४ रूप०, २, २६-३०

परिशिष्ट (अध्याय ४)

सूर्य-प्रतिमाओं के प्राप्ति-स्थान

प्र० सं०	प्राप्ति-स्थान
१	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, पश्चिम की ओर जघा में बनी एक रथिका।
२	लक्ष्मण मन्दिर, पश्चिम, अधिष्ठान की प्रधान रथिका।
३	लक्ष्मण मन्दिर, अर्धमण्डप का शिखर, पूर्व की ओर।
४	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर की ओर, कर्णशृंग की एक छोटी रथिका।
५	चित्रगुप्त मन्दिर, गर्भगृह-द्वार का उत्तरंग।
६	वही
७	वही
७अ	वही
८	चित्रगुप्त मन्दिर, गर्भगृह में प्रतिष्ठित प्रधान मूर्ति।
९	चित्रगुप्त मन्दिर, जगती, पूर्व की ओर।
१०	चित्रगुप्त मन्दिर, जगती, उत्तर-पूर्वी कोना।
११	चतुर्भुज मन्दिर, पूर्वी भद्र-रथिका।
१२	प्रतापेश्वर मन्दिर, जगती, पूर्व की ओर।
१३	वही
१४	खजुराहो संग्रहालय, स० १२६९
१५	वही, सं० १२६८
१६	वही, सं० १२५९
१७	वही, सं० १२७१
१८	वही, सं० १२७३
१९	वही, सं० १२६६
२०	वही, स० ४०९
२१	वही, सं० १२७५
२२	वही, सं० १२६४
२३	वही, सं० १२६२
२४	वही, सं० १२६३

प्र० सं०	प्राप्ति-स्थान
२५	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, गर्भगृह-द्वार, ललाटबिम्ब।
२६	प्रतापेश्वर मन्दिर, जगती, पूर्व की ओर।
२७	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पूर्वी गौण मन्दिर, बहिर्भाग, पूर्व की ओर।
२८	चित्रगुप्त मन्दिर, पश्चिमी अधः भद्र-रथिका।
२९	प्रतापेश्वर मन्दिर, जगती, पूर्व की ओर।
३०	दूलादेव मन्दिर, पश्चिमी ऊर्ध्व भद्र-रथिका।
३१	जवारी मन्दिर, पश्चिमी अधः भद्र-रथिका।
३२	विश्वनाथ मन्दिर, प्रधान (गर्भगृह का) शिखर, पश्चिम की ओर एक रथिका।

नवग्रह

५

नवग्रह

हिन्दू ज्योतिषशास्त्र में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु को नवग्रह कहा जाता है। भारत के विभिन्न भागों में नवग्रह-पूजा-परम्परा सनातन से चली आ रही है। समृद्धि, शांति, वृष्टि (कृषि के लिए), दीर्घायु, पुष्टि एवं अभिचार (शत्रु-विनाश) की कामना करने वाले व्यक्ति द्वारा ग्रहयज्ञ करने और उसमे विभिन्न धातुओं (स्वर्ण, रजत, ताम्र आदि) से निर्मित अथवा सुगन्धित लेप द्वारा पटलिखित नवग्रह-प्रतिमाओं के पूजन का विधान याज्ञवल्क्य-स्मृति[1] मे प्राप्त है। इसके अतिरिक्त, अन्य शास्त्रों, जैसे अग्निपुराण, मत्स्यपुराण, विष्णुधर्मोत्तर, अपराजितपृच्छा, रूपमण्डन, शिल्परत्न, आगमों आदि, मे नवग्रह-प्रतिमाओं के विवरण मिलते हैं।

प्रतिमा-लक्षण

नवग्रहों में सूर्य प्रधान है। सूर्य प्रतिमा-लक्षण तथा खजुराहो में नवग्रह-पट्टों से पृथक् उपलब्ध सूर्य-मूर्तियों का विवरण पिछले अध्याय मे दिया गया है। यहाँ अन्य ग्रहों के प्रतिमा-लक्षणों पर ही विचार किया जाएगा।

चन्द्र—अग्निपुराण[2] के अनुसार चन्द्र कमण्डलु और जपमाला लिए हो। मत्स्यपुराण[3] मे चन्द्र तथा उनके वस्त्र, वाहन और अश्वों का वर्ण श्वेत बताया गया है। इस पुराण के अनुसार द्विभुज शशि का एक हाथ गदाधारी और दूसरा वरद-मुद्रा मे हो। विष्णुधर्मोत्तर-पुराण[4] मे चन्द्र-प्रतिमा का विस्तृत विवरण है। इस पुराण के अनुसार सब आभूषणों से अलंकृत चतुर्भुज चन्द्र श्वेत हों और श्वेताम्बर धारण किए हों। उनके दक्षिण और वाम पार्श्वों में क्रमशः कान्ति और शोभा देवियाँ चित्रित हों, जो रूपवती हो। वाम पार्श्व में सिंहांकित ध्वज भी हो। उनका रथ दस अश्वो और दो चक्रों से युक्त हो और सारथी अम्बर हो।[5] दस

---

१ याज्ञवल्क्यस्मृति, १, २९५-९८

२ अ० पु० ५१, १

३ म० पु०, ९४, २; तुल० चतु०, व्रत ख०, अ० १, पृ० १३९-४०

४ वि० ध०, अ० ६८

५ तुल० *EHI*, I. II, p, 319, Appendix C, p. 93; प्र० ल०, पृ० १३८-४०। राव चन्द्र-प्रतिमा का यह वर्णन मत्स्यपुराण का मानते हैं और विष्णुधर्मोत्तर के श्लोक (जो अगले पृष्ठ पर दिए गए हैं) मत्स्यपुराण के नाम पर परिशिष्ट मे उद्धृत करते हैं। डॉ० शुक्ल भी, राव का अनुकरण कर, ये श्लोक मत्स्यपुराण के मानते हैं :

अश्वों के नाम इस प्रकार हैं : यजुस्, त्रिमना, वृष, वाजी, नर, हय, अर्वन्, सप्तधातु, हंस तथा व्योममृग ।[1]

शिल्परत्न भी विष्णुधर्मोत्तर के इस वर्णन को स्वीकार करता है कि चन्द्रदेव दस अश्वों से युक्त रथ मे स्थित हों, किन्तु यहां उनका दक्षिण हस्त गदाधारी और वाम वरद-मुद्रा में वर्णित है । अंशुमद्भेदागम के अनुसार चन्द्र-प्रतिमा स्थानक अथवा सिंहासनासीन निर्मित हो । उसका वर्ण श्वेत हो, मस्तक प्रभामण्डल से घिरा हो और वह विभिन्न आभूषणों, सर्व पुष्पो की माला, स्वर्ण-यज्ञोपवीत और श्वेत वस्त्रो से अलंकृत हो । उसके दो भुजाएँ हो, जिनमें कुमुद हों । पूर्वकारणागम में केवल चन्द्र के पार्श्व में चित्रित होने वाली देवी रोहिणी के नाम का ही उल्लेख है ।[2]

मंगल—मंगल को भौम और धरासुत भी कहा जाता है । अग्निपुराण[3] में वे शक्ति और अक्षमाला से युक्त वर्णित हैं । मत्स्यपुराण[4] में उनकी चार भुजाओं का वर्णन है, जिनमे तीन शक्ति, शूल और गदा से युक्त हैं और एक वरद-मुद्रा में है । यहाँ वे रक्त वर्ण की माला और इसी वर्ण के वस्त्रों से अलकृत बताए गए हैं । विष्णुधर्मोत्तर[5] में उल्लेख है कि आठ अश्वों से चालित काचन रथ मे बैठे भौम को अग्नि-तुल्य निर्मित करना चाहिए । शिल्परत्न[6] मे भौम का वाहन मेष वर्णित है ।

बुध—बुध को ग्रहपति और चन्द्र का पुत्र भी कहा गया है । अग्निपुराण[7] मे वे धनुष और अक्षमाला लिए हुए वर्णित हैं । मत्स्यपुराण[8] मे कर्णिकार पुष्प की द्युति वाले चतुर्भुज बुध को पीत माला और पीत वस्त्रों से अलंकृत तथा सिह पर स्थित बताया गया है । यहाँ उनके तीन हाथो में खड्ग, चर्म (खेटक) और गदा है और एक हाथ वरद-मुद्रा में है । शिल्परत्न[9] में भी बुध-प्रतिमा का ऐसा ही वर्णन उपलब्ध है । विष्णुधर्मोत्तर[10] में बुध को विष्णु के समान और उनके रथ को भौम के रथ के समान निर्मित करने का निर्देश है ।

बृहस्पति और शुक्र—अग्निपुराण[11] में बृहस्पति और शुक्र दोनों कमण्डलु और अक्षमाला लिए हुए वर्णित हैं । मत्स्यपुराण के अनुसार ये दोनों चतुर्भुज निर्मित होने चाहिए । दोनों का एक

चन्द्रः श्वेतवपुः कार्यस्तथा श्वेताम्बरः प्रभुः ।
चतुर्बाहुर्महातेजाः सर्वाभरणवांस्तथा ।
कुमुदौ च सितौ कार्यौ तस्य देवस्य हस्तयोः ।
कान्तिर्मूर्तिमती कार्या तस्य पार्श्वे तु दक्षिणे ॥
वामे शोभा तथा कार्या रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
चिह्नं तथास्य सिंहाङ्कं वामपार्श्वेक (ऽर्क) मद्भवेत् ॥
दशाश्वो वा रथः कार्यो द्विचक्रोऽम्बरचारवी ।

—वि० ध०, ६८, १-४

१ तुल० शाह, प्रियबाला, विष्णुधर्मोत्तर-पुराण, तृतीय खण्ड, प्रथम भाग, पृ० १४३, ३०१, द्वितीय भाग, पृ० १५०-५१
२ *EHI*, I, II, pp. 318-19.
३ अ० पु०, ५१, ११
४ म० पु०, ९४, ३
५ वि० ध०, ६९, २
६ शि० र०, पृ० २५०
७ अ० पु०, ५१, ११
८ म० पु०, ९४, ४
९ शि० र०, पृ० २५०
१० वि० ध०, ६९, २
११ अ० पु०, ५१, ११-१२

हाथ वरद-मुद्रा मे हो और शेष तीन दण्ड, अक्षमाला और कमण्डलु लिए हों। बृहस्पति का वर्ण पीत और शुक्र का श्वेत हो।[1] विष्णुधर्मोत्तर[2] के अनुसार पीताम्बर और सब आभूषणों से सुशोभित बृहस्पति के दो भुजाएँ होनी चाहिए, जिनमें वे पुस्तक और अक्षमाला धारण किए हों। यहाँ उनके आठ अश्वों से चालित दिव्य काचन रथ का भी उल्लेख है। इस पुराण के अनुसार शुक्र (जिन्हें यहाँ भृगुनन्दन कहा गया है) श्वेत वर्ण के हों और श्वेताम्बर धारण किए हों। निधि (?) और पुस्तकधारी उनके दो हाथ हो और वे दस अश्वों से चालित रजत रथ पर आसीन हों।

शनि—मत्स्यपुराण[3] के अनुसार शनि इन्द्रनील की द्युति वाले हों और वे तीन हाथों में शूल, धनुष और बाण धारण किए हों तथा उनका एक हाथ वरद-मुद्रा में हो। यहाँ उनका वाहन गृध्र वर्णित है। विष्णुधर्मोत्तर[4] में उल्लेख है कि उनके केवल दो भुजाएँ हों, जिनमें वे दण्ड और अक्षमाला लिए हों। उनका और उनके वस्त्रों का वर्ण कृष्ण हो और वे आठ सर्पों से चालित लौह रथ पर आसीन हों। अंशुमद्भेदागम में वे पद्मपीठ पर स्थित बताए गए हैं।[5]

राहु—अग्निपुराण[6] के अनुसार राहु अर्धचन्द्र लिए हों और मत्स्यपुराण[7] के अनुसार विकरालमुख और नीलसिंहासनस्थ राहु अपने तीन हाथो में खड्ग, चर्म (खेटक) और शूल धारण किए हो और उनका एक हाथ वरद-मुद्रा मे हो। शिल्परत्न[8] मे भी राहु का ऐसा ही वर्णन मिलता है। विष्णुधर्मोत्तर[9] के अनुसार राहु आठ अश्वो से चालित रजत रथ पर आसीन हों। उनका केवल मस्तक ही प्रदर्शित हो, जिससे संयुक्त एक हाथ हो। उनके केश सीधे खड़े हों (ऊर्ध्वकेश) और नेत्र विस्फारित हो। एक मात्र चित्रित दायाँ हाथ खाली हो।

केतु—अग्निपुराण[10] के अनुसार केतु खड्ग और दीप लिए हों और मत्स्यपुराण[11] के अनुसार धूम्र वर्ण और विकृत मुख वाले तथा दोनों हाथों में गदा लिए हुए द्विभुज केतु को गृध्रासन पर निर्मित करना चाहिए। विष्णुधर्मोत्तर[12] के अनुसार केतु भौम के सदृश हों, किन्तु उनका रथ दस अश्वो द्वारा चालित हो। विश्वकर्मशिल्प[13] मे भी केतु का ऐसा ही वर्णन मिलता है।

अपराजितपृच्छा एवं रूपमण्डन मे समान रूप से उपलब्ध[14] प्रत्येक ग्रह के वर्ण, आयुध और लाञ्छन, वाहन अथवा आसन तथा अलकरण का सक्षिप्त विवरण यहाँ तालिका द्वारा प्रस्तुत किया गया है :

---

१ म० पु०, ९४, ५
२ वि० ध०, ६९, ३-६
३ म० पु०, ९४, ६
४ वि० ध० ६९, ६-७
५ *EHI*, I, II, p. 321.
६ अ० पु०, ५१, १२
७ म० पु०, ९४, ७
८ शि० र०, पृ० २६१
९ वि० ध०, ६९, ८-९
१० अ० पु०, ५१, १२
११ म० पु०, ९४, ८
१२ वि० ध०, ६९, १०
१३ शि० र०, पृ० २६१
१४ अपरा०, २१४, १०-१९; रूप०, २, १८-२४

ग्रह का नाम	वर्ण	आयुधादि		आसन अथवा वाहन	आभूषण
		दक्षिण हस्त	वाम हस्त		
सूर्य	रक्त	पद्म	पद्म	सात अश्वो से युक्त रथ	सभी किरीट,
सोम	श्वेत	कुमुद	कुमुद	दस अश्वो से युक्त रथ	माला तथा
भौम	रक्त	दण्ड	कमण्डलु	मेष	अन्य आभू-
बुध	पीत	योग-मुद्रा मे		सर्पासन	षणो से
गुरु	पीत	अक्षमाला	कमण्डलु	हंस	अलंकृत हों
शुक्र	श्वेत	अक्षमाला	कमण्डलु	दर्दुर	
शनि	कृष्ण	दण्ड	कमण्डलु	महिष	
राहु	धूम्र	मात्र अर्धकाय स्थिति		(हवन) कुण्ड-मध्य	
केतु	धूम्र	अजलि-मुद्रा मे जुड़े		केतु के शरीर का अधः भाग सर्प-पुच्छाकृत	

भट्टाचार्य के अनुसार नवग्रहों की प्रतिमाओं का प्रादुर्भाव उनके अधिदेवों की प्रतिमाओ से हुआ है, जैसे चन्द्र का प्रादुर्भाव वरुण से, मगल का कार्तिकेय से, बुध का विष्णु से, बृहस्पति का ब्रह्मा से, शुक्र का शक्र अथवा इन्द्र से, शनि का यम से, राहु का सर्प से और केतु का मगल से।[१]

उत्तर एवं दक्षिण भारतीय नवग्रह-चित्रण में अन्तर

भारत के अनेक मन्दिरों में नवग्रह-प्रतिमाएँ मिलती हैं। उत्तरभारतीय मन्दिरों मे इनकी पृथक्-पृथक् मूर्तियाँ नहीं उपलब्ध हैं, वरन् सभी ग्रह सामूहिक रूप से शिलापट्टों पर पंक्तिबद्ध चित्रित मिलते हैं। ऐसे नवग्रह-पट्ट अधिकाशतया मन्दिरों के प्रवेशद्वारो पर उत्तरंग के रूप मे प्रयुक्त हुए हैं। इसके विपरीत दक्षिणभारतीय मन्दिरो मे प्रत्येक ग्रह की पृथक्-पृथक् मूर्तियाँ प्राप्त हैं और उनकी स्थापना भी प्रत्येक ग्रह के लिए अलग-अलग बने मण्डपों में हुई है।[२] उत्तर और दक्षिण भारतीय नवग्रह-चित्रण मे यह एक विशेष अन्तर है।[3] दक्षिण के मन्दिरो मे स्थापित ग्रह-प्रतिमाओ के विषय मे यहाँ तक कहा गया है कि वे किसी मन्दिर मे उसी दिशा और क्रम मे स्थापित की गई है, जिस क्रम मे मन्दिर-निर्माण के समय वे ग्रह वास्तविक राशि-मण्डल मे थे। यदि इस कथन मे कुछ भी सत्यता है तो किसी मन्दिर मे स्थापित नवग्रह-प्रतिमाएँ उस मन्दिर की सम्भावित निर्माण-तिथि ज्ञात करने मे एक नया साधन बन सकती हैं।[४]

---

१ उन्होंने नवग्रह-लाञ्छन-प्रतीकों से इस प्रादुर्भाव को अधिक स्पष्ट किया है : "The attributes of water lilies, etc., in the case of Chandra as indicating his aquatic nature, those of *Śakti*, etc., in the case of Maṅgala indicating his warlike character, those of Viṣṇu, in the case of Budha, signifying his nature of intelligence, the symbols of *Akṣamālā*, book, etc., in the case of Bṛhaspati indicating his nature of penance and meditation, those of treasure, etc., in the case of Śukra indicating his kingly nature and those of staff, etc., in the case of Śani indicating his destructive nature, and so on, have a special reference to the iconic development."—*II*, pp. 32-33.

२ *EHI*, I, II, p. 300.

३ Sivaramamurti, C., *AI*, No. 6, p. 35

४ *EHI*, I, II, p. 300.

अन्य स्थानों के कुछ विशेष चित्रण

नवग्रह-प्रतिमा-समूह के पूर्ववर्ती चित्रणो मे सारनाथ से उपलब्ध (अब इण्डियन म्यूजियम स० १५३६) उत्तर गुप्तकालीन एक अर्ध शिलापट्ट उल्लेखनीय है, जिसमें अब चार ग्रहो—बृहस्पति, शुक्र, शनि और राहु—की प्रतिमाएँ मात्र शेष है। चारो ग्रह द्विभुज हैं, जिनमें तीन बड़े लालित्यपूर्ण ढग से खडे है और ऊर्ध्वकेश तथा विकरालमुख राहु का अर्ध शरीर मात्र चित्रित है। राहु को छोड़कर, सब के मस्तकों के पीछे प्रभामण्डल है और उनके दाएँ हाथ में अक्षमाला है। बृहस्पति और शुक्र के बाएँ हाथ में कमण्डलु का चित्रण है, किन्तु शनि का यह हाथ खण्डित है। राहु के हाथ तर्पण-मुद्रा मे है। इस पट्ट में केतु-प्रतिमा अनुपस्थित है, क्योकि अन्त मे राहु-चित्रण के पश्चात् पट्ट मे किसी अन्य प्रतिमा के रहे होने के सकेत नही है। इस प्रकार इस समूह मे केवल आठ ग्रहो का ही चित्रण हुआ है (प्रथम चार ग्रह-प्रतिमाएँ नष्ट हो गई हैं)।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि आठ ग्रहों के समूह के चित्रण की परम्परा अपेक्षाकृत प्राचीन है, और बाद में इनके साथ केतु को संयुक्त कर नवग्रह-समूह के चित्रण का श्रीगणेश हुआ है। इस तथ्य की पुष्टि भुवनेश्वर के ग्रह-पट्टों के अवलोकन से हो जाती है। वहाँ के प्राचीनतम मन्दिर, शत्रुघ्नेश्वर (५७५ ई०), मे प्राप्त ग्रह-पट्ट मे भी केतु को छोड़कर आठ ग्रहों की ही प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। इस मन्दिर मे ही नही, आठ ग्रह-समूह के चित्रण की विशेषता वहाँ के सभी पूर्ववर्ती मन्दिरो मे भौम सास्कृतिक युग के अन्त तक (अर्थात् ९वी शती ई० के अन्त तक) देखी जा सकती है।[2] इसके बाद के मन्दिरो में ही केतु-सहित नवग्रह-चित्रण प्राप्त होते हैं। इस प्रकार वहाँ दो प्रकार के ग्रह-पट्ट केतु-विहीन और केतु-सहित, उपलब्ध है। केतु-विहीन पट्टों मे राहु और रवि को छोड़कर, सब ग्रह दाहिने हाथ मे अक्षमाला और बाएँ मे कमण्डलु लिए हैं। रवि के दोनो हाथ पद्मधारी है। राहु अपने हाथों को तर्पण-मुद्रा मे किए अर्धकाय चित्रित हैं। दूसरे प्रकार के पट्टों मे रवि, राहु और केतु को छोड़कर, सभी ग्रह बाएँ हाथ मे कमण्डलु लिए भूमि-स्पर्श-मुद्रा में बैठे उत्कीर्ण है। सूर्य के दोनो हाथों मे पद्म है। अर्धकाय राहु के हाथ तर्पण-मुद्रा में और केतु सर्प-पुच्छ-युक्त चित्रित है। कभी-कभी राहु की खुली हथेली मे चन्द्र का और केतु के हाथों मे खड्ग और खेटक का चित्रण भी द्रष्टव्य है। सामान्यतया बृहस्पति और कभी-कभी बृहस्पति-शुक्र दोनो लम्बकूर्च देखे जा सकते हैं।[3]

परवर्ती कुछ नवग्रह-पट्टों में (विशेष रूप से बगाल के) नवग्रह-समूह-चित्रण गणपति-प्रतिमा से प्रारम्भ हुआ है। उदाहरणार्थ कलकत्ता विश्वविद्यालय के आशुतोष सग्रहालय का एक शिलापट्ट देखा जा सकता है, जिसमें सबसे पहले गणेश फिर नवग्रह पद्मपीठो पर मनोहारी ढंग से एक पक्ति मे उत्कीर्ण है। विशेष अलकृत लम्बे आयताकार शिलाखण्ड पर इन प्रतिमाओ के ऐसे सुन्दर चित्रण से सिद्ध होता है कि इस पट्ट का निर्माण नियमित पूजा के लिए हुआ है, प्रवेश-द्वार पर लगने वाले उत्तरंग के रूप मे नहीं।[4] ऐसा दूसरा शिलाखण्ड इण्डियन म्यूजियम में

१ *DHI*, p. 444, Pl. XXXI, Fig. 1.
२ *ARB*, p. 69.
३ वही, पृ० १३२
४ *DHI*, pp. 444-45, Pl. XXXI, Fig. 2.

उपलब्ध है, जिस में सर्वप्रथम गणेश फिर नवग्रह अंकित हैं। नवग्रहों के पश्चात् इस शिलाखण्ड में विष्णु के दशावतारों का भी अंकन हुआ है।[१]

खजुराहो के नवग्रह-पट्ट

उत्तरभारतीय अन्य नवग्रह-पट्टों[२] की भाँति खजुराहो में भी नवग्रह सामूहिक रूप से शिलापट्टों मे पक्तिबद्ध उत्कीर्ण हैं। ऐसे उल्लेखनीय ३६ पट्ट लेखक को मिले हैं, जिनमें एक अब राजकीय संग्रहालय, धुबेला (म० प्र०) में है। इनके अतिरिक्त, कुछ पट्ट अत्यधिक खण्डित अवस्था में भी हैं, जिनमे कोई विशेषता नहीं है। इन शिलापट्टों का प्रयोग अधिकांशतः मन्दिरों मे गर्भगृह-द्वार के उत्तरंग के रूप में हुआ है। इस रूप में प्रयुक्त वे लक्ष्मण मन्दिर के गौण मन्दिरों (उत्तर-पश्चिमी गौण मन्दिर को छोड़ कर, जिसके प्रवेश-द्वार मे वीरभद्र और गणेश के साथ नृत्य करती सप्तमातृकाओं का चित्रण है), विश्वनाथ के दक्षिण-पश्चिमी कोने के गौण मन्दिर, प्रधान लक्ष्मण, पार्श्वनाथ, जवारी, चतुर्भुज तथा दूलादेव मन्दिरों मे द्रष्टव्य है।

खजुराहो मे न तो सूर्य के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रह की पृथक् प्रतिमाएँ उपलब्ध है और न कोई नवग्रह-पट्ट ऐसा ही मिला है, जो उपर्युक्त आशुतोष संग्रहालय के शिलापट्ट की भाँति पूर्णतया नियमित पूजा के लिए प्रयुक्त होता रहा हो। खजुराहो संग्रहालय में भी अनेक सुन्दर नवग्रह-पट्ट हैं (चित्र ८३ और ८४), किन्तु वे स्थापत्य में ही प्रयुक्त हुए प्रतीत होते हैं। कुछ नवग्रह-पट्ट कुछ मन्दिरों की जगती में भी जुडे मिलते है। ये पूर्व मध्ययुगीन पट्ट मन्दिरो के वर्तमान जीर्णोद्धार के समय जोड़े गए हैं।

उपर्युक्त इण्डियन म्यूजियम के शिलापट्ट और भुवनेश्वर के पूर्ववर्ती शिलापट्टों-जैसे पट्ट खजुराहो में नही मिले हैं, जिनमें आठ ग्रहों (केतु को छोडकर) के समूह का ही चित्रण हो। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि लेखक को तीन पट्ट ऐसे देखने को मिले है (एक धुबेला संग्रहालय मे है), जिनमें केतु सर्प-पुच्छ-युक्त नारी के रूप मे चित्रित है। एक पट्ट[3] मे यह नारी-प्रतिमा अजलि-मुद्रा में हाथ जोड़े है और दो पट्टो[४] में इसका दाहिना हाथ अभय-मुद्रा में और बायाँ घट-युक्त है (चित्र ८४)[५]। नारी-रूप में केतु के चित्रण का अभिप्राय समझना कठिन है।

डॉ० बनर्जी का कथन कि सामान्यतः नवग्रह-प्रतिमाएँ खडी मिलती है और उनके बैठे चित्रण दुर्लभ है,[६] खजुराहो मे खरा नही उतरता। वहाँ समान रूप से दोनों प्रकार की, खड़ी और बैठी, प्रतिमाओं से अकित शिलापट्ट उपलब्ध हैं। पहले प्रकार के पट्टो मे सूर्य समभंग और राहु-केतु को छोड़ कर अन्य ग्रह द्विभंग अथवा त्रिभंग खड़े चित्रित है[७] (चित्र ८३)। दूसरे प्रकार

---

१ Cabinet 17, No. 4182, Bloch, T., *Supplementary Catalogue*, p. 83.

२ Ganguly, M., *Handbook to the Sculptures in the Museum of the Bangiya Sahitya Parishad*, pp. 79-81, Pl. XVIII; Indian Museum Cabinet 20, Nos. 4167, 4168, 4169, Bloch, T., *op. cit.*, p. 80; State Museum Lucknow, No. H99, *II*, p. 32, Pl. XXII.

३ पट्ट सं० १६; तुल० अन्यत्र उपलब्ध एक नवग्रह-पट्ट, Bajpai, K. D , *Sâgar Through the Ages*, Pl. X (a).

४ पट्ट सं० ६, ३६

५ पट्ट सं० ६

६ *DHI*, p. 144.

७ पट्ट सं० ४, ६, ७, ८, १०-१४, १८, २०, २३, २५, २७-३२, ३५, ३६

के पट्टों[1] में सूर्य उत्कुटकासन में (एक पट्ट[2] में सूर्य पद्मासन भी चित्रित हैं) और राहु-केतु को छोड़कर, सब ग्रह ललितासन में बैठे हैं (चित्र ८४)[3]। दोनों प्रकार के पट्टों में राहु अर्धकाय (शरीर का ऊर्ध्व भाग मात्र) चित्रित है और नवग्रह-पंक्ति के अन्त में सर्प-पुच्छ-युक्त केतु का चित्रण है। सामान्यतः राहु-प्रतिमाएँ विस्फारित नेत्र, ऊर्ध्वकेश तथा विकराल दर्शन वाली हैं, किन्तु दो पट्टों[4] में राहु-प्रतिमा सौम्यवदन भी दर्शनीय है। कुछ पट्टों[5] को छोड़ कर, सामान्यतः सब पट्टों में केतु के सिर के ऊपर सर्पफण का घटाटोप भी दर्शनीय है (चित्र ८३)। इस प्रकार खजुराहो में राहु और केतु का चित्रण परम्परानुसार ही हुआ है।

एक पट्ट[6] को छोड़कर, अन्य पट्टो मे सभी ग्रह-प्रतिमाएँ द्विभुजी चित्रित है। सूर्य दोनों हाथों में पूर्ण विकसित पद्म धारण किए हैं और अन्य ग्रहों (राहु-केतु को छोड़कर) का दाहिना हाथ अभय-मुद्रा में और कमण्डलु-युक्त बायाँ नीचे लटकता हुआ चित्रित है। राहु के दोनों हाथों की हथेलियाँ मात्र ही सामने तर्पण-मुद्रा में प्रदर्शित हैं और केतु के हाथ अंजलि-मुद्रा में जुड़े चित्रित है (चित्र ८३)।

इस दृष्टि से एक पट्ट[7] विशेष दर्शनीय है, जिसमें चार ग्रह—मंगल, गुरु, शनि और केतु—चतुर्भुज हैं। मंगल का पहला हाथ अभय-मुद्रा में है और शेष हाथों में वे क्रमशः कमल, पुस्तक और कमण्डलु लिए है। गुरु का पहला हाथ खण्डित है, शेष क्रमशः स्रुक्, पुस्तक एवं कमण्डलु-युक्त है। शनि का पहला हाथ अभय-मुद्रा मे और दूसरा कमल-युक्त है और शेष दो गुरु के सदृश हैं। केतु के पहले दो हाथ भग्न है और तीसरे तथा चौथे गुरु और शनि के सदृश पुस्तक और कमण्डलु-युक्त है। अन्य पट्टो के सदृश इस मे भी सूर्य दोनों हाथो मे पद्म धारण किए हैं और सोम, बुध तथा शुक्र का दाहिना हाथ अभय-मुद्रा मे और बायाँ कमण्डलु-युक्त है। इस पट्ट की एक अन्य विशेषता यह है कि प्रारम्भ में सूर्य, केन्द्र मे गुरु और अन्त मे केतु एक-एक रथिका में प्रदर्शित हुए हैं। सूर्य और गुरु बैठे, राहु अर्धकाय मात्र और केतु सर्प-पुच्छ-युक्त हैं तथा अन्य ग्रह सामान्य रूप से त्रिभंग खड़े हैं।

सामान्यतः सभी पट्टों मे सूर्य किरीट-मुकुट से अलंकृत हैं। राहु और केतु को छोड़कर, अन्य ग्रह अधिकाश पट्टो मे जटा-मुकुट और कुछ[8] मे करण्ड-मुकुट धारण किए है। मुकुट के अतिरिक्त, वे वनमाला-सहित सामान्य खजुराहो-आभूषणों से अलंकृत हैं। सामान्यतः राहु के सिर पर ऊर्ध्व-केश है (एक-दो पट्टो मे ऊर्ध्वकेश नही चित्रित हैं, जैसे चित्र ८४) और केतु के सिर पर तीन, पाँच अथवा सात सर्प-फणो का घटाटोप प्रदर्शित है। कुछ पट्टो[9] मे ग्रहों (राहु केतु को छोड़कर और

---

१ पट्ट सं० ६, ११-१७, १६, २१, २२, २४, २६, ३३, ३४

२ पट्ट सं० २४

३ पट्ट सं० ६

४ पट्ट सं० ६ (चित्र ८४), ८

५ पट्ट सं० १०, १६ आदि।

६ पट्ट सं० ४

७ वही।

८ पट्ट सं० १६, २८

९ पट्ट सं० २, ४, ७, ८ आदि।

कभी-कभी मात्र राहु को छोड़कर) के मस्तकों के पीछे पृथक्-पृथक् प्रभामण्डल भी चित्रित हैं (चित्र ८३)। एक पट्ट[1] में शनि लम्बकूर्च भी देखे जा सकते हैं।

उपर्युक्त लखनऊ और आशुतोष संग्रहालयों के पट्टों में ग्रह-प्रतिमाओं के नीचे उनके वाहनों की छोटी आकृतियाँ चित्रित मिलती हैं, किन्तु खजुराहो में दो पट्टों के अतिरिक्त सामान्यतः वाहनों का चित्रण नहीं हुआ है। एक पट्ट[2] में सूर्य के नीचे उनके रथ के पाँच अश्व चित्रित है और मंगल के नीचे एक छोटी-सी पक्षी की तथा बुध के नीचे छोटे-से गज की आकृति है। मंगल और बुध के वाहन उपलब्ध किसी शास्त्रानुसार चित्रित नहीं जान पड़ते हैं। दूसरे पट्ट[3] (चित्र ८३) में राहु-केतु को छोड़कर, प्रत्येक ग्रह के नीचे बाएँ चरण के निकट इस प्रकार एक-एक आकृति अंकित मिलती है (चित्र में ये आकृतियाँ अधिक स्पष्ट नहीं है) : सूर्य के नीचे एक अश्व के मस्तक का चित्रण है, जिससे सप्ताश्व रथ की ओर संकेत हुआ प्रतीत होता है। सोम के नीचे भी किसी पशु का सिर अंकित है, जो उनके रथ के दस अश्वों का प्रतिनिधि माना जा सकता है। मंगल के नीचे घट-जैसे किसी पात्र की छोटी आकृति है, जिसके चित्रण का तात्पर्य कहना कठिन है। बुध के नीचे पुनः किसी पशु का मस्तक मात्र उत्कीर्ण है, जिससे मत्स्यपुराण द्वारा निर्दिष्ट बुध के सिंह वाहन की ओर संकेत किया गया प्रतीत होता है। बृहस्पति के नीचे उत्कीर्ण पक्षी की आकृति परवर्ती शास्त्रों—रूपमण्डन और अपराजितपृच्छा—में वर्णित उनका वाहन हंस हो सकता है। शुक्र और शनि के नीचे की आकृतियाँ अत्यन्त छोटी है, जिनके क्रमशः दर्दुर और गृध्र होने की सम्भावना है। सभी पट्टों मे राहु का अर्धकाय चित्रण अपराजितपृच्छा और रूपमण्डन के विवरण से साम्य रखता है, जहाँ वे कुण्ड के मध्य वर्णित हैं। खजुराहो में नवग्रह-पट्टों से पृथक् उपलब्ध सूर्य प्रतिमाओं के सदृश कुछ पट्टों[4] में सूर्य के चरणों के समक्ष समभंग खड़ी (चित्र ८३) अथवा पद्मासन-मुद्रा में बैठी भूदेवी का अंकन भी देखा जा सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि खजुराहो-शिल्पी ने नवग्रह-चित्रण में शास्त्र-निर्दिष्ट लक्षणों का पूर्ण अनुकरण नहीं किया है। फिर भी कुछ ग्रह पूर्णतया शास्त्रानुसार ही चित्रित है। सूर्य के दोनों हाथों के पद्म तथा कुछ पट्टों में प्रदर्शित उनके उपानह, वर्म तथा अश्वों के चित्रण शास्त्र-निर्देशानुसार ही हुए हैं। राहु के ऊर्ध्व शरीर मात्र के चित्रण में विष्णुधर्मोत्तर के निर्देश (केवल मस्तक-कार्य) का पालन हुआ है। इसी परम्परा का अनुकरण अपराजितपृच्छा एवं रूपमण्डन में भी हुआ है (अर्धकायस्थितो राहुः)। इसी प्रकार इन्हीं ग्रन्थों के वर्णन से साम्य रखते केतु के हाथ अंजलि-मुद्रा में जुड़े (करपुटाकृतिः) चित्रित है। अन्य ग्रहों द्वारा बाएँ हाथ में धारण किए गए कमण्डलु का चित्रण भी शास्त्र-परम्परागत हुआ जान पड़ता है। इनके अतिरिक्त, अन्य विशिष्टताओं के प्रदर्शन में खजुराहो-शिल्पी ने जहाँ एक ओर उत्तरभारतीय नवग्रह-चित्रण की परम्परा का अनुकरण किया है, वहाँ दूसरी ओर उसने स्वच्छन्दता भी बरती है।

---

१ पट्ट सं० [illegible]
२ पट्ट सं० ४
३ पट्ट सं० ७
४ पट्ट सं० ४, ७, ८, २४, २१ आदि।

परिशिष्ट (अध्याय ५)

नवग्रह-पट्टों के प्राप्ति-स्थान

पट्ट सं०	प्राप्ति-स्थान
१	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पूर्वी गौण मन्दिर, गर्भगृह-द्वार का उत्तरंग।
२	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, गर्भगृह-द्वार का उत्तरंग।
३	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, गर्भगृह-द्वार का उत्तरग।
४	लक्ष्मण मन्दिर, अन्तर्भाग, गर्भगृह-द्वार, उत्तरग की ऊर्ध्व पट्टिका।
५	जगदम्बी मन्दिर, जगती।
६	खजुराहो सग्रहालय के प्रवेश-द्वार का उत्तरग।
७	खजुराहो सग्रहालय, स० ४३६
८	वही, स० ४६०
९	वही, स० ४४४
१०	वही, स० १३७५
११	वही, स० १३६३
१२	वही, स० १४६६
१३	वही, स० १८७४
१४	वही, सं० ४४१
१५	वही, स० १४६७
१६	वही, सं० १४५५
१७	वही, सं० १४६२
१८	वही, सं० १४०२
१९	वही, सं० १३६३
२०	वही, सं० १३६५
२१	वही, सं० १३६७
२२	वही, सं० १३६२
२३	दूलादेव मन्दिर, गर्भगृह-द्वार, उत्तरग।
२४	चतुर्भुज मन्दिर, गर्भगृह-द्वार, उत्तरग।
२५	जवारी मन्दिर, गर्भगृह-द्वार, उत्तरंग।
२६	घंटई मन्दिर, द्वार-उत्तरंग।
२७	पार्श्वनाथ मन्दिर के पीछे संयुक्त छोटे मन्दिर का द्वार-उत्तरंग।
२८	पार्श्वनाथ मन्दिर, महामण्डप-द्वार, उत्तरंग।

पट्ट सं०	प्राप्ति-स्थान
२६	पार्श्वनाथ मन्दिर, गर्भगृह-द्वार, उत्तरंग।
३०	शांतिनाथ मन्दिर (एक आधुनिक मन्दिर), गर्भगृह-द्वार, उत्तरंग (मध्यकालीन)।
३१	शांतिनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, उत्तर-पश्चिमी कोने के छोटे (आधुनिक) मन्दिर के द्वार में लगा (मध्यकालीन) उत्तरंग।
३२	कन्दरिया मन्दिर, जगती, दक्षिण-पूर्व की ओर।
३३	वही।
३४	विश्वनाथ मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, द्वार-उत्तरंग।
३५	खजुराहो संग्रहालय, सं० ४४४
३६	राजकीय संग्रहालय, धुबेला (म० प्र०), सं० १८६

अष्टदिक्पाल

९

अष्टदिक्पाल

पौराणिक देवशास्त्र के अनुसार विश्व की आठ दिशाएँ आठ संरक्षक देवताओं द्वारा शासित है, जिन्हे दिक्पाल अथवा लोकपाल कहा गया है। इन देवताओ और इनके द्वारा शासित दिशाओं के नाम इस प्रकार है

१. इन्द्र — पूर्व,
२. अग्नि — दक्षिण-पूर्व,
३. यम — दक्षिण,
४. निर्ऋति — दक्षिण-पश्चिम,
५. वरुण — पश्चिम,
६. वायु — उत्तर-पश्चिम,
७. कुबेर — उत्तर, तथा
८. ईशान — उत्तर-पूर्व।

दिक्पालो की परम्परा अत्यन्त प्राचीन होते हुए भी पूर्ववर्ती ग्रन्थो मे उनकी सख्या और नामो मे बडी भिन्नता पाई जाती है। अथर्ववेद[1] मे छः लोको का उल्लेख है और प्रत्येक लोक को दो प्रकार के देवताओ, 'अधिपति' और 'रक्षिता', से सयुक्त बताया गया है। अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, विष्णु तथा बृहस्पति—अधिपति और असित, तिरश्चिराज, पृदाकु, स्वज, कल्माषग्रीव तथा श्वित्र नामक सर्प—रक्षिता कहे गए है। यहाँ पर ईशान और कुबेर का उल्लेख नही हुआ है और उनके स्थान विष्णु और बृहस्पति को प्रदान किए गए है। कृष्णयजुर्वेद[2] मे भी इसी प्रकार छः अधिपतियों एवं रक्षिताओ का उल्लेख है, किन्तु वहाँ विष्णु का स्थान यम को मिला है। निस्सन्देह परवर्ती हिन्दू देवशास्त्र के चार अथवा आठ लोकपालो (दिक्पालो) के समूह के विचार का उद्भव इन्ही उत्तरकालीन सहिताओं से हुआ है। गोभिल-गृह्यसूत्र[3] मे दस दिशाओं और उनके दस अधिपतियो के नाम इस प्रकार मिलते है : इन्द्र (पूर्व), वायु (दक्षिण-पूर्व), यम (दक्षिण), पितृ (दक्षिण-पश्चिम), वरुण (पश्चिम), महाराज (उत्तर-पश्चिम), सोम (उत्तर), महेन्द्र (उत्तर-

१ अथर्व०, ३, २७, १-६ ; तुल० अथर्व०, ३, २६, १-६
२ तैत्तिरीय संहिता, ५, ५, १०
३ गोभिल-गृह्यसूत्र, ४, ७, ४१; तुल० Vogel, J. Ph., *Indian Serpent-lore*, p. 198.

पूर्व), वासुकि (पाताल) और ब्रह्मा (आकाश) । इस प्रकार यह शास्त्र परवर्ती जैन देवशास्त्र में विकसित दस दिक्पालों के लिए महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है ।

महाकाव्यो मे लोकपालों अथवा दिक्पालों के नाम और उनकी संख्या सदैव एक-समान नही वर्णित है, किन्तु सामान्यत. उनकी संख्या चार बताई गई है। वाल्मीकि ने चार लोकपालों—इन्द्र (पूर्व), यम (दक्षिण), वरुण (पश्चिम) तथा कुबेर (उत्तर) को मान्यता प्रदान की है।[१] महाभारत मे एक स्थान पर वे इन्द्र, अग्नि, वरुण तथा यम और दूसरे स्थान मे यम, इन्द्र, कुबेर और वरुण उल्लिखित हैं।[२] हॉपकिन्स का विचार कि अग्नि, यम, वरुण और इन्द्र का समूह अपेक्षाकृत पुराना है और बाद मे कुबेर को अग्नि का स्थान प्रदान कर दिया गया है,[३] उचित प्रतीत होता है। मनुस्मृति[४] में आठ लोकपालो के नाम इस प्रकार मिलते है—सोम (चन्द्र), अग्नि, अर्क (सूर्य), अनिल (वायु), इन्द्र, वित्तपति (कुबेर), आपपति (वरुण) तथा यम। पौराणिक देवशास्त्र के अष्टदिक्पालों की सूची से इस सूची मे अधिक भिन्नता नही है, केवल निर्ऋति और ईशान के स्थान पर यहाँ सूर्य एव चन्द्र का उल्लेख है ।

चार मुख्य दिशाओ से सम्बन्धित चार देवताओं के नाम बौद्ध देवशास्त्र मे भी मिलते है। संस्कृत बौद्ध ग्रन्थो मे इन चार देवताओं के समूह की एक-जैसी सूची इस प्रकार प्राप्त होती है—धृतराष्ट्र (पू०), विरूढक (द०), विरूपाक्ष (प०) एव वैश्रवण (उ०) । कुछ बौद्ध ग्रन्थो मे इन्हे चतुर्महाराज भी कहा गया है।[५] पौराणिक अष्टदिक्पालो की सूची से मिलती-जुलती इन देवो की सूची जैन साहित्य मे भी उपलब्ध है।[६]

अष्टदिक्पाल-चित्रण खजुराहो-मन्दिरो की एक विशेषता है। मन्दिर-जंघा अथवा सान्धार प्रासाद मे गर्भगृह की अधः मूर्ति-पंक्ति मे पौराणिक देवशास्त्र द्वारा निर्दिष्ट दिशाओ की ओर वे अंकित हैं। सामान्यत. मन्दिरों के प्रत्येक कोने में दो-दो दिक्पाल युगल रूप मे चित्रित है. दक्षिण-पूर्व में इन्द्र एव अग्नि, दक्षिण-पश्चिम मे यम एवं निर्ऋति, उत्तर-पश्चिम मे वरुण एव वायु (चित्र ६५) तथा उत्तर-पूर्व में कुबेर एव ईशान। लक्ष्मण एवं विश्वनाथ के गौण मन्दिरो,[७] पार्श्वनाथ, आदिनाथ, जवारी[८] एवं चतुर्भुज मन्दिरो की जघा पर अपेक्षित स्थानो मे उनका चित्रण मात्र एक बार हुआ है। कुछ मन्दिरो, जैसे जगदम्बी,[९] चित्रगुप्त,[१०] कन्दरिया-महादेव,[११] वामन[१२] एव दूलादेव की

---

१ रामा०, ३, १६, २४

२ Hopkins, E. W , *Epic Mythology*, p. 149.

३ वही

४ मनु०, ५, ९६

५ *DHI*, pp 521-22.

६ जैन सूची के दिक्पाल इस प्रकार हैं- इन्द्र (पू०), अग्नि (द०-पू०), यम (द०), नैऋत (द०-प०), वरुण (प०), वायु (उ०-प०), कुबेर (उ०), ईशान (उ०-पू०), ब्रह्मा (आकाश लोक) तथा नाग (पाताल लोक)। इस श्वेताम्बर सूची में ब्रह्मा और नाग के दो अतिरिक्त नाम हैं, किन्तु दिगम्बर पौराणिक अष्टदिक्पालों की सूची जैसी ही स्वीकार कर लेते हैं (Bhattacharya, B. C., *Jain Iconography*, pp. 147–57) ।

७ लक्ष्मण मन्दिर के दक्षिण-पूर्वी कोने के गौण मन्दिर में वरुण-वायु के युगल के स्थान पर त्रुटिवश वरुण-इन्द्र चित्रित हो गए हैं और इस प्रकार वायु का चित्रण छूट गया है।

८ इस मन्दिर में सब दिक्पाल रथिकाओं में प्रदर्शित हैं।

९ इस मन्दिर में वरुण-वायु युगल एक बार ही चित्रित है।

१० इस मन्दिर में कुबेर-ईशान का एक युगल तथा एक वायु-प्रतिमा नष्ट हो गई है।

११ इसमें यम-निर्ऋति युगल एक बार ही चित्रित है।

१२ इस मन्दिर में ईशान की एक प्रतिमा नष्ट हो गई है।

जंघा पर उनका चित्रण दो बार हुआ है। लक्ष्मण,[1] पार्श्वनाथ, विश्वनाथ एवं कन्दरिया-महादेव जैसे सान्धार प्रासादों के भीतर गर्भगृह में भी उनका चित्रण है। इस प्रकार एक मन्दिर में एक, दो अथवा तीन बार तक उनका चित्रण मिलता है।

खजुराहो की भाँति भुवनेश्वर-मंदिरों में भी अष्टदिक्पालों का चित्रण द्रष्टव्य है। वहाँ वे सर्वप्रथम परशुरामेश्वर मंदिर (६५० ई०) के जगमोहन में देखे जा सकते हैं, यद्यपि उनका चित्रण अपेक्षित दिशाओं में नहीं है।[2] अपेक्षित दिशाओं में उनके चित्रण का प्रारम्भ ब्रह्मेश्वर मन्दिर (१०६१ ई०) से हुआ और वहाँ मन्दिर-निर्माण के अंतिम दिवसों तक यह परिपाटी चलती रही।[3] गंगकालीन मन्दिरों के विमान एवं जगमोहन में दिक्पालों के ठीक ऊपर उनकी शक्तियाँ भी उत्कीर्ण हैं, जो अपने स्वामियों के वाहनों और आयुधों से युक्त हैं। उदाहरणार्थ अनन्तवासुदेव मन्दिर में दण्ड और पाश से युक्त महिषासीना यमी तथा गजारूढा वज्रयुक्ता इन्द्राणी दर्शनीय हैं।[4] खजुराहो में इस प्रकार दिक्पालों की शक्तियाँ नहीं उत्कीर्ण हैं, किन्तु कुछ दिक्पालों की आलिंगन-मूर्तियाँ अवश्य उपलब्ध हैं।

१. इन्द्र

इतिहास

गोपीनाथ राव ने दिक्पाल-प्रतिमाओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि वैदिक काल में इन आठों देवताओं का प्रमुख स्थान था।[5] राव का यह विचार त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि कम से कम दो दिक्पाल—कुबेर और ईशान—वैदिक काल में प्रमुख देवता नहीं थे। पतंजलि ने भी शिव और, वैश्रवण (ईशान और कुबेर) को लौकिक देवता माना है।[6] वस्तुतः ईशान और कुबेर को छोड़कर छः वैदिक देवता हैं, जिनमें इन्द्र सब से प्रमुख हैं।

इन्द्र की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत हैं। ऋग्वेद में कहा गया है कि इन्हें देवताओं ने एक राक्षस के नाश करने के लिए उत्पन्न किया था।[7] एक अन्य स्थान पर इन्द्र तथा कुछ अन्य देवताओं के जनक सोम बताए गए हैं।[8] पुरुषसूक्त के अनुसार इन्द्र और अग्नि विश्व-पुरुष के मुख से आविर्भूत हुए हैं।[9] ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार इन्द्र को प्रजापति ने उत्पन्न किया था।[10] ऋग्वेद के समय से ही वज्र और अंकुश इन्द्र के प्रमुख आयुध चले आ रहे हैं। बहुधा वर्णन आता है कि उनके लिए त्वष्टा ने वज्र बनाया था।[11] साथ में यह भी उल्लेख मिलता है कि उशना ने इसे बना

---

१ इस मंदिर की जंघा पर दिक्पाल-प्रतिमाओं का चित्रण नहीं है।

२ *ARB*, pp. 70-71.

३ वही, पृ० १५३

४ वही, पृ० १५४

५ *EHI*, II, II, p 515.

६ *DHI*, p. 522.

७ ऋ०, ३, ४९, १

८ वही, ९, ९६, ५

९ वही, १०, ९०, १३

१० शत० ब्रा०, ११, १, ६, १४; तै० ब्रा०, २, २. १०, ६१; महाभारत (शां०, १२, १२, ११) में भी इन्द्र ब्रह्मा के पुत्र माने गए हैं : इन्द्रो वै ब्रह्मणः पुत्रः कर्मणा क्षत्रियोऽभवत्।

११ ऋ०, १, ३२, २

कर इन्द्र को अर्पित किया था।[१] ऋग्वेद और अथर्ववेद में इन्द्र के पास एक अंकुश भी बताया गया है, जिससे वे धन बाँटते थे।[२] अंकुश का प्रयोग शस्त्र के रूप में भी किए जाने का उल्लेख है।[३] कभी-कभी इन्द्र द्वारा धनुष-बाण धारण किए जाने[४] तथा उनके पास एक जाल होने का भी उल्लेख है।[५] ऋग्वेद में इन्द्र की पत्नी के विषय में भी कुछ संकेत मिलते हैं।[६] उस सूक्त में जिसमे वह इन्द्र से वार्तालाप करती हुई प्रस्तुत की गई है, उनका नाम इन्द्राणी उल्लिखित है।[७] शतपथ ब्राह्मण स्पष्ट शब्दो मे इन्द्राणी को इन्द्र की पत्नी बताता है,[८] किन्तु ऐतरेय ब्राह्मण में उनकी पत्नी का नाम प्रसहा उल्लिखित है।[९] तैत्तिरीय सहिता मे इन्द्र अपनी प्रभुता के लिए यज्ञपुरुष विष्णु से प्रतिस्पर्धा करते देखे जाते है। शतपथ ब्राह्मण मे इन्द्र, अग्नि और सूर्य द्वारा देवताओं मे प्रमुख स्थान प्राप्त किए जाने का उल्लेख है। इस प्रकार परवर्ती त्रिमूर्ति का यह उद्भव माना जा सकता है।[१०]

रामायण मे एक कथा मिलती है कि इन्द्र ने अपने गुरु ऋषि गौतम की पत्नी अहल्या के सतीत्व-हरण का अपराध किया था। महाभारत में भी ऐसा उल्लेख है कि गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या का सतीत्व भ्रष्ट करने के कारण गौतम के शाप से इन्द्र के शरीर मे सहस्रों योनिद्वार बन गए थे, जो आंखों के समान हो गए।[११] इसीलिए वे सहस्रदृक्,[१२] सहस्रनयन[१३] आदि कहे गए है। इस महाकाव्य में इन्द्र को अर्जुन का पिता कहा गया है। उल्लेख है कि कुन्ती के द्वारा आह्वान किए जाने पर इन्द्र ने प्रकट होकर अपने अंश से अर्जुन को उत्पन्न किया था।[१४] इन्द्र के वाहन श्वेत ऐरावत गज का उल्लेख भी इस महाकाव्य मे हुआ है।[१५] पुराणों मे वर्णन मिलता है कि सागर-मंथन के समय देवताओं में इन्द्र प्रधान थे तथा मंथन से उद्भूत ऐरावत गज को उन्होंने स्वयं ले लिया था। इन्द्र द्वादशादित्यों मे भी एक माने गए हैं। वैदिककालीन प्रमुख देवता इन्द्र का स्थान धीरे-धीरे गौण होता चला गया और अंततः वे पूर्व दिशा के दिक्पाल मात्र रह गए।

---

१ ऋ०, १, १२१, १२; ५, ३४, २; महाभारत में उल्लेख है कि दधीच की अस्थियों से वज्र तैयार किया गया था, म० भा० (क्रि०), ९, १०, २८-३०

२ ऋ०, ८, १७, १०; अथ०, ६, ८२, ३

३ ऋ० १०, ४४, ९

४ वही, ८, ४५, ४; १०, १०३, २-३; महाभारत (क्रि०, ८, १७, ९२) में भी इन्द्र के धनुष का प्रसंग प्राप्त है : शक्रचापेन शोभितः।

५ अथ०, ८, ८, ५; ८, ८, ६; ८, ८, ७; महाभारत में भी इन्द्र के जाल का उल्लेख है, महाभारत (क्रि०) ३, २३४, १७

६ ऋ०, १, ८२, ५; १, ८२, ६; ३, ५३, ४; ३, ५३, ६; १०, ८६, ९; १०, ८६, १०

७ वही, १०, ८६, ११; १०, ८६, १२

८ शत० ब्रा०, १४, २, १, ८

९ ऐत० ब्रा० ३, २२, (बम्बई, पृ० ६७; आनन्दाश्रम, पृ० ३४६)

१० *EHI*, II, II, p. 516.

११ म० भा० (क्रि०), ५, १२, ६ ; द्र० *EHI*, II, II, p. 517 ; कौटिल्य के अनुसार इन्द्र की मंत्रिपरिषद् में एक सहस्र ऋषि थे, वे उसके नेत्र थे, इसीलिए इस दो नेत्र वाले को सहस्र नेत्र वाला कहा गया है : इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिषदृषीणां सहस्रम्। तच्चक्षुः। तस्मादिमं द्व्यक्षं सहस्राक्षमाहुः।

—अर्थशास्त्र, १, १५, पृ० २९

१२ म० भा (क्रि०), ३, ४४, २६

१३ वही, १२, ३२१, ७

१४ वही, १, ११४, ३४-३७

१५ वही, १, ६०, ६१

पूजा-परम्परा

ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्र से सम्बन्धित कोई अलग सम्प्रदाय तो नहीं बना, किन्तु भारत में अनेक व्यक्तियों द्वारा इन्द्र पूजे जाते थे। युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए महाभारत-काल में इन्द्रध्वज आरोपित कर इन्द्र की पूजा होती थी।[1] इन्द्र-पूजा का यह उत्सव सम्भवत: आश्विन मास की अमावस्या के दिन होता था और यह दिन इन्द्र का दिन माना जाता था।[2] रामायण में भी आश्विन मास की पूर्णमासी को शक्रध्वज आरोपित करने का प्रसंग मिलता है।[3] वराहमिहिर ने तो इन्द्रध्वज की पूजा का विस्तृत विवरण पूरे एक अध्याय में दिया है।[4] पुराणों में भी शिष्ट व्यक्तियों द्वारा इन्द्र-पूजा के उल्लेख मिलते हैं। कृष्ण ने सर्वप्रथम इन्द्र-पूजा का निषेध किया था। फलत: इन्द्र ने कुपित होकर अनिवृष्टि से गोकुल को नष्ट करने का प्रयास किया, किन्तु कृष्ण ने गोवर्धन-धारण कर गोकुल की रक्षा की। कृष्ण द्वारा इन्द्र-पूजा के निषेध के पश्चात् भी सातवीं और दसवीं शतियों के बीच भारत में इन्द्र-पूजा का प्रचलन बना रहा। तमिल महाकाव्य शिलप्पदिगारम् में चोलों की राजधानी काविरिप्पूम्पट्टिनम् में होने वाले इन्द्र के वार्षिकोत्सव के वर्णन से सम्बन्धित एक अध्याय है। यह समारोह वैशाख की पूर्णिमा से प्रारम्भ होकर २८ दिनों तक चलता था। इस ग्रन्थ की तिथि आठवीं शती मानी गई है। परान्तक चोल प्रथम के समय के एक अभिलेख में इन्द्र के इस समारोह की व्याख्या के विस्तृत वृत्तान्त मिलते हैं।[5] समरांगणसूत्रधार में भी उल्लेख मिलता है कि एक विशेष दिन इन्द्र को अलंकृत कर उनकी यात्रा का आयोजन किया जाता था, जिसे शक्रध्वजोत्थान कहा गया है।[6] डॉ० बनर्जी के अनुसार इन्द्र की यह पूजा अधिकांशत: उन्हें एक दिक्पाल मानकर ही की जाती थी।[7] यह उल्लेखनीय है कि वैदिककालीन इस देवता का जैन और बौद्ध धर्मों में भी प्रमुख स्थान है।

प्रतिमा-लक्षण

इन्द्र-प्रतिमा-लक्षण अनेक उत्तर एवं दक्षिण भारतीय शास्त्रों में प्राप्त हैं। वराहमिहिर ने महेन्द्र (इन्द्र) के वाहन गज को शुक्ल वर्ण एवं चार दाँतों वाला बताया है तथा इन्द्र के हाथ में वज्र और ललाट के मध्य उनके चिह्न तृतीय नेत्र होने का उल्लेख किया है।[8] विष्णुधर्मोत्तरपुराण[9] में शक्र की चतुर्भुजी प्रतिमा का विस्तृत विवरण है, जिसमें उनके वाहन चार दाँत वाले श्वेत गज तथा उनके ललाट के तिरछे नेत्र का उल्लेख तो है ही, साथ में उनकी बाईं गोद में स्थित द्विभुजी शची का भी उल्लेख है। इस पुराण के अनुसार देवता के दाएँ हाथों में पद्म एवं अंकुश हों और

१ वही, १, १७, १७-२६
२ वही, ६, १४०, १६-१८
३ रामा० ४, १६, ३०
४ बृहत्सं०, अ० ४३
५ *EHI*, pp. 517-18.
६ Shukla, D. N., *Hindu Canons of Iconography*, p. 337.
७ *DHI*, p. 523.
८ बृहत्सं०, ५८, ४२
९ वि० ध०, ५०, २–६; हेमाद्रि द्वारा भी इन्द्र-प्रतिमा का यही विवरण उद्धृत हुआ है (चतु०, व्रत० ख०, अ०, १, पृ० १४४)।

एक बायाँ हाथ शची के पृष्ठभाग पर स्थित और दूसरा वज्र-युक्त हो। शची का बायाँ हाथ संतानमंजरी से युक्त और दाहिना इन्द्र के पृष्ठभाग पर स्थित हो। अग्निपुराण[१] भी वज्रधारी और गजारूढ़ इन्द्र-प्रतिमा का उल्लेख करता है। मत्स्यपुराण[२] के अनुसार इन्द्र को मत्त गयन्द पर विराजमान, सहस्र नेत्र-युक्त, किरीट, कुण्डल, वज्र एवं उत्पलधारी, अनेक आभूषणों से आभूषित तथा देव-गन्धर्व एवं अप्सराओं से सेवित निर्मित करना चाहिए। सहस्र नेत्रों वाले गजारूढ़ इन्द्र की चतुर्भुजी प्रतिमा का वर्णन अपराजितपृच्छा[३] एवं रूपमण्डन[४] में भी मिलता है, जिनके अनुसार देवता का पहला हाथ वरद-मुद्रा में हो और शेष क्रमशः वज्र, अंकुश और कमण्डलु धारण किए हों। अंशुमद्भेदागम तथा कुछ अन्य दक्षिणभारतीय ग्रन्थों में इन्द्र-प्रतिमा का लगभग ऐसा ही वर्णन मिलता है : दो नेत्रों और दो भुजाओं वाले देवता, किरीट, हार, केयूर तथा अन्य आभूषणों से विभूषित हों तथा हाथों में शक्ति और अंकुश अथवा वज्र और अंकुश (अथवा नीलोत्पल पुष्प) धारण किए हों। सामान्यतः इन्द्र के दो नेत्रों और दो भुजाओं का उल्लेख इन ग्रन्थों में हुआ है, किन्तु कभी-कभी तीन नेत्रों और चार भुजाओं से युक्त भी उनका विवरण मिलता है।[५]

पूर्ववर्ती चित्रण

इन्द्र के कुछ प्राचीनतम चित्रण गंधार और मथुरा के बौद्ध अर्धचित्रों में प्राप्त है।[६] मथुरा में इन्द्र द्वारा इन्द्रशैलगुहा में बुद्ध के दर्शनार्थ गमन के कई चित्रण दर्शनीय है।[७] बाएँ हाथ में वज्र धारण किए इन्द्र की कुषाणकालीन एक अन्य खण्डित प्रतिमा मथुरा संग्रहालय[८] में उपलब्ध है। इसी संग्रहालय में कुषाणकालीन एक तीसरी प्रतिमा भी दर्शनीय है।[९] भूमरा के शिव मन्दिर में पर्यंकासन में निर्मित, दोनों हाथों से एक दण्ड पकड़े एक प्रतिमा प्राप्त हुई है, जिसके विषय में राखालदास बनर्जी ने इन्द्र-प्रतिमा होने की सम्भावना व्यक्त की है।[१०] ठीक ऐसी ही प्रतिमा भुवनेश्वर के परशुरामेश्वर मन्दिर में भी प्राप्त हुई है। डॉ० पाणिग्रही ने भूमरा-मन्दिर की प्रतिमा के सदृश होने तथा अन्य दिक्पालों के साथ अंकित होने के कारण इसे उचित ही इन्द्र माना है।[११] पहाड़पुर में भी अलंकृत किरीट-मुकुट-युक्त द्विभुजी एक इन्द्र-प्रतिमा प्राप्त है, जिसमें इन्द्र के पीछे वाहन ऐरावत खड़ा चित्रित है।[१२]

---

१ अ० पु०, ५१, १४
२ म० पु०, २६०, ६७-७०
३ अपरा०, २१३, ९
४ रूप०, २, ३१
५ *EHI*, II. II, pp. 519-20.
६ *DHI*, p 523
७ M. M. Nos. M3, H11, N2h, *MMC*, pp 130-31, 163-64.
८ No. E24, *MMC*, p. 110; Vogel, J. Ph., *La Sculpture de Mathurā*, p. 46, Pl. XXXIX, Fig. b; *CBIMA*, p. 145; *Yakṣas*, Pt. I, p. 41, Pl. 15, Fig 2 (जहाँ इस प्रतिमा के वज्रपाणि यक्ष होने की सम्भावना व्यक्त की गई है)
९ *CBIMA*, pp. 144-45.
१० *MASI*, No. 16, p. 13, Pl. XIV C.
११ *ARB*, p. 70, Fig. 35B.
१२ Dikshit, K. N., *MASI*, No. 55, pp. 46-47, Pl. XXVII d; see also Shastri, A. M., *Nagpur University Journal*, Vol. XVI, pp. 11-12, Fig. 6.

खजुराहो-प्रतिमाएँ

खजुराहो में इन्द्र पूर्व की ओर मन्दिरों के दक्षिण-पूर्वी कोनो में अग्नि के साथ युगल रूप में खड़े उत्कीर्ण हैं।[1] सामान्यतः इन्द्र-प्रतिमाएँ चतुर्भुजी हैं, किन्तु लेखक को दो प्रतिमाएँ द्विभुजी भी प्राप्त हुई हैं। दोनों बाएँ हाथ में वज्र धारण किए हैं और दाहिने हाथ मे एक अंकुश लिए है[2] और दूसरी का यह हाथ कट्यवलम्बित है।[3] चतुर्भुजी प्रतिमाओं की चार, तीन अथवा दो भुजाएँ सुरक्षित मिलती हैं तथा कुछ की एक ही भुजा सुरक्षित है, शेष पूर्णतया नष्ट हो गई हैं अथवा खण्डित हैं। दो प्रतिमाओं[4] की एक भी भुजा सुरक्षित नही बची है। सामान्यतः प्रतिमाओं का प्रथम हाथ वरद अथवा अभय-मुद्रा मे अथवा कट्यवलम्बित, दूसरा वज्र अथवा अंकुश, तीसरा भी अंकुश अथवा वज्र और चौथा कमण्डलु अथवा वज्र से युक्त मिलता है। कभी-कभी प्रथम हाथ में अकुश तथा दूसरे और तीसरे में कुण्डलित कमलनाल भी है। निम्नांकित तालिका द्वारा चतुर्भुजी प्रतिमाओं के हाथो की मुद्राओ अथवा उनके लाञ्छनों का स्पष्टीकरण किया गया है:

प्र० सं०	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
१३	वरद-मुद्रा	*	*	*
९	वरद-मुद्रा	*	*	*
१७	वरद-मुद्रा	*	*	*
६	वरद-मुद्रा	वज्र	अंकुश	कमण्डलु
१२	वरद-मुद्रा	वज्र	अकुश	कमण्डलु
१८	वरद-मुद्रा	वज्र	अकुश	कमण्डलु
२१	कट्यवलम्बित	वज्र	अकुश	कमण्डलु
११	वरद-मुद्रा	वज्र	*	कमण्डलु
७	वरद-मुद्रा	वज्र	अकुश	*
२४ (चित्र ८६)	वरद-मुद्रा	वज्र	अकुश	*
२०	वरद-मुद्रा	अकुश	*	कमण्डलु
२२	अभय-मुद्रा	वज्र	अकुश	*
१०	*	वज्र	अकुश	*
२	अभय-मुद्रा	वज्र	कुण्डलित कमलनाल	कमण्डलु
३	अभय-मुद्रा	पद्म -	छिपा है	कमण्डलु
२७	अभय-मुद्रा	कुण्डलित कमलनाल	कमलनाल से बँधी पुस्तक	कमण्डलु

---

1 कुछ प्रतिमाएँ (प्र० सं० २६–२९) वहाँ अन्यत्र भी प्राप्त हैं।

2 प्र० सं० १

3 प्र० सं० ४

4 प्र० सं० २अ, ११

* हाथ भग्न है।

प्र० सं०	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
१५ (चित्र ८५)	कट्यवलम्बित	अंकुश	सर्प	वज्र
२३	कट्यवलम्बित	अंकुश	पद्म	वज्र
१६	कट्यवलम्बित	अंकुश	छिपा है	वज्र
८	कट्यवलम्बित	*	वज्र	कमण्डलु
२५	कट्यवलम्बित	अंकुश	वज्र	कमण्डलु
५	*	*	अंकुश	कट्यवलम्बित
२६	*	*	अंकुश	कट्यवलम्बित
२४	वज्र	अंकुश	पद्म	कट्यवलम्बित

यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त वरद, वज्र और कमण्डलु-युक्त प्रतिमाओं और परवर्ती शिल्प-शास्त्रों—अपराजितपृच्छा एवं रूपमण्डन—के इन्द्र-प्रतिमा-लक्षणों में पूर्ण साम्य है। ऐसी ही एक दक्षिणभारतीय प्रतिमा का उल्लेख किया जा सकता है, जिसका पहला हाथ वरद-मुद्रा में (साथ में अक्षमाला भी) है और अन्य क्रमशः अंकुश, वज्र और कमण्डलु-युक्त है। अन्तर केवल इतना है कि दूसरे और तीसरे हाथ के आयुध आपस में बदल गए हैं।[1] अन्य प्रतिमाएँ सामान्यतया शास्त्रों में उल्लिखित आयुधों में कम से कम दो—वज्र और अंकुश—धारण किए हैं। विष्णुधर्मोत्तर, मत्स्यपुराण एवं कुछ दक्षिणभारतीय ग्रन्थों में उल्लिखित पद्म भी कुछ प्रतिमाएँ एक हाथ में धारण किए हैं। पारिजात पुष्प धारण किए गजारूढ़ इन्द्र-प्रतिमा भुवनेश्वर के ब्रह्मेश्वर मन्दिर में भी देखी जा सकती है।[2] जिस प्रकार चिदम्बरम्[3] की गजारूढ़ इन्द्र-प्रतिमा का प्रथम हाथ अभय-मुद्रा में है, उसी प्रकार खजुराहो की कुछ प्रतिमाओं का प्रथम हाथ अभय-मुद्रा में चित्रित है। खजुराहो-शिल्पी ने एक ओर तो शास्त्रों में वर्णित प्रतिमा-लक्षणों का सामान्यरूप से पालन किया है, तो दूसरी ओर विविधता एवं नवीनता के लिए अपनी स्वतन्त्र अभिरुचि अभिव्यक्त करने में भी संकोच नहीं किया है। सम्भवतः इसीलिए कुछ प्रतिमाएँ कट्यवलम्बित, पुस्तक तथा सर्प-युक्त भी चित्रित हो गई हैं।

खजुराहो में इन्द्रदेव अधिकांशतया त्रिभंग[4] (चित्र ८५, ८६) और कभी-कभी आभंग[5] खड़े उत्कीर्ण हैं। सामान्यतः प्रतिमाएँ करण्ड-मुकुट[6] से सुशोभित हैं (चित्र ८५, ८६), किन्तु लेखक को दो प्रतिमाएँ किरीट-मुकुट[7] और दो जटा-मुकुट-युक्त[8] भी मिली हैं। कुछ प्रतिमाओं के सिर भग्न हो जाने के कारण मुकुट अदृश्य है।[9] मुकुट के अतिरिक्त, सभी प्रतिमाएँ हार, ग्रैवेयक, कुण्डल,

१ *EHI*, II, II, pp 520-21, Pl. CLI, Fig 1.
२ *ARB*, p 82.
३ *EHI*, II, II, p. 520, Pl. CL.
४ प्र० सं० २, ३, ५, ६ आदि।
५ प्र० सं० १, ४, ८, ६, ११ आदि।
६ प्र० सं०, १, २अ, ३, ५, ६, ७, ९, १० आदि।
७ प्र० सं० २, ४
८ प्र० सं० १४, २७
९ प्र० सं० ८, ११, १३, २६
* हाथ भग्न है।

केयूर, कंकण, मेखला, यज्ञोपवीत, वनमाला तथा कौस्तुभमणि से अलंकृत हैं (चित्र ८५, ८६)। विष्णुधर्मोत्तर, मत्स्यपुराण तथा अंशुमद्भेदागम में इन्द्र के लगभग यही आभूषण वर्णित हैं।

नियमानुसार प्रतिमाओ के साथ वाहन ऐरावत गज भी चित्रित है, किन्तु चिदम्बरम्-प्रतिमा[1] तथा भुवनेश्वर-प्रतिमाओं[2] के विपरीत खजुराहो में इन्द्रदेव गजारूढ़ नही है; बैठे अथवा खड़े गज की छोटी आकृति पादपीठ पर उनके दाएँ अथवा बाएँ (चित्र ८५, ८६) उत्कीर्ण है। एक प्रतिमा के पादपीठ पर गज का चित्रण न होकर एक वज्र रखा हुआ प्रदर्शित है।[3] इस प्रतिमा के किसी हाथ में वज्र न होने के कारण ही सम्भवतः आयुध-विशेष को पादपीठ पर स्थित चित्रित किया गया है। लेखक को वाहन-विहीन एक और प्रतिमा भी मिली है।[4]

सामान्यतः प्रतिमाओं मे पार्श्वचर नहीं उत्कीर्ण हैं, किन्तु एक पादपीठ पर इन्द्र के बाएँ एक अनुचर[5] तथा दूसरी पर दाएँ एक अनुचरी[6] के चित्रण का उल्लेख किया जा सकता है। कुछ प्रतिमाओं[7] के पादपीठ पर अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़ कर बैठा एक भक्त उत्कीर्ण है। एक प्रतिमा[8] के दाएँ-बाएँ पार्श्वों मे एक-एक चामरग्राहिणी खड़ी और उनके पीछे एक-एक अनुचर खड़ा भी चित्रित है। दोनों अनुचरों का एक हाथ कट्यवलम्बित और दूसरा स्तुति-मुद्रा मे है। साथ में अजलि-मुद्रा मे हाथ जोड़े एक भक्त भी अंकित है।

आलिंगन-मूर्तियाँ

इन्द्र-शची की दो आलिगन-मूर्तियाँ खजुराहो मे प्राप्त हैं। एक मूर्ति[9] में सिर से खण्डित इन्द्र हार, यज्ञोपवीत, केयूरों, ककणों, मेखला तथा वनमाला से सुशोभित त्रिभंग खड़े हैं। उनके बाएँ पार्श्व में केशबन्ध, हार, कटिसूत्र, तथा केयूरों से अलंकृत शची खड़ी है। इन्द्र के प्रथम और तृतीय हाथ भग्न है, द्वितीय हाथ का आयुध कुछ ध्वस्त होने के कारण स्पष्ट नहीं है (सम्भवतः अकुश) तथा चतुर्थ हाथ शची को आलिगन करता हुआ उनके बाएँ पयोधर पर स्थित है। शची का बायाँ हाथ भग्न है और दाहिना हाथ इन्द्र के दाएँ स्कन्ध पर आश्रित है। पादपीठ पर देवता के दाएँ पार्श्व मे चामर ग्रहण किए एक अनुचर खड़ा है और देवी के बाएँ पार्श्व मे एक चामर-ग्राहिणी खड़ी है। पादपीठ पर देवता की ओर वाहन ऐरावत बैठा और देवी की ओर एक भक्त अजलि-मुद्रा मे हाथ जोड़े बैठा चित्रित है। पीछे की ओर दाएँ-बाएँ एक-एक अन्य अनुचरी खड़ी अंकित है। ऊपर प्रभावली मे एक कोने पर ब्रह्मा और दूसरे पर सम्भवतः शिव बैठे उत्कीर्ण है।

दूसरी प्रतिमा[10] (चित्र ८७) में इन्द्र पद्मपीठ पर ललितासन-मुद्रा में बैठे प्रदर्शित हैं। उनकी बाईं गोद मे शची भी इसी आसन में बैठी है। इन्द्र-शची उपर्युक्त आलिगन-मूर्ति की भाँति

१ *EHI*, II, II, p. 520, Pl. CL.
२ *ARB*, pp. 82, 143.
३ प्र० सं० ३
४ प्र० सं० ४
५ प्र० सं० ५
६ प्र० सं० १७
७ प्र० सं० ७, १३, १६
८ प्र० सं० २७
९ प्र० सं० २८
१० प्र० सं० २६

अलंकृत हैं। इस मूर्ति में इन्द्र का सिर खण्डित न होकर उस पर करण्ड-मुकुट शोभायमान है। उनके दोनों दाएँ हाथ भग्न हैं, ऊपर के बाएँ हाथ का आयुध खण्डित होने के कारण स्पष्ट नहीं है और नीचे का बायाँ हाथ शची को आलिंगन करता हुआ उनके बाएँ वक्षःस्थल पर रखा है। शची का बायाँ हाथ भग्न है, दाहिना इन्द्र के दाएँ स्कन्ध पर स्थित है। इन्द्र और शची के लटकते चरणों के बीच पादपीठ पर बैठे ऐरावत का चित्रण है। दोनों ओर एक-एक अनुचर खड़ा और उनके पीछे एक-एक पुष्पमालाधारिणी खड़ी अंकित हैं।

शची के साथ इन्द्र को चित्रित करने की परम्परा शुंगकाल में ही प्रारम्भ हो गई प्रतीत होती है। शुंगकालीन मृण्फलक पर ऐसा एक चित्रण नगर (राजस्थान) से प्राप्त हुआ है। इन्द्र-शची का यह प्राचीनतम चित्रण माना जा सकता है।[1]

२. अग्नि

इन्द्र के बाद वैदिक देवों में अग्नि का स्थान है। ऋग्वेद में उनके जन्म तीन या त्रिविध बताए गए हैं।[2] उल्लेख मिलता है कि देवों ने उन्हें त्रिविध बनाया,[3] वे त्रिप्रकाश हैं।[4] कुछ मन्त्रों[5] में उनके तीन आवासों का क्रम इस प्रकार उल्लिखित है—स्वर्ग, पृथ्वी और जल, किन्तु इस त्रयी का सदा इसी ढंग और क्रम से उल्लेख नहीं हुआ है। ऋग्वेद में इतनी स्पष्टता के साथ अभिज्ञात अग्नि का यह त्रि-विभाग[6] सम्भवतः उत्तरकालीन सूर्य-वायु-अग्नि की देवत्रयी का ही नहीं, वरन् सूर्य-इन्द्र-अग्नि की देवत्रयी का भी आधार बना है।[7] भारत की यह सर्वाधिक प्राचीन देवत्रयी-भावना महत्वपूर्ण है, क्योंकि वैदिक युग का रहस्यमय दर्शन बहुत कुछ इसी पर आधारित है।[8] वैदिक देवों में अग्नि का स्थान बहुत ऊँचा है। वे हव्यवाहन है और उन्ही के द्वारा अन्य देवों को हवि पहुँचाई जाती है।[9] पौराणिक युग आते-आते देव-परिवार में भारी परिवर्तन हुआ और इन्द्र, वायु आदि के समान अग्नि का भी स्थान बहुत नीचा हो गया और वे अब एक दिक्पाल मात्र रह गए।

प्रतिमा-लक्षण

महाभारत में रक्त ग्रीवा, सात मुखों, सात रक्त जिह्वाओं, पिंगल नेत्रों तथा ज्योतिर्मय केशों वाले अग्निदेव हाथ में ज्वाला-युक्त शक्ति लिए हुए और सात रक्त अश्वों से चालित रथ

---

१ Agrawala, R. C., *Journal of the Gujarat Research Society*, Vol. XIX, No. 4, pp. 45-46 and figure.

२ ऋ० १, ९६, ३; ४, १, ७

३ वही, १०, ८८, १०

४ वही, ३, २६, ७

५ वही, ८, ४४, १६; १० ४५, ६

६ वही, १०, ११८, [illegible] १, १६४, ४४; अथ०, ६, ३६, २

७ Macdonell, A. A., *The Vedic Mythology*, p. 93; सूर्यकान्त, वैदिक देवशास्त्र, पृ० २४०

८ Macdonell, *op. cit.*, p. 93; सूर्यकान्त, वही, पृ० २३८

९ सम्पूर्णानन्द, वैदिक देव परिवार का विकास, पृ० ६२

पर बैठे हुए वर्णित हैं।[१] बृहत्संहिता में अग्नि का वर्णन नहीं हुआ है। विष्णुधर्मोत्तर[२] में उनका विस्तृत विवरण मिलता है, जिसके अनुसार चार भुजाओं, चार डाढ़ों, तीन नेत्रों, जटा, श्मश्रु तथा ज्वालासमूहो से युक्त सौम्य देवता को चार शुको वाले, धूम्र से चिह्नित तथा सारथी वायु द्वारा चालित रथ पर स्थित निर्मित करना चाहिए। उनके दाहिने हाथो में ज्वाला एव त्रिशूल हों तथा बाएँ में अक्षमाला हो। उनकी बाईं गोद में रत्नपात्र धारण किए हुए उनकी पत्नी स्वाहा स्थित हो। हेमाद्रि ने भी अग्नि के चरित्रांकन के लिए विष्णुधर्मोत्तर का यही विवरण उद्धृत किया है।[3] मत्स्यपुराण[४] के अनुसार ज्वालामण्डल, यज्ञोपवीत, लम्बकूर्च तथा अज-वाहन से युक्त अग्नि के दाएँ और बाएँ हाथों में क्रमश अक्षसूत्र एवं कमण्डलु होने चाहिए। शिल्परत्न मे भी ऐसा ही वर्णन उपलब्ध है, किन्तु वहाँ देवता मेष के पृष्ठभाग पर स्थित उल्लिखित हैं।[५] अपराजितपृच्छा[६] तथा रूपमण्डन[७] के अनुसार ज्वालापुञ्ज-युक्त तथा मेषारूढ अग्निदेव का पहला हाथ वरद-मुद्रा में हो; शेष तीन क्रमशः शक्ति, मृणाल एवं कमण्डलुधारी हों। आगमों मे भी देवता का वाहन अज अथवा मेप उल्लिखित है। इनके अनुसार देवता के सामने के दो हाथ वरद और अभय-मुद्रा मे हो तथा पीछे के दाएँ हाथ में स्रुक् और बाएँ में शक्ति हो। यदि प्रतिमा द्विभुजी हो तो दाएँ और बाएँ हाथों में स्रुक् और शक्ति धारण किए हो।[८]

खजुराहो में अग्नि

खजुराहो में दिक्पाल-रूप में अग्निदेव सामान्यतः मन्दिरों के दक्षिण-पूर्वी कोनों में इन्द्र के साथ युगल रूप में खड़े उत्कीर्ण है। इनके अतिरिक्त, अग्नि की कुछ प्रतिमाएँ[९] वहाँ अन्य स्थलों में भी उपलब्ध हैं, जो दिक्पाल-रूप में नहीं प्रदर्शित हैं। दायाँ हाथ अभय-मुद्रा में किए और बाएँ में कमण्डलु लिए एक द्विभुजी प्रतिमा[१०] को छोड़कर, शेष सभी प्रतिमाएँ चतुर्भुजी हैं। इन प्रतिमाओं की कुछ भुजाएँ भग्न अथवा खण्डित हैं। कुछ प्रतिमाओं की चारों भुजाएँ खण्डित मिलती हैं।[११] सामान्यतः इनका पहला हाथ वरद अथवा अभय-मुद्रा में (कुछ मूर्तियों मे साथ में अक्षमाला भी है) प्रदर्शित है, दूसरा स्रुव अथवा स्रुक्, तीसरा पुस्तक अथवा मृणाल और चौथा कमण्डलु-युक्त है। अगले पृष्ठ की तालिका से प्रत्येक प्रतिमा के हाथों की मुद्राओं अथवा लाञ्छनों का स्पष्टीकरण हो जाता है :

---

१ Hopkins, *op cit.*, p. 97.
२ वि०ध०, ५६, १-१०
३ चतु०, व्रत खण्ड, अ० १, पृ० १४४
४ म० पु०, २६१, ९-१२; तुल० Agrawala, V. S., *Matsya Purāṇa—A Study*, p. 362.
५ *EHI*, II, II, Appendix B, p. 254.
६ अपरा०, २१३, १०
७ रूप०, २, ३२
८ *EHI*, II, II, p. 523.
९ प्र० सं० २४-३२
१० प्र० सं० १
११ प्र० सं० ८, ११, १३, २३

प्र० सं०	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
४	अभय	स्रुक्	पुस्तक	कमण्डलु
१२	वरद	स्रुक्	पुस्तक	कमण्डलु
१४	वरद एवं अक्षमाला	स्रुक्	पुस्तक	कमण्डलु
१५	अभय एवं अक्षमाला	स्रुक्	पुस्तक	कमण्डलु
१८	वरद	स्रुक्	पुस्तक	कमण्डलु
२३	अभय एवं अक्षमाला	स्रुव	पुस्तक	कमण्डलु
२४	वरद	कमल	पुस्तक	कमण्डलु
२६	अभय	स्रुक्	पुस्तक	कमण्डलु
२८	वरद	स्रुव	पुस्तक	कमण्डलु
२९	वरद	स्रुव	पुस्तक	कमण्डलु
३०	वरद	स्रुव	पुस्तक	कमण्डलु
३१	वरद एवं अक्षमाला	स्रुक्	पुस्तक	कमण्डलु
३३	वरद	पुस्तक	मृणाल (कुण्डलित)	कमण्डलु
३	वरद एवं अक्षमाला	स्रुव	पुस्तक	*
५	अभय	स्रुव	पुस्तक	*
६ (चित्र ८८)	अभय	स्रुव	पुस्तक	*
७	वरद	स्रुक्	पुस्तक	*
१० (चित्र ८९)	वरद	स्रुक्	पुस्तक	*
१९	वरद	स्रुक्	पुस्तक	*
२१	वरद	स्रुक्	पुस्तक	*
९	अभय	स्रुक्	*	कट्यवलम्बित
१७	वरद	*	पुस्तक	कमण्डलु
१६	वरद	स्रुक्	*	*
३२	वरद एवं अक्षमाला	*	*	कमण्डलु
२०	वरद एवं अक्षमाला	*	*	कमण्डलु
२७	*	*	पुस्तक	कमण्डलु
२५	*	स्रुक्	पुष्प	*
२	वरद एवं अक्षमाला	*	*	*

यद्यपि इन प्रतिमाओं के चारों हाथ किसी शास्त्र के विवरण से साम्य नहीं रखते हैं, किन्तु दो हाथों का चित्रण—पहला वरद-मुद्रा में और चौथा कमण्डलु-युक्त—अपराजितपृच्छा एवं रूप-मण्डन के विवरण से मिलता है। आगमों में देवता के सामने का एक हाथ अभय-मुद्रा में होने

* हाथ खण्डित है।

का उल्लेख है, सम्भवतः इसीलिए कुछ प्रतिमाओं का पहला हाथ वरद के स्थान पर अभय-मुद्रा में चित्रित हुआ है। मत्स्यपुराण और शिल्परत्न अक्षमाला और कमण्डलु-युक्त देवता के निर्मित करने का निर्देश करते है। कुछ प्रतिमाओं का पहला हाथ वरद अथवा अभय-मुद्रा में होने के साथ ही साथ अक्षमालाधारी भी है। सामान्यतया सभी प्रतिमाओ के चौथे हाथ मे कमण्डलु होने का उल्लेख ऊपर किया ही जा चुका है। अक्षमाला और कमण्डलु-युक्त अग्नि-प्रतिमा-निर्माण की परम्परा अधिक व्यापक रही प्रतीत होती है। लखनऊ संग्रहालय की पूर्व गुप्तकालीन[1] और मथुरा संग्रहालय की पूर्व मध्ययुगीन[2] कमण्डलु-युक्त एवं पहाड़पुर,[3] भुवनेश्वर[4] तथा बिहार से प्राप्त इण्डियन म्यूजियम[5] की अक्षमाला और कमण्डलु-युक्त अग्नि-प्रतिमाएँ भी द्रष्टव्य हैं। खजुराहो-प्रतिमाओ के दूसरे हाथ में स्रुव अथवा स्रुक् का चित्रण आगमों के निर्देशानुसार हुआ जान पड़ता है। पूर्वकारणागम में उल्लेख है कि अग्नि को ब्रह्मा के समान (ब्रह्मरूपो हुताशनः)[6] निर्मित करना चाहिए। खजुराहो की अग्नि-प्रतिमाएँ सामान्यत: ब्रह्मा से मिलती-जुलती ही निर्मित है, अन्तर केवल इतना है कि ब्रह्मा त्रिमुख है और अग्नि एकमुख। इसीलिए ब्रह्मा के समान अग्नि भी तीसरे हाथ मे पुस्तक धारण किए चित्रित है। उपर्युक्त लखनऊ और मथुरा संग्रहालयों, इण्डियन म्यूजियम, पहाड़पुर तथा भुवनेश्वर[7] और साथ ही लच्छागिर[8] (जिला इलाहाबाद) तथा चिदम्बरम्[9] की अग्नि-प्रतिमाएँ ज्वाला-समूहों से युक्त है, किन्तु खजुराहो मे सामान्यतया ऐसा चित्रण न होकर, मात्र कुछ प्रतिमाएँ[10] ही ज्वाला-मण्डल-युक्त निर्मित हैं। कुछ अन्य प्रतिमाएँ[11] ज्वाला-मण्डल-युक्त तो नहीं है, किन्तु उनमें अग्निदेव के एक ओर एक अथवा दोनों ओर एक-एक अग्नि-पात्र अंकित हुआ है, जिससे ज्वालाएँ निकलती प्रदर्शित हैं। मद्रास संग्रहालय की चोलकालीन अग्नि-प्रतिमा[12] के सदृश खजुराहो में कोई प्रतिमा लेखक को नही मिली है, जिसमे ज्वालाओं का चित्रण मुकुट-रूप मे हुआ हो।

मद्रास संग्रहालय की प्रतिमा[13] के सदृश खजुराहो मे दो प्रतिमाएँ[14] ललितासन-मुद्रा मे बैठी मिली है। शेष प्रतिमाएँ खडी चित्रित हैं, जिनमें कुछ समभंग[15] (चित्र ६०) और अधिकाशतया

---

१ No. J123, *CBIMA*, p. 147; Smith, V. A., *The Jain Stūpa and other Antiquities of Mathurā*, p. 44, Pl. LXXXVIII (स्मिथ इसे मानते हैं "statue of a boy with aureole of flames").

२ No. D24, *MMC*, p. 99; *CBIMA*, p. 147; *II*, p. 28. कोनेल और डॉ० अग्रवाल ने इस प्रतिमा द्वारा बाएँ हाथ में धारण किए गए पदार्थ को थैली (बैग) मान कर सम्भवतः भूल की है। भट्टाचार्य का कथन, कि यह पदार्थ कमण्डलु ही है, सर्वथा संगत प्रतीत होता है।

३ Dikshit, K. N., *op. cit.*, p. 48, Pl XXXII b.

४ *ARB*, p. 82.

५ *DHI*, p. 524, Pl. XLV, Fig. 4; Sivaramamurti, C,. *AI*, No. 6, Pl. VIII B.

६ प्र० स०, पृ० २१५; ऋग्वेद (४, ६, ४) में अग्नि को ब्रह्मा की संज्ञा भी मिली है।

७ *ARB*, p. 144.

८ Kala, S. C., *JUPHS*, Vol. II (New Series), Pt. II, Pl. VI.

९ *EHI*, II, II, Pl. CLIII, Fig. 2.

१० प्र० सं० ४, १३, १४, ३१

११ प्र० सं० ८, २४, २५

१२ Sivaramamurti, C., *op. cit.*, Pl. VIII A.

१३ वही।

१४ प्र० सं० २८, २९

१५ प्र० सं० ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५

द्विभंग[1] (चित्र ८८, ८९) अथवा त्रिभंग[2] हैं। सामान्यतया वे जटामुकुट-युक्त हैं[3] (चित्र ८८-९०), कुछ करण्ड-मुकुट में भी दर्शनीय हैं[4] तथा कुछ के सिर भग्न होने के कारण मुकुट अदृश्य हैं।[5] लखनऊ संग्रहालय[6] तथा उपर्युक्त मथुरा संग्रहालय, इण्डियम म्यूजियम एवं भुवनेश्वर की अग्नि-प्रतिमाओं के समान खजुराहो की सब प्रतिमाएँ लम्बकूर्च हैं (चित्र ८८-९०)। इनके विपरीत उपर्युक्त मद्रास संग्रहालय तथा चिदम्बरम् की प्रतिमाएँ लम्बकूर्च नहीं हैं। श्री शिवराममूर्ति उचित ही लिखते हैं कि दक्षिणभारत में अग्नि के चित्रण में कूर्च अज्ञात है, किन्तु बिहार और बंगाल में कूर्च एक अत्यावश्यक विशेषता है।[7] बंगाल और बिहार की ही नहीं, समस्त उत्तरभारतीय अग्नि-प्रतिमाओं की यह एक विशेषता है। कूर्च के साथ ही साथ खजुराहो प्रतिमाएँ मूँछों से युक्त भी हैं (चित्र ८८, ८९)। सामान्यतया वे ग्रैवेयक, हार, कुण्डलों, केयूरों, कंकणों, मेखला, यज्ञोपवीत, वनमाला तथा कौस्तुभ से आभूषित मिलती हैं। कुछ प्रतिमाएँ अजिनोपवीत भी धारण किये हैं।[8] समभंग खड़ी चार प्रतिमाएँ[9] पादुकाएँ धारण किये भी चित्रित है (चित्र ९०)। उपर्युक्त लखनऊ, मथुरा तथा इण्डियन म्यूजियम की प्रतिमाओं के समान खजुराहो प्रतिमाएँ भी लम्बे उदर वाली चित्रित हैं।[10]

खजुराहो मे देवता का वाहन अधिकांशतया मेष चित्रित हुआ है[11] (चित्र ८९), किन्तु कुछ प्रतिमाओं[12] में वाहन अज भी दर्शनीय है (चित्र ८८)। एक प्रतिमा के साथ खड़े वाहन का सिर अज का और शेष शरीर मनुष्य का है।[13] ऐसा वाहन मथुरा सग्रहालय[14] और लच्छागिर (जिला इलाहाबाद)[15] की प्रतिमाओं में भी द्रष्टव्य है। खजुराहो की एक अन्य प्रतिमा भी उल्लेखनीय है, जिसके साथ दोनों वाहन, अज एव मेष, एक दूसरे की ओर मुख किये पादपीठ पर खड़े अंकित हैं।[16] कुछ प्रतिमाएँ[17] वाहन-विहीन भी हैं (चित्र ९०)। ऊपर वर्णित इण्डियन म्यूजियम, भुवनेश्वर तथा लखनऊ सग्रहालय की प्रतिमाएँ वाहन पर आरूढ़ चित्रित है, किन्तु खजुराहो मे

१ प्र० सं० ५, ६, ८, ९, १० आदि।
२ प्र० सं० १, २, ३, ४, ७, १४ आदि।
३ प्र० सं० १, २, ३, ५, ६, ७, १४ आदि।
४ प्र० सं० ३, ९, २४
५ प्र० सं० ८, १३, ३२
६ *II*, Pl. XVII.
७ Sivaramamurti, C., *op. cit.*, p 35.
८ प्र० सं० १५, १६, ३२
९ प्र० सं० ३२, ३३, ३४, ३५
१० प्र० सं० ४, ११, १३, १८ आदि।
११ प्र० सं० ८, ९, १०, ११, १२, १४ आदि।
१२ प्र० सं० २, ६
१३ प्र० सं० ६; श्री कृष्णदेव का यह कथन सर्वथा उचित है : "The characteristic mount of Agni is the ram or goat, which is represented in a zoo-anthropomorphic form in a solitary case."—*AI*, No. 15, p. 61.
१४ No. D24, *MMC*, p. 99; *CBIMA*, p. 147.
१५ Kala, S. C., *op. cit.*, Pl. VI.
१६ प्र० सं० ३३
१७ प्र० सं० ३२, ३४, ३५

अग्निदेव वाहन पर आरूढ़ नहीं है, वाहन एक ओर पादपीठ पर बैठा (चित्र ८८) अथवा खड़ा (चित्र ८९) चित्रित है।

दिक्पाल के रूप में अपेक्षित दिशाओं में चित्रित अग्नि-प्रतिमाओं के साथ सामान्यतः अनुचर एवं भक्त नहीं चित्रित है, किन्तु एक पादपीठ[1] पर देवता के दाएँ एक चामरग्राहिणी; दूसरे पादपीठ[2] पर देवता के बाएँ एक अनुचरी खड़ी और दाएँ अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़ कर बैठा एक भक्त; तथा तीसरे पादपीठ[3] पर देवता के दाएँ एक अनुचर खड़ा और बाएँ अंजलि में हाथ जोड़ कर बैठा एक भक्त चित्रित है। दो अन्य प्रतिमाओं के पादपीठ पर भी भक्त बैठे उत्कीर्ण है।[4] अपेक्षित दिशाओ के अतिरिक्त प्राप्त अग्नि-प्रतिमाओं में से एक प्रतिमा[5] के दोनों पार्श्वों में एक-एक लम्बकूर्च अनुचर खड़ा तथा इन अनुचरों के नीचे एक-एक भक्त अंजलि में हाथ जोड़े बैठा चित्रित है। तीन अन्य प्रतिमाओं के साथ विशेषरूप से पार्श्वचर और भक्त दर्शनीय हैं। एक प्रतिमा[6] के पार्श्व मे दोनों ओर एक-एक अनुचरी और उनके पीछे एक-एक लम्बकूर्च अनुचर खड़ा चित्रित है तथा पादपीठ पर देवता के बाएँ अंजलि में हाथ जोड़े एक भक्त भी बैठा उत्कीर्ण है। दूसरी प्रतिमा[7] के दोनों पार्श्वों मे दो-दो अनुचर खड़े हैं और इनमे से दो के नीचे एक-एक अनुचर बैठा चित्रित है। पादपीठ पर एक कोने में एक उपासक बैठा और दूसरे कोने में एक उपासिका बैठी भी उत्कीर्ण है। दोनो अंजलि में हाथ जोड़े हैं। प्रभावली के ऊपरी कोनों पर विद्याधरो का एक-एक युगल अंकित है। तीसरे पादपीठ[8] पर देवता के दोनों ओर एक-एक चामर-ग्राहिणी तथा पुष्पमाला लिए एक-एक उपासिका खड़ी चित्रित है। दोनों ओर कोनो में एक-एक अनुचर भी खड़ा अंकित है। चामरग्राहिणियों के नीचे एक भक्त युगल (एक दूसरे की ओर मुख किए बैठे) भी उत्कीर्ण है। इन तीनों मूर्तियों की प्रभावलियों में एक ओर लम्बकूर्च त्रिमुख ब्रह्मा की और दूसरी ओर सम्भवतः अग्नि की छोटी प्रतिमा अंकित है।

विशेष मूर्तियाँ

ऊपर वर्णित अग्नि-प्रतिमाओं के अतिरिक्त खजुराहो में अग्नि की दो मूर्तियाँ[9] विशेष दर्शनीय है। पहली मूर्ति[10] (चित्र ९०) में समभंग खड़े अग्निदेव जटा-मुकुट, यज्ञोपवीत, कौपीन तथा पादुकाएँ धारण किए है। उनके चार भुजाएँ है, जिनमें पहली अक्षमाला-युक्त वरद-मुद्रा में प्रदर्शित है, शेष तीन भुजाओ में वे क्रमशः यज्ञ-पात्र, पुस्तक (वेद) और कमण्डलु धारण किए हैं। उनके दाएँ पार्श्व मे एक अनुचर खड़ा है, जिसके दाएँ हाथ में एक दण्ड और बाएँ में कमण्डलु है। इसी प्रकार बाएँ पार्श्व मे भी एक अनुचर खड़ा है, जिसका बायाँ हाथ कट्यवलम्बित और दायाँ

---

१ प्र० सं० २
२ प्र० सं० ३
३ प्र० सं० १७
४ प्र० सं० ४, ५
५ प्र० सं० ३०
६ प्र० सं० ३१
७ प्र० सं० ३२
८ प्र० सं० ३३
९ द्र० Tripathi, L. K., *Bhārati*, No. 3, pp. 93-94.
१० प्र० सं० ३५

अस्पष्ट है। दोनों अनुचरों के मात्र दो भुजाएँ हैं। मूर्ति के चारों कोनों पर एक-एक क्षीणकाय दण्डिन् संन्यासी की द्विभुजी प्रतिमा है। जटाजूट एवं लम्बकूर्च-युक्त चारो संन्यासी खड़े हैं और उनके बाएँ हाथ में दण्ड है। तीन के दाएँ हाथ मे अक्षमाला है और एक के इस हाथ में यज्ञ-पात्र है।

दूसरी मूर्ति[1] उपर्युक्त मूर्ति के सदृश है, किन्तु यह द्विभुजी है। इसका दायाँ हाथ अक्षमाला-युक्त अभय-मुद्रा में और बायाँ कमण्डलुधारी है। इस मूर्ति मे अग्नि के मस्तक के दोनों ओर धार्मिक वार्ता मे व्यस्त एक-एक बैठे सन्यासी का अतिरिक्त चित्रण है। साथ मे अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़ कर बैठे भक्तों का एक युगल भी अंकित है।

अग्निदेव यज्ञों के मर्मज्ञ माने गए है।[2] वे पुरोहित होने के साथ-साथ ऋषि भी हैं।[3] वे सबसे बड़े ऋषि माने गए हैं,[4] और ऋषियों के भी दिव्य ऋषि हैं।[5] उपर्युक्त दोनों मूर्तियों मे वे इसीलिए यज्ञ-पात्र से युक्त और ऋषियों से परिवृत है।

आलिगन मूर्ति

खजुराहो मे उपलब्ध अग्नि-स्वाहा की एक आलिगन-मूर्ति विशेष दर्शनीय है।[6] ऐसी मूर्ति अन्यत्र दुर्लभ-सी है। इसमें लम्बकूर्च अग्निदेव ललितासन-मुद्रा मे बैठे है और जटा-मुकुट तथा अन्य सामान्य आभूषणों से अलंकृत हैं। उनकी बाई गोद मे सामान्य आभूषणो से आभूषित पत्नी स्वाहा भी ललितासन मे स्थित हैं। चतुर्भुज देवता अपने प्रथम तीन हाथो मे क्रमश. कमण्डलु, स्रुक् तथा पुस्तक (वेद) धारण किए है और उनका चौथा हाथ देवी को आलिगन करता हुआ उनके बाएँ सुवर्तुल पीन पयोधर पर स्थित है। देवी बाएँ हाथ मे पुष्प धारण किए हैं और उनका दायाँ हाथ देवता के दाएँ स्कन्ध पर आश्रित है। पादपीठ पर वाहन अज अथवा मेप बैठा है और दोनो कोनो पर एक-एक लम्बकूर्च अनुचर खड़ा प्रदर्शित है। प्रभावली के ऊपरी एक कोने मे विष्णु और दूसरे मे शिव बैठे दर्शनीय है। अग्नि को ब्रह्मा माना गया है, फलत हिन्दू देवत्रयी के प्रदर्शनार्थ उनकी प्रभावली पर विष्णु और शिव का अकन स्वाभाविक ही है।

३. यम

यम भी एक वैदिक देवता है। ऋग्वेद मे यम के पिता विवस्वान्[7] और माता सरण्यू[8] के नाम मिलते है। *एक स्थान पर यम और उनकी बहन यमी का कथनोपकथन है,* जिसमें यमी द्वारा यम से उसे अपनी पत्नी बनाने का हठ तथा यम द्वारा उस प्रस्ताव को ठुकराए जाने का उल्लेख है।[9] किन्तु रॉथ के विचार से यम-यमी मानव जाति के उत्पन्न करने वाले प्रथम युगम थे।[10]

---

१ प्र० सं० [illegible]
२ ऋ०, १०, ११०, १
३ वही, ८, ६६, २०
४ वही, ६, १४, २
५ वही, ३, ३, ४
६ प्र० सं० [illegible]
७ ऋ० १०, १४, १
८ वही, १०, १७, १-२
९ वही, १०, ११, १ आदि।
१० Wilkins, W. J., *Hindu Mythology*, pp. 78-79.

मर्त्यों में मरने वाले यम सबसे पहले थे।[1] एक स्थान पर मृत्यु को ही यम बताया गया है।[2] ऋग्वेद में वे कहीं भी पापियों को दण्ड देने वाले के रूप में नहीं चित्रित हैं, किन्तु वे कुछ लोगों के लिए भय का कारण अवश्य थे।[3] परवर्ती देवशास्त्र में यम नरलोक के शासक अथवा दक्षिण के दिक्पाल हैं तथा पापियों को उनके पाप के अनुरूप दण्ड देना उनका कार्य है।

प्रतिमा-लक्षण

बृहत्संहिता में यम दण्डधारी एवं महिषासीन उल्लिखित हैं।[4] विष्णुधर्मोत्तर[5] में सभी आभूषणों से अलंकृत यम की महिषारूढ चतुर्भुजी प्रतिमा का विस्तृत विवरण है। इसके अनुसार देवता की बाईं गोद में धूमोर्णा बैठी हो तथा देवता के एक दाएँ हाथ में दण्ड, जिसके ऊपर अग्नि-ज्वाला-समूह-युक्त मुख बना हो (डॉ० बनर्जी ने उचित ही इसके खट्वाङ्ग होने की सम्भावना व्यक्त की है[6]) और दूसरे में खड्ग हो तथा एक बायाँ हाथ धूमोर्णा के पृष्ठभाग पर स्थित और दूसरा चर्म-युक्त (खेटकधारी) हो (अन्य पाठ के अनुसार बाएँ हाथों में अग्नि-ज्वालाओं से युक्त त्रिशूल एवं अक्षमाला हो[7])। धूमोर्णा का दायाँ हाथ देवता के पृष्ठभाग पर स्थित और बायाँ मातुलुंग (फल) लिए हो। देवता के दाएँ पार्श्व में लेखनी और पत्र लिए चित्रगुप्त और बाएँ पार्श्व में विकरालरूप पाशधारी काल चित्रित हो। मत्स्यपुराण में दण्ड एवं पाशधारी, महिषारूढ, कृष्णवर्ण, सिंहासनासीन, प्रदीप्त अग्नि के समान विकराल नेत्रों से युक्त यम की प्रतिमा बनाने का उल्लेख है।[8] अग्निपुराण के अनुसार भी यम दण्डधारी एवं महिषारूढ होने चाहिए।[9] अपराजितपृच्छा[10] और रूपमण्डन[11] में लेखनी, पुस्तक, कुक्कुट एवं दण्ड-युक्त, महिषारूढ तथा कृष्णाग यम का चित्रण है। आगमों में किरीट-मुकुट तथा अन्य आभूषणों से अलंकृत, महिषारूढ अथवा सिंहासनासीन, विकराल डाढ़ों एवं प्रदीप्त अग्नि के सदृश नेत्रों से युक्त तथा खड्ग एवं खेटक अथवा दण्ड एवं फल-पल्लव अथवा दण्ड एवं पाशधारी द्विभुजी यम-प्रतिमा का उल्लेख है।[12]

खजुराहो में यम

खजुराहो में यम दक्षिण की ओर मुख किए हुए मन्दिरों के दक्षिण-पश्चिमी कोनों में निर्ऋति के साथ युगल रूप में खड़े उत्कीर्ण हैं। उनकी केवल एक द्विभुजी-प्रतिमा[13] लेखक को

१ अथ०, १८, ३, १३
२ मैत्रायणी संहिता, २, ५, ६
३ Wilkins, W. J., *op. cit.*, p. 79.
४ बृहत्सं०, ५८, ५७
५ वि० ध०, ५१, १-७; यम-प्रतिमा का यही विवरण हेमाद्रि ने भी उद्धृत किया है, चतु०, व्रत ख०, अ० १, पृ० १४५
६ *DHI*, p. 525.
७ *EHI*, II, II, Appendix B, p. 257.
८ म० पु०, २६१, १२-१४
९ अ० पु० ५१, १४
१० अपरा०, २१३, ११
११ रूप०, २, ३३
१२ *EHI*, II, II, Appendix B, p. 256.
१३ प्र० सं० २

प्राप्त हुई है, जिसका दायाँ हाथ भग्न और बायाँ कट्यवलम्बित है। शेष सब प्रतिमाएँ चतुर्भुजी हैं। कुछ प्रतिमाओं को छोड़कर, जिनकी चारों भुजाएँ सुरक्षित बची हैं, प्रायः सब की एक, दो तथा तीन तक भुजाएँ भग्न मिलती हैं। कुछ प्रतिमाओं[1] की एक भी भुजा सुरक्षित नहीं बची है। इनके द्वारा हाथों में धारण किए गए लाञ्छन इस प्रकार हैं :

प्र० सं०	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
७†	कुक्कुट	डमरू	कुण्डलित कमलनाल	दण्ड
१६ (चित्र ६१)	हाथ टूटा है, किन्तु इसका खट्वाङ्ग बचा है, जिस पर कुक्कुट बैठा है	पुष्प (?)	पुस्तक	कटिहस्त और साथ में कुक्कुट भी
१६	कपाल	डमरू	घंटी	खट्वाङ्ग
२१	कुक्कुट	कलिका	कुण्डलित कमलनाल	दण्ड
२२	खट्वाङ्ग	कपाल	कुण्डलित कमलनाल	कटिहस्त
१७	कटिहस्त	पुस्तक	छिपा है	खट्वाङ्ग
१	कपाल	डमरू	खट्वाङ्ग	*
६‡(चित्र६४)	कटिहस्त और साथ में कुक्कुट भी	*	घंटी	खट्वाङ्ग
११	*	डमरू	कपाल	कटिहस्त
५	कटिहस्त	पुस्तक	*	*
१३	कपाल	डमरू	*	*
२३	कपाल	कुण्डलित कमलनाल	*	*
१०	*	*	कपाल	कुक्कुट
१२	*	डमरू	घंटी	*
६	कटिहस्त	*	*	*
२०	कपाल	*	*	*
१४	*	*	सर्प	*
१८	*	*	घंटी	*
३	*	*	*	कटिहस्त

---

[1] प्र० सं० ८, १५

† डॉ० ऊर्मिला अग्रवाल ने इस प्रतिमा के उमा शिव होने की सम्भावना व्यक्त की है, जो सर्वथा त्रुटिपूर्ण है। उन्होंने भूल से प्रतिमा के तीसरे हाथ के कुण्डलित कमलनाल को नाग और वाहन महिष को नन्दी माना है (*Khajurâho Sculptures and their Significance*, p. 54, Fig. 32)।

‡ डॉ० ऊर्मिला अग्रवाल ने इस प्रतिमा को भैरव माना है (वही, पृ० ५५)।

* हाथ भग्न है।

प्राय: सब शास्त्रों मे उल्लिखित यम का प्रमुख आयुध दण्ड खजुराहो की मात्र दो प्रतिमाओं के चौथे हाथ में प्रदर्शित है। भुवनेश्वर के ब्रह्मेश्वर मन्दिर की यम-प्रतिमा भी दाएँ हाथ में दण्ड धारण किए मिलती है।[1] परवर्ती शिल्प-शास्त्रों—अपराजितपृच्छा तथा रूपमण्डन—में उल्लिखित लेखनी तो खजुराहो की किसी प्रतिमा के हाथ में नहीं मिलती, किन्तु पुस्तक और कुक्कुट से युक्त प्रतिमाएँ प्राप्त हैं। कुछ प्रतिमाएँ इनमें से एक और कुछ दोनों धारण किए हैं। कुछ प्रतिमाओं के हाथ का खट्वाङ्ग विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित दण्ड प्रतीत होता है। कटिहस्त, कपाल, डमरू, घंटी एवं सर्प-युक्त कुछ प्रतिमाओं का निर्माण कर खजुराहो-शिल्पियों ने सम्भवत: अपनी स्वतन्त्र अभिरुचि प्रदर्शित की है। कुण्डलित कमलनाल तो खजुराहो की अपनी विशेषता है और शिल्पियों ने किसी भी देव-प्रतिमा के साथ इसे संयुक्त करने मे संकोच नही किया है।

ये प्रतिमाएँ द्विभंग[2] (चित्र ९४) अथवा त्रिभंग[3] खड़ी (चित्र ९१) उत्कीर्ण हैं। कुछ प्रतिमाएँ अपने शरीर का ऊर्ध्वभाग पीछे की ओर मोड़े अकड़ी खड़ी हैं।[4] अंशुमद्भेदागम में उल्लिखित किरीट-मुकुट-युक्त (किरीटमुकुटान्वित:)[5] प्रतिमाएँ खजुराहो में अप्राप्य हैं। सामान्यतया उनके सिर पर ऊर्ध्वकेश चित्रित हैं[6] तथा कुछ के सिर पर छोटे-छोटे ऐंठे जूड़ों की पंख के आकार की बनी एक पंक्ति भी दर्शनीय है।[7] जटाजूट[8], जटा-मुकुट[9] (चित्र ९४) तथा करण्ड-मुकुट-युक्त[10] भी कुछ प्रतिमाएँ मिलती हैं। सामान्यत: सभी प्रतिमाएँ प्रदीप्त अग्नि के समान विकराल नेत्रों (दीप्ताग्निसमलोचनम्), विकराल निकली डाढ़ों (कराल दंष्ट्रवदनो) तथा श्मश्रु से युक्त बहुत ही विकराल दर्शन वाली हैं। साथ में सभी सामान्य खजुराहो-आभूषणों से अलकृत भी हैं (चित्र ९१, ९४)। सामान्यरूप से महिष वाहन पादपीठ पर यम के दाएँ अथवा बाएँ बैठा चित्रित है (चित्र ९१)। वैसे तो प्रतिमाओं के साथ पार्श्वचरों तथा पूजकमुनियों का चित्रण नहीं है, किन्तु कुछ प्रतिमाओं के पादपीठ पर देवता के बाएँ पार्श्व में खड़ी एक नारी चित्रित है, जिसे धूमोर्णा माना जा सकता है,[11] तथा इसी प्रकार कुछ प्रतिमाओं के दाएँ पार्श्व में खड़े अनुचर को चित्रगुप्त मान सकते है।[12] कुछ प्रतिमाओं के साथ अंजलि में हाथ जोड़कर बैठे एक पूजकमुनि का भी चित्रण है।[13]

४. निर्ऋति

इन्द्र, अग्नि और यम की भाँति निर्ऋति का स्थान भी वैदिक देव-परिवार मे है। ऋग्वेद

---

१ *ARB*, p. 82.
२ प्र० सं० २, ५, ६, ७. १२, १४, २१
३ प्र० सं० ३, ८, ९, १६ आदि।
४ प्र० सं० १०, ११
५ प्र० शा०, पृ० २५६
६ प्र० सं० १, ३, ७, १०, ११, १२, १३ आदि।
७ प्र० सं० ५, ८, १६ आदि।
८ प्र० सं० ९
९ प्र० सं० ६, २२
१० प्र० सं० १८, २३
११ प्र० सं० ३, १८
१२ प्र० सं० १९, २०
१३ प्र० सं० १३, १४

में वे मृत्यु की अधिष्ठात्री देवी के रूप में उल्लिखित हैं,[1] किन्तु वैदिक और वेदोत्तर साहित्य द्वारा उन पर पर्याप्त प्रकाश नही पडा है। परवर्ती देवशास्त्र में निर्ऋति दक्षिण-पश्चिम दिशा के दिक्पाल बन गए है और इस रूप मे उनका विस्तृत विवरण पुराणो, आगमो तथा शिल्प-शास्त्रों में मिलता है।

प्रतिमा-लक्षण

विष्णुधर्मोत्तर[2] मे 'निर्ऋतिरूपनिर्माण' के अन्तर्गत विरूपाक्ष का वर्णन हुआ है और निर्ऋति उनकी पत्नी बताई गई है। विरूपाक्ष का यही विवरण हेमाद्रि ने भी निर्ऋति-चित्रण के रूप मे स्वीकार किया है।[3] इस पुराण के अनुसार विरूपाक्ष को विस्फारित नेत्रो, ऊर्ध्वकेश, भूरी डाढी, दो भुजाओ और भयंकर मुख से युक्त सब आभूषणों से अलंकृत तथा दण्डधारी निर्मित करना चाहिए। उनके बाईं ओर श्याम अंग (कृष्णाङ्गी) तथा श्याम मुख (कृष्णवदना) वाली, हाथ में पाश लिए हुए (पाशहस्ता), उनकी पत्नी देवी निर्ऋति होनी चाहिए।[4] यहाँ उनका वाहन ऊँट वर्णित है और ऐसा कहा गया है कि महामोह ऊँट है, काल विरूपाक्ष है और मृत्यु निर्ऋति। अग्निपुराण[5] मे निर्ऋति का आयुध खड्ग वर्णित है। मत्स्यपुराण[6] मे भी उनका यही आयुध मिलता है, किन्तु वहाँ उनका वाहन नर अथवा नर-युक्त विमान भी वर्णित है। अपराजित-पृच्छा और रूपमण्डन में लम्बी डाढ़ों से युक्त और श्वानारूढ़ निर्ऋति की चार भुजाओं का उल्लेख हुआ है, जिनमे वे खड्ग, खेटक, कर्त्री और नरमुण्ड धारण किए है।[7] अंशुमद्भेदागम के अनुसार वे भद्रपीठ पर स्थित, सुप्रभेदागम के अनुसार सिंह पर और शिल्परत्न के अनुसार नरयान पर आरूढ़ निर्मित होने चाहिए। इन ग्रन्थो मे भी समान रूप से उनके आयुध खड्ग और खेटक वर्णित हैं।[8]

खजुराहो में निर्ऋति

डॉ० बनर्जी के अनुसार निर्ऋति-प्रतिमाएँ अत्यन्त दुर्लभ है,[9] किन्तु खजुराहो मे ये दुर्लभ नही है। अन्य दिक्पालों के समान ही निर्ऋति का चित्रण वहाँ हुआ है। वहाँ वे मन्दिरों के दक्षिण-पूर्वी कोनों मे यम के साथ खड़े उत्कीर्ण है।[10] दाएँ हाथ में खड्ग और बाएँ मे नरमुण्ड धारण किए एक द्विभुजी प्रतिमा[11] (चित्र ६२) को छोडकर, शेष प्रतिमाएँ चतुर्भुजी है, जिनकी चार, तीन,

---

१ Macdonell, A A., *op. cit.*, p. 120 ; सूर्यकान्त, उपर्युक्त, पृ० ३१३

२ वि० ध०, अ० ५७

३ चतु०, व्रतखण्ड, अ० १, पृ० १४५

४ गोपीनाथ राव (*EHI*, II, II, p. 528) इस पुराण के आधार पर भ्रान्तिवश लिखते हैं कि निर्ऋति के 'देवी', 'कृष्णाङ्गी', 'कृष्णवदना', तथा 'कृष्णपाश' नामक चार पत्नियाँ हैं। निस्सन्देह ये पत्नियों के नाम नहीं, वरन् एक ही पत्नी देवी निर्ऋति के लिए प्रयुक्त विशेषण हैं।

५ ....नैर्ऋतः खड्गवाहुकरे (अ० पु०, ५१, १४); भट्टाचार्य 'करे' के स्थान पर सम्भवतः भूल से 'खरे' उद्धृत करते हैं, और इसके आधार पर निर्ऋति का वाहन खर मानते हैं (*II*, p. 30)।

६ म० पु०, २६१, १२-१६

७ अपरा०, २१३, १२; रूप०, २, ३४.

८ *EHI*, II, II, Appendix B, pp. 258-59.

९ *DHI*, p. 526 : "Sculptures showing Nirṛti are extremely rare."

१० दो प्रतिमाएँ (प्र० सं० २४, २५) अन्य स्थानों में भी प्राप्त हैं।

११ प्र० सं० २

दो अथवा एक भुजा सुरक्षित मिलती है, शेष भुजाएँ भग्न हैं। सामान्यतः वे पहले हाथ में खड्ग, दूसरे मे छुरिका अथवा पुष्प (कमल, कमल-कलिका, कुण्डलित कमलनाल), तीसरे में खेटक, सर्प अथवा कुण्डलित कमलनाल तथा चौथे में नरमुण्ड धारण किए है। दूसरे हाथ मे एक प्रतिमा त्रिशूल, दूसरी डमरू तथा तीसरी पुस्तक धारण किए भी मिलती है। निम्न तालिका से अधिक स्पष्ट हो जाएगा :

प्र० सं०	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
१४	खड्ग	त्रिशूल	कुण्डलित कमलनाल	नरमुण्ड
१६ (चित्र ६३)	खड्ग	कुण्डलित कमलनाल	सर्प	नरमुण्ड
२१ †	खड्ग	कमल	सर्प	नरमुण्ड
१	खड्ग	पुस्तक	सर्प	*
६	खड्ग	कमल	खेटक	*
१८	खड्ग	कमल-कलिका	कुण्डलित कमलनाल	*
९	खड्ग	डमरू	*	नरमुण्ड
२४	खड्ग	अस्पष्ट लाञ्छन	*	नरमुण्ड
११	खड्ग	*	खेटक	नरमुण्ड
१७	खड्ग	*	सर्प	नरमुण्ड
३	खड्ग	पुष्प	*	*
१९	खड्ग	छुरिका	*	*
२०	खड्ग	छुरिका	*	*
४	खड्ग	*	*	नरमुण्ड
७	खड्ग	*	*	नरमुण्ड
५	खड्ग	*	सर्प	*
१५	खड्ग	*	खेटक	*
२२	खड्ग	*	सर्प	*
२५	खड्ग	*	खेटक	*
१०	*	कमल	खेटक	*
८	खड्ग	*	*	*
१२	खड्ग	*	*	*
१३	खड्ग	*	*	*
१३	*	छुरिका (अस्पष्ट)	*	*

† डॉ० उर्मिला अग्रवाल ने इस प्रतिमा को भग्न भैरव मानने की भूल की है (उपर्युक्त, पृ० ११, चित्र ३१)।
* हाथ भग्न है।

सामान्यतः सब खजुराहो-प्रतिमाएँ शास्त्रों में उल्लिखित देवता का प्रमुख आयुध, खड्ग, अपने पहले हाथ में धारण किए हैं। खड्ग के साथ ही दूसरा प्रमुख आयुध खेटक भी कुछ प्रतिमाओं के तीसरे हाथ में दर्शनीय है। उत्तर बंगाल की नरारूढ़ निर्ऋति-प्रतिमा भी इसी प्रकार अपने हाथों में खड्ग और खेटक धारण किए है।[1] कुछ खजुराहो-प्रतिमाएँ दूसरे हाथ मे छुरिका (कर्त्री) लिए चित्रित हैं और जिन प्रतिमाओं का चौथा हाथ सुरक्षित है, वे सब इस हाथ में नरमुण्ड धारण किए हैं। इस प्रकार दो अथवा तीन हाथों का चित्रण अपराजितपृच्छा एव रूपमण्डन के विवरण[2] से साम्य रखता है। नरमुण्डधारी निर्ऋति-प्रतिमाएँ भुवनेश्वर-मन्दिरों में भी उत्कीर्ण हैं।[3] खजुराहो-शिल्पियों ने सम्भवतः अपनी ओर से कुछ प्रतिमाओं को सर्प, पुष्प, त्रिशूल, पुस्तक तथा डमरू-युक्त निर्मित किया है। राव द्वारा वर्णित अहोबिलम्-प्रतिमा[4] की भाँति तथा विष्णुधर्मोत्तर के आधार पर निर्मित दण्डधारी कोई भी प्रतिमा खजुराहो में उपलब्ध नही है।

एक प्रतिमा को छोड़कर[5], सब निर्ऋति-प्रतिमाएँ नग्न तथा द्विभंग[6] अथवा त्रिभग[7] (चित्र ९२, ९३) खड़ी चित्रित है। सामान्यतः वे सौम्यवदन हैं। कुछ प्रतिमाओं के मुख श्मश्रु-युक्त भी हैं।[8] ऐसी एक प्रतिमा का मुख विकराल भी है।[9] कुछ प्रतिमाओं[10] के सिरो पर जटा-मुकुट सुशोभित हैं (चित्र ९२) और कुछ[11] के सिरो पर ऊर्ध्वकेश प्रदर्शित हैं (चित्र ९३), जिनमे कभी-कभी सर्प लिपटा भी चित्रित है।[12] कुछ प्रतिमाएँ[13] करण्ड-मुकुट भी धारण किए हैं। कुछ प्रतिमाएँ[14] ऐसी भी हैं, जिनके सिर टूट गए हैं। कुछ प्रतिमाएँ[15] कुण्डल, सर्प-हार, सर्प-केयूर, सर्प-कंकण, सर्प-यज्ञोपवीत तथा वनमाला धारण किए हैं। इस प्रकार अलंकृत कुछ प्रतिमाओं[16] में यज्ञोपवीत और वनमाला अनुपस्थित भी है (चित्र ९२)। कुछ प्रतिमाएँ इतने आभूषणों से अलंकृत न होकर केवल कंकण और कुण्डल[17] अथवा कुण्डल और सर्प-हार[18] अथवा केवल कुण्डल[19] अथवा केवल सर्प-हार[20] ही धारण किए हैं।

---

१ *HOB*, Vol. I, p. 463; *DHI*, p 526

२ खड्गं च खेटकं हस्ते कर्त्री चैवारिमस्तकम् ।—अपरा० २१३, १२
खड्गञ्च खेटकं हस्तैः कार्तिका वैरिमस्तकः (वैरिमस्तकम्)।—रूप० २, ३४

३ *ARB*, p. 144.

४ *EHI*, II, II. p. 529, Pl. CLIV, Fig. 2.

५ प्र० सं० १८

६ प्र० सं० १०, ११, १२, १७, १८, २२, २४

७ प्र० सं० १, २, ३, ४, ६, ७, १६, २१ आदि।

८ प्र० सं० १३, १४

९ प्र० सं० १३

१० प्र० सं० १, २, ४ आदि।

११ प्र० सं० १०, ११, १६, १७ आदि।

१२ प्र० सं०, ६, १५

१३ प्र० सं० ३, १८, २२, २५

१४ प्र० सं० ७, ९, १२, २३, २४

१५ प्र० सं० ७, १४, १५

१६ प्र० सं० २, ६

१७ प्र० सं० १

१८ प्र० सं० ३

१९ प्र० सं० ४

२० प्र० सं० ९

सामान्यतः प्रतिमाएँ मत्स्यपुराण के अनुसार नरवाहन-युक्त चित्रित हैं, किन्तु राव द्वारा वर्णित अहोबिलम्-प्रतिमा[1] की भाँति खजुराहो में देवता नर के कंधों पर बैठे चित्रित नहीं हैं और न उत्तर बंगाल की प्रतिमा[2] के सदृश नर के पृष्ठ भाग पर ही आरूढ़ उत्कीर्ण हैं। नरवाहन सामान्यतः देवता के पैरों के पीछे अपने पैर फैलाए तथा एक हाथ से अपना सिर ऊपर उठाए पाद-पीठ पर अर्धशायी चित्रित है (चित्र ९२)। एक प्रतिमा[3] के पादपीठ पर वह अपने दाएँ हाथ से देवता का बायाँ चरण पकड़े बैठा भी चित्रित है। भुवनेश्वर की निर्ऋति-प्रतिमाओं का नरवाहन भी इसी प्रकार पादपीठ पर लेटा चित्रित हुआ है।[4] खजुराहो के जैन मन्दिरों में प्राप्त तीनों निर्ऋति-प्रतिमाएँ नरवाहन-युक्त नहीं हैं; वे श्वानवाहन-युक्त हैं। देवता श्वानारूढ़ नहीं हैं, श्वान एक पादपीठ[5] पर देवता के दाएँ खड़ा (चित्र ९३) तथा दूसरी पर देवता के दाएँ[6] और तीसरी पर देवता के बाएँ[7] बैठा चित्रित है। श्री कृष्णदेव ने जैन मन्दिरों की निर्ऋति-प्रतिमाओं के इस वाहन को वृष अथवा श्वान माना है।[8] वस्तुतः यह श्वान है, जिसका चित्रण अपराजितपृच्छा और रूपमण्डन के विवरण (श्वानारूढश्च) से साम्य रखता है। यह उल्लेखनीय है कि दोनों वाहनों से युक्त भी एक प्रतिमा[9] प्राप्त हुई है, जिसके पादपीठ पर सामान्यरूप से नरवाहन तो चित्रित है ही, साथ ही देवता के दाईं ओर श्वान बैठा भी उत्कीर्ण है।

अंशुमद्भेदागम् में अप्सराओं से युक्त होना निर्ऋति की विशेषता बताई गई है (अप्सरैश्च समायुक्तो निर्ऋतिश्च विशेषत.)।[10] वैसे तो खजुराहो में अप्सराओं से युक्त प्रतिमाएँ नहीं निर्मित हुई है, किन्तु एक प्रतिमा के साथ बाएँ पार्श्व में खड़ी एक अनुचरी को अप्सरा मान सकते हैं।[11] मत्स्यपुराण में अनेक राक्षसों से घिरी निर्ऋति-प्रतिमा बनाने का उल्लेख है। खजुराहो-प्रतिमाएँ सामान्यतः राक्षसों से युक्त नहीं है, परन्तु दो प्रतिमाएँ[12] ऐसी प्राप्त हुई हैं, जिनमे निर्ऋति के बाएँ पार्श्व में पादपीठ पर खड़ा एक अनुचर दाहिने हाथ में छुरिका धारण किए है और बाएँ से एक कपाल अपने मुख के पास लगाए है। ऐसा प्रतीत होता है कि निर्ऋति द्वारा बाएँ हाथ मे धारण किए गए नरमुण्ड से टपकते हुए रुधिर को वह कपाल में लेकर पी रहा है। रुधिर राक्षसों का भोजन है,[13] फलतः रुधिर पान करते ये दोनों अनुचर निश्चय ही राक्षस हैं। एक अन्य पाद-पीठ[14] पर भी एक पार्श्वचर खड़ा दर्शनीय है।

---

१ *EHI*, II, II, p. 529, Pl. CLIV, Fig. 2.
२ *HOB*, Vol I, p. 463; *DHI*, p. 526.
३ प्र० सं० १
४ *ARB*, p. 144.
५ प्र० सं० १६
६ प्र० सं० १८
७ प्र० सं० १७
८ Deva, K., *op cit.*, p. 61.
९ प्र० सं० १९
१० अ० भे०, पृ० २५७
११ प्र० सं० १८
१२ प्र० सं० १३, १४
१३ कार्या रुधिरमांसाढ्या बलयो बलशालिनाम्। —म० भा० (कलकत्ता), १३, ९८, ६०
१४ प्र० सं० १

५. वरुण

वरुण वैदिककाल में एक महत्वपूर्ण देवता थे और उस युग की देवत्रयी (इन्द्र-वरुण-अग्नि) मे उनका विशिष्ट स्थान था।[1] ऋग्वेद में बहुधा वे मित्र के साथ प्रशंसित हुए है, किन्तु कुछ सूक्तों में अकेले भी उनका गुणगान हुआ है। उन्हे सम्पूर्ण ससार का संरक्षक कहा गया है[2] और यह भी उल्लेख हुआ है कि मित्र के साथ वे पृथ्वी और आकाश को धारण किए हुए हैं।[3] महाभारत में उन्हें अदिति का पुत्र बताया गया है[4] और उनकी पत्नी वारुणी का भी उल्लेख हुआ है।[5] वे वर्षा, जल एव समुद्र के देवता है। वर्तमान देवशास्त्र मे उन्हे विशेष महत्व नही प्राप्त है, और वे हैं पश्चिम के दिक्पाल मात्र।

प्रतिमा-लक्षण

बृहत्संहिता[6] में वरुण हंसारूढ़ तथा पाशधारी उल्लिखित है। विष्णुधर्मोत्तर[7] में देवता का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है, जहाँ उन्हे जल-जन्तुओं का स्वामी (यादसाम्पति) कहा गया है। इस पुराण के अनुसार मुक्ताहार तथा अन्य आभूषणों से अलंकृत, कुछ लम्बे उदर से युक्त (किंचित्प्रलम्बजठरो) और दाहिने हाथो मे पद्म एव पाश तथा बाएं मे शख एवं रत्नपात्र धारण किए हुए देवता को, जिनके मस्तक के ऊपर श्वेत छत्र और जिनके बाई ओर मकरकेतु हो, सात हंसो वाले रथ पर स्थित निर्मित करना चाहिए। देवता की बाई गोद मे उनकी पत्नी सर्वाङ्गसुन्दरी गौरी बाएँ हाथ मे नीलोत्पल धारण किए और दाहिने हाथ से देवता को आलिंगन करते हुए बैठी हों तथा देवता के दाहिने पार्श्व मे मकरवाहिनी गगा और बाएँ मे कूर्मवाहिनी यमुना निर्मित हो। वरुण और गौरी क्रमशः प्रद्युम्न (कामदेव) एव रति कहे गए है। वरुण के हाथ का कमल धर्म का, शंख अर्थ का, पाश ससार-बन्धन का, रत्नपात्र नानारत्ना वसुन्धरा का और उनका छत्र यश का तथा मकर सुख का द्योतक है। लवण, क्षीर, आज्योद, दधिमण्ड, सुर, इक्षुरस तथा स्वादूद नामक सात समुद्र ही उनके रथ के सात हंस है। यमुना को छाया, गंगा को सिद्धि, मकर को वीर्य तथा कच्छप को काल समझना चाहिए। विष्णुधर्मोत्तर मे प्राप्त वरुण का यही वर्णन हेमाद्रि ने भी उद्धृत किया है।[8] किरीट और अगदधारी इस देवता को मत्स्यपुराण में भी पाश एव शखयुक्त वर्णित किया गया है, किन्तु यहाँ वे मीन के आसन पर (झषासनगतं) विराजमान चित्रित हैं।[9]

---

१ *EHI*, II, II, p. 529.
२ ऋ०, २, २७, ४
३ वही, ५, ६२, ३; ५, ६९, १; ५, ६९, ४
४ म० भा० (कलकत्ता), ९, ४९, १२
५ म० भा० (कि०), २, ९, ६
६ बृहत्सं०, ५८, ५७
७ वि० ध०. ५२, १-२१
८ चतु०, व्रत खं०, अ० १, पृ० १४१-४६
९ भट्टाचार्य भ्रान्ति से मत्स्यपुराण के अनुसार वरुण का वाहन मृग मानते हैं और यह पंक्ति उद्धृत करते हैं (*II*, p. 28): मृगाधिरूढं वरदं पताकाध्वजसंयुतम्।
पुराण में यह वर्णन वरुण के लिए नहीं, वरन् वायु के लिए हुआ है, द्र० :
वरुणस्य प्रवक्ष्यामि पाशहस्तं महाबलम्।
शङ्खस्फटिकवर्णाभं सितहाराम्बरावृतम्॥

(शेष अगली पृष्ठ पर देखिए)

अग्निपुराण में वे मकरासीन एवं पाशधारी हैं।[१] अपराजितपृच्छा के अनुसार मकरारूढ़ वरुण का पहला हाथ वरद-मुद्रा में हो और शेष हाथों में वे पाश, कमल और कमण्डलु धारण किए हों।[२] रूपमण्डन भी यही वर्णन स्वीकार करता है।[३] आगमों में भी देवता का वाहन मकर ही उल्लिखित है। इनके अनुसार करण्ड-मुकुट तथा सब आभूषणों से अलंकृत देवता का एक हाथ वरद-मुद्रा में और दूसरा पाशधारी होना चाहिए।[४]

खजुराहो में वरुण

भट्टाचार्य का कहना है कि वरुण-प्रतिमाएँ उत्तरभारत मे अपेक्षाकृत दुर्लभ है और यहाँ के महत्वपूर्ण संग्रहालयो मे कदाचित् किसी को वरुण-प्रतिमा देखने को मिले,[५] किन्तु खजुराहो में अन्य दिक्पालो के समान ही वरुण का चित्रण हुआ है और वे सामान्यत. पश्चिम की ओर मुख किए हुए मन्दिरो के उत्तर-पश्चिमी कोनों मे वायु के साथ खड़े उत्कीर्ण है। उनकी सब प्रतिमाएँ चतुर्भुजी है, जिनमे कुछ की चारो भुजाएँ सुरक्षित है, कुछ की तीन, दो अथवा एक ही भुजा सुरक्षित है, शेष भग्न है। कुछ प्रतिमाएँ ऐसी भी है जिनकी सब भुजाएँ नष्ट हो गई है।[६] सामान्यत· पहली भुजा वरद-मुद्रा मे, कटि-हस्त अथवा पाशधारी, दूसरी पाशधारी अथवा पद्म-युक्त, तीसरी कमलनाल अथवा पुस्तक से युक्त और चौथी कमण्डलुधारी अथवा कटि-हस्त मिलती है। निम्न तालिका द्रष्टव्य है·

प्र० सं०	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
३	कटि-हस्त	कमल	पाश	पुस्तक
४ (चित्र ६५)	पाश	कमल	पुस्तक	कटि-हस्त
१३ (चित्र ६६)	कटि-हस्त	पाश	कुण्डलित कमलनाल	कमण्डलु
१६	पाश	कमल	कुण्डलित कमलनाल	कटि-हस्त
२०	पाश	कुण्डलित कमलनाल	कुण्डलित कमलनाल	कमण्डलु
२५	वरद	पाश	पुस्तक	कमण्डलु

झषासनगतं शान्तं किरीटाङ्गदधारिणम्।
वायुरूपं प्रवक्ष्यामि धूम्रन्तु मृगवाहनम्॥
चित्राम्बरधरं शान्तं युवानं कुञ्चितभ्रुवम्।
मृगाधिरूढं वरदं पताकाध्वजसंयुतम्॥
—म० पु०, २६१, १७-१६

स्पष्ट है कि प्रथम तीन पंक्तियों में वरुण का और अन्तिम तीन पंक्तियों में वायु का चित्रण है।

१ अ० पु० ५१, १५
२ अपरा०, २१३, १३
३ रूप०, २, ३५
४ *EHI*, II, II, pp. 529-30.
५ *II*, p. 28.
६ प्र० सं० ७, १५, १८, २४

प्र० सं०	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
१	अभय	पुस्तक	कमल	*
२	वरद	पाश	मकरकेतु	*
५	वरद	पाश	कुण्डलित कमलनाल	*
१६	वरद	पाश	कुण्डलित कमलनाल	*
२१	वरद	पाश	कुण्डलित कमलनाल	*
१७	वरद	*	कमलनाल से बँधी पुस्तक	कमण्डलु
२३	*	पाश	पुस्तक	कमण्डलु
८	वरद	पाश	*	*
१४	कटि-हस्त	पाश	*	*
२२	कटि-हस्त	पाश	*	*
९	वरद	*	*	कमण्डलु
१०	वरद	*	कुण्डलित कमलनाल	*
१२	*	पाश	कुण्डलित कमलनाल	*
६	कटि-हस्त	*	*	*
११	कटि-हस्त	*	*	*

ऐसी प्रतिमाएँ, जिनका पहला हाथ वरद-मुद्रा में, दूसरा और तीसरा क्रमशः पाश और कमल-युक्त तथा चौथा भग्न है (जिसमे कमण्डलु रहे होने की सम्भावना है), अपराजितपृच्छा और रूपमण्डन के विवरण से पूर्ण साम्य रखती हैं। कुछ के चौथे हाथ मे कमण्डलु दर्शनीय भी है। पहला हाथ वरद की अपेक्षा एक प्रतिमा का अभय-मुद्रा में और कुछ का कट्यवलम्बित भी चित्रित है। सामान्यतः अन्य प्रतिमाएँ शास्त्रों में वर्णित देवता का प्रमुख आयुध पाश पहले, दूसरे अथवा तीसरे हाथ में धारण किए हैं। भुवनेश्वर की वरुण-प्रतिमाएँ भी पाशधारी हैं[1] और वहाँ के राजरानी मन्दिर की आभंग में खड़ी वरुण-प्रतिमा, जिसका दाहिना हाथ वरदा-मुद्रा में है और जो बाएँ से फन्देदार पाश का एक छोर पकड़े है (डॉ० बनर्जी ने भ्रान्ति से लिखा है कि दाहिना हाथ पाशधारी और बायाँ वरद-मुद्रा में है), अपनी सुन्दरता के कारण तो विशेष दर्शनीय है।[2] सामान्यतः खजुराहो में पाश के साथ-साथ कमल भी दूसरे अथवा तीसरे हाथ में चित्रित हुआ है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शास्त्रों में वर्णित कम से कम दो आयुध लगभग प्रत्येक खजुराहो-प्रतिमा

* हाथ खण्डित है।

१ *ARB*, pp. 70, 82, 144.

२ *Ibid.*, Fig. 66; *DHI*, p. 527, Pl. XLVI, Fig. 1.

द्वारा धारण किए गए हैं। कुछ प्रतिमाओं के एक हाथ में पुस्तक का चित्रण शिल्पियों द्वारा अपनी ओर से किया गया प्रतीत होता है। यद्यपि ठीक विष्णुधर्मोत्तर के वर्णन के अनुसार खजुराहो-प्रतिमाओं का चित्रण नहीं हुआ है, किन्तु एक प्रतिमा अपने एक बाएँ हाथ में मकर-केतु धारण किए अवश्य प्राप्त हुई है।[1]

सामान्यतः प्रतिमाएँ आभंग[2] अथवा त्रिभंग खड़ी[3] तथा अंशुमद्भेदागम के अनुसार करण्ड-मुकुट-युक्त (करण्डमुकुटान्वितः)[4] चित्रित हैं (चित्र ९५)[5]। कुछ प्रतिमाएँ मत्स्यपुराण के अनुसार किरीट-मुकुट धारण किए मिलती हैं[6] (चित्र ९६) तथा कुछ जटा-मुकुट मे भी दर्शनीय हैं।[7] कुछ प्रतिमाओ के सिर भग्न होने के कारण मुकुट अदृश्य हैं।[8] मुकुट के अतिरिक्त, वे हार, ग्रैवेयक, कुण्डल, अगद, कंकण, मेखला, यज्ञोपवीन तथा कौस्तुभमणि से अलंकृत (सर्वाभरणसंयुक्तः)[9] हैं (चित्र ९५, ९६)।

खजुराहो मे वरुण मकर-वाहन-युक्त है, किन्तु वे कांगड़ा जिले की वरुण-प्रतिमा[10] के विपरीत वाहन पर आरूढ नही है। मकर की छोटी आकृति देवता के दाई (चित्र ९५) अथवा बाई (चित्र ९६) ओर पादपीठ पर उत्कीर्ण है। सामान्यतः प्रतिमाओं मे पार्श्वचर एव पूजक मुनि नहीं उत्कीर्ण है, किन्तु एक प्रतिमा[11] मे एक पार्श्वचरी खड़ी और दूसरी[12] मे एक पार्श्वचर खडा चित्रित हुआ है। एक अन्य प्रतिमा[13] के दाएँ पार्श्व में एक शंख-पुरुष, जो अपने दोनों हाथो से एक शख पकडे है, खड़ा चित्रित है। कुछ प्रतिमाओं के पादपीठ पर पुष्पमाला-धारी[14] अथवा अंजलि-मुद्रा मे हाथ जोड़े[15] एक पूजक मुनि बैठा प्रदर्शित है।

६. वायु

वायु वैदिक देवता हैं, किन्तु वेदो मे उन्हें प्रमुख स्थान नही प्राप्त हुआ है। ऋग्वेद से उनकी उत्पत्ति के विषय में कुछ प्रकाश पड़ता है। ऐसा कहा गया है कि द्यावापृथिवी ने धन के निमित्त उन्हें उत्पन्न किया है।[16] एक अन्य स्थान पर उनकी उत्पत्ति विश्व-पुरुष के प्राण से बताई

१ प्र० सं० २
२ प्र० सं० १, ३, ४, ६, १६ आदि।
३ प्र० सं० २, ५, ६, ७, १३ आदि।
४ प्र० रा०, पृ० २५८
५ प्र० सं० १, २, ३, ८ आदि।
६ प्र० सं० १३, १४
७ प्र० सं० ३, ९, २२
८ प्र० सं० ६, ७, ९, १०, १८, २२
९ अंशुमद्भेदागम—प्र० रा०, पृ० १८ में उद्धृत।
१० *ASIAR*, 1915-16, Pl. XXXIV a; *II*, p. 28, Pl. XVIII.
११ प्र० सं० १९
१२ प्र० सं० २४
१३ प्र० सं० ११; यह स्मरणीय है कि विष्णुधर्मोत्तर एवं मत्स्यपुराण में वरुण के एक हाथ में शंख होने का उल्लेख है।
१४ प्र० सं० ४
१५ प्र० सं० ५, ६, १६, १७, १८, २१
१६ ऋ०, ७, ९०, ३

गई है।[१] उन्हे त्वष्टा का जामाता भी कहा गया है,[२] किन्तु उनकी पत्नी के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है। वायु कुछ स्थलो पर मरुत् के साथ संपृक्त होकर भी आए है। एक बार यह भी कहा गया है कि वायु ने उन्हें दिव्य योनि से वक्षणा अर्थात् कुल्याओं के लिए उत्पन्न किया है।[3] परवर्ती देवशास्त्र में वायु उत्तर-पश्चिम दिशा के दिक्पाल हैं। रामायण और महाभारत मे उन्हे हनुमान् तथा भीम का पिता कहा गया है।

प्रतिमा-लक्षण

विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार रूपवान् द्विभुज वायु दोनों हाथो से अपने वस्त्र के दोनों छोर ग्रहण किए (गृहीतवस्त्रान्त) हों तथा उनका वस्त्र हवा से भरा (वाय्वापूरितवस्त्र) हो, मुख खुला हो, केश विकीर्ण हो और उनके बाईं ओर जाने की इच्छा रखने वाली (गमनेच्छा) परम सुन्दरी पत्नी शिवा स्थित हों।[४] वायु के वेगशील होने के कारण ही उनका वस्त्र हवा से भरा तथा उनके केश विकीर्ण निर्मित करने का उल्लेख हुआ है। मत्स्यपुराण के अनुसार वायु मृग पर आरूढ हों और उनका एक हाथ वरद-मुद्रा में और दूसरा पताका-ध्वज-युक्त हो।[५] अग्निपुराण मे भी देवता ध्वज-युक्त चित्रित हैं और यहाँ भी उनके वाहन मृग का उल्लेख हुआ है।[६] अपराजितपृच्छा[७] एवं रूपमण्डन[८] मे मृगारूढ चतुर्भुजी वायु-प्रतिमा का प्रथम हाथ वरद-मुद्रा मे तथा शेष हाथों को ध्वज, पताका एवं कमण्डलु-युक्त चित्रित करने का उल्लेख है। अंशुमद्भेदागम मे द्विभुज वायु 'नानाभरणसंयुक्त' वर्णित है। यहाँ उनका दाहिना हाथ ध्वज-युक्त और बायाँ दण्डधारी है और वे सिंहासनासीन है। सुप्रभेदागम में वे मृगारूढ तथा ध्वज-युक्त है। शिल्परत्न के अनुसार उनका दाहिना हाथ वरद-मुद्रा मे और बायाँ पताका-युक्त होना चाहिए। यहाँ भी उनका वाहन हरिण उल्लिखित है।[९]

खजुराहो में वायु

खजुराहो में मन्दिरों के उत्तर-पश्चिमी कोनों पर वरुण के साथ वायु खडे उत्कीर्ण है। दो प्रतिमाएँ[१०] वहाँ के संग्रहालय मे भी उपलब्ध है। सब प्रतिमाएं चतुर्भुजी है, जिनमे कुछ की चारों भुजाएँ सुरक्षित मिलती हैं, कुछ की तीन, दो अथवा एक भुजा सुरक्षित है, शेष भग्न हो गई हैं। कुछ प्रतिमाओं की चारों भुजाएँ भग्न मिलती हैं।[११] सामान्यत प्रतिमाओं की पहली भुजा वरद-मुद्रा मे अथवा ध्वजधारी, दूसरी ध्वज, कमलनाल, अथवा पुस्तक-युक्त, तीसरी कमलनाल, ध्वज का एक छोर अथवा पुस्तक ग्रहण किए हुए और चौथी कमण्डलुधारी है :

१ वही, १०, ९०, १३
२ वही, ८, २६, २१-२२
३ वही, १, १३४, ४
४ वि० ध०, ५८, १-३; वायु-प्रतिमा का यही विवरण हेमाद्रि ने भी उद्धृत किया है, चतु०. व्रत खं०, अ० १, पृ० १४६
५ म० पु०. २६१, १८-१९
६ अ० पु० ५१. १२
७ अपरा०, २१३, १४
८ रूप०, २, ३६
९ *EHI*, II, II, Appendix B, pp. 261-62.
१० प्र० सं० २१, २२
११ प्र० सं० ७, ६, १०

प्र० सं०	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
२ (चित्र ६७)	ध्वज-दण्ड	पुस्तक	कमल-कलिका	कटि-हस्त
४	वरद	ध्वज	पुस्तक	कमण्डलु
११	वरद	ध्वज	पुस्तक	कमण्डलु
१२	ध्वज-दण्ड	वज्र (?)	ध्वज का छोर	कमण्डलु
१४	ध्वज	पुस्तक	कमल	कटि-हस्त
१६	वरद	ध्वज	पुस्तक	कमण्डलु
१७	ध्वज	कुण्डलित कमलनाल	कुण्डलित कमलनाल	कमण्डलु
१८ (चित्र ६८)	कमल	कुण्डलित कमलनाल	कुण्डलित कमलनाल	ध्वज-दण्ड
२०	ध्वज	पुस्तक	कुण्डलित कमलनाल	कटि-हस्त
१	वरद	ध्वज	पुस्तक	*
१५	वरद	ध्वज	ध्वज का छोर	*
१६	वरद	ध्वज	कुण्डलित कमलनाल	*
३	कटि-हस्त	*	पुस्तक	ध्वज-दण्ड
६	वरद और अक्षमाला	*	पुस्तक	कमण्डलु
८	वरद	*	*	कमण्डलु
५	*	*	पुस्तक	कटि-हस्त
२१	*	*	कमलनाल से युक्त ध्वज	कमण्डलु
२२	*	* (सम्भवत: अंकुश रहा होगा)	पुस्तक	* (सम्भवत: कमण्डलु रहा होगा)
१३	वरद	*	*	*

ऐसी प्रतिमाएँ, जिनका पहला हाथ वरद-मुद्रा मे है तथा दूसरे और चौथे मे जो क्रमश: ध्वज एवं कमण्डलु धारण किए है, अपराजितपृच्छा और रूपमण्डन के विवरण से मिलती है। सब शास्त्रों मे उल्लिखित वायु का प्रमुख आयुध ध्वज इनके किसी न किसी हाथ मे सामान्यत: द्रष्टव्य है। इस ध्वज का चित्रण तीन प्रकार से हुआ है : बिना दण्ड के फहराता ध्वज मात्र, दण्ड के ऊपर बँधा हुआ छोटा-सा फहराता ध्वज (चित्र ६८); तथा दाहिने हाथ द्वारा धारण किए गए दण्ड में नीचे से लिपटा हुआ बहुत बड़ा ध्वज, जो दण्ड के ऊपर से निकल कर फहराता

---

* हाथ खण्डित है।

हुआ देवता के सिर के पीछे से बाएँ कन्धे पर आ गया है और जिसके छोर को देवता एक बाएँ हाथ से पकड़े प्रदर्शित हैं। भुवनेश्वर की वायु-प्रतिमाओं के भी एक हाथ में ध्वज-दण्ड का चित्रण हुआ है[१] और उनके दूसरे हाथ मे खजुराहो-प्रतिमाओं के विपरीत बीजपूरक[२] है। खजुराहो-शिल्पी शास्त्र-निर्दिष्ट परम्पराओं की सीमा में जकड़ा कम, स्वच्छन्द अधिक है और इसीलिए कुछ प्रतिमाओ के एक हाथ में कमलनाल अथवा पुस्तक का चित्रण हुआ है। इसी प्रकार एक प्रतिमा का पहला हाथ वरद-मुद्रा में प्रदर्शित होने के साथ ही अक्षमालाधारी है।

अधिकाश प्रतिमाएँ त्रिभग[३] (चित्र ९८) और कुछ द्विभंग[४] खड़ी हैं। सामान्यतः उनके मस्तक पर करण्ड-मुकुट (चित्र ९५, ९८) शोभायमान है[५], किन्तु कुछ प्रतिमाएँ जटा-मुकुट-युक्त[६] (चित्र ९७) और एक प्रतिमा किरीट-मुकुट में दर्शनीय है।[७] कुछ के सिर खण्डित होने के कारण मुकुट लुप्त हो गए हैं।[८] सभी प्रतिमाएँ सामान्यतः हार, ग्रैवेयक, कुण्डल, केयूर, ककण, कौस्तुभ-मणि, यज्ञोपवीत तथा वनमाला से अलंकृत हैं (चित्र ९५, ९७, ९८)।

खजुराहो मे वायु का वाहन मृग चित्रित है, किन्तु यह बड़ी रोचक बात है कि एक प्रतिमा में मृग के स्थान पर खर का चित्रण हुआ है[९] (चित्र ९७)। देवता मृगारूढ़ नहीं है, लघुकाय मृग पादपीठ पर कभी देवता के दाएँ और कभी बाएँ बैठा (चित्र ९५) अथवा खड़ा (चित्र ९८) चित्रित है। कुछ प्रतिमाओं के पादपीठ पर एक मृग के स्थान पर मृग-युगल भी दर्शनीय है।[१०]

सामान्यतः प्रतिमाओं मे पार्श्वचर और भक्त उत्कीर्ण नही हैं, किन्तु एक प्रतिमा के दाएँ पार्श्व मे खड़ी एक चामरधारिणी[११] और दूसरी प्रतिमा के इसी पार्श्व मे अजलि-मुद्रा मे हाथ जोड़ कर बैठा एक भक्त[१२] दर्शनीय है।

७. कुबेर

कुबेर यक्षों के राजा (यक्षराज, यक्षेन्द्र तथा यक्षेश), धन के देवता (धनपति, निधिपति तथा धनद) एवं उत्तर के दिक्पाल (उत्तरदिक्पति) हैं। वैश्रवण, गुह्यकपति एव जम्भल भी

१ *ARB*, pp, 70, 82, 144
२ वही, पृ० ७०
३ प्र० सं० ३, ४, ५, ८, ११, १२, १६, १८ आदि।
४ प्र० सं० २, ६, १७ आदि।
५ प्र० सं० १, ४, ६, १२, १८ आदि।
६ प्र० सं० २, १४, २१
७ प्र० सं० १३
८ प्र० सं० ५, ६, ७, ८
९ प्र० सं० ५; श्री कृष्णदेव ने भी लिखा है कि एक वायु-प्रतिमा में मृग-वाहन के स्थान पर खर का चित्रण है (उपर्युक्त, पृ० ११)। निश्चित ही उनका तात्पर्य इसी प्रतिमा से है। डॉ० उर्मिला अग्रवाल ने, बिना अन्य बातों पर विचार किए, एकमात्र खर-युक्त होने के कारण इस प्रतिमा को निऋंति मानने की भूल की है (उपर्युक्त, पृ० ६०)। वस्तुतः खर भी निऋंति का वाहन नहीं है, जैसा कि डॉ० उर्मिला अग्रवाल, गोपीनाथ राव के कथन के आधार पर, मानती हैं। राव ने भ्रान्तिवश वि० ध० के आधार पर निऋंति का वाहन खर बताया है (*EHI*, II, II, p. 528)। वि० ध० में 'निऋंतिरूपनिर्माण' के अन्तर्गत विरूपाक्ष का विवरण दिया गया है (निऋंति उनकी पत्नी बताई गई है) और उनका वाहन ऊँट बताया गया है, खर नहीं। भट्टाचार्य भी भ्रान्तवश अ० पु० में उल्लिखित 'करे' को 'खरे' मानकर निऋंति का वाहन खर लिखते हैं (*II*, p. 30)। द्र० प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ० २२०, पाद-टिप्पणी ५ भी।
१० प्र० सं० १४, १५, [illegible]
११ प्र० सं० १३
१२ प्र० सं० १५

उनके अन्य नाम हैं। सर्वप्रथम उनका उल्लेख अथर्ववेद में यक्षराज के रूप में हुआ है।[1] रामायण के उत्तरकाण्ड में वैश्रवण की उत्पत्ति की कथा है, जहाँ वे ब्रह्मा के मानसपुत्र पुलस्त्य के पुत्र कहे गए हैं।[2] उनकी उत्पत्ति से सम्बन्धित दूसरी कथा वराहपुराण में इस प्रकार मिलती है : जब ब्रह्मा ने सृष्टि रचने का उपक्रम किया तो प्रचण्ड झंझावात के साथ उनके मुख से पाषाण-वर्षा होने लगी। कुछ समय पश्चात् जब वातावरण शान्त हुआ तो उन्होंने अपने मुख से निकले पाषाण-खण्ड से एक अलौकिक पुरुष की रचना की। इसी पुरुष को उन्होंने धनपति बनाकर देवताओं के धन का रक्षक नियुक्त कर दिया।[3]

भारत में कुबेर-पूजा अत्यन्त प्राचीन काल से होती चली आ रही है। ई० पू० की दो शतियों में कुबेर-पूजा का महत्वपूर्ण स्थान था।[4] धनपति के मन्दिर का उल्लेख पतंजलि द्वारा हुआ है।[5] यद्यपि महाभाष्य में धनपति, यक्षपति, अथवा गुह्यकपति वैश्रवण का उल्लेख कई स्थानों में हुआ है, किन्तु अधिक प्रचलित नाम कुबेर वहाँ नहीं मिलता।[6] बेसनगर से प्राप्त और अब इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता में उपलब्ध प्रसिद्ध कल्पद्रुम निस्सन्देह किसी कुबेर-मन्दिर के सम्मुख स्थित ध्वज-स्तम्भ रहा होगा। इसमें कुबेर-निधियों का प्राचीनतम चित्रण देखा जा सकता है।[7]

प्रतिमा-लक्षण

कुबेर-प्रतिमा का विस्तृत विवरण अनेक लक्षण-ग्रन्थों में मिलता है। वराहमिहिर के अनुसार कुबेर नरवाहन-युक्त किरीट-मुकुटधारी तथा बड़े उदर वाले निर्मित होने चाहिए।[8] मत्स्यपुराण[9] में उनको महाकाय, महोदर, अष्टनिधियों से युक्त, अनेक गुह्यकों से आवृत, श्वेत वस्त्र, कुण्डल, हार, केयूर तथा मुकुट से अलकृत, गदाधारी तथा नर-युक्त विमान पर विराजमान निर्मित करने का उल्लेख है। अग्निपुराण[10] मे कुबेर को गदाधारी एवं मेषस्थ चित्रित किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर[11] मे धनद का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है, जिसमें कुबेर-प्रतिमा की कुछ अतिरिक्त विशेषताएँ मिलती हैं, जिनमें मुख्य हैं : उदीच्यवेश, कवच, दो डाढ़ें, श्मश्रु, बाईं गोद में बैठी पत्नी ऋद्धिदेवी तथा चार हाथ (दाएँ गदा तथा शक्ति, और बाएँ रत्न तथा पात्र से युक्त)। अपराजितपृच्छा[12] तथा रूपमण्डन[13] में उनका वाहन गज चित्रित हुआ है और उनके चार हाथों में गदा, निधि, बीजपूरक एवं कमण्डलु होने का उल्लेख है। आगमों मे यक्षेश कुबेर की प्रतिमा

---

१ *DHI*, p. 337.
२ *EHI*, II, II, pp. 533–35.
३ वही
४ Sivaramamurti, C., *op. cit.*, p 21.
५ 'प्रासादे धनपतिरामकेशवानाम्'—महाभाष्य, २, २, २, ३४, पृ० ४७२
६ *DHI*, p. 337.
७ Sivaramamurti, C., *op. cit.*, p. 21.
८ बृहत्सं०, ५८, ५७
९ म० पु०, २६१, २०–२२; द्र० Agrawala, V. S., *Matsya Purāṇa-A Study*, p. 362.
१० अ० पु०, ५१, १४
११ वि० ध०, ख० ३, ५३; यही विवरण चतु० में भी उद्धृत है, व्रत० ख०, भा० १ पृ०, १३६-४०
१२ अपरा०, २१३. १५
१३ रूप०, २, ३७

किरीट अथवा करण्ड-मुकुट, कुण्डल, हार आदि सब आभूषणों से अलंकृत दो अथवा चार भुजाओं से युक्त निर्मित करने का वर्णन है। इनके अनुसार यदि कुबेर द्विभुज हों तो एक भुजा वरद और दूसरी अभय-मुद्रा में (अथवा बायाँ हाथ गदाधारी हो) और यदि वे चतुर्भुज हों तो एक भुजा से बाईं गोद में बैठी एक पत्नी विभवा को और दूसरे से दाईं गोद में बैठी दूसरी पत्नी वृद्धि देवी को आलिंगन करते हों तथा शेष दो भुजाएँ गदा और शक्ति से युक्त हों। अंशुमद्भेदागम में कुबेर के मेष-वाहन तथा उनके दाएँ-बाएँ क्रमश शंख एवं पद्म निधियों के होने का भी उल्लेख है।[1]

खजुराहो में कुबेर

कुबेर के प्राचीनतम चित्रण कुषाणकालीन मथुरा-कला[2] तथा गंधार की यूनानी कला[3] में द्रष्टव्य हैं। निस्सन्देह इन्हीं प्रतिमाओं की विशिष्टताओं पर परवर्ती शास्त्रों के अधिकांश कुबेर-प्रतिमा-लक्षण (जिनका विवरण दिया जा चुका है) आधारित हैं। परवर्ती विभिन्न कला-शैलियों में कुबेर-प्रतिमाओं का अभाव नहीं है। जहाँ एक ओर मध्यकालीन अन्य मन्दिरों की भाँति खजुराहो-मन्दिरों में कुबेर का चित्रण दिक्पाल-रूप में हुआ है, वहाँ दूसरी ओर धनपति एवं यक्षराज के रूप में भी उनकी प्रतिमाएँ वहाँ उपलब्ध हैं। दिक्पाल रूप में वे सामान्यत. मन्दिरों के उत्तर-पूर्वी कोनों में ईशान के साथ खड़े चित्रित हैं। अन्य रूपों में निर्मित उनकी प्रतिमाएँ अधिकांशत बैठी प्राप्त हुई हैं। दाहिने हाथ में चषक और बाएँ में नकुलक धारण किए कुछ द्विभुजी प्रतिमाओं[4] को छोड़ कर (चित्र ६६),[5] सभी प्रतिमाएँ चतुर्भुजी हैं। अधिकांशत. चतुर्भुजी प्रतिमाओं की चारों भुजाएँ सुरक्षित हैं, किन्तु कुछ प्रतिमाएँ ऐसी भी हैं, जिनकी तीन, दो अथवा एक ही भुजा सुरक्षित रह गई है, शेष खण्डित है। ये सामान्यत पहले हाथ में चषक अथवा फल (कभी-कभी यह हाथ वरद-मुद्रा में अथवा कट्यवलम्बित भी मिलता है), दूसरे में कमल, गदा अथवा नकुलक, तीसरे में नकुलक, कमल अथवा गदा और चौथे में नकुलक अथवा कमण्डलु धारण किए हैं:

प्र० सं०	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
१	कटि-हस्त	गदा	नकुलक	फल
२	फल	कमल	कमल	नकुलक
३	चषक	कुण्डलित कमलनाल	कमल	नकुलक
४	नकुलक	पुस्तक	कमल	कटि-हस्त
६	कटि-हस्त	गदा	कुण्डलित कमलनाल	नकुलक

---

१ *EHI*, II. II, pp. 535-36

२ M M. Nos. C8, C9, *MMC*, pp 87-88, Nos. 1402, 1538, 1958, 2329, *CBIMA*, pp. 186-87; No. 3870, Bajpai, K. D., *JIM*, Vol. X, p. 31.

३ Smith, V. A., *History of Fine Art in India and Ceylon*. p. 56, Pls. 49B and 50B; Foucher, A., *The Beginnings of Buddhist Art*, pp. 141-45, Pl. XVIII.

४ प्र० सं० २९–३५; इनके अतिरिक्त, द्विभुज कुबेर की कुछ छोटी आकृतियाँ (जिनमें कुछ मधुपायी हैं) विश्वनाथ, कन्दरिया, जगदम्बी आदि मन्दिरों के अधिष्ठान की रूपपट्टिकाओं में भी अंकित हैं।

५ प्र० सं० ३०

प्र० सं०	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
७ (चित्र १०३)	वरद	गदा	कुण्डलित कमलनाल	नकुलक
८	कटि-हस्त	कुण्डलित कमलनाल	गदा	नकुलक
९	वरद तथा अक्षमाला	नकुलक (अग्रभाग)	नकुलक (पृष्ठ भाग)	कमण्डलु
१३	फल	कुण्डलित कमलनाल	पुस्तक	नकुलक
१४	कटि-हस्त	कुण्डलित कमलनाल	कमल	नकुलक
१८	फल	कमलकलिका	कमल	नकुलक
१९	चषक	कुण्डलित कमलनाल	पुस्तक	नकुलक
२०	कटि-हस्त	कुण्डलित कमलनाल	पुस्तक	नकुलक
२२	कटि-हस्त	नकुलक (अग्र भाग)	नकुलक (पृष्ठ भाग)	कमल
२३	चषक	कमल	फल	नकुलक
२४	फल	कमल	कमल	नकुलक
२५	फल	अस्पष्ट लाञ्छन	कमल	नकुलक
२६	चषक	नकुलक (अग्रभाग)	नकुलक (पृष्ठभाग)	कटि-हस्त
२८	चषक	कुण्डलित कमलनाल	कुण्डलित कमलनाल	नकुलक
१०	वरद	नकुलक (अग्रभाग)	नकुलक (पृष्ठभाग)	*
१५	वरद	नकुलक (अग्रभाग)	नकुलक (पृष्ठभाग)	*
११	वरद	नकुलक	*	कमण्डलु
२१	कटि-हस्त	*	कुण्डलित कमलनाल	नकुलक
२६	कटि-हस्त	कमल	*	नकुलक
१२	चषक	कुण्डलित कमलनाल	*	नकुलक
१६	*	कुण्डलित कमलनाल	पुस्तक	*
२७ (चित्र १००)	*	*	कुण्डलित कमलनाल	नकुलक
३१	चषक	*	नकुलक	*
५	*	*	*	नकुलक
१७	*	*	*	कमण्डलु

इस प्रकार स्पष्ट है कि ये प्रतिमाएँ किसी एक शास्त्र के अनुसार पूर्णरूपेण नही निर्मित हैं। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि चतुर्भुजी प्रतिमाओं के कम-से-कम दो हाथों मे शास्त्र-निर्दिष्ट कोई न कोई पदार्थ अवश्य है। विभिन्न कालो की अन्य केन्द्रों से प्राप्त कुबेर-प्रतिमाओं के दाहिने हाथ के चषक अथवा पात्र की परम्परा मे खजुराहो-प्रतिमाओ के प्रथम हाथ का चषक चित्रित हुआ है। कुछ प्रतिमाओं द्वारा धारण किया हुआ फल निश्चित ही अपराजितपृच्छा तथा रूपमण्डन में उल्लिखित बीजपूरक है, अन्तर केवल इतना है कि यह तीसरे हाथ में न होकर पहले में है। अंशुमद्भेदागम के अनुसार कुछ प्रतिमाओं का प्रथम हाथ वरद-मुद्रा मे दर्शनीय है। सामान्यतः

* हाथ खण्डित है।

शास्त्र-निर्दिष्ट देवता का एक प्रमुख आयुध गदा कुछ प्रतिमाओं के दूसरे अथवा तीसरे हाथ में देखा जा सकता है। धन से भरी थैली धन के देवता कुबेर की स्वाभाविक विशेषता है, इसीलिए सब प्रतिमाएँ नकुलक (एक थैली जिसका अग्रभाग नकुल-मुखाकार है) अवश्य धारण किए मिलती हैं। नकुलक-चित्रण बौद्ध देवशास्त्र के प्रभाव का परिणाम है। यह अधिकांशतः प्रतिमाओं के चौथे हाथ मे चित्रित हुआ है। कुछ प्रतिमाएँ नकुलक का अग्रभाग दूसरे हाथ से और उसी का पृष्ठभाग तीसरे हाथ से पकड़ कर उसे ग्रीवा के पीछे रखे चित्रित है। कुछ प्रतिमाओ के चौथे हाथ में कमण्डलु अथवा घट का चित्रण है, जो अपराजितपृच्छा और रूपमण्डन के वर्णन से साम्य रखता है। मथुरा संग्रहालय[1] की कुषाणकालीन एक द्विभुजी कुबेर-प्रतिमा के बाएँ हाथ में भी एक घट (अमृतघट) दर्शनीय है। खजुराहो-शिल्पियों ने जहाँ एक ओर शास्त्र-निर्दिष्ट अथवा परम्परागत लक्षणों को मान्यता दी है, वहाँ दूसरी ओर वे अपनी स्वतन्त्र अभिरुचि दर्शाने मे भी नही चूके हैं। सम्भवतः इसीलिए कुछ प्रतिमाओं का एक हाथ कट्यवलम्बित अथवा पुस्तकधारी भी मिलता है। कमल अथवा कुण्डलित कमलनाल सभी खजुराहो-प्रतिमाओ की अपनी विशेषता है, कुबेर-प्रतिमाएँ भला इस विशेषता से क्यों अछूती रहती ? दाहिने हाथ मे कमल धारण किए हुए एक गुप्तकालीन कुबेर-प्रतिमा मथुरा संग्रहालय[2] मे भी प्राप्त है।

मधुपायी कुबेर

मथुरा संग्रहालय की कुछ कुषाणकालीन तथा परवर्ती कुबेर-प्रतिमाओं के समान खजुराहो की सब द्विभुजी प्रतिमाएँ, जैसा कि ऊपर कहा गया है, दाएँ हाथ में चषक और बाएँ मे नकुलक धारण किए हैं। चषक और थैली कुबेर-प्रतिमाओं की प्राचीनतम विशेषता है। खजुराहो की कुछ द्विभुजी प्रतिमाओं में कुबेर द्वारा मधुपान का चित्रण है। मधुपायी कुबेर बैठे चित्रित है, जिनके दाएँ पार्श्व में खड़ा अनुचर अपने दोनों हाथो से पकड़े सुराभाण्ड से, देवता द्वारा दाहिने हाथ में धारण किए चषक पर, सुरा डालता प्रदर्शित है।[3] अनुचर के स्थान पर कभी-कभी अनुचरी भी मधुपात्र से मदिरा डालती अंकित है।[4] ऐसे ही मथुरा संग्रहालय[5] के कुषाणकालीन तथा परवर्ती मधुपायी कुबेर-चित्रण दृष्टव्य हैं। महाभारत[6] मे रुधिर, मास तथा सुरासव यक्षों और राक्षसो का भोजन बताया गया है। मनु भी मास और मदिरा यक्षों, राक्षसो और पिशाचों का भोजन बताते हैं।[7] मेघदूत में भी यक्षों द्वारा सुन्दरियों के साथ कल्पवृक्ष से उत्पादित सुरा पीने का उल्लेख मिलता है।[8] इस प्रकार सुरापान यक्षों की विशेषता है, अतएव यक्षराज कुबेर का मधुपायी चित्रण स्वाभाविक है।

---

१ No. C 8, *CBIMA*, p. 180.

२ No. 594, *CBIMA*, p. 184.

३ प्र० सं० ३१, ३२, ३४, ३५

४ प्र० सं० ३३

५ No. C2, *MMC*, pp. 83-86, Pl. XIII; Growse, F. S., *Mathurā*, pp. 155-59 with two plates; *ASI*, Vol. I, pp. 242-44; *CBIMA*, pp. 194-96; Nos. C4, C5, *MMC*, pp. 86-87; *CBIMA*, p. 179; Nos. 1594, 1694, *CBIMA*, p. 187; See also Smith, *op cit.*, pp 42-43, Pl. 33, Figs. A & B; *Yakṣas*, Pt. I, p. 40, Pl. 14, Fig. 1; नागर, मदनमोहन, पुरातत्त्व संग्रहालय, मथुरा की परिचय-पुस्तक, पृ० १४, चित्र ३४

६ म० भा० (शि०), १३, ४८, ३०

७ मनु० ११, ९६

८ मेघ०, २, ३

दिक्पाल-रूप में मन्दिर-जंघाओं में उत्कीर्ण प्रतिमाएँ[1] कुछ द्विभंग खड़ी छोड़कर, सभी त्रिभंग खड़ी (चित्र १०३) मिलती हैं। मन्दिरों के अन्य भागों में अंकित एवं संग्रहालय की अन्य रूपों में प्राप्त कुबेर-प्रतिमाएँ अधिकांशतः अर्धपर्यंकासनासीन[2] है (चित्र ९९, १००)। परम्परागत तथा शास्त्र-निर्दिष्ट कुबेर प्रतिमाओं के 'महाकाय' तथा 'महोदर' अथवा 'वृहत्कुक्षि' होने की विशिष्टता कुछ प्रतिमाओं मे विशेष दर्शनीय है (चित्र ९९, १००)।

सामान्यतः ये प्रतिमाएँ अंशुमद्भेदागम के अनुसार करण्ड-मुकुट से सुशोभित है (चित्र १००, १०१, १०३)। मुकुट के स्थान पर एक प्रतिमा[3] के चित्रित ऊर्ध्वकेश दर्शनीय हैं। मुकुट के अतिरिक्त, सामान्यतः सभी प्रतिमाएँ सामान्य खजुराहो-आभूषणों—कुण्डल, हार, ग्रैवेयक, केयूर, ककण, मेखला, यज्ञोपवीत, कौस्तुभमणि तथा वनमाला—से अलकृत हैं। कुछ प्रतिमाओं के पादपीठ पर शंख और पद्म निधियों के प्रतीक दो घट स्थित मिलते हैं, जो देवता के दोनों ओर एक-एक औंधा रखा[4] अथवा एक ही ओर दोनों सीधे[5] (चित्र १०१) अथवा एक दूसरे के ऊपर स्थित[6] है। एक प्रतिमा[7] के पादपीठ पर तीन घट भी मिलते हैं, जिनमें दो अलंकृत घट प्रतिमा के एक ओर सीधे रखे और तीसरा दूसरी ओर लुढ़का पड़ा है (चित्र ९९)। कुछ प्रतिमाओ के साथ (चित्र १००, १०३) दो घट न होकर एक ही मिलता है, जो सीधा रखा[8], औंधा[9] अथवा एक ओर लुढ़का हुआ[10] चित्रित है। अष्टनिधियों के प्रतीक न तो आठ घट किसी प्रतिमा के साथ मिलते हैं और न भुवनेश्वर की कुबेर-प्रतिमाओं[11] की भाँति ये घट कल्पवृक्ष से लटकते ही चित्रित हैं।

सामान्यतः प्रतिमाएँ वाहन-विहीन है, किन्तु कुछ प्रतिमाओं के पादपीठ पर अंशुमद्भेदागम के अनुसार मेष वाहन अंकित हुआ है।[12] कुछ का वाहन श्वान-जैसा प्रतीत होता है[13] तथा एक प्रतिमा[14] का वाहन खण्डित होने के कारण स्पष्ट नही है। अनुचर तथा भक्त बहुत ही कम प्रतिमाओं के साथ चित्रित हुए है, फिर भी कुछ के साथ एक-दो पार्श्वचर,[15] भक्त अथवा भक्त-युगल[16] देखने को मिलते हैं। मधुपायी कुबेर-प्रतिमाओं के बाएँ पार्श्व मे सुराभाण्ड लिए हुए एक अनुचर अथवा अनुचरी के चित्रण का उल्लेख ऊपर किया ही जा चुका है।

---

१ प्र० सं० १, ५, १३, १८
२ प्र० सं० २३, २४, २६, २७, २८, ३० आदि।
३ प्र० सं० ३१
४ प्र० सं० १६
५ प्र० सं० २८, ३०
६ प्र० सं० १९
७ प्र० सं० ३०
८ प्र० सं० ९, १८, २५, २६, २७
९ प्र० सं० १०, १७
१० प्र० सं० ११, १५
११ *ARB*, pp. 97, 144
१२ प्र० सं० १, २, ४, ५, १०
१३ प्र० सं० ६, ८, २०
१४ प्र० सं० २१
१५ प्र० सं० १५, २७
१६ प्र० सं० १७, ३०, ३७

आलिंगन-मूर्ति

खजुराहो मे कुबेर और ऋद्धिदेवी की एक दुर्लभ आलिंगन-मूर्ति[१] भी लेखक को प्राप्त हुई है, जिसमे कुबेर एक पीठ पर ललितासनासीन चित्रित हैं (चित्र १०१)। करण्ड-मुकुट तथा अन्य सामान्य आभूषणों से अलंकृत चतुर्भुज देवता के प्रथम तीन हाथो मे क्रमश: चषक, कमलनाल एवं नकुलक हैं और चौथा हाथ उनकी बाईं गोद मे बैठी पत्नी ऋद्धिदेवी को आलिंगन करता हुआ उनके बाएँ सुवर्तुल पीन पयोधर पर स्थित है। करण्ड-मुकुट तथा अन्य सामान्य आभूषणों से अलंकृत देवी का दाहिना हाथ देवता को आलिंगन करता हुआ उनके दाएँ स्कन्ध पर स्थित है और वे बाएँ हाथ मे एक मत्स्य धारण किए है। देवता के दाएँ पार्श्व मे एक अनुचरी दोनो हाथो से एक पात्र पकड़े खड़ी है। यह सुरापात्र है, जिससे सुरापान करते देवता के दाएँ हाथ के चषक में वह सुरा डालने को उद्यत है। ऋद्धिदेवी के बाएँ पार्श्व मे एक अनुचर खड़ा उत्कीर्ण है। पादपीठ पर पद्म और शंख निधियों के प्रतीक दो अलंकृत घट रखे है और उनके निकट अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़ कर एक भक्त भी बैठा है। मूर्ति-कला की दृष्टि से यह एक सुन्दर मूर्ति है। प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से तो इसका अपूर्व महत्व है, क्योकि अन्यत्र कुबेर-ऋद्धिदेवी की आलिंगन-मूर्तियाँ बहुत कम उपलब्ध है। ऐसी एक मध्ययुगीन मूर्ति ग्वालियर संग्रहालय मे भी द्रष्टव्य है।[२]

८. ईशान

प्रतिमा-लक्षण

उत्तर-पूर्व दिशा के स्वामी ईशान शिव के ही एक विशिष्ट रूप है। अन्य दिक्पालो के समान ही इनका विवरण अनेक लक्षण-ग्रन्थो मे उपलब्ध है। मत्स्यपुराण[३] के अनुसार ईशान को धवल नेत्रों और धवल कान्ति वाला, त्रिशूलधारी, त्रिनेत्र तथा वृषभासीन निर्मित करना चाहिए। अग्निपुराण[४] मे वे जटाधारी और वृषारूढ़ बताए गए हैं। विष्णुधर्मोत्तर मे प्राप्त इस दिक्पाल का वर्णन बड़ा ही रोचक है। तृतीय खण्ड के अध्याय ५५ मे शिव (ईशान, इस सदर्भ मे गौरीशर्व भी कहे गए है) का अग्नि, निऋंति और वायु के साथ उल्लेख हुआ है[५] और अध्याय ५५-५८ मे क्रमश: इनकी प्रतिमाओं का विवरण दिया गया है। इस सान्निध्य से इन देवताओं के अप्रधान दिशाओं (क्रमश: उत्तर-पूर्व, दक्षिण-पूर्व, दक्षिण-पश्चिम और उत्तर-पश्चिम) के दिक्पाल होने मे सन्देह नही किया जा सकता (यद्यपि यहाँ पर स्पष्ट रूप से इन देवताओं की इस प्रकृति का उल्लेख नही हुआ है)। इस पुराण के अनुसार ईशान को एक मुख, दो नेत्रो और चार भुजाओं वाला निर्मित करना चाहिए। उनका वामार्ध शरीर पार्वती का हो और वे अपनी दक्षिण भुजाओं में अक्षमाला और त्रिशूल तथा वाम भुजाओं मे दर्पण और नीलोत्पल धारण किए हों।[६] इस विवरण से स्पष्ट है

---

१ प्र० सं० ३७

२ Thakore, S. R., *Catalogue of Sculptures in the Archaeological Museum, Gwalior, M. B.*, p. 16.

३ म० पु०, २६१, २३

४ अ० पु०, ५१, १२

५ श्लोक १

६ वि० ध०, ५५, ३-४

कि शिव (ईशान) के लिए प्रयुक्त नाम गौरीशर्व अर्धनारीश्वर का ही दूसरा नाम है, किन्तु यह विलक्षण बात है कि उमा और शिव (प्रकृति और पुरुष) का यह समन्वित रूप यहाँ एक दिक्पाल रूप में वर्णित हुआ है। अपराजितपृच्छा एवं रूपमण्डन मे चतुर्भुज ईशान के एक हाथ को वरद-मुद्रा मे, शेष हाथों को त्रिशूल, सर्प तथा वीजपूरक-युक्त और उनके वृषारूढ होने का उल्लेख है।[1]

खजुराहो में ईशान

खजुराहो में ईशान मन्दिरो के उत्तर-पूर्वी कोनों में कुबेर के साथ युगल रूप में आभंग अथवा त्रिभंग खड़े उत्कीर्ण है। उनकी वहाँ तीन[2] द्विभुजी प्रतिमाएँ लेखक को उपलब्ध हुई है, जिनमे दो का दाहिना हाथ अभय-मुद्रा मे है और इनमे एक का बायाँ हाथ त्रिशूलधारी[3] और दूसरी का कमण्डलु-युक्त[4] है। तीसरी प्रतिमा का दक्षिण हस्त त्रिशूलधारी एवं वाम कटि-हस्त है।[5] शेष प्रतिमाएँ चतुर्भुजी है, जिनमे कुछ की चारों भुजाएँ सुरक्षित हैं, कुछ की तीन अथवा दो ही भुजाएँ सुरक्षित रह गई है, अन्य टूट गई है। चतुर्भुजी प्रतिमाओं का पहला हाथ वरद अथवा अभय-मुद्रा मे अथवा त्रिशूलधारी, दूसरा त्रिशूलधारी, तीसरा सर्प-युक्त और चौथा कमण्डलु-युक्त अथवा कट्यवलम्बित है। कभी-कभी पहला हाथ कमण्डलु अथवा फल (बीजपूरक), दूसरा कमलनाल, और तीसरा पुस्तक, पुष्प अथवा डमरू धारण किए भी मिलता है। निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाएगा :

प्र० सं०	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
७	अभय	त्रिशूल	सर्प	कमण्डलु
८	अभय	त्रिशूल	सर्प	कमण्डलु
१०	वरद एवं अक्षमाला	त्रिशूल	सर्प	कमण्डलु
१२	कमण्डलु	त्रिशूल	सर्प	कटि-हस्त
१४(चित्र १०२)	वरद	त्रिशूल	सर्प	कमण्डलु
१८	वरद	त्रिशूल	सर्प	कमण्डलु
३	फल	छिपा है	डमरू	त्रिशूल
६	त्रिशूल	छिपा है	सर्प	कटि-हस्त
९	अभय	त्रिशूल	सर्प	*
११	वरद	त्रिशूल	पुस्तक	*
१३	अभय	त्रिशूल	सर्प	*
१५	त्रिशूल	छिपा है	पुष्प	*

१ अपरा०, १३. १६; रूप०, २, ३८
२ प्र० सं० १, ४, २२
३ प्र० सं० १
४ प्र० सं० ४
५ प्र० सं० २२
* हाथ भग्न है।

प्र० सं०	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
१७	वरद	कुण्डलित कमलनाल	पुस्तक	*
२०	वरद	त्रिशूल	सर्प	*
२	वरद	त्रिशूल	*	कमण्डलु
२३	त्रिशूल	*	सर्प	कटि-हस्त
५	वरद	त्रिशूल	*	*
१६	वरद	त्रिशूल	*	*
१६	अभय	कमलनाल से बँधी पुस्तक	*	*
२२	वरद	त्रिशूल	*	*

अधिकांशतया प्रतिमाओ के पहले तीन हाथो का चित्रण (वरद, त्रिशूल तथा सर्प-युक्त) अपराजितपृच्छा तथा रूपमण्डन के वर्णन से साम्य रखता है। चौथे हाथ में इन शास्त्रो का बीजपूरक न होकर कमण्डलु का चित्रण है। कुछ प्रतिमाओं के इस क्रम मे उलट-फेर भी हो गया है। एक प्रतिमा के प्रथम हाथ का फल बीजपूरक माना जा सकता है। कमण्डलु और डमरू तो शिव-प्रतिमाओं की विशेषताएँ ही हैं। पुस्तक और कमलनाल धारण किए खजुराहो मे अन्य शिव-प्रतिमाएँ भी प्राप्त है, फलतः विविधता के लिए ईशान के हाथों मे इनका चित्रण अस्वाभाविक नही है।

एक करण्ड-मुकुट-युक्त प्रतिमा[1] को छोडकर सब प्रतिमाएँ जटा-मुकुट धारण किए है (चित्र १०२)। कुछ प्रतिमाओं[2] के सिर खण्डित होने के कारण मुकुट नही रह गए है। सब प्रतिमाएँ सामान्य खजुराहो-आभूषणों—हार, कुण्डल, ककण, केयूर, मेखला, यज्ञोपवीत, वनमाला तथा कौस्तुभमणि—से अलकृत है (चित्र १०२)। कुछ प्रतिमाओं को छोड कर, जिनके साथ वाहन नही अकित है, सब प्रतिमाओं के पादपीठ पर वृष-वाहन उत्कीर्ण है (चित्र १०२)। पार्श्वचरों और भक्तो का चित्रण सामान्यतः नही हुआ है, किन्तु एक प्रतिमा के पादपीठ पर देवता के बाएँ पार्श्व मे एक चामरग्राहिणी[3] चित्रित है तथा कुछ के पादपीठ पर एक-एक भक्त बैठा उत्कीर्ण है।[4]

---

* हाथ भग्न है।

१ प्र० सं० १

२ प्र० सं० ११, १३

३ प्र० सं० १६

४ प्र० सं० १७, १८, २२

परिशिष्ट (अध्याय ६)

अष्टदिक्पाल-प्रतिमाओं के प्राप्ति-स्थान

१. इन्द्र-प्रतिमाएँ

प्र० सं०	प्राप्ति-स्थान
१	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पूर्वी गौण मन्दिर, जघा, पश्चिम की ओर।
२	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, जघा, पूर्व की ओर।
२अ	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, जघा, पश्चिम की ओर।
३	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, जघा, दक्षिण की ओर।
४	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पश्चिमी गौण मन्दिर, जघा, दक्षिण की ओर।
५	लक्ष्मण मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, दक्षिण की ओर।
६	जगदम्बी मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण की ओर।
७	जगदम्बी मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण-पूर्व की ओर।
८	चित्रगुप्त मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण की ओर।
९	चित्रगुप्त मन्दिर, बाह्य, जघा, पूर्व की ओर।
१०	दूलादेव मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण की ओर।
११	चतुर्भुज मन्दिर, बाह्य, जघा, पूर्व की ओर।
१२	वामन मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण-पूर्व की ओर।
१३	वामन मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण की ओर।
१४	जवारी मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण की ओर।
१५	पार्श्वनाथ मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण-पूर्व की ओर।
१६	पार्श्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, दक्षिण की ओर।
१७	आदिनाथ मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण की ओर।
१८	कन्दरिया मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण-पश्चिम की ओर।
१९	कन्दरिया मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण की ओर।
२०	कन्दरिया मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण की ओर।
२१	कन्दरिया मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, दक्षिण की ओर।
२२	विश्वनाथ मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, जंघा, पूर्व की ओर।
२३	विश्वनाथ मन्दिर, दक्षिण-पूर्वी गौण मन्दिर, जघा, दक्षिण की ओर।
२४	विश्वनाथ मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण-पूर्व की ओर।

प्र० सं०	प्राप्ति-स्थान
२५	विश्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, दक्षिण की ओर।
२६	खजुराहो संग्रहालय, सख्या ८७८ ।
२७	विश्वनाथ मन्दिर, अर्धमण्डप का शिखर, दक्षिण की ओर एक रथिका।
२८	कन्दरिया मन्दिर, अभ्यन्तर, महामण्डप, उत्तर-पूर्व की ओर एक रथिका।
२९	विश्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, प्रदक्षिणापथ, उत्तर-पश्चिम की ओर दीवार में।

२. अग्नि-प्रतिमाएँ

१	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, जंघा, पूर्व की ओर।
२	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, जघा, उत्तर की ओर।
३	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, जघा, दक्षिण की ओर।
४	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पश्चिमी गौण मन्दिर दक्षिण की ओर।
५	लक्ष्मण मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, दक्षिण की ओर।
६	जगदम्बी मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण की ओर।
७	जगदम्बी मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण-पूर्व की ओर।
८	चित्रगुप्त मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण की ओर (प्रतिमा पूर्णतया ध्वस्त है)।
९	चित्रगुप्त मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण-पूर्व।
१०	दूलादेव मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण की ओर।
११	चतुर्भुज मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण की ओर।
१२	वामन मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण-पूर्व की ओर।
१३	जवारी मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण की ओर।
१४	पार्श्वनाथ मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण की ओर।
१५	पार्श्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, दक्षिण की ओर।
१६	आदिनाथ मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण की ओर।
१७	कन्दरिया मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण की ओर।
१८	कन्दरिया मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण-पूर्व की ओर।
१९	कन्दरिया मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, दक्षिण की ओर।
२०	विश्वनाथ मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, जघा, पूर्व की ओर।
२१	विश्वनाथ मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, दक्षिण की ओर।
२२	विश्वनाथ मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण-पूर्व की ओर।
२३	विश्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, दक्षिण की ओर।
२४	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, जंघा, पूर्व की ओर।
२५	जगदम्बी मन्दिर, जगती, दक्षिण-पूर्व।
२६	खजुराहो संग्रहालय, संख्या १३७७।
२७	खजुराहो संग्रहालय, सख्या ८७८।

प्र० सं०	प्राप्ति-स्थान
२८	कन्दरिया मन्दिर, महामण्डप का शिखर, दक्षिण-पूर्व, एक रथिका में।
२९	कन्दरिया मन्दिर, अर्धमण्डप का शिखर, उत्तर की ओर रथिका में।
३०	कन्दरिया मन्दिर, मण्डप का शिखर, उत्तर की ओर रथिका मे।
३१	लक्ष्मण मन्दिर, मण्डप का शिखर, दक्षिण की ओर।
३२	खजुराहो संग्रहालय, संख्या ८४२।
३३	विश्वनाथ मन्दिर, मुख्य (गर्भगृह का) शिखर, दक्षिण की ओर रथिका में।
३४	लक्ष्मण मन्दिर, बहिर्भाग, जंघा, उत्तर की ओर।
३५	लक्ष्मण मन्दिर, बहिर्भाग, जंघा, दक्षिण की ओर।
३६	वामन मन्दिर, शिखर, दक्षिण की ओर रथिका में।

३. यम-प्रतिमाएँ

१	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पूर्वी गौण मन्दिर, जंघा, दक्षिण की ओर।
२	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, जंघा, पश्चिम की ओर।
३	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, जंघा, दक्षिण की ओर।
४	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पश्चिमी गौण मन्दिर, जंघा, दक्षिण की ओर (प्रतिमा पूर्णतया ध्वस्त है)।
५	लक्ष्मण मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, दक्षिण की ओर।
६	जगदम्बी मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण-पश्चिम की ओर।
७	जगदम्बी मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण की ओर।
८	चित्रगुप्त मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण-पश्चिम की ओर।
९	चित्रगुप्त मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण की ओर।
१०	दूलादेव मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण-पश्चिम की ओर।
११	दूलादेव मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण की ओर।
१२	चतुर्भुज मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण की ओर।
१३	वामन मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण की ओर।
१४	वामन मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण की ओर।
१५	जवारी मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण-पश्चिम की ओर।
१६	पार्श्वनाथ मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण की ओर।
१७	पार्श्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, दक्षिण की ओर।
१८	आदिनाथ मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण की ओर।
१९	कन्दरिया मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण-पश्चिम की ओर।
२०	कन्दरिया मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, दक्षिण की ओर।
२१	विश्वनाथ मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, जंघा, दक्षिण की ओर।
२२	विश्वनाथ मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण-पश्चिम की ओर।
२३	विश्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, दक्षिण की ओर।

४. निऋ्रति-प्रतिमाएँ

प्र० सं०	प्राप्ति-स्थान
१	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पूर्वी गौण मन्दिर, जंघा, पश्चिम की ओर।
२	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, जघा, पश्चिम की ओर।
३	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, जघा, पश्चिम की ओर।
४	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पश्चिमी गौण मन्दिर, जघा, पश्चिम की ओर।
५	लक्ष्मण मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, पश्चिम की ओर।
६	जगदम्बी मन्दिर, बाह्य, जघा, पश्चिम की ओर।
७	जगदम्बी मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण की ओर।
८	चित्रगुप्त मन्दिर, जंघा, दक्षिण-पश्चिम की ओर।
९	चित्रगुप्त मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण की ओर।
१०	दूलादेव मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण-पश्चिम की ओर।
११	दूलादेव मन्दिर, बाह्य, जंघा, दक्षिण की ओर।
१२	चतुर्भुज मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण की ओर।
१३	वामन मन्दिर, बाह्य, जघा, पश्चिम की ओर।
१४	वामन मन्दिर: बाह्य, जंघा, दक्षिण की ओर।
१५	जवारी मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण-पश्चिम की ओर।
१६	पार्श्वनाथ मन्दिर, बाह्य, जंघा, पश्चिम की ओर।
१७	पार्श्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, पश्चिम की ओर।
१८	आदिनाथ मन्दिर, बाह्य, जघा, पश्चिम की ओर।
१९	कन्दरिया मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण-पश्चिम की ओर।
२०	कन्दरिया मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, पश्चिम की ओर।
२१	विश्वनाथ मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, जघा, पश्चिम की ओर।
२२	विश्वनाथ मन्दिर, बाह्य, जघा, दक्षिण-पश्चिम की ओर।
२३	विश्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, पश्चिम की ओर।
२४	खजुराहो संग्रहालय, सख्या ८९५।
२५	जगदम्बी मन्दिर, जगती, दक्षिण-पूर्व।

५. वरुण-प्रतिमाएँ

प्र० सं०	प्राप्ति-स्थान
१	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पूर्वी गौण मन्दिर, जंघा, पश्चिम की ओर।
२	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, जघा, पश्चिम की ओर।
३	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पश्चिमी गौण मन्दिर, जघा, पश्चिम की ओर।
४	लक्ष्मण मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, पश्चिम की ओर।
५	जगदम्बी मन्दिर, बाह्य, जंघा, पश्चिम की ओर।
६	चित्रगुप्त मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर-पश्चिम की ओर।

प्र० सं०	प्राप्ति-स्थान
७	चित्रगुप्त मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
८	दूलादेव मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर-पश्चिम की ओर।
९	चतुर्भुज मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
१०	वामन मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
११	वामन मन्दिर, बाह्य, जंघा, पश्चिम की ओर।
१२	जवारी मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर-पश्चिम की ओर।
१३	पार्श्वनाथ मन्दिर, बाह्य, जघा, पश्चिम की ओर।
१४	पार्श्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, पश्चिम की ओर।
१५	आदिनाथ मन्दिर, बाह्य, जंघा, पश्चिम की ओर।
१६	कन्दरिया मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
१७	कन्दरिया मन्दिर, बाह्य, जघा, उत्तर-पश्चिम की ओर।
१८	कन्दरिया मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, पश्चिम की ओर।
१९	विश्वनाथ मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, जंघा, पश्चिम की ओर।
२०	विश्वनाथ मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, जंघा, पश्चिम की ओर।
२१	पार्श्वनाथ मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर-पश्चिम की ओर।
२२	पार्श्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, पश्चिम की ओर।
२३	खजुराहो संग्रहालय, सख्या ८८९।
२४	खजुराहो संग्रहालय, संख्या ९०३।
२५	खजुराहो संग्रहालय, संख्या ९२८।

९. वायु-प्रतिमाएँ

प्र० सं०	प्राप्ति-स्थान
१	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, जघा, उत्तर की ओर।
२	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पश्चिमी गौण मन्दिर, जंघा, उत्तर की ओर।
३	लक्ष्मण मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, उत्तर की ओर।
४	जगदम्बी मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर-पश्चिम की ओर।
५	चित्रगुप्त मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर-पश्चिम की ओर।
६	दूलादेव मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर-पश्चिम की ओर।
७	चतुर्भुज मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
८	वामन मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
९	वामन मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
१०	जवारी मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर-पश्चिम की ओर (प्रतिमा पूर्णतया ध्वस्त है)।
११	पार्श्वनाथ मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
१२	पार्श्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, उत्तर की ओर।
१३	आदिनाथ मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
१४	कन्दरिया मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।

प्र० सं० प्राप्ति-स्थान

१५ कन्दरिया मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
१६ कन्दरिया मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, उत्तर की ओर।
१७ विश्वनाथ मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, जंघा, उत्तर की ओर।
१८ विश्वनाथ मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, जंघा, उत्तर की ओर।
१९ विश्वनाथ मन्दिर, बाह्य, जघा, उत्तर-पश्चिम की ओर।
२० विश्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, उत्तर की ओर।
२१ खजुराहो सग्रहालय, संख्या ८८३।
२२ खजुराहो सग्रहालय, संख्या ९२८।

७. कुबेर-प्रतिमाएँ

१ लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पूर्वी गौण मन्दिर, जंघा, पूर्व की ओर।
२ लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, जंघा, उत्तर की ओर।
३ लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, जंघा, उत्तर की ओर।
४ लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पश्चिमी गौण मन्दिर, जंघा, उत्तर की ओर।
५ लक्ष्मण मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, उत्तर की ओर।
६ जगदम्बी मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर-पूर्व की ओर।
७ जगदम्बी मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
८ जगदम्बी मन्दिर, बाह्य, जंघा, पश्चिम की ओर, मध्य मूर्ति-पंक्ति में।
९ दूलादेव मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर-पूर्व की ओर।
१० चतुर्भुज मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
११ वामन मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर-पूर्व की ओर।
१२ वामन मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
१३ पार्श्वनाथ मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
१४ पार्श्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, उत्तर की ओर।
१५ कन्दरिया मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर-पूर्व की ओर।
१६ कन्दरिया मन्दिर, बाह्य, जघा, उत्तर की ओर।
१७ कन्दरिया मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, उत्तर की ओर।
१८ विश्वनाथ मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, जंघा, उत्तर की ओर।
१९ विश्वनाथ मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, जघा, उत्तर की ओर।
२० विश्वनाथ मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर-पूर्व की ओर।
२१ विश्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, उत्तर की ओर।
२२ जगदम्बी मन्दिर, वाह्य, जंघा, मध्य मूर्ति-पंक्ति, पश्चिम की ओर।
२३ लक्ष्मण मन्दिर, बाह्य, पश्चिम की ओर, अधिष्ठान की एक छोटी रथिका।
२४ लक्ष्मण मन्दिर, बाह्य, दक्षिण की ओर, अधिष्ठान की एक छोटी रथिका।
२५ लक्ष्मण मन्दिर, बाह्य, दक्षिण की ओर, अधिष्ठान की एक अन्य रथिका।

प्र० सं०	प्राप्ति-स्थान
२६	जगदम्बी मन्दिर, मुख्य शिखर (गर्भगृह का), दक्षिण-पूर्व की ओर।
२७	खजुराहो संग्रहालय, संख्या ७९८।
२८	कन्दरिया मन्दिर, महामण्डप का शिखर, दक्षिण की ओर रथिका में।
२९	खजुराहो संग्रहालय, संख्या ८०२।
३०	खजुराहो संग्रहालय, संख्या ११४२।
३१	कन्दरिया मन्दिर, महामण्डप का शिखर, उत्तर-पश्चिमी रथिका में।
३२	विश्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, महामण्डप, उत्तर की ओर रथिका में।
३३	विश्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, महामण्डप, उत्तर की ओर रथिका में।
३४	विश्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, महामण्डप, दक्षिण की ओर एक छोटी रथिका में।
३५	विश्वनाथ मन्दिर, बाह्य, महामण्डप का शिखर, उत्तर-पूर्व, छोटी रथिका मे।
३६	खजुराहो संग्रहालय, संख्या ८८३।
३७	कन्दरिया मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, दक्षिण की ओर एक रथिका में।

८. ईशान-प्रतिमाएँ

१	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पूर्वी गौण मन्दिर, जंघा, पूर्व की ओर।
२	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, जंघा, पूर्व की ओर।
३	लक्ष्मण मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, जंघा, उत्तर की ओर।
४	लक्ष्मण मन्दिर, उत्तर-पश्चिमी गौण मन्दिर, जंघा, उत्तर की ओर।
५	लक्ष्मण मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, उत्तर की ओर।
६	जगदम्बी मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर-पूर्व की ओर।
७	जगदम्बी मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
८	जगदम्बी मन्दिर, बाह्य, जंघा, पश्चिम की ओर।
९	चित्रगुप्त मन्दिर, बाह्य, जघा, उत्तर की ओर।
१०	दूलादेव मन्दिर, बाह्य, जघा, उत्तर-पूर्व की ओर।
११	चतुर्भुज मन्दिर, बाह्य, जंघा, पूर्व की ओर।
१२	वामन मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
१३	जवारी मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
१४	पार्श्वनाथ मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर-पूर्व की ओर।
१५	पार्श्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, उत्तर की ओर।
१६	आदिनाथ मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर की ओर।
१७	कन्दरिया मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर-पूर्व की ओर।
१८	कन्दरिया मन्दिर, बाह्य, जघा, उत्तर की ओर।
१९	कन्दरिया मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, उत्तर की ओर।
२०	विश्वनाथ मन्दिर, उत्तर-पूर्वी गौण मन्दिर, जंघा, पूर्व की ओर।
२१	विश्वनाथ मन्दिर, दक्षिण-पश्चिमी गौण मन्दिर, जंघा, उत्तर की ओर।
२२	विश्वनाथ मन्दिर, बाह्य, जंघा, उत्तर-पूर्व की ओर।
२३	विश्वनाथ मन्दिर, अभ्यन्तर, गर्भगृह, उत्तर की ओर।

शास्त्र के आधार पर नही बनी हैं और न अन्यत्र ही ऐसी मूर्तियाँ उपलब्ध है। लक्ष्मण मन्दिर की तीन योगासन मूर्तियों के पार्श्व-चित्रण में विलक्षणता है और उनमे से दो के साथ प्रदर्शित मत्स्य तथा कूर्म की आकृतियों द्वारा मत्स्य एव कूर्म अवतारो का प्रदर्शन नए ढग से किया गया है। शयन मूर्तियों के निर्माण में प्रधानतया शिल्प-शास्त्रों के निर्देशो का पालन हुआ है, किन्तु उनके पार्श्व-चित्रण में अवश्य विकास हुआ है और इस प्रकार इनमे भी कुछ नवीनता है। दशावतारों मे बुद्ध एवं कल्कि को छोड़कर सब अवतारों की स्वतंत्र मूर्तियां निर्मित हुई हैं। सामान्यतः ये लक्षण-लाञ्छनों की सीमा मे जकड़ी है, किन्तु कुछ के निर्माण मे शिल्पी की स्वच्छन्दता भी प्रदर्शित हुई है। इस दृष्टि से चौंसठ भुजाओ से युक्त नरसिंह-मूर्ति और शक्ति के साथ परशुराम की आलिंगन-मूर्ति विशेष दर्शनीय है। ये दोनों खजुराहो-शिल्पी की मौलिक रचनाएं है। ऐसी मूर्तियो का विवरण न तो शास्त्रो मे मिलता है और न अन्यत्र ही ऐसी मूर्तियां प्राप्य हैं। एक ही मूर्ति मे सब अवतारो को सम्मिलित कर एकादशमुखी प्रतिमा का निर्माण भी वहां के मूर्तिकार का मौलिक प्रयत्न है।

सूर्य-प्रतिमाएँ भी नवीनता से निरी अछूती नही है। खजुराहो में जहाँ एक ओर पूर्णतया उत्तरभारतीय परम्परा में निर्मित सूर्य-मूर्तियां मिलती है, वहाँ दूसरी ओर दक्षिणभारतीय परम्परा से प्रभावित भी कुछ मूर्तियों के दर्शन होते है। धातृ-सूर्य और सूर्य-नारायण के अतिरिक्त, विष्णु, शिव और ब्रह्मा की विशिष्टताओ से युक्त सूर्य (हरि-हर-हिरण्यगर्भ) की जितनी अधिक विलक्षण मूर्तियां खजुराहो मे प्राप्त हैं, उतनी एक स्थान में अन्यत्र कदाचित् ही मिले। सम्भवतः खजुराहो की इन्हीं मूर्तियो पर परवर्ती शिल्प-शास्त्र, अपराजितपृच्छा, में वर्णित हरि-हर-हिरण्यगर्भ नामक मूर्ति के लक्षण आधारित हैं। नवग्रह-चित्रण परम्परागत होते हुए भी नवीनता और काल्पनिकता से पूर्ण वंचित नही हैं।

अष्टदिक्पाल-मूर्तियो के हाथों के प्रदर्शन में लक्षण-ग्रन्थो का अनुकरण कम हुआ है, स्वच्छन्दता अधिक बरती गई है। इन्द्र-शची, अग्नि-स्वाहा एवं कुबेर-ऋद्धिदेवी की आलिगन मूर्तियाँ खजुराहो-शिल्पी की दुर्लभ कृतियां हैं। कुछ अग्नि-प्रतिमाओं का पार्श्व-चित्रण खजुराहो-मूर्तिकार के द्वारा ही विकसित हुआ प्रतीत होता है।

खजुराहो की देव-देवियों का अलकरण भी अपना विशेष है। वे सामान्यतः किरीट, करण्ड अथवा जटा-मुकुट (देवियाँ अधिकाशतः धम्मिल्ल), कुण्डलों, हार, ग्रैवेयक, केयूरो, ककणों, यज्ञोपवीत, मुक्ताग्रथित मेखला, विशाल वनमाला (विष्णु की वैजयन्तीमाला के सदृश), कौस्तुभमणि (जिन मूर्तियो के श्रीवत्स-लाञ्छन के ठीक सदृश) तथा नूपुरों से अलकृत हैं। मुकुट, वनमाला तथा कौस्तुभमणि को छोड़कर, अन्य सब आभूषणों मे खजुराहो की मानव-आकृतियां भी अलकृत हैं। इन तीन आभूषणो के आधार पर ही देव और मानव मूर्तियों में भेद किया जा सकता है। सामान्यतः सब देव-देवियो के चरण नग्न हैं, किन्तु पद्मासन के अतिरिक्त सूर्य की अन्य मूर्तियां उपानह और कुछ अग्नि-मूर्तियां पादुकाएँ धारण किए मिलती है। गणपति, वामन और अग्नि की कुछ मूर्तियां अजिनोपवीत धारण किए भी देखी जा सकती हैं।

अधिकांश देव-मूर्तियों के साथ सम्बन्धित वाहन का चित्रण हुआ है। गरुड़ासन विष्णु की

उपसंहार

मूर्तियों को छोड़कर, अन्य मूर्तियों में देवता वाहन पर आरूढ़ नहीं प्रदर्शित है। वाहन की छोटी आकृति पादपीठ पर उत्कीर्ण है। गणपति-मूर्तियों के पादपीठ पर सामान्यतः वाहन मूषक चुपचाप बैठा, मोदक खाने में व्यस्त अथवा नृत्य-मूर्तियों में अपने स्वामी के साथ नृत्य में तल्लीन प्रदर्शित हुआ है। मोदक खाते हुए वाहन मूषक की एक स्वतंत्र मूर्ति भी उपलब्ध है। विष्णु-मूर्तियों में देवता के एक पार्श्व मे पुरुष-विग्रह में गरुड़ खड़े प्रदर्शित है। गरुड़ासन मूर्तियों में विष्णु गरुड़ के स्कन्धों पर आरूढ़ मिलते हैं और ऐसी मूर्तियों में गरुड़ की आकृति छोटी न होकर आकार में विष्णु के समान है। सूर्य-मूर्तियों के पादपीठ पर उनके रथ के अश्वों का चित्रण हुआ है। रथ अनुपस्थित है और मात्र उड़ते-से अश्वों का पंक्ति-बद्ध अंकन मिलता है। अधिकांश मूर्तियों में अश्वों की संख्या सात है, किन्तु कुछ मूर्तियों में वे तीन, पाँच, और आठ तक भी चित्रित देखे जा सकते है। विष्णु, गणपति और सूर्य की छोटी मूर्तियाँ वाहन-विहीन भी है। एक-दो नवग्रह-पट्टों को छोड़कर सामान्यतः उनमे ग्रहो के साथ वाहन नहीं चित्रित हैं। इनके विपरीत अष्टदिक्पाल-मूर्तियाँ वाहन-विहीन नाममात्र के लिए ही मिलेंगी। इन्द्र, यम, वरुण और ईशान की मूर्तियों मे सामान्यरूप से क्रमश. ऐरावत, महिष, मकर और नन्दी का चित्रण मिलता है। सामान्यतः अग्नि के साथ मेष अथवा अज चित्रित है, किन्तु एक अग्नि-मूर्ति का वाहन बड़ा विलक्षण है, जिसका मस्तक अज का और शेष शरीर मनुष्य का है। हिन्दू मन्दिरो में निर्ऋति नर-वाहन से युक्त हैं, किन्तु जैन मन्दिरों मे वे श्वान-वाहन के साथ हैं। वायु मृग-वाहन से युक्त हैं। कुछ मूर्तियों में एक मृग और कुछ मे मृगयुगल चित्रित हुआ है। एक वायु-मूर्ति के साथ, सम्भवतः शिल्पी की भूल से, खर का भी चित्रण हो गया है। कुबेर-मूर्तियाँ अधिकांशतः वाहन-विहीन हैं, किन्तु दो मूर्तियों मे वे मेष-वाहन-युक्त है और कुछ मे उनका वाहन श्वान-सा प्रतीत होता है।

खजुराहो-कला मे देव-मूर्तियों द्वारा धारण किए गए लाञ्छनों का निदर्शन परम्परागत ही हुआ है। पद्म के चित्रण मे अवश्य विविधता मिलती है। यह नाल-युक्त पूर्ण विकसित कमल, *नाल-विहीन कमल, कमल-कलिका, कुण्डलित कमलनाल आदि रूपों में चित्रित हुआ है। कुण्डलित* कमलनाल के चित्रण का वहाँ बाहुल्य है। किसी भी देव-मूर्ति के साथ इसे संयुक्त करने में खजुराहो-शिल्पी ने संकोच नहीं किया है। डॉ० उर्मिला अग्रवाल ने इस कुण्डलित कमलनाल को पाश माना है (यद्यपि वहाँ पाश का चित्रण परम्परागत ही हुआ है) और इसे धारण किए हुए अन्य अनेक देवों को उन्होने वरुण मानने की भूल की है।

लक्षण-लाञ्छनों की सीमा में बँधी होने के कारण खजुराहो की अधिकांश देव-मूर्तियों में सौन्दर्य के अधिक दर्शन नहीं होते, किन्तु अत्यन्त सुन्दर मूर्तियों का भी वहाँ नितान्त अभाव नहीं है। चतुर्भुज मन्दिर की विलक्षण विष्णु-मूर्ति असाधारण सुन्दर कृति है। उसकी आकर्षक त्रिभंग मुद्रा, सुन्दर अलंकरण, शरीर का मनोहारी गठन, उन्मीलित नेत्रों से युक्त तथा अलौकिक शान्ति एवं आनन्द-मिश्रित भाव से दीप्त मुखमण्डल आदि मूर्ति का सम्पूर्ण शिल्पीकरण दर्शक को मोह लेता है। मौनव्रतिन् विष्णु की मूर्ति भी मध्ययुगीन सुन्दरतम देव-मूर्तियों मे से एक है। कुछ नृवराह-मूर्तियाँ भी कला की दृष्टि से सुन्दर हैं। उनमे अत्यन्त ओजस्वी एवं शक्तिशाली नृवराह द्वारा बाईं कुहनी पर पृथ्वी को बड़े सहज भाव से उठाए जाने के चित्रण में मूर्तिकार को अपूर्व

७
उपसंहार

खजुराहो की देव-प्रतिमाओं के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि खजुराहो-शिल्पी को प्रतिमा-लक्षण-सम्बन्धी शास्त्रों का बृहत् ज्ञान था और वह प्रतिमा-निर्माण की प्रचलित परम्पराओं से पूर्ण परिचित था। देव-प्रतिमाओं के गढ़ने में उसने शास्त्र-निर्दिष्ट परम्पराओं का पालन किया है और साथ ही अपनी मौलिक कल्पना-शक्ति के आधार पर उनमें नवीनता भरने में भी सफल हुआ है। इस प्रकार लक्षण-लाञ्छन-सम्बन्धी नई परम्पराओं को जन्म देकर उसने प्रतिमा-विज्ञान के विकास में एक महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उसके द्वारा स्थापित परम्पराएँ खजुराहो तक ही सीमित न रहीं, वरन् उन्हें व्यापक रूप से स्वीकार किया गया और परवर्ती शिल्प-शास्त्रों, जैसे अपराजितपृच्छा,[1] रूपमण्डन, देवतामूर्तिप्रकरण[2] आदि, के अनेक प्रतिमा-लक्षणों की वे आधार बनीं। इस कथन की साक्षी खजुराहो की वे अनेक मूर्तियाँ हैं, जो इन शिल्प-शास्त्रों के विवरण से पूर्ण साम्य रखती हैं। जहाँ नवीनता और मौलिकता के प्रदर्शन में खजुराहो-शिल्पी सफल हुआ है, वहाँ मूर्तियों की विविधता के प्रदर्शन में भी वह किसी भी केन्द्र के शिल्पी से आगे है। विविध देव-देवियों के अधिक से अधिक रूपों की झाँकी प्रस्तुत करना तो उसकी एक अन्य विशेषता है। इसीलिए खजुराहो में अनेक दुर्लभ देव-रूपों के दर्शन होते हैं।

गणपति-मूर्तियों के चित्रण में शिल्प-शास्त्रों के सामान्य निर्देशों का पालन हुआ है, किन्तु उनके विभिन्न हाथों के चित्रण में कुछ नवीनता भी है। नृत्य-मूर्तियों की विविधता के प्रदर्शन में शिल्पी को विशेष सफलता मिली है। द्विभुजी, चतुर्भुजी, अष्टभुजी, दशभुजी, द्वादशभुजी तथा षोडशभुजी नृत्य-मूर्तियों की झाँकी विशेष दर्शनीय है।

विष्णु की स्थानक, आसन और शयन मूर्तियाँ सामान्यतः लक्षण-लाञ्छनों की सीमा में बँधी हैं, किन्तु उनमें कहीं-कहीं पर शिल्पी की स्वच्छन्दता के भी दर्शन होते हैं। इस दृष्टि से स्थानक मूर्तियों में चतुर्भुज मन्दिर की प्रधान मूर्ति और आसन मूर्तियों में मौनव्रतिन् विष्णु-मूर्ति तथा लक्ष्मण मन्दिर की तीन योगासन मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। पहली दो मूर्तियाँ उपलब्ध किसी

---

१ इसकी रचना बारहवीं शती के उत्तरार्ध में हुई मानी गई है (Dhaky. M. A., *JMIP*, No. 3, p. 62)।

२ रूपमण्डन और देवतामूर्तिप्रकरण के रचयिता सूत्रधार मण्डन मेवाड़ के महाराणा कुम्भा (१४३३–६८ ई०) के सभारत्न थे—यह तथ्य मण्डन के अन्य ग्रन्थ राजवल्लभ (१, ४४) से ज्ञात होता है।

सफलता मिली है। खजुराहो की कृष्ण-लीला-सम्बन्धी मूर्तियाँ तो भारत की समानरूप अन्य सब मूर्तियों में सुन्दरतम है। इनके अतिरिक्त, कुछ नृत्य-गणपति-मूर्तियों की छटा भी दर्शनीय है। उनके निर्माण मे खजुराहो-कला निखर उठी है और शिल्पी उनके अतिभंग शरीर, पैरों की नृत्य-मुद्राओं तथा अनेक हाथों के गतिशील विन्यास द्वारा नृत्य की आवर्तित गति के चित्रण में अत्यधिक सफल हुआ है। मृदंग, करताल, वंशी आदि वाद्य-यन्त्रों को बजाते पार्श्वचरों का अंकन नृत्य का सजीव वातावरण उपस्थित करने में अत्यधिक सहायता पहुँचाता है। कुछ आलिंगन-मूर्तियाँ भी बड़ी सुन्दर हैं, जिनमें लक्ष्मी-नारायण की कुछ मूर्तियों के अतिरिक्त, बलराम-रेवती तथा राम-सीता की मूर्तियाँ विशेष दर्शनीय हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थसूची

१. मौलिक स्रोत

(क) साहित्यिक (मूल एवं अनुवाद)

(१) वैदिक साहित्य

ऋग्वेदसंहिता

एफ० मैक्सम्यूलर (स०), लन्दन

वैदिक-संशोधन-मण्डल, पूना

अँग्रेज़ी अनु०, एच० एच० विल्सन, पूना

शुक्लयजुर्वेद माध्यंदिनीय संहिता

निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३९

कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता

काशीनाथ शास्त्री आगाशे (स०), पूना, १९०४

मैत्रायणी संहिता

लियोपोल्ड वोन श्रुडर (स०), लिपज़िग, १९२३

अथर्ववेद

विश्ववन्धु (स०), होशियारपुर

ऐतरेयब्राह्मण

आनन्दाश्रम ग्रन्थांक—३२, १९३०

मार्टिन हाग (स०), बम्बई, १८६३

अंग्रेज़ी अनु०, मार्टिन हाग, बम्बई, १८६३

तैत्तिरीय ब्राह्मण

आर० शामा शास्त्री (स०), मैसूर, १९२१

बि० इ०, कलकत्ता, १९५९

शतपथ ब्राह्मण

अलबर्त वेबर (स०), लिपज़िग, १९२४

गोभिल-गृह्यसूत्र

चन्द्रकान्त तर्कालंकार (स०), बि० इ०, कलकत्ता, १८८०

अंग्रेज़ी अनु०, सै० बु० ई०, जिल्द ३०, ऑक्सफ़ोर्ड, १८९२

मानवगृह्यसूत्र
रामजी हर्षजी शास्त्री (स०), गा० ओ० सि०, स० ३५

(२) महाकाव्य

महाभारत
क्रिटिकल एडिशन, पूना
प्रतापचन्द्र राय (स०), कलकत्ता
अंग्रेजी अनु०, प्रतापचन्द्र राय, कलकत्ता

रामायण (वाल्मीकि)
नारायणस्वामी (स०), मद्रास, १९३३
एच० पी० शास्त्री (स०), लन्दन, १९५२–५९
वासुदेवाचार्य (स०), बम्बई, १९०२

(३) पुराण

अग्निपुराण
सरस्वती प्रेस, कलकत्ता, १८८२

पद्मपुराण
गुरुमण्डल ग्रन्थमाला सं० १८, कलकत्ता, १९५७–५९

ब्रह्माण्डपुराण
वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, शक स० १८५७

भविष्यपुराण
वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९५९

भागवतपुराण
गीताप्रेस, गोरखपुर, स० २०१८

मत्स्यपुराण
वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १८९५
अंग्रेजी अनु०, सै० बु० हि०, जिल्द १७, भाग १, इलाहाबाद, १९१६
हिन्दी अनु०, रामप्रताप त्रिपाठी, प्रयाग, स० २००३

मार्कण्डेयपुराण
बि० इ०, कलकत्ता, १८५५–६२
अंग्रेजी अनु०, एफ़० ई० पार्जिटर, बि० इ०, कलकत्ता, १८८८–१९०५

वायुपुराण
बि० इ०, कलकत्ता, १८८०

विष्णुपुराण
बम्बई, १८८९
अंग्रेजी अनु०, एच० एच० विल्सन, लन्दन, १८६४–७०

विष्णुधर्मोत्तरपुराण (तृतीय खण्ड)
प्रियबाला शाह (स०), बड़ौदा, १९५८
अँग्रेजी अनु०, प्रियबाला शाह, बड़ौदा, १९६१
अँग्रेजी अनु०, स्टेला क्रैम्रिश, कलकत्ता, १९२८

(४) शिल्प-शास्त्र

अपराजितपृच्छा (भुवनदेव)
गा० ओ० सि०, बड़ौदा, १९५०
देवतामूर्तिप्रकरण तथा रूपमण्डन (सूत्रधार मण्डन)
कलकत्ता-संस्कृत-ग्रन्थमाला–१२, कलकत्ता, १९३६
प्रतिमा-लक्षण (भारतीय वास्तु-शास्त्र, ग्रन्थ–४, भाग २)
द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल (स०), लखनऊ, सं० २०१४
रूपमण्डन (सूत्रधार मण्डन)
बलराम श्रीवास्तव (स०), वाराणसी, स० २०२१
शिल्परत्न (कुमार)
त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज, त्रिवेन्द्रम, १९२२, १९२६
समराङ्गण सूत्रधार (भोज)
गा० ओ० सि०, बड़ौदा, १९२४, १९२५

(५) अन्य ग्रन्थ

अमरकोश
(रामस्वरूपकृत भाषा टीका सहित), वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९०५
(भट्टक्षीरस्वामी प्रणीत टीका सहित), हरदत्त शर्मा (स०), पूना, १९४१
अर्थशास्त्र (कौटिलीय)
आर० शामा शास्त्री (स०), मैसूर, १९१९
कुमारसम्भव (कालिदास)
वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर (स०), बम्बई, १९१९
चतुर्वर्गचिन्तामणि (हेमाद्रि), व्रत खण्ड
बि० इ०, कलकत्ता, स० १९३४
जयाख्यसंहिता
गा० ओ० सि०, बड़ौदा, १९३१
भगवद्गीता
गीताप्रेस, गोरखपुर, स० २००८
मनुस्मृति
गोपाल शास्त्री नेने (स०), बनारस, १९३५
जे० जॉली, लन्दन, १८८७

महाभाष्य (पतंजलि)
निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १६३५

मेघदूत (कालिदास)
आर० बी० कृष्णमचारी (स०), श्रीरंगम, १६०६

याज्ञवल्क्यस्मृति
नारायण स्वामी खिस्ते (स०), बनारस, १६२४

रघुवंश (कालिदास)
वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पण्सिकर (स०), बम्बई, १६१७

बृहत्संहिता (वराहमिहिर)
सरस्वती प्रेस, कलकत्ता, १८८०

शारदातिलकतन्त्र
आर्थर एवलॉन (स०), कलकत्ता, १६३३

(ख) अभिलेखीय तथा स्मारकीय

Archaeological Survey of India (Reports by Alexander Cunningham), Vols. I, II, VII, X, XI, XVII, XXI.

Archaeological Survey of India, Annual Reports (Started by John Marshall), 1905-06, 1908-09, 1909-10, 1913-14, 1915-16, 1922-23, 1925-26, 1929-30.

Archaeological Survey of Mayurbhanj (Vasu, N. N.).

Archaeological Survey of Western India, Vol. IX—*The Architectural Antiquities of Northern Gujarat* (Burgess, J.).

Corpus Inscriptionum Indicarum (Fleet, J. F.), Vol. III.

Epigraphia Indica, Vols. I, II, IX, XXII, XXIV.

२. आधुनिक कृतियाँ

(क) हिन्दी ग्रन्थ

अग्रवाल, वासुदेवशरण
भारतीय कला, वाराणसी, १९६६
मथुरा-कला, अहमदाबाद, १९६४

उपाध्याय, बलदेव
भागवत सम्प्रदाय, काशी, सं० २०१०

चतुर्वेदी, परशुराम
वैष्णवधर्म, इलाहाबाद, १९५३

जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम
मथुरा की मूर्तिकला, मथुरा, १९६६

तिवारी, गोरेलाल
बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, काशी, सं० १९९०

दीक्षित, रामकुमार
कन्नौज (उत्तर प्रदेश के सांस्कृतिक केन्द्र—४), लखनऊ, १९५५
दीक्षित, स० का०
राजकीय संग्रहालय, धुबेला की मार्ग-दर्शिका, सं० २०१५
धामा, बी० एल० और चन्द्रा, एस० सी०
खजुराहो (हिन्दी अनु०, केदारनाथ शास्त्री द्वारा), नई देहली, १९६२
नागर, मदनमोहन
पुरातत्त्व-संग्रहालय, मथुरा की परिचय-पुस्तक, इलाहाबाद, १९४७
मालवीय, बद्रीनाथ
श्रीविष्णुधर्मोत्तर में मूर्त्तिकला, प्रयाग, १९६०
राय, कृष्णदास
भारतीय मूर्त्तिकला (तृतीय संस्करण), काशी, २००९
राय, रामकुमार
वैदिक इण्डेक्स (मैक्डानल और कीथ कृत वैदिक इण्डेक्स का अनुवाद), वाराणसी, १९६२
वाजपेयी, कृष्णदत्त
उत्तर प्रदेश की ऐतिहासिक विभूति, लखनऊ, १९५५
ब्रज का इतिहास (द्वितीय खण्ड), मथुरा, स० २०१५
मथुरा (उत्तर प्रदेश के सांस्कृतिक केन्द्र—२), लखनऊ, १९५५
युगों-युगों में उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, १९५५
शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ
प्रतिमा-विज्ञान (भारतीय वास्तु-शास्त्र, ग्रन्थ—४), लखनऊ, सं० २०१३
सम्पूर्णानन्द
गणेश, बनारस, सं० २००१
हिन्दू देव परिवार का विकास, इलाहाबाद, १९६४
सूर्यकान्त
वैदिक कोश, बनारस, १९६३
वैदिक देवशास्त्र (ए० ए० मैक्डानल रचित वैदिक माइथोलाजी का स्वतन्त्र हिन्दी रूपान्तर), दिल्ली, १९६१
हीरालाल
मध्य प्रदेश का इतिहास, काशी, सं० १९९६

(ख) अंग्रेजी तथा अन्य ग्रन्थ

AGARWAL, U.
Khajurāho Sculptures and their Significance, New Delhi, 1964.
AGRAWALA, V. S.
A Catalogue of the Brahmanical Images in Mathura Art (*JUPHS*, Vol. XXII, Parts 1-2, 1949).

AGRAWALA, V. S.
A Short Guide-Book to the Archaeological Section of the Provincial Museum, Lucknow, Allahabad, 1940.
Gupta Art, Lucknow, 1948.
Handbook of the Sculptures in the Curzon Museum of Archaeology, Muttra, Allahabad, 1939.
Indian Art, Varanasi, 1965.
Matsya Purāṇa—A Study, Varanasi, 1963.
Studies in Indian Art, Varanasi, 1965.

ANAND, MULK RAJ AND KRAMRISCH, ST.
Homage to Khajurāho, Marg Publication, Bombay (*Marg*, X, no. 3, 1957).

ARVAMUTHAN, T. G.
Ganesa, Madras, 1951.

ATKINSON, E. T.
Statistical, Descriptive and Historical Accounts of the North-Western Provinces of India, Vol. I—*Bundelkhand*, Allahabad, 1874.

BAJPAI, K. D.
Sāgar Through the Ages, Sagar, 1964.

BANERJEA, J. N.
Paurāṇic and Tāntric Religion, Calcutta, 1966.
The Development of Hindu Iconography, 2nd Ed., Calcutta, 1956.

BANERJI, R. D.
Basreliefs of Badami (*MASI*, No. 25).
Eastern Indian School of Mediaeval Sculpture, Delhi, 1933.
The Haihayas of Tripuri and their Monuments (*MASI*, No. 23).
The Temple of Śiva at Bhumra (*MASI*, No. 16).

BHANDARKAR, R. G.
Vaishṇavism, Śaivism and Minor Religious Systems, Strassburg, 1913; Varanasi, 1965.

BHATTACHARYA, B. C.
Indian Images, Pt. I, Calcutta—Simla, 1921.
The Jain Iconography, Lahore, 1939.

BHATTASALI, N. K.
Iconography of Buddhist and Brahmanical Sculptures in the Dacca Museum, Dacca, 1929.

BIDYABINOD, B. B.
Varieties of the Vishṇu Image (*MASI*, No. 2).

BLOCH, T.
Supplementary Catalogue of the Archaeological Collection of the Indian Museum, Calcutta, 1911.

BOSE, N. S.
History of the Candellas of Jejakabhukti, Calcutta, 1956.
BROWN, P.
Indian Architecture (Buddhist and Hindu Periods), 3rd. Ed., Bombay, 1956.
BURGESS, J.
The Architectural Antiquities of Northern Gujarat (Archaeological Survey of Western India, Vol. IX), London, 1903.
The Buddhist Stupas of Amarāvatī and Jaggayyapeta, London, 1887.
CENTRAL HINDI DIRECTORATE (Publisher)
A Consolidated Glossary of Technical Terms (English—Hindi), 1962.
CHANDA, R. P.
Archaeology and Vaishnava Tradition (MASI, No. 5).
Mediaeval Indian Sculpture in the British Museum, London, 1936.
COOMARASWAMY, A. K.
Catalogue of Indian Collections in the Museum of Fine Arts, Boston, Part II, Boston, 1923.
History of Indian and Indonesian Art, London, 1927; Dover Edition, New York, 1965.
Yakṣas, Pt. I, Washington, 1928.
COUSENS, H.
Somnath and other Mediaeval Temples in Kathiawad, Calcutta, 1931.
Descriptive List of Exhibits in the Archaeological Section of the Nagpur Museum, Allahabad, 1914.
DEVA, K.
Khajuraho (guide-book), New Delhi, 1965.
DHAKY, M. A.
The Vyāla Figures on the Mediaeval Temples of India, Varanasi, 1965.
DHAMA, B. L.
A Guide to Khajuraho, Bombay, 1927.
DHAMA, B. L. AND CHANDRA, S. C.
Khajuraho (guide-book), Delhi, 1953.
DIKSHIT, K. N.
Excavations at Paharpur, Bengal (MASI, No. 55).
Six Sculptures from Mahoba (MASI, No. 8).
DIKSHIT, R. K.
The Chandellas of Jejākabhukti and their Times (Ph.D. Thesis of Lucknow University, 1950).
DIKSHIT, S. K.
A Guide to the State Museum, Dhubela, Vindhya Pradesh, 1957.
DIRECTOR OF INFORMATION, MADHYA PRADESH (Publisher)
Khajuraho (Album), Bhopal, 1958.

FARQUHAR, J. N.
An Outline of the Religious Literature of India, Oxford, 1920.
FERGUSSON, J.
Tree and Serpent Worship, 2nd Ed., London, 1873.
FOUCHER, A.
The Beginnings of Buddhist Art, London, 1918.
GANGOLY, O. C.; GOSWAMY, A. AND TARAFDAR, A.
The Art of the Chandelas, Calcutta, 1957.
GANGULY, M.
Handbook to the Sculpture in the Museum of Bangiya Sahitya Parishad, Calcutta, 1922.
Orissa and Her Remains—Ancient and Mediaeval, Calcutta, 1912.
GETTY, A.
Gaṇeśa, Oxford, 1936.
GONDA, J.
Aspects of Early Viṣṇuism, Utrecht, 1954.
GROWSE, F. S.
Mathurā : A District Memoir, 2nd Ed., 1880.
HAVELL, E. B.
Indian Sculpture and Painting, London, 1908.
HAZRA, R. C.
Studies in the Upapurāṇas, Vol. I, Calcutta, 1958.
HOPKINS, E. W.
Epic Mythology, Strassburg, 1915.
HUSSAIN, M.
The Rehla of Ibn Baṭṭuṭa (India Maldive Islands and Ceylon), Gaekwad's Oriental Series, Baroda, 1953.
JOSHI, N. P
Mathura Sculptures, Mathura, 1966.
JOUVEAU-DUBREUIL
Iconography of Southern India (Trans. from the French by A. C. Martin), Paris, 1937.
KAK, R. C.
Handbook of the Archaeological and Numismatic Sections of the Sri Pratap Singh Museum, Srinagar, London, 1923.
Ancient Monuments of Kashmir, London, 1933.
KRAMRISCH, ST.
Indian Sculpture, Calcutta, 1933.
Indian Sculpture in the Philadelphia Museum of Art, Philadelphia, 1960.
The Hindu Temple, 2 Vols., Calcutta, 1946.
KUNWAR LAL
Immortal Khajuraho, Delhi, 1965.

MACDONELL, A. A.
The Vedic Mythology, Varanasi, 1963.
MACDONELL, A. A. AND KEITH, A. B.
Vedic Index, Varanasi, 1958.
MAISEY, F.
Description of the Antiquities at Kālinjar, Calcutta, 1848.
MAJUMDAR, R. C. (ED.)
The History of Bengal, Vol. I, Dacca, 1943.
MAJUMDAR, R. C. AND PUSALKER, A. D. (Ed.)
The History and Culture of the Indian People—
Vol. I : *The Vedic Age*, London, 1950.
Vol. II : *The Age of Imperial Unity*, Bombay, 1951.
Vol. III : *The Classical Age*, Bombay, 1954.
Vol. IV : *The Age of Imperial Kanauj*, Bombay, 1955.
Vol. V : *The Struggle for Empire*, Bombay, 1957.
MARSHALL, J.
A Guide to Taxila, Calcutta, 1918.
Taxila, 3 Vols., Cambridge, 1951.
MISRA, INDUMATI
Foundations of Hindu Iconography in the Mahabharata (Ph.D. Thesis of Lucknow University, 1958).
MITRĀ, RĀJENDRALĀLA
Buddha Gayā, Calcutta, 1878.
MITRA, S. K.
The Early Rulers of Khajurāho, Calcutta, 1958.
MONIER-WILLIAMS, M.
A Sanskrit-English Dictionary, Oxford, 1956.
A Dictionary, English and Sanskrit, Lucknow, 1957.
MUNSHI, K. M.
Saga of Indian Sculpture, Bombay, 1957.
PANIGRAHI, K. C.
Archaeological Remains at Bhubaneswar, Calcutta, 1961.
PRAKASH, V.
Khajuraho, Bombay, 1967.
PUSALKER, A. D.
Studies in the Epics and Purāṇas of India, Bombay, 1963.
RAO, T. A. G.
Elements of Hindu Iconography, 2 Vols., Madras, 1914, 1916.
RAY, H. C.
The Dynastic History of Northern India, Vol. II, Calcutta, 1936.

RAYCHAUDHURI, H. C.
Materials for the Study of the Early History of the Vaishṇava Sect, 2nd Ed., Calcutta, 1936.

RAYMOND, B.
Hindu Medieval Sculpture, Paris, 1950.

ROWLAND, BENJAMIN
The Art and Architecture of India, London, 1953.

SARASWATI, S. K.
A Survey of Indian Sculpture, Calcutta, 1957.
Early Sculpture of Bengal, 2nd Ed., Calcutta, 1962.

SASTRI, H. K.
South Indian Images of Gods and Goddesses, Madras, 1916.

SCHROEDER, F. O.
Introduction to the Pāñcarātra-Ahirbudhnya Saṃhitā, Adyar, 1916.

SHAH, U. P.
Sculptures from Śāmalājī and Roḍā, Baroda, 1960.

SHUKLA, D. N.
Hindu Canons of Iconography, Lucknow, 1958.

SINHA, P. N.
The Study of the Bhāgavata Purāna, Madras, 1950.

SIVARAMAMURTI, C.
A Guide to the Archaeological Galleries of the Indian Museum, Calcutta, 1954.
Amaravati Sculptures in the Madras Government Museum, Madras, 1942.
Indian Sculpture, New Delhi, 1961.
Sanskrit Literature and Art (*MASI*, No. 73).

SMITH, V. A.
History of Fine Art in India and Ceylon, 3rd Ed., Bombay.
The Jain Stūpa and other Antiquities of Mathurā, Allahabad, 1901.

THAKORE, S. R.
Catalogue of Sculptures in the Archaeological Museum, Gwalior, M. B.

TRIPATHI, R. S.
History of Kanauj, Delhi, 1959.

VATS, M. S.
The Gupta Temple at Deogarh (*MASI*, No. 70).

VIJAYATUNGA, J.
Khajuraho (guide-book), Delhi, 1960,

VOGEL, J. Ph.
Antiquities of the Chamba State, Calcutta, 1911.
Catalogue of the Archaeological Museum at Mathura, Allahabad, 1910.
Catalogue of the Bhuri Singh Museum at Chamba, Calcutta, 1909.
Indian Serpent-lore, London, 1926.
La Sculpture de Mathura, Paris, 1930.

WILKINS, W. J.

Hindu Mythology, Vedic and Puranic, 2nd Ed., London, 1900.

ZANNAS, E. AND AUBOYER, J.

Khajurāho, The Hague, 1960.

(ग) महत्वपूर्ण लेख

AGRAWALA, R. C.

An Unpublished Indra-Indrānī Plaque from Nagar (*Journal of the Gujarat Research Society*, Bombay, Vol. XIX, No. 4, October, 1957).

Cakra Puruṣa in Early Indian Art (*Bhāratīya Vidyā*, Bombay, Vol. XXIV, Nos. 1 to 4, 1964).

Kṛṣṇa and Baladeva as Attendant Figures in Early Indian Sculpture (*IHQ*, Vol. XXXVIII, No. 1, March, 1962).

Kṛṣṇa and Balarāma in Rājasthāna Sculptures and Epigraphs (*IHQ*, Vol. XXX, No. 4, December, 1954).

Rāmāyaṇa Scenes in Rājasthāna Sculptures (*IHQ*, Vol. XXX, No. 2, June, 1954).

Some Interesting Sculptures from Rajasthan (*JASL & S*, Vol. XXIII, No. 1, 1957).

Some Further Observations on Early Inscriptions and Sculptures of Rajasthan Depicting Kṛṣṇa-Līlā and Rāmāyana Scenes (*Bhāratīya Vidyā*, Bombay, Vol. XVI, No. 2, 1956).

Some Unpublished Sculptures of Baladeva from Rajasthan (*JIH*, Vol. XXXIX, Part I, April, 1961).

Some Important Mediaeval Images of Viṣṇu from Rājapūtānā (*The Adyar Library Bulletin*, Madras, Vol. XVIII, Parts 3-4).

Some Viṣṇu Sculptures from Mārwār (*Journal of the Ganga Nath Jha Research Institute*, Allahabad, Vol. XIV, Nos. 1-4, Nov. 1956—Aug. 1957).

अटरू की प्राचीन मूर्तिकला (**मरु-भारती,** पिलानी, वर्ष ८, अंक १, जनवरी, १९६०)।

राजस्थान मे विष्णु-पूजा (**राजस्थान-भारती,** बीकानेर, वर्ष ४, अंक ४, अगस्त, १९५५)।

राजस्थान की प्राचीन मूर्तिकला में सूर्य-नारायण तथा मार्त्तण्ड-भैरव प्रतिमाएँ (**शोध-पत्रिका,** उदयपुर, भाग ८, अक ४, जून, १९५७)।

AGRAWALA. V. S.

A Catalogue of the Brahmanical Images in Mathura Art (*JUPHS*, Vol. XXII, Parts 1-2, 1949).

Art Evidence in Kālidāsa (*JUPHS*, Vol. XXII, Parts 1-2, 1949).

AGRAWALA, V. S. AND UPADHYAYA, B. S.

A Relief of Ṛṣya Śṛṅga in the Mathurā Mueseum (*JISOA*, Vol.IV, No. 1, June, 1936).

BAJPAI, K. D.
New Acquisitions to the Mathurā Museum (*JIM*, Vol. X).
Two Rare Image of Vishṇu from Mathurā (*JUPHS*, Vol. II, New Series, Part II, 1954).
मथुरा-कला में कृष्ण-बलराम की मूर्तियाँ (कला-निधि, बनारस, वर्ष १, अंक २)।
प्राचीन भारतीय कला मे कृष्ण-चरित (ब्रजभारती, मथुरा, वर्ष १५, अंक ३)।

BANERJEA, J. N.
Khajurāho (*The Journal of the Asiatic Society*, Calcutta, Vol. III, No. 1, 1961).
The Representation of Sūrya in Brāhmaṇical art (*Indian Antiquary*, 1925).

BIDYABINOD, B. B.
An Illustrated Note on an Indian Deity called Revanta (*JASB*, 1909).

BRUHN, K.
The Figures of the Two Lower Reliefs on the Pārśvanātha Temple at Khajurāho (*Ācārya Vijayavallabhasuri Commemoration Volume*, Bombay, 1956).

CHANDRA, P.
The Kaula-Kāpālika Cults at Khajurāho (*Lalit Kalā*, Nos. 1-2, 1955-56).

DEVA, K.
Kṛishna-Līlā Scenes in the Lakshmaṇa Temple, Khajuraho (*Lalit Kalā*, No. 7, 1960).
Lakshmana Temple at Sirpur (*JMPIP*, No. 2, 1960).
The Temples of Khajuraho in Central India (*AI*, No. 15, 1959).

DHAKY, M. A.
The Chronology of the Solanki Temples of Gujarat (*JMPIP*, No. 3, 1963).

DIKSHIT, R. K.
Siṁhavāhinī Lakshmī (*Proceedings of the Indian History Congress*, XXIII Session, 1960).
Siṁhavāhinī Lakshmī (*JNSI*, Vol. XXVI, Pt. I, 1964).

DISKALKAR, D. B.
Some Brahmanical Sculptures in the Mathura Museum (*JUPHS*, Vol. V, Pt. I, 1932).

GOETZ, H.
Earliest Representations of the Myth Cycle of Kṛishṇa Govinda (*Journal of the Oriental Institute*, Baroda, Vol. I, No. I).

JOHNSTON, E. H.
Two Buddhist Scenes at Bhaja (*JISOA*, Vol. VII, 1939).

JOSHI, N. P.
Kuṣāṇa Varāha Sculpture (*Arts Asiatiques*, Tome XII, 1965).

KALA, S. C.

Lachchhagir (*JUPHS*, Vol. II, New Series, Pt. II, 1954).

KRAMRISCH, ST.

Chandella Sculpture (*JISOA*, Vol. I, No. 2, 1933).

MAJUMDAR, M. R.

Rūpamaṇḍana and the uncommon Forms of Viṣṇu (*IHQ*, Vol. XVI, No. 3, September, 1940).

MARSHALL, J. H.

Archaeological Exploration in India, 1907-08 (*JRAS*, 1908).

NAGAR, M. M.

A New Type of Vishnu Image from Aligarh (*JUPHS*, Vol. XVIII, Parts 1 & 2, July-December, 1945).

PATHAK, V. S.

Vaikuṇṭha at Khajuraho and Kasmirāgama School (*JMPIP*, No. 2, 1960).

वैकुंठ का विकास (**राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रन्थ**, कलकत्ता, १९५९)।

PRASAD, MAHESHWARI

Two Viṣṇu Images and their Cult Affiliation (*Bhāratī*, Varanasi, No. 4, 1960-61).

SANYAL, N. B.

A New Type of Revanta from the Dinajpur District (*IHQ*, Vol. III, No. 3, 1927).

SHAH, U. P.

Ancient Sculptures From Gujarat and Saurashtra (*JIM*, Vol. VIII, 1952).

Terracottas from Bikaner State (*Lalit Kalā*, No. 8, October, 1960).

SHARMA, B. N.

Vāmana and Viṣṇu (*Purāṇa*, Varanasi, Vol. VIII, No. 2, July, 1966).

SHASTRI, A. M.

Iconographic Data in Varāhamihra's, Bṛhatsaṁhitā (*Nagpur University Journal*, Vol. XVI).

SIVARAMAMURTI, C.

Geographical and Chronological Factors in Indian Iconography (*AI*, No. 6, 1950).

Parallels and Opposites in Indian Iconography (*JASL*, Vol. XXI, No. 2, 1955).

TRIPATHI, L. K.

Restoration of the First Verse of the Yaśovarman Stone Inscription, Khajuraho (*Bhāratī*, Varanasi, No. 4, 1960-61).

The Erotic Scenes of Khajuraho and their Probable Explanation (*Bhāratī*, Varanasi, No. 3, 1959-60).

अनुक्रमणिका

आ

ख

ग

घ

भ

म

य

र

ल

व

ह

२. जग
जघ

चित्रावली

३. जवारी मन्दिर, गर्भगृह-द्वार

१ विश्वनाथ मन्दिर

४. सिहवाहिनी गजलक्ष्मी, खजुराहो संग्रहालय

५ सिहवाहिनी गजलक्ष्मी, विश्वनाथ मन्दिर

६ काम-रति, पार्श्वनाथ मन्दिर

७ काम-रति, पार्श्वनाथ मन्दिर

८ हरि-हर, खजुराहो संग्रहालय

९ षड्भुज गणपति, खजुराहो संग्रहालय

१० द्विभुज गणपति,
खजुराहो संग्रहालय

१२. अष्टभुज नृत्त-गणपति, खजुराहो संग्रहालय

११ चतुर्भुज नृत्त-गणपति,
लक्ष्मण मन्दिर (उ०-पू० गौण मन्दिर)

१३. अष्टभुज नृत्त-गणपति,
खजुराहो सग्रहालय
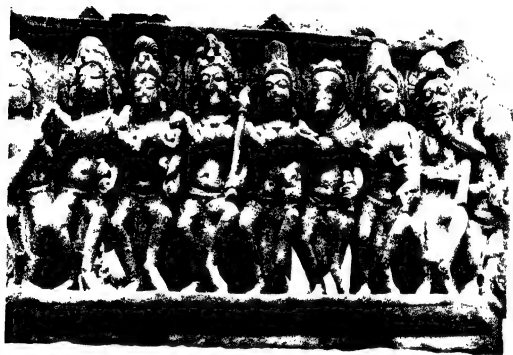
१८ गणेश और वीरभद्र के साथ नृत्य करती सप्तमातृकाएं,
खजुराहो संग्रहालय

१५ गणेश-विघ्नेश्वरी,
खजुराहो संग्रहालय

१६ गणपति-वाहन मूषक,
खजुराहो संग्रहालय

१८ विष्णु (पुरुषोत्तम),
लक्ष्मण मन्दिर

१७. विष्णु,
खजुराहो संग्रहालय

१९ विष्णु (त्रिविक्रम),
खजुराहो संग्रहालय

२० गरुडासन विष्णु,
खजुराहो संग्रहालय

२१

२१, २२ विलक्षण विष्णु, चतुर्भुज मन्दिर
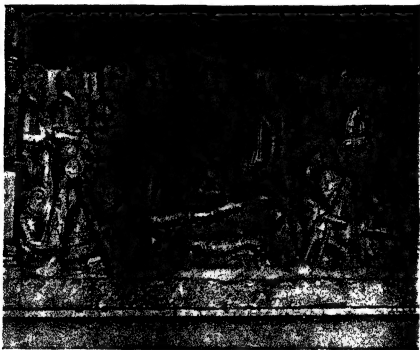
२३. योगासन विष्णु (मत्स्यावतार), लक्ष्मण मन्दिर

२४ मौनव्रतिन् विष्णु, खजुराहो सग्रहालय
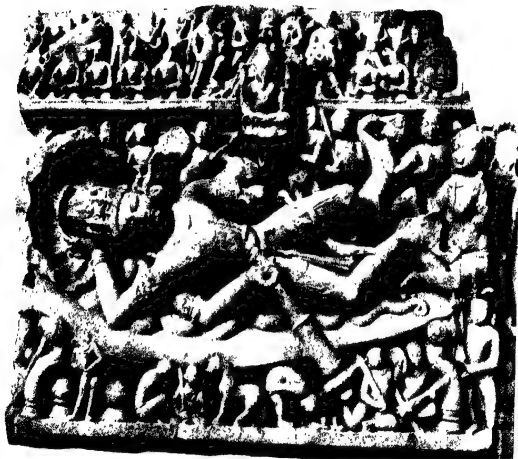
२५. शेषशायी विष्णु, खजुराहो संग्रहालय

२६. मत्स्यावतार, लक्ष्मण मन्दिर

२७. कूर्मावतार, लक्ष्मण मन्दिर

२८. चौसठ भुजाओं से युक्त नरसिंह,
खजुराहो संग्रहालय

२६. वराहावतार, वराह मन्दिर

३०. नृवराह, खजुराहो संग्रहालय

३१. नृवगह, खजुराहो सग्रहालय

३२. त्रिविक्रम (वामनावतार), खजुराहो संग्रहालय

२३ वामन, वामन मन्दिर

२४. वामन, खजुराहो सग्रहालय

३५. शक्ति-सहित परशुराम,
पार्श्वनाथ मन्दिर

३६. राम-सीता,
पार्श्वनाथ मन्दिर

३७ वालि-वध, कन्दरिया मन्दिर

३८. हनुमान्, हनुमान् मन्दिर

३६ कृष्ण-जन्म, खजुराहो संग्रहालय

४०. माँ-शिशु (?), खजुराहो संग्रहालय

४१ पूतना-वध, लक्ष्मण मन्दिर

४२ शकट-भग, लक्ष्मण मन्दिर

८३ तृणावर्त-वध, लक्ष्मण मन्दिर

८८ यमलार्जुन-उद्धार, लक्ष्मण मन्दिर

४५ वत्सासुर-वध, लक्ष्मण मन्दिर

४६ अरिष्टासुर वध, लक्ष्मण मन्दिर

४७ कालिय-दमन, लक्ष्मण मन्दिर

८९ कुवलयापीड-वध, लक्ष्मण मन्दिर

८८ कुब्जानुग्रह, लक्ष्मण मन्दिर

५१ शल-वध, लक्ष्मण मन्दिर

५० चाणूर-वध, लक्ष्मण मन्दिर

५२ कृष्ण-लीला-पट्ट, पार्श्वनाथ मन्दिर के निकट
आधुनिक मन्दिर

५३ बलराम द्वारा सूत लोमहर्षण का वध, लक्ष्मण मन्दिर

५४. बलराम-रेवती, पार्श्वनाथ मन्दिर

५५ दशावतार-पट्ट, खजुराहो संग्रहालय

५६ एकादशमुख विष्णु, चित्रगुप्त मन्दिर

५७

५७, ५८, ५९ दशावतार-पट्ट
(चित्र ५५) के अन्य चित्र

५८

५९
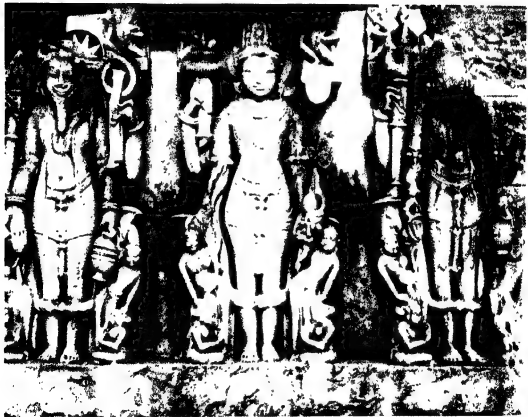
६० हरि-हर-पितामह, खजुराहो संग्रहालय
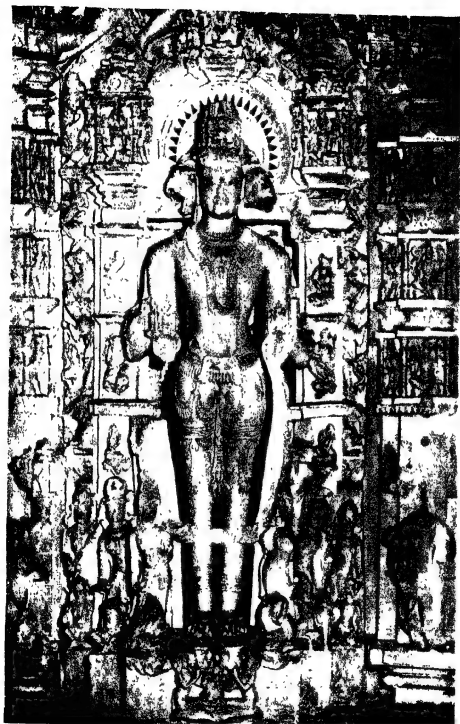
६१. वैकुण्ठ, लक्ष्मण मन्दिर

६२. वैकुण्ठ, खजुराहो संग्रहालय

६३ वैकुण्ठ-प्रतिमा (चित्र ६२) का पृष्ठ भाग

६८ वैकुण्ठ, कन्दरिया मन्दिर

६५. विश्वरूप विष्णु, लक्ष्मण मन्दिर

६६ लक्ष्मी-नारायण, पार्श्वनाथ मन्दिर

६७. लक्ष्मी-नारायण, पार्श्वनाथ मन्दिर

६८ हयग्रीव, लक्ष्मण मन्दिर

६६. करि-वरद, खजुराहो संग्रहालय

७० चक्र-पुरुष, खजुराहो संग्रहालय

७१ पद्म-पुरुष, खजुराहो संग्रहालय

७१. वैष्णव द्वारपाल, लक्ष्मण मन्दिर

७२. गरुड, खजुराहो संग्रहालय
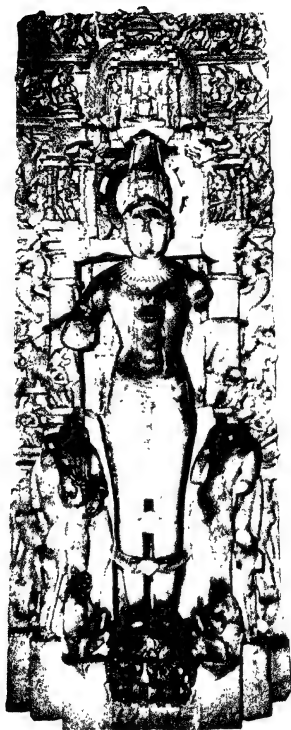
७८ सूर्य, चित्रगुप्त मन्दिर

७५ सूर्य, खजुराहो सग्रहालय

७७ धातृ-सूर्य, चित्रगुप्त मन्दिर

७६ सूर्य-नारायण, लक्ष्मण मन्दिर

७८ धातृ-सूर्य, चित्रगुप्त मन्दिर

८० हरि-हर-हिरण्यगर्भ, चित्रगुप्त मन्दिर

७९ हरि-हर-हिरण्यगर्भ, प्रतापेश्वर मन्दिर

८१ हरि-हर-हिरण्यगर्भ, लक्ष्मण मन्दिर (द०-पू० गौण मन्दिर)

८२. हरि-हर-हिरण्यगर्भ, मार्कण्डा, जिला चांदा (महाराष्ट्र)

८३ नवग्रह-पट्ट, खजुराहो संग्रहालय

८४ नवग्रह तथा सप्तमातृकाएँ, खजुराहो संग्रहालय

८५ इन्द्र, पार्श्वनाथ मन्दिर

८६ इन्द्र, विश्वनाथ मन्दिर

८७ इन्द्र-शची, कन्दरिया मन्दिर

९० अग्नि, लक्ष्मण मन्दिर

८९ अग्नि, दूल्हादेव मन्दिर

८८ अग्नि, जगदम्बी मन्दिर

६१. यम, पार्श्वनाथ मन्दिर

६२. निर्ऋति, लक्ष्मण मन्दिर
(उ०-पू० गौण मन्दिर)

९४ यम. जगदम्बी मन्दिर

९३ त्रिभंगि पार्श्वनाथ मन्दिर

९९ कुबेर, खजुराहो संग्रहालय

१०० कुबेर खजुराहो संग्रहालय

१०५ कुबेर-ऋद्धिदेवी, कन्दारिया मन्दिर

१०३ कुबेर, जगदम्बी मन्दिर

१०२ ईशान, पार्श्वनाथ मन्दिर